

॥ श्री आदिनाथाय नमः ॥ ॥ श्री अजितनाथाय नमः ॥
॥ श्री नेमिविज्ञानकस्तुर यशोभद्रसूरिजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

श्री त्रिषष्टिशालाकापुरुष चरित्र

भाग-२

(पर्व : ३ से ६)



॥ श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ॥

श्री वर्धमान जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ
मेमनगर, अहमदाबाद-५२.

❖ प्रेरक ❖

सरल स्वभावी प. पू. आचार्य विजयश्रेयांसचन्द्रसूरिजी म.सा.

❖ प्रकाशक ❖

श्री वर्धमान जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

अग्रवाल हाउस के खांचे में, योगीछाया के सामने, गुरुकुल रोड़,
मेमनगर, अहमदाबाद-380 052. फोन : 27457797

ॐ ह्रीं आदिनाथाय नमः ॐ ह्रीं अजितनाथाय नमः
॥ श्री नेमि-विज्ञान-कस्तुर-यशोभद्रसूरिजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र

भाग : दूसरा
पर्व तीन से छः

विक्रम संवत् २०६१, मागशर वद ६, दिनांक २-१-२००५
प्रथम संस्करण : प्रत १०००

--: संपादक - प्रेरक :-

शासनसम्राट प.पू. आचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी म.सा. के समुदाय के
कविरत्न प.पू. आचार्य श्री विजय यशोभद्रसूरिश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू. आचार्य भगवंत श्री विजय श्रेयांशचंद्रसूरिश्वरजी महाराजा

--: प्रकाशक :-

श्री वर्धमान जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

अग्रवाल रत्नीट हाउस के खांचेमें, योगीछाया के सामने,
गुरुकुल रोड, मेमनगर, अहमदाबाद-380 052.

फोन : (079) 27457797

त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र

भाग - दूसरा (पर्व तीन से छः)

-- संपादक - प्रेरक :-

शासनसम्राट प.पू. आचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी म.सा. के समुदाय के
कविरत्न प.पू. आचार्य श्री विजय यशोभद्रसूरिश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू. आचार्य भगवंत श्री विजय श्रेयांशचंद्रसूरिश्वरजी महाराजा

© All rights reserved

विक्रम संवत् २०६१, मागशर वद ६, दिनांक २-१-२००५

प्रथम संस्करण : प्रत १०००

-- मूल्य :-

पठन - पाठन /

प्राप्तिस्थान

जैन प्रकाशन मंदिर

तंबोळीनो खांचो, दोशीवाडानी पोळ,
गांधी रोड पुल नीचे, अमदावाद-१.

श्री कौशिकभाई रसिकलाल शाह

शहेनशाहनी चाल, पादशानी पोळ,
रिलीफ रोड, अमदावाद-१

सरस्वती पुस्तक भंडार

हाथीखाना, रतनपोळ,
अमदावाद-१.

-- प्रकाशक :-

श्री वर्धमान जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

मेमनगर, अहमदाबाद-380 052.

फोन : (079) 27457797

मुद्रक : मरक्युरी प्रिन्टर्स

२०१, धनलक्ष्मी कोम्पलेक्ष, ललित पेलेस के उपर, पोलीस कमिशनर की आफिस के पास,
शाहीबाग, अहमदाबाद-३८० ००४. फोन : (079) 25624029 (M) 9327007016

त्रिषष्टिथालाकापुरुष चरित्र भाग-२

भगवान के फोटो रखवाने वाले दाता के नाम

भगवान के नाम	दाता
३ श्री संभवनाथ भगवान	जैन श्वे. मू. पू. संघ, इस्लामपुर
४. श्री अभिनंदन भगवान	सुंदरजी खेराज, महाराष्ट्र
५. श्री सुमतिनाथ भगवान	ऋषभदेव जैन श्वे. मू. संघ, मिराम्बीका, नारणपुरा, अहमदाबाद-१३.
६. श्री पद्मप्रभु स्वामी	सुलसा सामायिक मंडल की बहनें, कर्णाटक
७. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान	राजस्थान जैन श्वे. मू. पू. संघ, कर्णाटक
८. श्री चंद्रप्रभु भगवान	दमयंतीबहन महेशभाई खीमतवाले, सुरत
९. श्री सुविधिनाथ भगवान	निरव जयंतीलाल शाह खीमतवाले, सुरत
१०. श्री शितलनाथ भगवान	नीमच छावनी जैन श्वे. मू. संघ की बहनों की ओर से, मध्यप्रदेश
११. श्री श्रेयांसनाथ भगवान	चिंतामणी पार्श्वनाथ जैन श्वे. मू. संघ, नवसारी
१२. श्री वासुपूज्य भगवान	दिवालीबाग नानपुरा सुरत जैन श्वे. मू. पू. संघ, सुरत
१३. श्री विमलनाथ भगवान	वासा-वसतपुर जैन श्वे. मू. संघ, राजस्थान
१४. श्री अनंतनाथ भगवान	विशा ओशवाल जैन श्वे. मू. संघ, आणंद
१५. श्री धर्मनाथ भगवान	रमेश हरीलाल गांधी, बिपीन हरिलाल गांधी - थराद
१६. श्री शांतिनाथ भगवान	अरविंदभाई वाडीलाल शाह के सुपुत्र चिंतनभाई, अहमदाबाद
१७. श्री कुंथुनाथ भगवान	रमेश हरीलाल गांधी, बिपीन हरिलाल गांधी - मुंबई
१८. श्री अरनाथ भगवान	शाह नवनीतलाल छोटलाल अंबालाल तेजपुरवाले, अहमदाबाद
१९. श्री मल्लिनाथ भगवान	चीमनलाल कीकाभाई, सुरत
२०. श्री मुनिसुव्रतस्वामी भगवान	कृष्णनगर जैन श्वे. मू. संघ, नरोडा, अहमदाबाद
२०. श्री मुनिसुव्रतस्वामी भगवान	बोटद जैन श्वे. मू. संघ, भावनगर

मंतव्य

शासनप्रभावक प.पू. आचार्य श्री विजय श्रेयांशचंद्रसूरिश्वरजी म.सा. ज्यारे पंजाब, हरीयाणा तथा उत्तर प्रदेश तरफ विहार करता त्यारे टी.वी. उपर रामायण अने महाभारतनी सिरीयलो चालती हती, त्यारे तेमने जैन तथा जैनेतरो वच्चे शुं तफावत छे तेनुं जे पुस्तक होय तो वांचवा आपो अने जवाबमां पूज्य श्री कहेता हता के अमारी पासे गुजराती पुस्तक होय तेना जवाबमां लोको कहेता हता के अमने गुजराती वांचता आवडतुं नथी. अमने हिन्दी भाषामां होय तो आपो । त्यारे पूज्यश्रीने थयुं के जो “त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र” (भाग १ थी ४) हिन्दी भाषामां छापवामां आवे तो घणुं सारुं कहेवाय, पण ते काम घणु भगीरथ हतुं । केटलाक वर्षो पछी पूज्यश्रीनुं चातुर्मास महाराष्ट्रमां मुंबई पासे वसईना संघमां कर्युं हतुं त्यारे तेओए आ वातनो विचार संघ समक्ष मुक्यो अने श्री संघे सारामां सारो सहकार आप्यो अने तेमां पण जयंतिभाई तथा शांतिलालभाईनो सारो सहकार मळ्यो ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र भाग-२ मां आगळ लखेला भगवान ना फोटा मुकाववा वाळा दाताओए आर्थिक सहयोग आप्यो छे ते बधाए पुण्यनुं भाथुं बांध्युं छे ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र भाग-२ मां श्री मेमनगर जैन संघना श्री भोगीभाई तेमज श्री विनुभाई (नवनीत)ना सहकार वगर आ भगीरथ कार्य परिपूर्ण थई शके तेम न हतुं । तेमनो अमूल्य सहकार आ अवसरे केम भुलाय ?

तेमज मरक्युरी प्रिन्टर्सवाळा श्रेणिकभाई शाहे भाग-१ वखते जे सहकार आप्यो हतो तेवो ज सहकार भाग-२ वखते आपी समयसर पुस्तक छापी आप्युं छे, तेओने अभिनंदन आपुं छुं.

आ पुस्तकमां मुद्रण दोषथी के प्रेसथी कोई पण भुल रही गई होय तो सुज्ञो ते सुधारीने वांचशो. आ पुस्तक वांची आत्मश्रेयार्थे आगळ वधो तेवी शुभेच्छा ।

शुभं भवतु श्री संघस्य

ता. १०-११-२००४,

ली. कौशिकभाई रसीकलाल शाह
पादशाहनी पोळ, अमदाबादना जय जिनेन्द्र

श्री त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र

पर्व - ३

विषयानुक्रमणिका

पहले सर्ग में : श्री संभवनाथजी का चरित्र - उनका पूर्वभव - विपुलवाहन राजा - उसके गुणों का वर्णन - पडा हुआ अकाल - उसका वर्णन - इसके पर से राजा को आया हुआ विचार - श्री संघ की भक्ति करने की इच्छा - अकाल में भी अप्रतिम संघभक्ति - इससे बांधा तीर्थकर नामकर्म - एक बार मेघ उत्पन्न होकर आकरिमक हुई अस्त-व्यस्तता देखकर उत्पन्न हुई **विचारणा** - इसके उपर से चारित्रग्रहण करने का किया हुआ निर्णय - पुत्र के साथ हुए उत्तर-प्रत्युत्तर - विपुलवाहन ने ली हुई दीक्षा - नौवें देवलोक में उत्पन्न होना - जीतारी राजा व सेनादेवी का वर्णन - माता को आये हुए चौदह स्वप्न - नौवें देवलोक से च्यूत होकर सेना देवी के गर्भ में उत्पन्न होना - इन्द्र का स्वप्नार्थ कहने आना - भगवंत का जन्म - दिशाकुमारियों ने किया हुआ सूतिकर्म - उन्होंने किया हुआ जन्मोत्सव - इन्द्रों ने किया हुआ जन्मोत्सव - **सौधमर्न्द्र** द्वारा स्तुति - जीतारी राजा ने किया हुआ जन्मोत्सव - गुणनिष्पन्न **संभवनाथ** नाम रखना - बालक्रीडा - प्राप्त युवावस्था - देहवर्णन - भगवंत का विवाह - राज्य पर स्थापन - भगवंत ने सोची हुई संसार स्थिति - लोकांतिक देवों का आगमन - प्रभु का दिया हुआ संवत्सरी दान - दीक्षा महोत्सव - भगवंत ने ली हुई दीक्षा - **इन्द्र** ने की हुई स्तुति - भगवंत का प्रथम पारणा - पंच दीव्यों का प्रकट होना - प्रभु को उत्पन्न केवलज्ञान - समवसरण की रचना - बारह पर्षदा का आगमन - **इन्द्र** द्वारा स्तुति - **भगवंत** ने दी हुई देशना - उसमें अनित्य भावना का स्वरूप - गणधरों की स्थापना - प्रभु के यशयक्षिणी - भगवंत का परिवार - आखिर में समेतशिखर पधारना - भगवंत का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण वगैरह।

पृष्ठ 9 से 90

पृष्ठ १ से १७

दूसरे सर्ग में : श्री अभिनंदन स्वामी का चरित्र - उनका पूर्वभव - महाबल राजा ने ली हुई दीक्षा - निरतिचार प्रतिपालन - बीस स्थानक आराधन - तीर्थंकर नामकर्म का बांधना - विजय विमान में उत्पन्न होना - अयोध्या का वर्णन - संवर राजा और सिद्धार्थ रानी का वर्णन - विजयविमान से च्यूत होना - सिद्धार्थ देवी के गर्भ में उत्पन्न होना - उन्होंने देखे हुए चौदह स्वप्न - इन्द्र ने कहा हुआ उसका अर्थ - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्र ने की हुई स्तुति - अभिनन्दन - नाम स्थापन - देह का वर्णन - भगवंत का विचार - राज्यस्थापन - भगवंत ने ली हुई दीक्षा - प्राप्त केवलज्ञान - इन्द्र द्वारा स्तुति - भगवंत ने दी हुई देशना - उसमें अशरण भावना का स्वरूप - गणधरस्थापना - यशयक्षिणी - भगवंत का परिवार - समेतशिखर पधारना - भगवंत का निर्वाण - आयु का प्रमाण वगैरह।

पृष्ठ १८ से २५

पृष्ठ १८ से २५

तीसरे सर्ग में : श्री सुमतिनाथ का चरित्र - उनका पूर्वभव - विजयसेन राजा और सुदर्शना रानी - रानी को उत्पन्न पुत्राभिलाष - उसके लिए राजा ने किया हुआ कुलदेवी का पूजन - उसने की हुई पुत्रप्राप्ति की बात - रानी को गर्भ रहना - पूर्ण समय पर पुत्र जन्म होना - **पुरुषसिंह** नाम स्थापन - युवावस्था की प्राप्ति - मुनिराज का मिलाप - उसको देखकर आया हुआ विचार - पूछा हुआ धर्म - मुनि ने कहा हुआ धर्म का स्वरूप - पुरुषसिंह को दीक्षा लेने का आया हुआ विचार - पितापुत्र के

प्रश्नोत्तर - पुरुषसिंह ने ली हुई दीक्षा - तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन - वैजयंत विमान में उत्पन्न होना - मेघराजा व मंगला रानी का वर्णन - वैजयंत विमान में से च्यूत होना - मंगला रानी की कोख से उत्पन्न होना - दो सोतनों का एक पुत्र संबंधित विवाद - राजा से न हुआ इन्साफ - गर्भ के प्रभाव से रानी को प्राप्त हुई सुमति - उसने किया हुआ इन्साफ - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - सौधमर्नेन्द्र द्वारा स्तुति - सुमतिनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापन - दीक्षाग्रहण - प्रथम पारणा - केवलज्ञान प्राप्ति - इन्द्रों का आगमन - इन्द्र ने की हुई स्तुति - भगवंत ने दी हुई देशना - उसमें एकत्व भावना का स्वरूप - गणधर स्थापना - यक्षयक्षिणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण वगैरह। पृष्ठ २६ से ३७

चौथे सर्ग में : श्री पद्मप्रभ चरित्र - उनका पूर्वभव - अपराजित राजा को आई हुई विचारणा - उन्होंने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक आराधना - तीर्थंकर नामकर्म बांधना - नौवें ग्रैवेयक में उत्पन्न होना - धर्म राजा और सुसीमा रानी का वर्णन - नौवें ग्रैवेयक से च्यूत होना - सुसीमा रानी की कोख से उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - मेरुपर्वत पर जन्मोत्सव - इन्द्र ने की हुई स्तुति - पद्मप्रभ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापन - दीक्षाग्रहण - प्रथम पारणा - केवलज्ञान प्राप्ति - देवागमन - इन्द्र ने की हुई स्तुति - भगवंत ने दी हुई देशना - उसमें संसार भावना का स्वरूप - चारों गति में प्राप्त होते दुःखों का सविस्तर वर्णन - गणधर स्थापना - यक्षयक्षिणी - प्रभु का परिवार - आखिर सम्मत्शिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण वगैरह। पृष्ठ ३८ से ४६

पांचवें सर्ग में : श्री सुपार्श्वनाथ चरित्र - उनका पूर्वभव - नन्दिषेण राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थंकर नामकर्म बांधना - छठे ग्रैवेयक में उत्पन्न होना - प्रतिष्ठ राजा और पृथ्वी रानी का वर्णन - छठे ग्रैवेयक से च्यूत होना - पृथ्वी रानी के उदर से उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - जन्मोत्सव - इन्द्र द्वारा स्तुति - सुपार्श्व नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापन - संवत्सरीदान - दीक्षा ग्रहण - प्रथम पारणा - केवलज्ञान प्राप्ति - इन्द्रागमन - इन्द्र द्वारा स्तुति - भगवंत की दी हुई देशना - उसमें अन्यत्व भावना का स्वरूप - गणधर स्थापना - यक्षयक्षिणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयु का प्रमाण वगैरह। पृष्ठ ४७ से ५२

छठे सर्ग में : श्री चन्द्रप्रभ चरित्र - उनका पूर्व जन्म - पद्म राजा ने लिया हुआ चरित्र - बीस स्थानक आराधन - तीर्थंकर नामकर्म का बांधना - वैजयंत विमान में उत्पन्न होना - महासेन राजा व लक्ष्मणा रानी का वर्णन - वैजयंत विमान में से च्यूत होना - लक्ष्मणा रानी की कोख से उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - इन्द्रकृत जन्माभिषेक - इन्द्र द्वारा स्तुति - चन्द्रप्रभ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्यप्रतिपालन - दीक्षा ग्रहण - प्रथम पारणा - केवलज्ञान प्राप्ति - देवागमन - इन्द्रकृत स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - उसमें अशुचि भावना का स्वरूप - गणधर स्थापना - यक्षयक्षिणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयु का प्रमाण वगैरह। पृष्ठ ५२ से ५८

सातवें सर्ग में : श्री सुविधिनाथ चरित्र - उसका पूर्वभव - महापद्म राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक आराधन - तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन - वैजयंत विमान में उत्पन्न होना - सुग्रीव राजा और रामा रानी का वर्णन - वैजयंत विमान से च्यूत होना - रामा देवी की कुक्षी में उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्रकृत स्तुति - सुविधि और पुष्पदंत नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य परिपालन - चारित्रग्रहण - प्रथम पारणा - देवागमन - इन्द्र द्वारा स्तुति - प्रभु ने

दी हुई देशना - उसमें आश्रव भावना का स्वरूप - आठ कर्म बांधने के हेतु - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयु का प्रमाण - तीर्थोच्छेद - असंयतिपूजा - अन्य छः प्रभु के अंतर में भी इस प्रकार ही होने का तीर्थोच्छेद - मिथ्यात्व वृद्धि वगैरह।

पृष्ठ ५८ से ६५

आठवें सर्ग में : श्री शीतलनाथ चरित्र - उनका पूर्वजन्म - पद्मोत्तर राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक आराधन - तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन - दसवें देवलोक में उत्पन्न होना - दृढरथ राजा व नंदारानी का वर्णन - दसवें देवलोक से च्यूत होकर नंदादेवी की कोख में उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्रकृत स्तुति - शीतलनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापन - लोकांतिक देवागमन - चारित्रग्रहण - प्रथम पारणा - केवलज्ञान प्राप्ति - देवागमन - इन्द्र द्वारा स्तुति - प्रभु की देशना - उसमें संवर भावना का स्वरूप - संवर के भेद - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - प्रभु का परिवार - अंत में समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य प्रमाण वगैरह।

पृष्ठ ६६ से ७९

पर्व तीसरा समाप्त

पर्व-४ (सर्ग : ७)

पहले सर्ग में : श्री श्रेयांसनाथ, त्रिपृष्ठ, अचल और अश्वग्रीव का चरित्र - श्री श्रेयांसनाथजी का पूर्वभव - नलिनगुल्म राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक आराधन - तीर्थकर नामकर्म का बांधना - सातवें देवलोक में उत्पन्न होना - सिंहपुर नगर, विष्णुराज राजा और विष्णुदेवी रानी का वर्णन - सातवें देवलोक से च्यूत होना - विष्णु रानी की कुक्षी में उत्पन्न होना - उसने देखे हुए चौदह स्वप्न - प्रभु का जन्म - छप्पन दिशाकुमारी का आना - उसने किया हुआ जन्मोत्सव व सूतिकर्म - इन्द्रों ने किया हुआ जन्मोत्सव - सौधर्मेन्द्र द्वारा स्तुति - श्रेयांस - नाम स्थापन - युवावस्था - राज्यभार ग्रहण - लोकांतिक देव का आना - सांवत्सरिकदान - दीक्षा महोत्सव - चारित्रग्रहण - प्रथम पारणा - अचल बलदेव का पूर्वभव - अनुत्तर विमान में उत्पन्न होना - त्रिपृष्ठ वासुदेव का पूर्वभव - विश्वभूति कुमार की उद्यान क्रीडा - विशाखनंदी को उत्पन्न ईर्ष्या - युक्ति से विश्वभूति से कराया हुआ उद्यान का त्याजन - उसे वैराग्य होना - उसने ली हुई दीक्षा - मथुरा नगरी में इकट्ठे होना - विशाख नंदी ने की हुई हांसी - विश्वभूति का किया हुआ संकल्प - महाशुक् देवलोक में उत्पन्न होना -

पोतनपुर नगर, रिपुप्रतिशत्रु राजा व भद्रारानी का वर्णन - अचल बलदेव के जीव का अनुत्तर विमान से च्यूत होना - भद्रा देवी की कोख से उत्पन्न होना - उसने देखे हुए चार स्वप्न - पुत्रजन्म - अचल नाम स्थापन - दूसरी बार ठहरा हुआ गर्भ - मृगावती का जन्म - उसके रूप का वर्णन - रिपुप्रतिशत्रु राजा का उस पर अनुराग होना - उसका अंतःपुर में स्थापन - उसके साथ किया हुआ गांधर्व विवाह - लोगों ने रखा हुआ प्रजापति नाम - भद्रादेवी को आई हुई लज्जा - उसका दक्षिण देश प्रति गमन - माता को वहां छोड़कर अचल का वापिस लौटना -

विश्वभूति के जीव का सातवें देवलोक से च्यूत होना - मृगावती की कुक्षी में उत्पन्न होना - उसे आये हुआ सात स्वप्न - पुत्रजन्म - त्रिपृष्ठ नाम स्थापन - अचलकुमार के साथ क्रीडा - दोनों में अप्रतिम स्नेह -

रत्नपुर नगर में अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव का जन्म - उसने साधे हुए तीन खण्ड - उसकी मृत्यु संबंधित चिंता - निमित्तिए को किया हुआ प्रश्न - निमित्तिए ने दिखायी हुई उसे मारनेवाले की निशानियाँ - अश्वग्रीव का सभा में प्रश्न - चण्डवेग दूत को भेजना - उसका प्रजापति राजा की सभा में आना - इससे पडा हुआ रंग में भंग - त्रिपृष्ठ कुमार का उस पर गुरसे होना - चण्डवेग का वापस निकलना - त्रिपृष्ठ ने किया हुआ उसका अत्यंत अपमान - प्रजापति राजा को मालूम पड़ी खबर - उसका खेद - चण्डवेग को वापस बुलवाकर उसका किया हुआ सम्मान - चण्डवेग का अश्वग्रीव के पास गमन - अश्वग्रीव को प्रथम से मिली हुई खबर - चण्डवेग ने प्रजापति राजा का किया हुआ बचाव - शाली क्षेत्र की सिंह से रक्षा करने हेतु प्रजापति को भेजा हुआ हुकम - पितापुत्र के बीच हुआ संवाद - त्रिपृष्ठ का अचल के शालीक्षेत्र प्रतिगमन - सिंह के साथ त्रिपृष्ठ ने किया हुआ युद्ध - सिंह का विदारण - उसका खेद पाना - सारथि द्वारा सांत्वना - अश्वग्रीव को संदेशा - पिता के पास आना - अचलकुमार ने कहा हुआ वृत्तांत - उसका खुश होना

वैताद्व्य पर्वत पर अर्ककीर्ति व स्वयंप्रभा का जन्म - स्वयंप्रभा के रूप का वर्णन - उसको हुआ मुनिसमागम - समकित की प्राप्ति - उसके वर हेतु उसके पिता ज्वलनजटी की चिंता - इस बारे में सचिवों को प्रश्न - उनके दर्शाये हुए भिन्न-भिन्न विचार - राजा का निमित्तिए को पूछना - उसने त्रिपृष्ठ कुमार की दर्शायी हुई योग्यता - वहां भेजा हुआ दूत - विवाह तय होना - स्वयंप्रभा को लेकर ब्याह करवाने आना - त्रिपृष्ठ के साथ हुआ ब्याह - विवाह वर्णन - अश्वग्रीव को मिले समाचार - उसे आया हुआ क्रोध - ज्वलनजटी के पास भेजा हुआ दूत - उसने की हुई स्वयंप्रभा की माँग - ज्वलनजटी का उत्तर - दूत का त्रिपृष्ठ के पास आना - उसके पास की हुई स्वयंप्रभा की माँग - त्रिपृष्ठ का उत्तर - दूत का अश्वग्रीव के पास आना - अश्वग्रीव ने विद्याधरों को दिया हुआ हुक्म - उसका ज्वलनजटी के साथ युद्ध करने जाना - वहां उनकी हुई पराजय - अश्वग्रीव को युद्ध के लिए निमंत्रण - अश्वग्रीव ने सचिवों से ली हुई सलाह - उनकी सलाह का नापसंदपना - युद्ध की तैयारी - अश्वग्रीव को हुए असगुन - फिर भी युद्ध के लिए प्रयाण - रथावर्तगिरि के पास किया हुआ पडाव - त्रिपृष्ठ व अचलकुमार द्वारा विद्यासाधन - उनका भी युद्ध के लिए प्रयाण - रथावर्तगिरि के पास आना - त्रिपृष्ठ की अग्रसेना ने हयग्रीव की सेना का किया हुआ पराजय - उसके पक्ष के विद्याधरों ने दर्शायी हुई माया - त्रिपृष्ठ की सेना का निराश होना - ज्वलनजटी ने त्रिपृष्ठ को दी हुई प्रेरणा - त्रिपृष्ठ व अचल का युद्धभूमि की ओर प्रयाण - दैवी शस्त्रादिक की प्राप्ति - अश्वग्रीव ने अपने सैनिकों का किया हुआ तिरस्कार - अश्वग्रीव का युद्धभूमि में आना - त्रिपृष्ठ व अश्वग्रीव का आमनेसामने होना - परस्पर विवाद होना - दोनों ने परस्पर युद्ध करने का निर्णय - दोनों का युद्ध - अनेक शस्त्र-प्रतिशस्त्र छोड़ना - अश्वग्रीव के शस्त्रों का निष्फल जाना - चक्र का स्मरण - त्रिपृष्ठ पर फेंकना - चक्र प्रहार से त्रिपृष्ठ को मूर्छा आना - मूर्छा टलना - त्रिपृष्ठ द्वारा चक्रग्रहण - अश्वग्रीव पर चक्र फेंकना - अश्वग्रीव के मस्तक का छेद - उसका सातवीं नरक में उत्पन्न होना - त्रिपृष्ठ की जय - प्रथम वासुदेव प्रकट होने की अंतरीक्ष वाणी - त्रिपृष्ठ की दिग्विजय - कोटी शिला का उठाना - पोतनपुर में प्रवेश - अर्धचक्रीपने का अभिषेक -

श्रेयांसनाथजी का छद्मस्थ विहार - केवलज्ञान प्राप्ति - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - प्रभु का पोतनपुर पधारना - देव ने रचा हुआ समवसरण - बारह पर्षदा - त्रिपृष्ठ को पहुँची बधाई - उसका प्रभु के पास आना - इन्द्रादिक की प्रभु स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - उसमें निर्जरा भावना का स्वरूप - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - भगवंत का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण -

त्रिपृष्ठ वासुदेव को पुत्रों का जन्म - शय्यापाल को गवैयों को बंद रखने का हुक्म - उसने किया हुआ अनादर - त्रिपृष्ठ को चढ़ा हुआ कोप - उसके कान में डलवाया हुआ तरना - शय्यापाल की मृत्यु - त्रिपृष्ठ ने बांधी हुई असाता वेदनी कर्म - त्रिपृष्ठ की मृत्यु - सातवीं नरक में उत्पन्न होना - अचल बलदेव को उत्पन्न अति खेद - उसने दर्शाया हुआ मोहविलास - अंत में ली हुई दीक्षा - निरतिचार प्रतिपालन - बलदेव का निर्वाण। पृष्ठ ७२ से ११०

दूसरे सर्ग में : श्री वासुपूज्य, द्विपृष्ठ, विजय व तारक का चरित्र - श्री वासुपूज्य का पूर्व जन्म - पद्मोत्तर राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन - दसवें देवलोक में उत्पन्न होना - चम्पानगरी, वासुपूज्य राजा व जयारानी का वर्णन - प्राणत देवलोक से च्यूत होना - जयादेवी की कोख से उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - इन्द्रों ने किया हुआ जन्माभिषेक - सौधर्मेन्द्र ने की हुई स्तुति - वासुपूज्य नाम स्थापन - बालक्रीडा - युवावस्था - मातापिता द्वारा विवाह के लिए प्रार्थना - भगवंत का उत्तर - मातापिता का दुबारा कहना - उसका भी प्रभुने दिया उत्तर - विवाह का अस्वीकार - लोकांतिक देवों का आगमन - दीक्षा महोत्सव - उद्यान वर्णन - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा -

विजय बलदेव का पूर्वजन्म - उसने ली हुई दीक्षा - अनुत्तर विमान में उत्पन्न होना - द्विपृष्ठ वासुदेव का पूर्वभव - विंध्यशक्ति राजा ने पर्वत राजा के पास भेजा हुआ दूत - गुणमंजरी वेश्या के रूप का वर्णन - उसकी मांग - पर्वत राजा ने दूत का किया हुआ अपमान - विंध्यशक्ति का युद्ध के लिए प्रयाण - परस्पर युद्ध - पर्वत राजा की पराजय - उसका पलायन हो जाना - गुणमंजरी वेश्या वगैरह का विंध्यशक्ति द्वारा ग्रहण करना - पर्वत राजा को दुःखगर्भित वैराग्य होना - उसने ली हुई दीक्षा - विंध्यशक्ति को मारनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - दसवें देवलोक में उत्पन्न होना - विंध्यशक्ति के जीव का कुछ जन्मों के बाद देवता बनना - वहां से च्यूत होना - विजयपुर में उत्पन्न होना - तारक प्रतिवासुदेव बनना -

द्वारका नगरी में ब्रह्मराजा व सुभद्रा और उमारानी - अनुत्तर विमान में से बलदेव के जीव का च्यूत होना - सुभद्रा को आये हुए चार स्वप्न - उसकी कुक्षि में उत्पन्न होना - पुत्रजन्म - विजयकुमार नाम स्थापन - दसवें देवलोक से वासुदेव के जीव का च्यूत होना - उमादेवी ने देखे हुए सात सपने - पुत्र का जन्म - द्विपृष्ठ नाम स्थापन - अचल व द्विपृष्ठ का अप्रतिम स्नेह - गुप्तचर ने तारक को कही हुई हकीकत - उसने सेनापति को दिया हुआ हुक्म - सचिव ने दूत भेजने की दी हुई सलाह - ब्रह्मराजा के पास दूत भेजना - उत्तम वस्तुओं की माँग करना - द्विपृष्ठ कुमार द्वारा दूत का अपमान - तारक प्रतिवासुदेव का युद्ध के लिए प्रयाण - द्विपृष्ठ का भी प्रयाण - दोनों सेना का परस्पर युद्ध - तारक व द्विपृष्ठ का आमनासामना - तारक ने छोड़ा हुआ चक्र - द्विपृष्ठ को मूर्च्छा - सावधान होना - तारक पर चक्र छोड़ना - उसका शिरच्छेद - द्विपृष्ठ का दूसरे वासुदेव रूप में प्रसिद्ध होना - उसकी दिग्विजय - कोटि शिला को उठाना - द्वारका में प्रवेश - अर्धचक्रीपने का अभिषेक -

वासुपूज्य स्वामी का छद्मस्थ विहार - प्राप्त केवलज्ञान - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - द्वारका की ओर प्रभु का पधारना - द्विपृष्ठादिक का वन्दना के लिए निकलना - समवसरण में प्रवेश - इन्द्र द्वारा स्तुति - भगवंत ने दी हुई देशना - धर्म दुर्लभ भावना का स्वरूप - मिथ्यात्वीओं में धर्म की अज्ञानता - उन्होंने माना हुआ अधर्म व धर्म - उसका विस्तार - प्रभु का परिवार - आखिर में चम्पानगरी में पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण -

द्विपुष्ट वासुदेव की मृत्यु - छट्टे नर्क में उत्पन्न होना - बलदेव को शोक होना - उसने ली हुई दीक्षा - उसका मोक्षगमन - पृष्ठ १११ से १२६

तीसरे सर्ग में : श्री विमलनाथ, स्वयंभू, भद्र और मेरक का चरित्र - विमलनाथ का पूर्वभव - पद्मसेन राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानकों की आराधना - तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन - आठवें देवलोक में उत्पन्न होना - कांपिल्यपुर नगर - कृतवर्मा राजा और श्यामा रानी का वर्णन - आठवें देवलोक से च्यूत होना - श्यामा रानी की कोख में उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - शकेन्द्र ने की हुई स्तुति - विमलनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्यप्रतिपालन - दीक्षामहोत्सव - उद्यानवर्णन - दीक्षाग्रहण - प्रथम पारणा - भद्र बलदेव का पूर्वजन्म - चारित्रग्रहण - अनुत्तर विमान में उत्पन्न होना - स्वयंभू वासुदेव का पूर्वजन्म - धनमित्र राजा व बलिराजा की द्यूत क्रीडा - धनमित्र का राज्य हार जाना - उसने ली हुई दीक्षा - बलिराजा का वध करनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - बारहवें देवलोक में उत्पन्न होना - बलिराजा का भी देवता बनना - वहां से च्यूत होकर मेरक प्रतिवासुदेव बनना - उसकी दिग्विजय - द्वारका नगरी में रुद्र राजा व सुप्रभा और पृथिवी रानी - सुप्रभा की कुक्षि में अनुत्तर विमान से च्यूत होकर बलदेव के जीव का उत्पन्न होना - उसे आये हुए चार स्वप्न - पुत्र का जन्म - भद्र नाम स्थापन - धनमित्र के जीव का बारहवें देवलोक से च्यूत होना - पृथिवी देवी की कुक्षि में उत्पन्न होना - उन्होंने देखे हुए सात सपने - पुत्र का जन्म - स्वयंभू नाम स्थापन - दोनों भाइयों की अप्रतिम मैत्री - उनका क्रीडा करने जाना - प्रतिवासुदेव को उपहार देने जा रही सेना की छावनी - उसे लूट लेने के लिए स्वयंभू का हुक्म - सुभटों द्वारा छावनी को लूटना - मेरक के पास पहुंची फरियाद - उसे क्रोध आना - एक सचिव ने किया हुआ निवारण - मंत्री को रुद्र राजा के पास भेजना - वहां स्वयंभू ने सुनाये हुए वचन - सचिव का वापस लौटना - मेरक का युद्ध के लिए प्रयाण - स्वयंभू का भी प्रयाण - दोनों सेनाओं का मिलन - परस्पर युद्ध - मेरक का चक्र - स्मरण - स्वयंभू पर छोड़ना - उसको आयी हुई मूर्छा - मूर्छा लौटना - उसका मेरक पर चक्र छोड़ना - मेरक का शिरच्छेद - नर्कगमन - स्वयंभू का तीसरे वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध होना - उसकी दिग्विजय - कोटिशिला उठाना - द्वारिका में प्रवेश - अर्धचक्रीपन का अभिषेक -

श्री विमलनाथ छद्मस्थविहार - केवलज्ञान की प्राप्ति - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - द्वारका के समीप आना - प्रभु का समवसरण - पर्षदा का आगमन - वासुदेव को बधाई - उसका प्रभु की वंदना के लिए आना - इन्द्रादिक की स्तुति - प्रभु की देशना - बोधि दुर्लभ भावना का स्वरूप - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयु का प्रमाण - स्वयंभू का छट्टी नर्क में जाना - भद्र बलदेव का मोक्षगमन वगैरह। पृष्ठ १२७ से १३३

चौथे सर्ग में : श्री अनंतनाथ, पुरुषोत्तम, सुप्रभ व मधु का चरित्र - अनंतनाथ का पूर्वभव - पद्मस्थ राजा ने लिया हुआ चारित्र - बीस स्थानक की आराधना - तीर्थकर नामकर्म बांधना - दसवें देवलोक में उत्पन्न होना - अयोध्या नगरी - सिंहसेन राजा व सुयशा रानी का वर्णन - दसवें देवलोक से च्यूत होना - सुयशा माता की कुक्षि में उत्पन्न होना - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्र द्वारा स्तुति - अनंतजित नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापन - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा -

बलदेव का पूर्वभव - महाबल राजा ने ली हुई दीक्षा - आठवें देवलोक में देव बनना - वासुदेव का पूर्वजन्म - समुद्रदत्त राजा व नंदा रानी - मलयपति चण्डशासन राजा का उसके यहां आना - नंदा

रानी को देखकर व्यामोह होना - उसका उसने किया हुआ हरण - समुद्रदत्त को वैराग्य होना - उसने ली हुई दीक्षा - चण्डशासन को मारनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - आठवें देवलोक में उत्पन्न होना -

चण्डशासन का संसार में परिभ्रमण करके पृथ्वीपुर में मधु नामका प्रतिवासुदेव बनना - उसे कैटभ नाम का एक भाई - द्वारकानगरी में सोम नाम का राजा - सुदर्शना व सीता रानी - सुदर्शना के उदर से चार स्वप्न सूचित बलदेव का जन्म - सुप्रभ नाम स्थापन - सीता रानी के उदर से सात स्वप्न सूचित वासुदेव का जन्म - पुरुषोत्तम नाम स्थापन - दोनों में अप्रतिम स्नेह - देवताओं द्वारा आयुधार्पण - नारद का मधु राजा के पास गमन - उसने की हुई कलह प्रेरणा - सोम राजा के पास दूत भेजना - अच्छी अच्छी वस्तुओं की मांग - पुरुषोत्तम वासुदेव ने किया हुआ दूत का तिरस्कार - दूत का वापस लौटना - मधु राजा को चढ़ा हुआ क्रोध - युद्ध के लिए निकलना - सोम राजा का भी दोनों पुत्र सहित निकलना - परस्पर युद्ध - मधुराजा के सैन्य की पराजय - मधु राजा का युद्ध के लिए उठना - पुरुषोत्तम का सामने आना - उन दोनों का युद्ध - मधु ने किया हुआ चक्र का स्मरण - चक्र का प्रकट होना - वासुदेव पर फेंकना - उसको आयी हुई मूर्च्छा - मूर्च्छा टलना - उसने हाथ में लिया हुआ चक्र - मधु पर फेंकना - उसका शिरच्छेद - नर्कगमन - सेनापति से कैटभ की भी मृत्यु - पुरुषोत्तम राजा का वासुदेव रूप में प्रकट होना - उसने की हुई दिग्विजय - कोटी शिला उठाना - अर्धचक्रीपने का अभिषेक -

अनंतनाथ का छद्मस्थ विहार - उनको केवलज्ञान होना - गणधरस्थापना - यक्षयक्षिणी - द्वारका नगरी में पधारना - प्रभु का समवसरण - वासुदेव को बधाई - उनका प्रभु की वन्दना के लिए आना - इन्द्रादिक द्वारा प्रभु की स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - नौ तत्त्वों का स्वरूप - जीव और अजीव तत्त्व की सविस्तर प्ररूपणा - प्रभु का परिवार - आखिर समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण - पुरुषोत्तम वासुदेव का छद्मी नरक में गमन - बलदेव का मोक्षगमन।

पृष्ठ १३४ से १४५

पाँचवें सर्ग में : श्री धर्मनाथ, पुरुषसिंह, सुदर्शन और निशुंभ का चरित्र - धर्मनाथ का पूर्वजन्म - दशरथ राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन - वैजयंत विमान में उत्पन्न होना - रत्नपुर नगर - भानुराजा व सुव्रता रानी का वर्णन - वैजयंत विमान से च्यूत होना - सुव्रता रानी की कुक्षि में उत्पन्न होना - इन्द्र कृत जन्मोत्सव - इन्द्र द्वारा जिन स्तुति - धर्मनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य पर स्थापना - दीक्षा विचार - उद्यान वर्णन - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा -

बलदेव का पूर्वभव - पुरुषवृषभ राजा ने ली हुई दीक्षा - आठवें देवलोक में उत्पन्न होना - वासुदेव का पूर्वभव - विकट और राजसिंह राजा - राजसिंह ने विकट को दी पराजय - विकट राजा ने ली हुई दीक्षा - राजसिंह को मारनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - दूसरे देवलोक में उत्पन्न होना - राजसिंह का भवभ्रमण - हरिपुर में निशुंभ नाम का प्रतिवासुदेव बनना -

अश्वपुर में शिव नाम का राजा और विजया व अमंका नाम की रानी - बलदेव के जीव का अठवें देवलोक से च्यूत होना - विजया की कोख से उत्पन्न होना - उसका जन्म - सुदर्शन नाम स्थापन - वासुदेव के जीव का दूसरे देवलोक से च्यूत होना - अमंका की कोख से उत्पन्न होना - उसका जन्म - पुरुषसिंह नाम स्थापन - दोनों में अप्रतिम स्नेह - सीमा पर के राजा को जीतने के लिए

बलदेव का गमन - पुरुषसिंह का पीछे जाना - मार्ग में रुकना - शिवराजा को दाहज्वर - उसकी खबर मिलने से पुरुषसिंह का पश्चात्तामन - पिता का मिलाप- अंमा माता का अग्निप्रवेश - पुरुषसिंह को उत्पन्न शोक - शिवराजा की मृत्यु - पुरुषसिंह को विशेष शोक - बलदेव को खबर देना - उसका आगमन - दोनों भाइयों का मिलन - शोक की विशेषता - निशुंभ प्रतिवासुदेव के दूत का आगमन - उसके द्वारा शिवराजा के दोनों पुत्रों को अपने पास आने का कहलवाना - पुरुषसिंह को चढ़ा हुआ क्रोध - उसने किया हुआ दूत का अपमान - उसका वापस लौटना - निशुंभ का युद्ध करने निकलना - पुरुषसिंह का भी ससैन्य निकलना - दोनों का मिलाप - परस्पर युद्ध - निशुंभ द्वारा चक्र का स्मरण - चक्र का प्रकट होना - वासुदेव पर छोड़ना - वासुदेव को मूर्छा - मूर्छा टलना - उसने हाथ में लिया हुआ चक्र - निशुंभ पर छोड़ना - जिससे उसका शिरच्छेद होना - पुरुषसिंह का पाँचवें वासुदेव के रूप में प्रकट होना - उसने किया हुआ दिग्विजय - कोटिशीला को उठाना - अर्धचक्रीपन का अभिषेक -

धर्मनाथ प्रभु को केवलज्ञान - गणधरस्थापना - यक्षयक्षिणी - अश्वपुर पधारना - पुरुषसिंह को बधाई - उसका वंदना के लिए निकलना - इन्द्रादिक द्वारा स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - चार कषायों का सविस्तर वर्णन - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य - प्रमाण - पुरुषसिंह वासुदेव का छद्मी नरक में गमन - सुदर्शन बलभद्र का मोक्ष गमन। पृष्ठ १४६ से १६१

छठे सर्ग में : श्री मधवा चक्रवर्ती का चरित्र - उसका पूर्वभव - नरपति राजा ने लिया हुआ चारित्र - मध्यम ग्रैवेयक में उत्पन्न होना - श्रावस्ती नगरी, समुद्रविजय राजा व भद्रा रानी का वर्णन - ग्रैवेयक से व्यूत होना - भद्रादेवी की कुक्षि में उत्पन्न होना - उसने देखे हुए चौदह स्वप्न - पुत्रजन्म - मधवा नाम स्थापन - युवावस्था - राज्य पर बैठना - चौदह रत्न प्राप्त होना - छः खण्ड पर दिग्विजय - श्रावस्ती वापस लौटना - चक्रवर्तीपने का अभिषेक - श्रावक तथा साधुधर्म की प्रतिपालना - अंत में तीसरे देवलोक में उत्पन्न होना - पृष्ठ १६२ से १६४

सातवें सर्ग में : सनतकुमार चक्री का चरित्र - उसका पूर्वभव - विक्रमयशा नाम का राजा - उसने किया हुआ नागदत्त की स्त्री विष्णुश्री का अपहरण - नागदत्त का पागल हो जाना - विष्णुश्री की कामणप्रयोग से मृत्यु - विक्रमयशा को अत्याधिक शोक व उन्मत्तपना - सचिवों द्वारा विष्णुश्री के शरीर को अरण्य में दिखाना - शब की दुर्व्यवस्था - उसे देखकर विक्रमयशा को वैराग्य उत्पन्न होना - उसकी भावना - उसने लिया हुआ चारित्र - तीसरे देवलोक में देव होना - वहां से व्यूत होना - रत्नपुर में जिनधर्म नाम का श्रेष्ठीपुत्र बनना - नागदत्त का भव भ्रमण - सिंहपुर में अग्नि शर्मा नामका ब्राह्मण होना - उसने स्वीकारा हुआ त्रिदण्डीपना - उसका रत्नपुर आगमन - जिनधर्म को देखने पर बैर प्रकट होना - राजा का दिया हुआ निमंत्रण - जिनधर्म की पीठ पर उष्ण दूधपाक का पात्र रखकर भोजन करने का स्वीकार करना - राजा ने जिनधर्म को दी हुई आज्ञा - उसने सहन किया हुआ असह्य दुःख - उसके शुभविचार - उसने ली हुई दीक्षा - किया हुआ कायोत्सर्ग - उसका सौधर्मन्द्र होना - त्रिदण्डी का यक्ष बनना।

हस्तीनापुर में अश्वसेन राजा और सहदेवी रानी - सहदेवी की कुक्षि में सौधर्मन्द्र का उत्पन्न होना - चौदह स्वप्न सूचित गर्भधारण - पुत्रजन्म - सनतकुमार नाम स्थापन - युवावस्था - अश्व पर सवार होना - उसका तेजी से बहुत दूर जाना - अश्वसेन राजा का पीछे आना - प्राप्त हुई अटवी - कुमार के मित्र महेन्द्रसिंह का अटवी में गमन - अश्वसेन का वापिस लौटना - सनतकुमार की महेन्द्रसिंह ने एक वर्ष तक की हुई खोज - वर्ष के अंत में सनतकुमार का मिलाप - परस्पर बातचीत -

महेन्द्रसिंह के उसकी हकीकत संबंधित प्रश्न - सनत्कुमार ने बकुलमति को दी संज्ञा - उसने कह दिखाया सनत्कुमार का सर्व वृत्तांत - उसमें एक यक्ष का उसे मानसरोवर ले जाना - वहां असिताक्ष यक्ष का आना - कुमार को देखते ही उसे बैर का स्मरण होना - परस्पर युद्ध - यक्ष का भाग जाना - भानुवेग की आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण - निद्रा सुख - वहां से असिताक्ष यक्ष का उठाना - अटवी में फेंक देना - वहां सुनंदा के साथ मिलाप - वज्रवेग की मृत्यु - सुनंदा के साथ पाणिग्रहण - वंध्यावली का आना - उसके साथ पाणिग्रहण - चन्द्रवेग व भानुवेग आदि विद्याधरों का आकर मिलना - विद्यावली की दी हुई प्रज्ञाप्तिविद्या - वज्रवेग के पिता - अशनिवेग का युद्ध करने आना - उसके साथ युद्ध - अशनिवेग की मृत्यु - विद्याधराधिपतिपन का अभिषेक - चन्द्रवेग की सो पुत्रियों से ब्याहना - क्रीडा के लिए यहां आना और यहां तुम्हारा मिलाप - महेन्द्रसिंह सहित सनत्कुमार का वैताड्य परं गमन - महेन्द्रसिंह ने मातापिता को मिलने जाने की दी हुई प्रेरणा - हस्तीनापुर की ओर प्रयाण - मातापिता का मिलाप - अश्वसेन राजा ने सनत्कुमार को राज्य देकर ली हुई दीक्षा - भरतक्षेत्र को साधना - हस्तीनापुर आना - सौधर्मेन्द्र ने भेजे देवता वगैरह ने किया हुआ चक्रवर्तीपन का अभिषेक -

सौधर्मेन्द्र द्वारा सनत्कुमार के रूप की प्रशंसा - दो देवों का देखने आना - उसने देखा हुआ अप्रतिम रूप - सनत्कुमार का सभा में आने के लिए कहना - उसका सभा में आना - व्याधिग्रस्त शरीर देखकर उनको खेद होना - सनत्कुमार का पूछना - उसने बताया हुआ कारण - सनत्कुमार को उत्पन्न हुआ वैराग्य - दीक्षा लेने का विचार - दीक्षा लेना - उन्होंने किया हुआ उग्र तप - प्राप्त बनी लब्धियां - सातसौ वर्ष तक व्याधि सहना - इन्द्र द्वारा उनकी देह निरपेक्षता की प्रशंसा - दो देवों का परिक्षार्थ आना - परीक्षा में पार उतरना - देवों ने कही हुई अपनी हकीकत - सनत्कुमार का आयुष्य - अंत में किया हुआ अनशन - तीसरे देवलोक में देव बनना। पृष्ठ १६५ से १७८

पर्व चौथा समाप्त

पर्व-५ (सर्ग : ५) श्री शांतिनाथजी चरित्र

पहले सर्ग में : श्री शांतिनाथ का प्रथम भव - रत्नपुर नगर में श्रीषेण राजा और उसकी अभिनंदिता तथा शिखिनंदिता रानी का वर्णन - इंदुषेण व बिंदुषेण नाम के दो पुत्र - अचल ग्राम में धरणीजट ब्राह्मण की दासी का पुत्र कपिल - उसका प्रच्छन्नपन से वेदाभ्यास - उसका परदेश निकलना - रत्नपुर आना - सत्यकि ब्राह्मण के वहां निवास - पुत्रवत् रहना - सत्यकि की स्त्री जंबूका के आग्रह से उसकी पुत्री सत्यभामा के साथ कपिल का पाणिग्रहण - उसके मान की वृद्धि - एक बार उसका नाटक देखने जाना - रात्रि और वर्षा होने से वस्त्ररहित होकर आना - इसके उपर से सत्यभामा को खानदानी की भांति - स्नेह की मंदता - धरणीजट का निर्धन बनना - कपिल के पास आना - उसने किया हुआ प्रथम भोजन - सत्यभामा की शंका में वृद्धि - उसका धरणीजट प्रति पूछना - उसने किया हुआ स्पष्टीकरण - सत्यभामा का श्रीषेण राजा के पास जाना - अकुलिन वर को छोड़ देने का आग्रह - राजा का कपिल को कहना - उसका न छोड़ने का आग्रह - आखिर में छोड़ने की पड़ी हुई जरूरत - सत्यभामा का राजमहल में रहना - इन्दुषेण को वरने हेतु स्वयंवर के लिए आयी हुई श्रीकांता कन्या - उसके साथ आयी हुई अनंतमति का वेश्या - उसके उपर इन्दुषेण व बिन्दुषेण दोनों को मोह

होना - परस्पर युद्ध - उसका निवारण न हो सकने से श्रीषेण राजा, दोनों रानियों तथा सत्यभामा ने किया विषघ्राण - जिससे चारों की मृत्यु - उत्तर कुरु में चारों का युगलिक होना - इन्दुषेण - बिन्दुषेण के पास एक विद्याधर का आना - उसने कहा हुआ पूर्वभव - अनंतमतिका का उसकी पूर्व जन्म की बहन के रूप में पहचानना - उनको उपजा हुआ वैराग्य - जिससे ली हुई दीक्षा - श्रीषेण राजा वगैरह ४ युगलिक का सौधर्म कल्प में देव होना -

अर्ककीर्ति विद्याधर की स्त्री ज्योतिर्माता के उदर में श्रीषेण राजा के जीव का उत्पन्न होना - पुत्रजन्म - अमिततेज नाम स्थापन - सत्यभामा के जीव का उसकी बहन के रूप में उत्पन्न होना - सुतारा नाम स्थापन - अभिनंदिता के जीव का त्रिपृष्ठ वासुदेव का पुत्र होना - श्रीविजय नाम स्थापन - शिखिनंदिता के जीव का उसकी बहन बनना - ज्योतिःप्रभा नाम स्थापन - कपिल के जीव का संसार में भटककर अशनिघोष विद्याधर बनना - सुतारा और श्रीविजय का और अमिततेज और ज्योतिःप्रभा का पाणिग्रहण - अर्ककीर्ति ने ग्रहण किया हुआ चारित्र - अमिततेज का राजा बनना - त्रिपृष्ठ के राज्य पर श्रीविजय का राजा बनना - अमिततेज का पोतनपुर आना - वहां महोत्सव देखकर श्रीविजय को पूछना - उसने कहा हुआ उसका कारण - इसमें निमित्तिए ने कही श्रीविजय पर विद्युत्पात की हकीकत - निमित्तिए का वृत्तांत - उपद्रव टालने के लिए सचिवों का विचार - एक सचिव ने भावी भाव मिथ्या न होने पर कही हुई कथा - श्रीविजय के स्थानक पर वैश्रमण की प्रतिमा का स्थापन - उसके पर हुआ विद्युत्पात - निमित्तिए का सत्कार - अमिततेज का वापस रथनुपुर चक्रवाल जाना - श्रीविजय का सुतारा के साथ ज्योतिर्वन में जाना - वहाँ अशनिघोष का आना - उसने विप्रतारणी विद्या द्वारा सुतारा का किया हुआ हरण - कृत्रिम सुतारा की दिखाई हुई मृत्यु - जिससे श्रीविजय को हुआ अपार शोक - उसके साथ जल मरने की तैयारी - दो विद्याधरों का आगमन - उसके छिड़के हुए मंत्रित जल से कृत्रिम सुतारा का भाग जाना - विद्याधरों ने कहा हुआ अपना वृत्तांत - उसमें सुतारा के अशनिघोष ने किए हुए हरण की हकीकत - सुतारा के कहने से उसका यहां आना - श्रीविजय को अमिततेज के पास ले जाना - उसे हकीकत कहना - सेना सहित श्रीविजय को अशनिघोष के साथ युद्ध करने भेजना - अमिततेज का महाज्वाला विद्या साधने जाना - श्रीविजय का अशनिघोष के पास दूत भेजना - उसने किया हुआ दूत का तिरस्कार - युद्ध का प्रारंभ - अशनिघोष के सैन्य का पीछे हटना - अशनिघोष का युद्ध के लिए उठना - उसका और श्रीविजय का युद्ध - अशनिघोष की विद्याशक्ति - अमिततेज का महाज्वाला विद्या साधकर वहां आना - उसके बल से अशनिघोष का भागना - पीछे भेजी हुई महाज्वाला विद्या - अशनिघोष का केवलज्ञानी बलदेव मुनि की शरण में जाना - महाज्वाला का वापिस लौटना - उसने अमीततेज को कही हुई हकीकत - सुतारा को ले आने के लिए मरिचि विद्याधर को भेजकर अमिततेज और श्रीविजय का बलदेव मुनि के पास आना - मरिचि विद्याधर का सुतारा के पास जाना - उसका भी बलदेव मुनि के पास आना - अशनिघोष का अमिततेज व श्रीविजय से क्षमा माँगना - बलदेव मुनि को सुतारा पर स्नेहसंबंधित अशनिघोष का किया हुआ प्रश्न - मुनि ने कहा हुआ पूर्वभव का वृत्तांत - उसमें कपिल के अन्य भवों की हकीकत - अमिततेज द्वारा किया हुआ अपनी भव्यता संबंधित प्रश्न - मुनि ने कही हुई उसके आगामी भव की हकीकत - उसमें भरतक्षेत्र में पांचवें चक्रवर्ती और सोलहवें तीर्थंकर होने की कही हुई बात - अमिततेज और श्रीविजय ने ग्रहण किया हुआ श्रावकधर्म - अशनिघोष ने दर्शाया हुआ अपना विचार - अपने बालपुत्र को अमिततेज की गोद में सौंपना - अशनिघोष ने ग्रहण किया हुआ चारित्र - अमिततेज और श्रीविजय ने की हुई धर्मारधना - अमिततेज ने दिया हुआ मुनिदान - एक बार दोनों का नंदनवन में जाना - वहां मुनिराज के दर्शन -

मुनि ने दी हुई देशना - आयुष्य संबंधित दोनों ने किए हुए प्रश्न - मुनि ने कहा हुआ दोनों का २६ दिन का आयुष्य - दोनों का अपने अपने नगर आकर पुत्र को राज्य सौंपकर चारित्र का ग्रहण करना - श्रीविजय ने किया हुआ वासुदेव बनने का संकल्प - दोनों ने किया हुआ अनशन - दसवें देवलोक में देवता बनना।

पृष्ठ १७९ से १९७

दूसरे सर्ग में : जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में रमणीय विजय में शुभा नगरी, स्तिमित सागर राजा और वसुंधरा तथा अनुद्धरा रानी - वसुंधरा देवी के उदर में अमिततेज के जीव का आकर उत्पन्न होना - उसने देखे हुए बलदेव के जन्मसूचक चार स्वप्न - पुत्रजन्म - अपराजित नाम स्थापन - अनुद्धरा के उदर में विजय के जीव का उत्पन्न होना - उन्होंने देखे हुए वासुदेव के जन्मसूचक सात स्वप्न - पुत्र जन्म - अनंतवीर्य नाम स्थापन - दोनों की प्रीति - यौवनावस्था - स्तिमितसागर राजा का मुनि समागम - उसने ली हुई दीक्षा - उसका चमरेन्द्र बनना - अनंतवीर्य तथा अपराजित की एक विद्याधर के साथ मैत्री - उसने दी हुई महाविद्या - बर्बरी व किराती नामकी उसकी नृत्यकुशल दो दासियां - नारद का तत्रागमन - दासियों का नृत्यादि में लीन होने से नारद को नहीं दिया हुआ मान - नारद को आया हुआ कोप - उसका दमितारि प्रतिवासुदेव के पास जाना - दमितारि ने दिया सम्मान - नारद से आश्चर्यकारी वस्तु संबंधित उसका किया हुआ प्रश्न - नारद द्वारा बर्बरी व किराती की प्रशंसा - दमितारि ने अनंतवीर्य के पास भेजा हुआ दूत - उसने की हुई दो दासियों की माँग - अनंतवीर्यने दासियां भिजवाने का दिया हुआ उत्तर - उन्होंने साधी हुई विद्याएं - विद्याओं का तत्काल साध्य होना - दुबारा आया हुआ दमितारिका दूत - उसके कठोर वचन - अनंतवीर्य की सहनशीलता - उसके साथ ही दो दासी के रूप में दो भाइयों का जाना - दमितारि के पास पहुँचना - दमितारी द्वारा नाटक करने की आज्ञा - कृत्रिम दासियों ने किया हुआ नाटक - उसमें हरेक रस का पोषण - दमितारि का प्रसन्न होना - अपनी पुत्री कनकश्री को नाट्यकला सीखाने के लिए सौंपना - उसके रूप पर अनंतवीर्य का मोहित होना - उसके पास अनंतवीर्य के रूप की अपराजित ने की हुई प्रशंसा - कनकश्री का अनंतवीर्य पर अनुरागी होना - अनंतवीर्य को देखने की दर्शायी हुई दृढ़ इच्छा - दोनों भाइयों का अपने रूप में प्रकट होना - कनकश्री ने अनंतवीर्य का पति के रूप में किया हुआ स्वीकार - वहां से शुभा नगरी को जाने का निर्णय - अनंतवीर्य की उद्घोषणा - कनकश्री को लेकर आकाशमार्ग से गमन - दमितारि ने पीछे भेजे हुए सुभट - उनका हार कर वापस लौटना - दमितारि का युद्ध के लिए निकलना - सैन्य का युद्ध - दमितारि व अनंतवीर्य का युद्ध - अनंतवीर्य पर चक्र छोड़ना - उसका चक्र लेकर वापस दमितारि पर छोड़ना - दमितारि का शिरच्छेद - वासुदेव तथा बलदेव के रूप में प्रसिद्ध होना - शुभानगरी की और प्रयाण - मार्ग में मेरु समीप आने पर जिनचैत्य के दर्शन करने जाना - केवली मुनि का समागम - कनकश्री ने अपने पिता के पूर्वभवादि संबंधित पूछे हुए प्रश्न - मुनि ने कहा हुआ उसका पूर्वभव - उसमें श्रीदत्ता का वृत्तांत - उसने किया हुआ धर्मचक्रवाल तप - जैनधर्म का आराधन - धर्म के फल का संदेह - शिवमंदिर नगर में कीर्तिधर राजा और अनिलवेगा रानी - उसे आये हुए तीन स्वप्न सूचित दमितारि प्रतिवासुदेव पुत्र - उसकी स्त्री मदिरा के उदर में दत्ता के जीव का उत्पन्न होना - उसका जन्म - कनकश्री नाम स्थापन - धर्मफल के संदेह से बंधुजनों का विरह - कीर्तिधर राजा ने ली हुई दीक्षा - वह मैं मुनि - पूर्वभव सुनकर कनकश्री को उत्पन्न वैराग्य - दीक्षा के लिए उसका आज्ञा मांगना - शुभानगरी पहुँचने के बाद दीक्षा लेने के लिए कहना - कनकश्री का कबूल करना - शुभा नगरी पर पहुँचना - अर्धचक्रीपन का अनंतवीर्य को अभिषेक - अनंतवीर्य को स्वयंप्रभ प्रभु पधारने की मिली हुई बधाई - वासुदेव का वन्दना के लिए जाना - कनकश्री ने ली हुई दीक्षा -

उसको केवल ज्ञान और मोक्षपद की प्राप्ति - बलदेव को सुमति नामक पुत्री - उसने दिया हुआ मुनिदान - उसका स्वयंवर - मण्डप में आकाश से विमान उतरना - उसमें आयी हुई सौधर्मन्द्र की इन्द्राणी - उसने कहा हुआ अपना तथा सुमति का पूर्वजन्म - उसने दिया हुआ बोध - उसका वापस जाना - सुमति को जातिस्मरण - उसने देखा पूर्वजन्म - उत्पन्न वैराग्य - उसने मांगी दीक्षा की आज्ञा - उसने ली हुई दीक्षा - उसे केवलज्ञान और मोक्षपद की प्राप्ति।

अनंतवीर्य की मृत्यु- पहली नरक में उत्पन्न होना - अपराजित ने ली हुई दीक्षा - उसका बारहवें देवलोक में इन्द्र बनना - अनंतवीर्य के जीव का नरक में से निकलकर मेघनाद विद्याधर बनना - मेरु पर्वत पर आना - अच्युतेन्द्र का मिलाप - उसने दिया हुआ मेघनाद को बोध - उसने ली हुई दीक्षा - पूर्वजन्म के बैरी देव ने किया हुआ उपसर्ग - मुनि का निश्चल रहना - अनशन करके बारहवें देवलोक में उत्पन्न होना।

पृष्ठ १९८ से २१४

तीसरे सर्ग में : मंगलावती विजय में रत्नसंचयानगरी, क्षेमंकर राजा और रत्नमाला रानी - रत्नमाला की कुक्षी में अपराजित के जीव का आना - उसने देखे हुए चक्रवर्ती के जन्मसूचक चौदह स्वप्न तथा पन्द्रहवा वज्र - पुत्रजन्म - वज्रायुध नाम स्थापन - युवावस्था - लक्ष्मीवती के साथ पाणिग्रहण - उसे हुआ सहस्रायुध पुत्र - वह अनंतवीर्य का जीव - उसकी युवावस्था - उसका कनकश्री के साथ पाणिग्रहण - उसे शतबली पुत्र होना

इशान कल्प के देवों में वज्रायुध के सम्यक्त्व के बारे में चर्चा - चित्रचूल देव का परीक्षा के लिए क्षेमंकर राजा की सभा में आना - उसने किया हुआ नास्तिक मत का स्थापन - वज्रायुध ने दिया हुआ उसका उत्तर - देव की प्रसन्नता - उसका स्वर्ग गमन - इशानेन्द्र का कहना, आगामी जन्म में वज्रायुध तीर्थंकर होने वाले हैं - वज्रायुध का वसंतक्रीडा के लिए उद्यान में जाना - जलक्रीडा - दमितारि प्रतिवासुदेव के जीव का विद्युद्दृष्ट देव होकर वहां आना - उसने किया हुआ उपद्रव - वज्रायुध ने किया हुआ उसका निवारण - शकेन्द्र का वहां आना - उसने की हुई पूजा व स्तुति - क्षेमंकर राजा के पास लोकांतिक देव का आना - उन्होंने ली हुई दीक्षा - प्राप्त हुआ केवलज्ञान - उनकी देशना और वज्रायुध वगैरह का उनकी वन्दना करके स्वस्थान पर जाना -

वज्रायुध की आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति - उसने किए हुए मंगलावती विजय के छः खण्डों का साधन - सहस्रायुध की युवराज पद पर स्थापना -

वज्रायुध की सभा में एक विद्याधर का उसकी शरण में आना - उसके पीछे आयी हुई सुरेखा विद्याधरी - उसके बाद आया हुआ एक विद्याधर - उसने पहले आये विद्याधर के दुर्नय संबंधित कहा हुआ वृत्तांत - वह सुनकर अवधिज्ञान से जानकर वज्रायुध ने कहा हुआ उनके पूर्वजन्म का वृत्तांत - वह सुनकर तीनों को आया हुआ वैराग्य - उनका परस्पर क्षमा माँगना - क्षमा करना - वज्रायुध ने कहा हुआ आगामी वृत्तांत - वह सुनकर क्षेमंकर प्रभु के पास जाकर चारित्र ग्रहण करना - क्रमशः अव्यय पद की प्राप्ति

सहस्रायुध की रानी जयनादेवी को शुभ स्वप्न सूचित पुत्र - कनकशक्ति नाम स्थापन - उसका कनकमाला के साथ पाणिग्रहण - इसके बाद वसंतसेना के साथ पाणिग्रहण - वसंतसेना की बूआ के पुत्र को चढ़ा हुआ कोप - कनकशक्ति को आकाशगामिनी विद्या की प्राप्ति - उसका हिमवंतगिरि पर जाना - चारणमुनि का समागम - उसने तथा दोनों स्त्रियों ने ली हुई दीक्षा - उसे उपसर्ग होना - केवलज्ञान की प्राप्ति - वज्रायुध ने किया हुआ उसका महोत्सव

क्षमंकर प्रभु का वज्रायुध की नगरी पधारना - वज्रायुध का वंदना के लिए जाना - उसे वैराग्य उत्पन्न होना - सहस्रायुध का राज्य पर स्थापन - वज्रायुध ने ली हुई दीक्षा - उसको उपसर्ग होना - रंभा वगैरह ने किया हुआ उसका निवारण - सहस्रायुध ने किया हुआ राज्य पालन - उसने ली हुई दीक्षा - वज्रायुध से मिलना - दोनों का तीव्र तप और शुभ ध्यान - साथ में किया हुआ अनशन - तीसरे त्रैवेयक में उत्पन्न होना।

पृष्ठ २१५ से २२३

चौथे सर्ग में : पुष्कलावती विजय की पुंडरीकिणी नगरी में धनरथ राजा - उसकी प्रियमति और मनोरमा नाम की रानी - उन दोनों के उदर में तीसरे त्रैवेयक से आकर दोनों देव का उत्पन्न होना - दोनों का जन्म - मेघरथ और दृढरथ नाम स्थापन - निहतशत्रु राजा के सचिव का आना - उसने की हुई उन दोनों को अपने राजा की कन्या देने की मांग - धनरथ राजा का स्वीकार - मेघरथ और दृढरथ का उस और प्रयाण - मार्ग में सुरेन्द्रदत्त राजा के साथ युद्ध होना - उसकी पराजय - सुमंदीरपुर पहुँचना - तीन कन्याओं के साथ पाणिग्रहण - वापस लौटते हुए सुरेन्द्रदत्त को उसका राज्य वापस सौंपना - तीनों रानियों को एक-एक पुत्र होना - नंदिषेण, मेघसेन और रुपसेन नाम स्थापन -

धनरथ राजा के पास सुसेना गणिका का मुर्गे सहित आगमन - उसके साथ मनोरमा रानी के मुर्गे का युद्ध - परस्पर अजयता - धनरथ राजा ने कहा हुआ उन दोनों का पूर्वभव - मेघरथ ने बताया हुआ उसका विद्याधर अपिष्ठितपने का कारण - दो विद्याधरों के पूर्वभव का कहना - उसका प्रकट होना - धनरथ राजा को शीश झुकाकर उनका स्वस्थान पर जाना - मुर्गों को जातिस्मरण होना - उन्होंने किया हुआ अनशन - उनका भूतनायक होना - मेघरथ के पास आना - उनके उपकार का कराया हुआ स्मरण - विमान में साथ ले जाकर मनुष्यलोक दिखाना - उनका स्वस्थानगमन -

धनरथ राजा के पास लोकांतिक देव का आगमन - उनोहने ली हुई दीक्षा - प्राप्त केवलज्ञान -

मेघरथ राजा का उद्यान में जाना - उनके पास भूतों ने किया हुआ ताण्डव - एक विद्याधर युगल का वहां आना - उसका मेघरथ राजा ने कहा हुआ वृत्तांत - प्रियमित्र के पूछने से कहा हुआ उसका पूर्वभव - उस सिंहरथ विद्याधर का स्वस्थान पर जाना - उसने धनरथ प्रभु से ली हुई दीक्षा - प्राप्त किया हुआ अव्ययपद -

मेघरथ राजा का पौषध लेकर बैठना - एक पंडुक (कपोत) का उसकी गोद में आकर गिरना - मेघरथ ने उसे दिया हुआ आश्वासन - पीछे बाज पक्षी का आना - उसने की हुई पंडुक की माँग - मेघरथ ने दिया हुआ उपदेश - उसने दिया हुआ उत्तर - मेघरथ राजा द्वारा पंडुक जितना अपना माँस देना कबूल करना - तराजू मँगवाना - पंडुक का अत्याधिक वजन - मेघरथ राजा का तराजू के एक पलड़े में बैठ जाना - सामंतादिक ने किया हुआ हाहाकार - देवता का प्रकट होना - परीक्षा के लिए आने का कहा हुआ कारण - उसका स्वस्थान पर जाना - पंडुक व बाज पक्षी तथा उस देव के पूर्वभव का मेघरथ ने कहा हुआ वृत्तांत - दोनों पक्षियों को जातिस्मरण होना - उसने किया हुआ अनशन - उसका भुवनपति देवता बनना -

मेघरथ राजा ने अष्टम करके किया हुआ कायोत्सर्ग - इशानेन्द्र द्वारा प्रशंसा - दो इन्द्राणियों का परीक्षा के लिए आना - उन्होंने किया हुआ अनुकूल उपसर्ग - मेघरथ का अचल रहना - इन्द्राणियों का स्वस्थान पर जाना - मेघरथ को आया हुआ वैराग्य - धनरथ तीर्थंकर का वहां पधारना - मेघरथ ने दर्शाया हुआ दीक्षा लेने का विचार - दृढरथ का भी साथ ही तैयार होना - मेघसेन का राज्य पर स्थापन - मेघरथ तथा दृढरथ ने ली हुई दीक्षा - मेघरथ ने किया हुआ बीस स्थानक का आराधन -

तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन - दोनों ने किया अनशन - दोनों का सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होना। पृष्ठ २२४ से २३७

पांचवें सर्ग में : हस्तीनापुर नगर, विश्वसेन राजा और अचिरादेवी का वर्णन - मेघरथ के जीव का सर्वार्थ सिद्ध से च्युत होना - अचिरा माता की कुक्षी में उत्पन्न होना - माता ने देखे हुए चौदह स्वप्न - भगवंत के गर्भ में उत्पन्न होने से मिर्गि (मरकी) आदि की शांति होना - प्रभु का जन्म - दिशाकुमारी कृत जन्मोत्सव - इन्द्रकृत जन्मोत्सव - इन्द्र ने की हुई प्रभु की स्तुति - विश्वसेन राजा ने किया हुआ जन्मोत्सव - शांतिनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - राज्य पर स्थापन - अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह - शांतनाथ की रानी यशोमति ने देखे हुए शुभ स्वप्न - दृढरथ के जीव का सर्वार्थसिद्धि से च्युत होना - उसकी कुक्षि में उत्पन्न होना - पुत्र जन्म - चक्रायुद्ध नाम स्थापन

चक्ररत्न की उत्पत्ति - शांतनाथ का दिग्विजय के लिए प्रयाण - मागधादिक देवों का स्वयमेव साध्य होना - उन्होंने दी हुई भेट - उत्तर की ओर तीन खण्ड साधने जाना - कीरातों के साथ युद्ध - उन्होंने किया हुआ मेघ कुमारों का आराधन - मेघकुमारों ने किया हुआ उपद्रव - प्रभु के सेवक देवों का उनके पास जाना और समझाना - कीरातों का वश होना - ऋषभकूट पर नाम लिखना - नवनिधान का वश होना - हस्तीनापुर में प्रवेश - पांचवें चक्री के रूप में अभिषेक - ऋद्धि का वर्णन -

लोकांतिक देवों का आना - सांवत्सरिक दान - दीक्षा महोत्सव - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा - प्रभु को केवलज्ञान - देवकृत समवसरण - चक्रायुध को बधाई - उसका वंदना के लिए आना - इन्द्रादिक द्वारा प्रभु की स्तुति - प्रभु की देशना - इन्द्रियों को जीतने संबंधित उपदेश - चक्रायुध ने ली हुई दीक्षा - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - कुरुचन्द्र ने किया हुआ पूर्वभव संबंधित प्रश्न - प्रभु ने कहा हुआ उसका पूर्वभव - उसमें वसंतदेव और कामपाल तथा मदिरा और केसरा का विस्तृत वृत्तान्त - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण - चक्रायुध का कोटिशिला पर मोक्षगमन वगैरह। पृष्ठ २३८ से २५८

पर्व पांचवा समाप्त

पर्व-६ (सर्ग : ८)

पहले सर्ग में : श्री कंथुनाथ चरित्र - उनका पूर्वभव - सिंहावह राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थकर नामकर्म का बंधन - सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होना - हस्तीनापुर नगर में शूर राजा तथा श्रीदेवी का वर्णन - श्रीदेवी की कुक्षि में सर्वार्थसिद्ध से च्युत होकर उत्पन्न होना - उन्होंने देखे हुए चौदह स्वप्न - पुत्रजन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्र द्वारा स्तुति - कंथुनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - राज्य स्थापन - चक्ररत्न का उत्पन्न होना - छः खण्डों की दिग्विजय - छठे चक्री के रूप में अभिषेक - लोकांतिक देवों का आना - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा - केवलज्ञान की निष्पत्ति - समवसरण - इन्द्रागमन - इन्द्र ने की हुई प्रभु की स्तुति - प्रभु की देशना - मनशुद्धि की आवश्यकता का उपदेश - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण - पृष्ठ २५९ से २६४

दूसरे सर्ग में : श्री अरुनाथ चरित्र - उनका पूर्वभव - धनपति राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन - नौवें त्रैवेयक में उत्पन्न होना - हस्तीनापुर

में सुदर्शन राजा और महादेवी का वर्णन - नौवें श्रैवेयक से च्यूत होना - महादेवी की कुक्षि में उत्पन्न होना - चौदह स्वप्न - प्रभु का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्र ने की हुई रज्जु - अरनाथ नाम स्थापन - युवावस्था - विवाह - राज्यस्थापन - सातवां चक्रवर्तीपना - लोकांतिक देव का आना - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा - प्रभु को केवलज्ञान - इन्द्रादिक का आना - इन्द्र ने की हुई प्रभु स्तुति - प्रभु की देशना - रागद्वेष को जीतने का उपदेश - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी

प्रभु का पद्मिनीखण्ड नगर को पधारना - कुंभ गणधर की देशना - एक वामन का वहां आना - सागरदत्त सेठ का कहा हुआ वृत्तांत - उसमें अपनी पुत्री प्रियदर्शना का वीरभद्र के साथ विवाह - वीरभद्र का एकांकी परदेशगमन - वामन से उसे मिली कुछ खबरें - स्फुट जानने के लिए प्रश्न - कुंभगणधर ने कहा हुआ वीरभद्र का वृत्तांत - वीरभद्र ने किए हुए रूप का परावर्तन - उसका सिंहलद्वीप जाना - शंख सेठ के यहां पुत्र रूप में रहना - उसकी पुत्री विनयवती के साथ राजपुत्री अनंगसुन्दरी के पास जाना - वीरभद्र की कला देखकर उसका वश होना - वीरभद्र का अपना रूप प्रकट करना - अनंदसुन्दरी को प्रीति होना - उसने अपनी माता को दर्शाया हुआ विचार - क्रमशः उसके साथ वीरभद्र का विवाह होना - वहां से स्वदेश जाने के लिए निकलना - समुद्र मार्ग से प्रयाण - जहाज टूटना - अनंगसुन्दरी का किनारे निकलना - तापसों का प्रसंग - तापसों का पद्मिनी खण्ड नगर में छोड़ जाना - वहां सुव्रता साध्वी का मिलाप - उसके उपाश्रय में रहना - प्रियदर्शना का मिलाप - दोनों में स्नेह होना - वीरभद्र को रतिवल्लभ विद्याधर द्वारा समुद्र में से निकालना - उसने कही हुई दोनों स्त्रियों की हकीकत - वीरभद्र ने किया हुआ गौरवर्ण - बुद्धदास नाम रखना - रतिवल्लभ की पुत्री रत्नप्रभा के साथ पाणिग्रहण - उसके साथ किया हुआ आनन्द - एक बार पद्मिनी खण्ड नगर में दोनों का आना - सुव्रता साध्वी के उपाश्रय के पास रत्नप्रभा को छोड़कर वीरभद्र का प्रच्छन्न रहना - रत्नप्रभा का घबराना - साध्वी ने दिया आश्वासन - उपाश्रय में रहना - वीरभद्र का वामन रूप धरकर शहर में घूमना - रत्नप्रभा का अनंगसुन्दरी और प्रियदर्शना के साथ मिलाप - परस्पर बातचीत - परस्पर स्नेह - कोई भी पुरुष के साथ न बोलने की प्रतिज्ञा में तीनों का स्थित होना - राजा के पास हुई यह बात - वीरभद्र का उनको बुलवाने का स्वीकार करना - वामन वेष में उपाश्रय पर आना - उसका अपना वृत्तांत कहने लगना - पहले प्रियदर्शना का, फिर अनंगसुन्दरी का और फिर रत्नप्रभा का बोलना - वीरभद्र ही वामन है ऐसा कुंभगणधर का प्रकट करना - वामन का उपाश्रय में आना - अपने रूप को प्रकट करना - परस्पर मिलाप - अतिशय आनन्द - सुव्रता गणिनी ने बताया हुआ सुपात्रदान का प्रभाव - विशेष पूछने हेतु अरनाथ प्रभु के पास आना - सुव्रता गणिनी ने कहा हुआ प्रश्न - प्रभु ने कहा हुआ वीरभद्र का पूर्वभव - उसमें उसके जीव ने अरनाथ प्रभु के जीव को पूर्वभव में दिया हुआ दान - उसके प्रभाव से सुख प्राप्त होना - क्रमशः वीरभद्र का स्वर्ग गमन -

प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य का प्रमाण।

पृष्ठ २६५ से २८२

तीसरे सर्ग में : छट्टे वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव के चरित्र - बलदेव का पूर्वभव - सुदर्शन राजा का दीक्षा लेकर आठवें देवलोक में उत्पन्न होना - वासुदेव का पूर्वभव - प्रियमित्र राजा की रानी का सुकेतु राजा द्वारा हरण - प्रियमित्र का दीक्षा लेना - सुकेतु को मारनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - तीसरे देवलोक में उत्पन्न होना - सुकेतु के जीव का भवभ्रमण करके वैताड्य पर बलि नाम

का प्रतिवासुदेव बनना - चक्रपुर नगर में महाशिर राजा को वैजयंती व लक्ष्मीवती नामक दो रानियां - सुदर्शन के जीव का वैजयंती की कुक्षि में उत्पन्न होना - पुत्र जन्म - आनन्द नाम स्थापन - प्रियमित्र के जीव का लक्ष्मीवती की कुक्षि में उत्पन्न होना - पुरुषपुंडरिक नाम स्थापन - दोनों का अत्यंत स्नेह - युवावस्था - पुरुषपुंडरिक का पद्मावती के साथ पाणिग्रहण - उसके रूप का वर्णन सुनकर बलि राजा का उसे हरनेके लिए आना - परस्पर युद्ध - बलिराजा ने छोड़ा हुआ चक्र - उसका निष्फल जाना - उसी चक्र से पुरुषपुंडरिक ने किया हुआ बलिराजा का शिरच्छेद - पुरुषपुंडरिक और आनंद का छोड़े वासुदेव व बलदेव के रूप में प्रसिद्ध होना - कोटि शिला का उठाना - वासुदेव का छट्टी नर्क में जाना - बलदेव का मोक्ष जाना। पृष्ठ २८१ से २८२

चौथे सर्ग में : सुभूम चक्रवर्ती का चरित्र - उसका पूर्वभव - भूपाल राजा ने ली हुई दीक्षा - संकल्प बांधकर सातवें देवलोक में उत्पन्न होना - हस्तीनापुर में अनंतवीर्य राजा - यमदग्नि तापस की उत्पत्ति - दो देवताओं का धर्मपरीक्षा के लिए आना - उन्होंने की हुई पद्मरथ राजर्षि की परीक्षा - उसका पार उतरना - देवों का यमदग्नि तापस के पास आना - चीड़ेचीड़ी (चीड़ीया) के रूप में उसकी दाढ़ी में रहना - उनके संवाद से यमदग्नि को क्रोध चढ़ना - उसके वचन से स्त्री ब्याहने का किया हुआ उसका निर्णय - उसका जितशत्रु राजा से कन्या मांगने आना - देवों का स्वर्ग गमन - जैन धर्म पर दृढ़ विश्वास - जितशत्रु राजा की ९९ पुत्रियों ने किया हुआ यमदग्नि का अस्वीकार - उनको कुबडियां बना देना - रेणुका ने किया स्वीकार - उसके साथ यमदग्नि का विवाह - ९९ राजपुत्रियों को सज्ज करना - रेणुका का युवावस्था में आना - उसके लिए और उसकी बहन के लिए एक एक चरु का साधना - रेणुका ने खाया हुआ क्षत्रिय चरु और उसकी बहन को दिया हुआ ब्रह्मचरु - दोनों को हुआ पुत्र - रेणुका को राम और उसकी बहन को कृतवीर्य - राम ने की हुई एक विद्याधर की सेवा - उसने दी हुई परशुविद्या - उसका साधना - परशुराम नाम से प्रकट होना - रेणुका का अनंतवीर्य के यहां जाना - उसके साथ लुब्ध होना - जिससे पुत्रोत्पत्ति होना - यमदग्नि का पुत्र सहित उसे ले आना - परशुराम को क्रोध आना - उसने पुत्र सहित रेणुका का किया हुआ विनाश - यह बात सुनकर अनंतवीर्य का वहां आना - यमदग्नि के आश्रमादि का नाश करना - तापसों के आक्रन्द से परशुराम का वहां आना - उसने किया हुआ अनंतवीर्य का विनाश - अनंतवीर्य के राज्य पर कृतवीर्य का बैठना - उसकी स्त्री तारा के उदर में भूपाल राजा के जीव का उत्पन्न होना - कृतवीर्य ने यमदग्नि का किया हुआ विनाश - परशुराम द्वारा कृतवीर्य का विनाश - उसके राज्य पर बैठना - कृतवीर्य की स्त्री का तापसों की शरण में जाना - वहां भूमिगृह में रहना - चौदह स्वप्न सूचित पुत्र का जन्म - सुभूम नाम स्थापन - परशुराम को क्षत्रिय जाति पर चढ़ा हुआ कोप - उसने की हुई सात बार क्षत्रियविहीन भूमि - उनकी दाढ़ों से भरा हुआ थाल - एक निमित्त को अपनी मृत्यु संबंधित परशुराम ने पूछा हुआ प्रश्न - उसने बतायी हुई निशानी - परशुराम ने बनवाई हुई दानशाला -

सुभूम का तहखाने में वृद्धि पाना - मेघनाद विद्याधर की पुत्री के साथ उसका पाणिग्रहण - सुभूम ने माता को किया हुआ प्रश्न - उसने दिया हुआ उत्तर - सुभूम का बाहर निकलना - हस्तीनापुर जाना - दानशाला में प्रवेश - दाढ़ों का क्षीर हो जाना - सुभूम ने किया हुआ उसका आहार - परशुराम के साथ युद्ध - परशुराम की मृत्यु - उसने की हुई २१ बार ब्राह्मणविहीन पृथ्वी - सुभूम की दिग्विजय - उसका चक्रवर्तीपना - उसने किया अघोर पाप - मृत्यु पाकर सातवीं नरक में जाना।

पृष्ठ २८३ से २८८

पाँचवें सर्ग में : सातवें वासुदेव बलदेव और प्रतिवासुदेव का चरित्र - बलदेव का पूर्वभव - वसुंधर राजा ने ली हुई दीक्षा - पाँचवें देवलोक में उत्पन्न होना - वासुदेव का पूर्वभव - ललितमित्र का खल सचिव ने किया हुआ अपमान - ललितमित्र ने ली हुई दीक्षा - खल सचिव को मारनेवाला बनने का किया हुआ संकल्प - पहले देवलोक में देव बनना - खल सचिव का भव भ्रमण करके वैताळ्य पर्वत पर प्रल्हाद नामक प्रतिवासुदेव बनना -

वाराणसी नगरी में अग्निसिंह राजा और जयंती व शेषवती रानी - जयंती की कुक्षि में वसुंधर के जीव का उत्पन्न होना - पुत्रजन्म - नंदन नाम स्थापन - शेषवती के उदर में ललितमित्र के जीव का उत्पन्न होना - पुत्रजन्म - दत्त नाम स्थापन - दोनों की मैत्री - उससे प्रल्हाद ने की हुई ऐरावत हस्ती की मांग - उसने किया हुआ तिरस्कार - परस्पर युद्ध - प्रल्हाद ने छोड़ा हुआ चक्र - उसका निष्फल जाना - वही चक्र दत्त द्वारा प्रल्हाद पर छोड़ना - जिससे उसका शिरच्छेद होना - नंदन व दत्त का सातवें वासुदेव बलदेव के रूप में प्रसिद्ध होना - कोटि शिला का उठाना - दत्त की मृत्यु - पाचवीं नरक में जाना - नंदन बलदेव ने ली हुई दीक्षा - उनका मोक्षगमन। पृष्ठ २८९ से २९६

छठे सर्ग में : श्री मल्लीनाथ चरित्र - उनका पूर्वभव - वीतशोका नगरी में बलराजा और धारणी रानी का महाबल नाम का पुत्र - उसके छः मित्र - बल राजा ने ली हुई दीक्षा - उनका मोक्षगमन - महाबल को बलभद्र नाम का पुत्र होना - महाबल को दीक्षा लेने का आया हुआ विचार - छः मित्रों की संमति - सात मित्रों ने ली हुई दीक्षा - समान तपस्या करने का किया हुआ संकेत - महाबल मुनि ने कपट से किया हुआ विशेष तप - जिससे बांधा हुआ स्त्रीवेद - बीस स्थानक की आराधना से बांधा हुआ तीर्थंकर नाम कर्म - सात मित्रों का वैजयंत विमान में उत्पन्न होना - मिथिला नगरी में कुंभ राजा और प्रभावती रानी का वर्णन - महाबल के जीवन का च्यूत होना - प्रभावती की कुक्षि में उत्पन्न होना - चौदह स्वप्न सूचित पुत्री का जन्म - देवकृत जन्मोत्सव - इन्द्र ने की हुई स्तुति - मल्लीकुमारी नाम स्थापन -

अचल मित्र के जीव का च्यूत होना - साकेतपुर में प्रतिबुद्धि राजा बनना - उसकी रानी के साथ नाग मंदिर में उसका आना - सचिव को किया हुआ पुष्प मुद्गर संबंधित प्रश्न - उसने की हुई मल्लीकुमारी के पुष्प मुद्गर की प्रशंसा - उसे राग उत्पन्न होना - कुंभ राजा के पास उसने भेजा हुआ दूत -

धरण मित्र के जीव का च्यूत होना - चम्पापुरी में चन्द्रछाय राजा बनना - चम्पा निवासी अर्हन्नय श्रावक का जल प्रवास - उसकी धर्मदृढता संबंधित इन्द्र ने की हुई प्रशंसा - एक देवता का परीक्षा करने आना - उसमें पार उतरना - देवता ने दी हुई कुंडल की दो जोड़ी - एक जोड़ी मिथिला में कुंभ राजा को भेट करनी - दूसरी जोड़ी चम्पा में आकर चन्द्रछाय राजा को भेट करनी - राजा ने पूछी हुई उसकी हकीकत - प्रसंग पर उसने किया हुआ मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन - जिससे उसे अनुराग होना - कुंभ राजा के पास उसने भेजा हुआ दूत -

पुराण मित्र के जीव का श्रावस्ती में रुक्मी राजा बनना - उसने की हुई अपनी पुत्री की स्नानविधि - उस संबंधित राजा ने सेवक को किया हुआ प्रश्न - उसने कही हुई मल्लीकुमारी की स्नानविधि और उसके रूप की प्रशंसा - जिससे अनुराग उत्पन्न होना - कुंभ राजा के पास उसने भेजा हुआ दूत -

वसुमित्र के जीव का वाराणसीपुरी में शंख राजा बनना - यहां मल्लीकुमारी के कुंडल का टूटना - उसे जोड़ देने का सोनियों को मल्लिराजा का हुक्म - सोनियों ने दर्शायी हुई अपनी असमर्थता - कुंभ राजा ने किया हुआ देशनिकाल - उनका वाराणसी आना - शंख राजा समक्ष उन्होंने किया हुआ मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन - जिससे शंख राजा को अनुराग होना - उसने कुंभ राजा के पास भेजा हुआ दूत -

अभिचन्द्र मित्र का कांपिल्यपुर में जितशत्रु राजा बनना - चोक्षा परिव्राजिका का मल्लीकुमारी के पास आना - उसके मत का मल्लीकुमारी ने किया हुआ अपकर्ष - दासियों द्वारा अपमान - उसे चढ़ा कोप - उसका जितशत्रु राजा के पास आना - उसने अपनी रानियों को किया हुआ रूप संबंधित प्रश्न - चोक्षा द्वारा मल्लीकुमारी के रूप की प्रशंसा - जिसे सुनकर जितशत्रु को अनुराग होना - उसका कुंभराजा के पास दूत भेजना -

वैश्रवण मित्र के जीव का हस्तिनापुर में अदीनशत्रु राजा बनना - मल्लीकुमारी के भाई मल्लकुमार ने चित्रित करवाई हुई चित्रशाला - एक चित्रकार ने विचित्र किया हुआ मल्लीकुमारी का हूबहू चित्र - मल्लकुमार का वहां क्रीड़ा के लिए आना - मल्लीकुमारी को देखकर शरमाना - धात्री का स्पष्टीकरण - चित्रकार पर चढ़ा क्रोध - उसके अंगूठे का छेदन - चित्रकार का हस्तीनापुर आना - अदीनशत्रु राजा समक्ष किया हुआ मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन - सुनकर राजा को अनुराग होना - उसने कुंभ राजा के पास भेजा हुआ दूत -

मल्लीकुमारी द्वारा छः राजाओं को प्रतिबोध प्राप्त कराने का आयोजन - अपनी सुवर्णमय मूर्ति को हर रोज एक अन्नकवल का प्रक्षेप -

छः राजाओं के दूतों का कुंभ राजा के पास आना - हरेक ने अलग अलग तरीके से की हुई मल्लीकुमारी की माँग - कुंभराजा ने छः दूतों का किया हुआ तिरस्कार - दूतों का वापस लौटना - छः राजाओं का मिलकर युद्ध के लिए आना - उन्होंने मिथिला के चारो ओर डाला हुआ घेरा - कुंभ राजा का चिंतित होना - मल्लीकुमारी ने किया हुआ उसका निवारण - छः राजाओं को अपनी मूर्तिवाले स्थान पर बुलवाना - उनका आना - मल्लीकुमारी की मूर्ति देखकर अनुरागी बनना - मल्लीकुमारी ने सिर पर से खोला हुआ ढक्कन - उसमें से उठी हुई दुर्गंध - छः राजाओं का परान्मुख होना - उस समय मल्लीकुमारी ने दिया हुआ बोध - छः राजाओं को जाति स्मरण होना - उन्होंने माना हुआ मल्लीकुमारी का उपकार - अवसर पर दीक्षा लेने का स्वीकार करके उनका स्वस्थान जाना -

लोकांतिक देवों का आगमन - मल्लीकुमारी ने दिया हुआ संवत्सरीदान - उन्होंने ली हुई दीक्षा - उसी दिन केवलज्ञान प्राप्त होना - देव रचित समवसरण - कुंभ राजा के छः मित्र राजाओं का आना - इन्द्र तथा कुंभ राजा ने की हुई स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - समता की आवश्यकता का उपदेश - छः राजाओं ने ली हुई दीक्षा - गणधर स्थापना - प्रथम पारणा - यक्षयक्षणी - प्रभु का परिवार - समेतशिखर पधारना - प्रभु का निर्वाण - आयुष्य प्रमाण। पृष्ठ २९७ से ३०७

सातवें सर्ग में : श्रीमुनिसुव्रत स्वामी का चरित्र - उनका पूर्वभव - सुरश्रेष्ठ राजा ने ली हुई दीक्षा - बीस स्थानक का आराधन - तीर्थंकर नामकर्म का बांधना - दसवें देवलोक में उत्पन्न होना -

हरिवंश की उत्पत्ति : कौशांबी नगरी में सुमुख राजा वीरकुविंद की स्त्री वनमाला को देखकर

उसको उत्पन्न मोह - उसको पाने के लिए सुमति सचिव द्वारा किया हुआ प्रयत्न - उसने भेजी हुई परिब्राजिका - वनमाला को भी अनुराग होना - परिब्राजिका ने कराया हुआ दोनों का मिलाप - उसके साथ सुमुख राजा ने की हुई क्रीडा - वीरकुविन्द का पागल हो जाना - उसकी ऐसी स्थिति देखकर सुमुख राजा को खेद होना - उस अवसर पर उस पर और वनमाला पर विद्युत्पात होना - दोनों का मरण - उसका हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिक होना - हरि और हरिणी नाम स्थापन - वीरकुविन्द ने किया हुआ बाल तप - उसका सौधर्म देवलोक में किल्बिषिक देव बनना - उसे अवधिज्ञान से युगलिक को देखना - उसे उत्पन्न क्रोध - मार डालने का आया हुआ विचार - विचार पलटना - चम्पानगरी में उन दोनों को रखना - वहां के राजा - रानी बनना - अनेक प्रकार के पाप करके उनकी दुर्गति होना - उसके नाम पर से शीतलनाथजी के तीर्थ में हरिवंश की उत्पत्ति होना - उसके वंश में अनेक राजाओं का होना -

राजगृह नगर में हरिवंश में हुए सुमित्र नाम के राजा - उसकी पद्मावती रानी के उदर में दसवें देवलोक से च्यूत होकर सुरश्रेष्ठ राजा के जीव का उत्पन्न होना - उसने देखे हुए चौदह स्वप्न - पुत्र का जन्म - इन्द्र का मेरुपर ले जाना - वहां किया हुआ जन्माभिषेक - इन्द्र ने की हुई स्तुति - मुनि सुव्रत नाम स्थापन - युवावस्था - पाणिग्रहण - प्रभावती रानी से उत्पन्न सुव्रत नाम का पुत्र - लोकांतिक देवों का आना - प्रभु ने ली हुई दीक्षा - प्रथम पारणा - केवलज्ञान की निष्पत्ति - समवसरण - इन्द्र ने की हुई स्तुति - प्रभु ने दी हुई देशना - यतिधर्म तथा गृहस्थ धर्म का वर्णन - गृहस्थ का सामान्य धर्म - गणधर स्थापना - यक्षयक्षणी -

प्रभु का भृगुच्छ नगर पधारना - जितशत्रु राजा का अश्वसहित वन्दना के लिए आना - गणधर ने किया हुआ धर्म किसने पाया प्रश्न - भगवंत का कहना कि अश्व ने ही धर्म पाया है - राजा का अश्व संबंधित पूछा हुआ प्रश्न - भगवंत ने कहा हुआ उसका पूर्वभव - उसमें दर्शाया हुआ सागरदत्त ने बनवाए हुए शिवालय के पुजारियों का दुष्ट आचरण - सागरदत्त के जीव का अश्व बनना - जितशत्रु द्वारा अश्व को मुक्त करना - अश्वबोध तीर्थ का प्रकट होना - अश्व की सद्गति होना -

कार्तिक सेठ की कथा : राजा की आज्ञा से परिब्राजक को कराना पडा पारणा - उसने ली हुई मुनि सुव्रत से दीक्षा - उसका सौधर्मेन्द्र बनना - परिब्राजक का ऐरावण बनना - ऐरावण को वश करना -

प्रभु का परिवार - समेत शिखरपधारना - प्रभु का निर्वाण - आयु का प्रमाण।

पृष्ठ ३०८ से ३१७

आठवें सर्ग में : महापद्म चक्रवर्ती का चरित्र - उसका पूर्वभव - प्रजापाल राजा ने ली हुई दीक्षा - बारहवें देवलोक का इन्द्र बनना - वहां से च्यूत होना - हस्तीनापुर में पद्मोत्तर राजा की ज्वालारानी की कुक्षी में उत्पन्न होना - पुत्र का जन्म - विष्णुकुमार का छोटा भाई बनना - महापद्म नाम स्थापन

उज्जयिनी में श्रीवर्म राजा का नमुचि नामक प्रधान - सुव्रताचार्य का वहां पधारना - सचिव सहित राजा का उनके पास जाना - नमुचि का वाद करना - एक क्षुल्लक मुनि का उसको निरुत्तर कर देना - नमुचि को चढ़ा हुआ क्रोध - रात्रि में मुनि को मारने जाना - देव ने की हुई स्थंभना - लोगों में अत्याधिक अपमान होना - उसका परदेशगमन - हस्तीनापुर आना - महापद्म के प्रधान रूप में रहना -

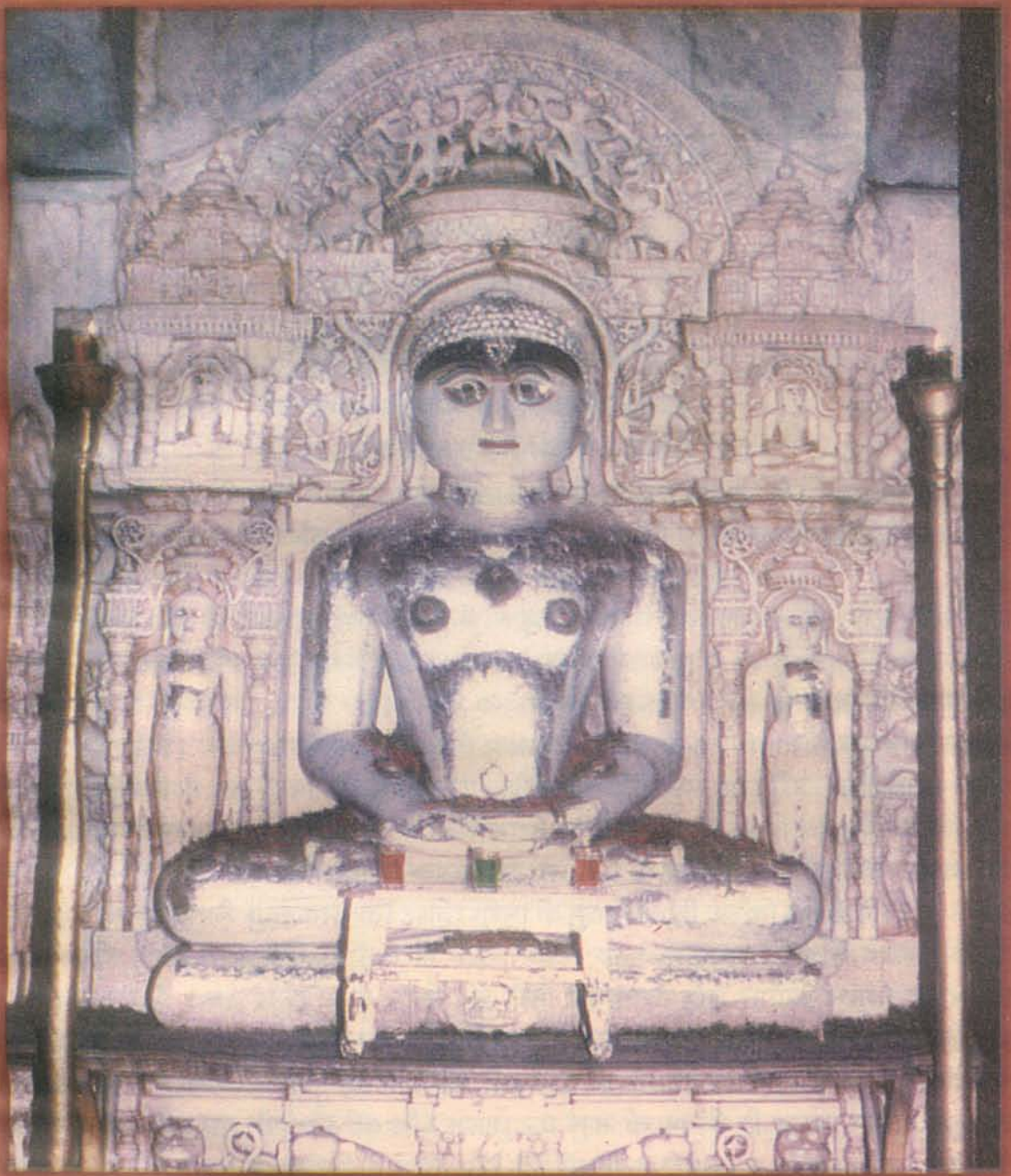
सिंहबल राजा को पकड़ने के लिए उसे भेजना - सिंहबल को बांधकर लाना - महापद्म की प्रसन्नता - उसने दिया हुआ वर - नमुचि ने वर की रख छोड़ी हुई अमानत -

जैनरथ व ब्रह्मरथ चलाने में ज्वालारानी व उसकी सौत के बीच जमी होड - पद्मोत्तर राजा का दोनों को अटकाना - महापद्म को लगा अपमान - उसका परदेशगमन - तापस के आश्रम में निवास - चम्पा के राजा की रानी का मदनावली पुत्री के साथ वहां आना - मदनावली और महापद्म को परस्पर अनुराग होना - मदनावली की माता का रोकना - महापद्म का वहां से निकल जाना - सिंधुसदनपुर पहुंचना - वहां के राजा के हाथी का बंधन तोड़कर भागना - महापद्म ने किया हुआ उसका निवारण - गज को वश करना - महासेन राजा की पुत्रियों के साथ विवाह होना - वेगवती विद्याधरी का वहां आना - उसने कहा हुआ अपना वृत्तांत - उसके साथ महापद्म कुमार का सुरोदयपुर जाना - जयचन्द्रा के साथ पाणिग्रहण - दो विद्याधरों के साथ युद्ध - उनकी पराजय - चक्रादि रत्नों की उत्पत्ति - महापद्म ने किया हुआ षट्छण्ड का साधन - लौटते हुए तापसों के आश्रम में आना - वहां मदनावली के साथ ब्याहना - हस्तीनापुर पहुंचना - मातापिता को आनन्द होना -

सुव्रताचार्य का हस्तीनापुर पधारना - पद्मोत्तर राजा का वन्दना के लिए आना - उसे आया हुआ वैराग्य - विष्णुकुमार को राज्य लेने के लिए कहना - उसने भी दीक्षा लेने का दर्शाया हुआ विचार - महापद्मकुमार को चक्रवर्तीपने के अभिषेक सहित अपने राज्य का भी अभिषेक - उसने किया हुआ दीक्षा महोत्सव - पद्मोत्तर राजा व विष्णुकुमार ने ली हुई दीक्षा - महापद्म ने जैनरथ घूमवाने का किया हुआ महोत्सव - पद्मोत्तर राजा का मोक्षगमन - विष्णुकुमार को प्राप्त हुई अनेक लब्धियां -

सुव्रताचार्य का चातुर्मास के लिए हस्तीनापुर आना - नमुचि ने बदला लेने का किया विचार - महापद्म से की हुई वर की मांग - अमुक दिन के लिए उसको सौंपा हुआ राज्य - सुव्रताचार्य के पास जाकर उसने किया हुआ आक्षेप - सात दिन के अंदर भरतक्षेत्र छोड़ जाने का हुक्म - विष्णुकुमार को बुलवाने की दिखी जरूरत - गुरु आज्ञा से एक मुनि का मेरु पर्वत पर उनके पास जाना - विष्णुकुमार का उसके साथ आना - नमुचि के पास जाना - उसे कई तरह से समझाना - अपने रहने के लिए तीन कदम जमीन मांगना - नमुचि ने किया कहा उससे ज्यादा जमीन का निषेध - विष्णुकुमार को चढ़ा हुआ क्रोध - उसका वैक्रिय शरीर करना - जिससे हुआ अत्यंत क्षोभ - नमुचि को भूमि पर पछाड़ना - महापद्म चक्री का उनके पास आना - महा मुश्किल से उनके कोप का किया हुआ निवारण - उन्होंने ने किया हुआ शरीर संकोच - नमुचि को छोड़ देना - विष्णुकुमार का मोक्षगमन - महापद्म चक्री ने ली हुई दीक्षा - उनकी आयु का प्रमाण - उनका मोक्षगमन आदि। पृष्ठ ३१८ से ३२६

पर्व छद्म समाप्त



श्री संभवनाथ भगवान

इवेरीवाड, अहमदाबाद

-: सौजन्य दाता :-

जैन श्वैतांबर मूर्तिपूजक संघ, इश्लामपुर

गाम : इश्लामपुर, जी. सांगली, महाराष्ट्र

आचार्य श्री हेमचंद्राचार्य विरचित

श्री त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित्र

हिन्दी अनुवाद - भाग दुसरा

पर्व - ३ - प्रथम सर्ग

श्री संभवनाथ चरित्र

त्रैलोक्यप्रभवे पुण्यसंभवाय भवच्छिदे ।

श्री संभवजिनेन्द्राय मनोभवभिदे नमः॥

तीन लोक के स्वामी, पवित्र जन्मवाले, संसार का छेदन करनेवाले और कामदेव का भेदन करने वाले ऐसे श्री संभवनाथ जिनेंद्र को नमस्कार करके पृथ्वी को पवित्र करनेवाले और कर्मरूपी लता का छेदन करनेवाले उनके (श्री संभवनाथ स्वामी) चरित्र के बारे में मैं कहूंगा ।

घातकीखंड द्विप के ऐरावत क्षेत्र के बारे में निपुणता का प्रतिक स्थान क्षेमपुरी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है । वहा स्वर्ग में से पृथ्वी पर मानो इंद्र का अवतार हुआ हो ऐसा विशाल बुद्धिवाला विपुलवाहन नाम का राजा था । माली जैसे बगीचे का पालन करता है । वैसे ही राजा अविश्रांत सभी प्रकार के शल्य (दुःख) का उच्छेद करके विधि से प्रजा का पालन करता था । पथिक की तरह जैसे देश की प्रतिकारी जैसी उस राजा की नितिरूपी सरीता (नदी) चारों ओर फैल रही थी । असह्य शासन को धारण करनेवाला ऐसा नितिवंत था की, अपने अपराध को भी दुसरो के अपराध की तरह सहन नहीं करता था । जैसे अच्छी चिकित्सा करनेवाला वैद्य रोग के प्रमाण में रोगीओ को औषध देता है । उसी तरह राजा भी अपने गुन्हगारो को उनके गुन्हा के मुताबिक ही उनको दंड देता था और गुणी व्यक्ति को उनके गुणो के मुताबिक पुजा भी करता था । योग्यता अनुसार वर्तन करना विवेकी पुरुषों का ही फल है । वह राजा अन्य लोगो के जैसा अभिमानी होने लायक स्थानो पर भी वह अभिमानी नहीं हुआ, कारण वर्षा ऋतु नदी को गर्व कराती उसी है तरह वह समुद्र को गर्व नहीं करा सकती । चैत्य की जैसे उनके हृदय में हमेशा सर्वज्ञ देव रहते थे । जैनशास्त्र की तरह वाणी में सर्वज्ञ के गुणो की ही प्रशंसा थी । वह तीर्थंकर देव और सुसाधुरूप गुरु के सामने ही अपना मस्तक झुकाता था, अन्य सभी उसके सामने झुकाते थे । आर्त और रौद्र के बिना शुभध्यान द्वारा मन का स्वाध्याय करने के लिये वाणी और जिनेश्वर की पुजा से शरीर का उसे परम फल प्राप्त किया था । वस्त्र में नील का रंग स्थिर रहता है , उसी प्रकार बारह प्रकारके श्रावक धर्म हमेशा स्थिर था । बड़े मनवाला वह राजा बारह प्रकारके राजचक्र में जिस तरह जागृत रहता है उसी प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म में भी जागृत रहता था । पवित्र आत्मावाले वे राजा धर्मरूप वृक्ष के अंकुर को उत्पन्न करनेवाला बीज बोता है, उसी तरह अपने द्रव्य को योग्यता के अनुसार सात क्षेत्र में निरंतर बोया करता था । दीन और

अनाथ के लिये एक आश्रय और परम दयालु राजा के पाससे कोई भी याचक समुद्र के पास से मेघ जिस तरह खाली नहीं जाता है । मेघ जिस तरह वर्षा करता है, उस तरह याचको पर द्रव्य की वृष्टि करता था । बिना अहंकार रहीत होने से मेघ की तरह जरा भी गर्जना नहीं करता था । कंटको का उच्छेद करने में फरसी रूपी दान देने में कल्पवृक्ष जैसा वह राजा पृथ्वी पर राज्य करता था । उस समय कोई भी बेकारी की हालत में नहीं थे ।

इस तरह वह राजा नीतिपूर्वक राज्य करता था , फिर भी बहुत समय पहले एक भयंकर अकाल पडा । भविष्य का उल्लंघन होना असंभव है । दिशाओ ने अंधकार करनेवाले मेघ के अभाव में मानो दुसरी ग्रीष्मऋतु आयी हो वैसी वर्षाऋतु का भयंकर आभास होने लगा । सभी जल को शोषित करनेवाले, वृक्षों का उखाड ने में उन्मत्त और कल्पांत काल के पवन के जैसा नैऋत्य दिशा का पवन बहने लगा, आकाश में बादलों का रंग कौओं के उदरभाग के जैसा श्याम दिखने लगा । सूर्य कांसे की धाली जैसे दिखने लगा और नगर तथा देश के लोग धान्य नहीं मिलने से तापस की तरह वृक्ष की छाल, कंद, मूल, तथा फल खाने लगे । मानो भुखो को भस्मक नाम का रोग हो गया जैसे लोगों की काफी भोजन मिलने के बाद भी क्षुधा शांत नहीं होती । भिरव मागने में लज्जा समजने वाले लोग भिक्षा प्राप्त करने के लिये अधिकांश कपटी (साधु) गुप्त वेष में फिरने लगे । पिता, माता और पुत्र क्षुधा से दिग्मूढ बन गये हो जैसे एक दुसरे का त्याग करके इधर उधर भटकने लगे । पिता भी कभी अन्न मिल जाय तो सामने ताकते रहते । मुख से रोते हुवे पुत्र को भी देते नहीं थे और खाने के लिये रुदन करते पुत्र को भी नहीं देता जैसे चांडाल की स्त्री सूप वगैरेह तुच्छ वस्तुएं बेचती हैं उसी प्रकार गलीयों में भटकती माताएं चने की एक फली के लिये अपने बच्चों को बेचने लगी । प्रातःकाल में धनवानों कि हवेली के प्रांगण में बिखरे दानों को गरीब रंक लोग घर के कबूतरो की तरह बिनने लगे । दुर्जन हलवाई की दुकानों पर बारंबार श्वान की तरह मौका देखकर खाद्य पदार्थों पर झपटने लगे कीतने लोक सारादिन भटकते आ खर में साम को थोडा सा भी मील गया तो भी खुसी मनाने लगे । इधर-उधर नरक लोको की तरह आपस में टकराते हुए भयानक रंक लोगो से नगर के राजमार्ग स्मशान से भी अधिक गंदे लगने लगे, जगह-जगह भटकते हुए रंक लोगो के बडे कोलाहल से सत्पुरुषों के कान में सुईयो की तरह चुभने लगे ।

ऐसे कल्पांत काल जैसे अकाल में चतुर्विध संघ का क्षय होता देखकर बडे मनवाले महाराज विचार करने लगे कि- इस पूरी पृथ्वी का मुझे इस समय रक्षण करना चाहिए, लेकिन क्या करूँ? इस पापी काल को मैं कैसे नियंत्रण में करूँ, इस सर्व संघ की मुझे अवश्य रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि बडे पुरुष सत्पात्र के उपकार का प्रथम आरंभ करते हैं ।

इस तरह विचार करके राजा ने अपने रसोइयों को आज्ञा दी “हे पाचक ! आज से संघ के भोजन पश्चात जो अन्न शेष रहेगा वही अन्न में भक्षण करूंगा, मेरे लिये बनाया हुआ तैयार अन्न मुनिजनों को आग्रह करके वहोरात्र और दुसरे पकाये हुए अन्न से श्रावकों को खिलायें” राजा की इस तरह की आज्ञा का स्वीकार करके रसोइये उस प्रकार से नित्य करने लगे, राजा स्वयं देख-रेख करने लगा ।

नासिका से सुगंध का पान कर सके वैसी कमल के जैसे उत्तम चावल, उडद के दानो से भी बड़े रस से भरे हुए मुंग मेघ के जल जैसे अधिक गाढे और मानो अमृत के मित्र हो वैसे भांति-भांति की सब्जियाँ, शक्कर मिलाकर बनाया हुआ मांड, प्रमोद करनेवाले मोदक, स्वादिष्ट खाजा, शक्कर की मिठाई, कोमल कुरमुरे अति मुलायम बडे, मनोहर कट्टी, जमा हुआ दहि, मसाले डालकर उबाला हुआ दुध और क्षुधाको टालनेवाला श्रीखंड ऐसे राजभोजन जैसे पक्वान पदार्थ श्रावको को मिलने लगे और बडे मनवाले राजा महामुनिओ को अपेक्षित, कल्पनीय और प्रासुक आहार स्वयं के हाथो से बांटने (वहोराने) लगे ।

इस तरह राजा ने अकाल के अंत तक सर्व संघ को यथाविधि भोजन पूर्ण करवाया । सर्व संघ की सेवा करने से और समाधि उत्पन्न होने से उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया ।

एक दिन विपुलवाहन महाराजा महल की छत पर बैठे थे । उसी समय पृथ्वी का छत्र बनकर आकाश मे घोषित मेघ उनके देखने मे आया । मानो आकाश का नील से रंगा हुआ वस्त्र की कंचुकी है । वैसा वह मेघ विद्युतरूप आभूषणो को धारण करता हुआ सभी दिशाओ में चारो ओर बराबर ही फेल गया इतने में वृक्षों को मुल में से हिलाता और पातालकलश का सर्वस्व हो ऐसा प्रचंड पवन उत्पन्न हुआ । उस बडे पवन ने आक के तुल की तरह उस महामेघ को उडाकर दशो दिशा में छिन्न-भिन्न कर दिया । एकक्षण मे उत्पन्न हुआ और एकक्षण मे नाश हुआ ऐसे मेघ को देखकर वह सद्बुद्धिवाला राजा विचार करने लगा कि-

“अरे । देखते-देखते मेघ जैसे दृष्टनष्ट हो गया वैसे ही इस संसार मे अन्य सभी भी देखते-देखते मे ही नष्ट हो जाते हैं । जो प्राणी स्वेच्छा से बोलते हैं, प्रवेश करते हैं, नाचते हैं, हंसते हैं, खेलते हैं, द्रव्य प्राप्त करने के अनेक उपायो की चिंता करते हैं । चलते हैं, खडे रहते हैं, सोते हैं, वाहन पर चढते हैं, कोप करते हैं और घर के भीतर अथवा बाहर विलास करते हैं, उस प्राणी को वैसी क्रिया करते ही यमराज के दूत की तरह नित्य पासमे रहे हुए अनेक दोष मृत्यु करवाते हैं । वे दोष इस प्रकार हैं- तत्काल काल से प्रेरक सर्प आकर दंश करता है, प्रचंड विद्युतरूपी दंड गिरकर उसे गिरा देता है, उन्मत हाथी आकर उसे अपने दंतशूल से पीस देता है, पुरानी दिवार या सीमा दिवार गिरकर उसे दबा देती है, भूख से व्याकुल उदरवाला व्याघ्र भक्ष कर लेता है, जिसकी कोई भी चिकित्सा नहीं हो सकती हैं वैसा रोग लागु पड जाता है, आक्समिक उन्मत (तूफानी) अश्व वगैरेह गिरा देते हैं, शत्रु या चोर आकर छुरी से हत्या करते हैं, प्रदिप्त हुई अग्नि जला देती है, महावृष्टि से आई नदी की बाढ तेजगति से उसे बहाकर ले जाती है । सर्व अंग मे वायु का बलवान दोष प्रगट होता है, शरीर की संपूर्ण गर्मी को शांत करके कफ व्याप्त कर देता है, पित्त का प्रबल दोष प्राण को लुप्त कर देता है , अथवा तत्काल हुआ सन्निपात पराभव करता है, मकड़ी का रोग शरीर का भक्षण करता है, क्षयरोग प्राप्त होता है । कौलरा का उपद्रव परेशान करता है । जिसका परिणाम खराब है, ऐसा अर्बुद जाति का व्रण उत्पन्न होता है, प्रमेह का रोग मुर्च्छित करवाता है, संग्रहणी का व्याधी लग जाती है, विद्रधि का रोग अवरोध पैदा करता है, खांसी का दर्द क्लेश करवाता है, श्वास की व्याधि प्रचुरमात्रा मे होती है अथवा शूल का रोग उन्मूलन कर डालता है, ऐसे कई दोषो से प्राणी को मृत्यु प्राप्त होती है, तथापि पशुओंकी तरह

मंदबुद्धिवाला मनुष्य अपनी स्थिती को शाश्वत मानकर अपना जीवतव्यरूपी वृक्ष का फल लेने कि लिए प्रवृत्त होता नहीं है। वह मुग्ध बुद्धिवान पुरुष 'यह मेरे भाई आर्थिकरूप से सशक्त स्थिती में नहीं है, यह मेरा पुत्र अभी छोटा है, लडकीकी सादि बाकी है लडकेको पढाना है यह भार्या अभी नई है, यह माता-पिता वृद्ध है, यह सास-ससुर गरीब स्थिती में है और यह बहन विधवा है' -इस तरह सर्व परिवार निरंतर अपने पालन योग्य है, ऐसा वह चिंतित रहता है। परंतु वह परिवार अपने को संसाररूपी समुद्र में डुबाने के लिये वह बंधी हुई शिला जैसा है ऐसा वह जानता नहीं है और जब अंतकाल आता है उस समय भी वह जडपुरुष पश्चाताप करता है कि 'अरे ! अद्यापि कांता के शरीर के आलिंगन करने के सुख से मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ, दूध वगैरेह खाद्य पदार्थों से मैं तृप्त नहीं हुआ है, पुष्प सूंघने की मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई है, मनोहर पदार्थों को देखने का मनोरथ मेरा पूरा नहीं हुआ है' अभीतक वीणायुक्त वेश्या के गीत सुनने का आनंद अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है। मेरे परिवार के लिये अभी भंडार भरपुर किया नहीं है, इस घर का जीर्णोद्धार करके नया बनवाना बाकी है, उच्च शिक्षा प्राप्त अश्वो पर अभी सवारी की नहीं है, और नये तैयार किये गये बैल उत्तम रथ के साथ कभी जुते नहीं है, इस तरह का पश्चाताप करता है, लेकिन 'मैंने धर्म किया नहीं' ऐसा वह थोडा भी पश्चाताप नहीं करता है, संसार में एक ओर मृत्यु सदा तैयार हो रही है, एक ओर अनेक प्रकार के अपमृत्यु होते रहते हैं, अनेक ओर अनेक प्रकार व्याधियाँ होती हैं, अनेक और बहुत आधि उत्पन्न होती हैं, एक तरफ रागव्देषादि शत्रु नित्य तैयार होते हैं और अनेक तरफ दुर्जन की तरह प्रबल कषायो विपति दिया करते हैं, उससे उसमें मरुदेश की तरह कुछ भी सुखकारी नहीं है, फिर भी प्राणी उसमें सुख कैसे मान रहे हैं और उन्हें वैराग्य क्यों प्राप्त नहीं करते हैं? सोये हुए मनुष्य के उपर आकस्मिक रात्रि युद्ध आ जाता है वैसे ही सुखाभास से मूढ हुए प्राणी पर सद्य प्राण का नाश करनेवाला कालपाश आ जाता है, इसलिए पकाये हुए भोजन का फल भोजन करना है इस तरह नाशवंत शरीर का फल धर्माचारण है, यह नाशवंत शरीर-द्वारा अविनाशी पद प्राप्त करना सुलभ है, फिर भी मूढ प्राणी उसे प्राप्त नहीं करते हैं, फिर भी मैं इस शरीर द्वारा निर्वाण संपत्ति को प्राप्त करने के लिये अत्यंत उत्साह रखूँगा और यह राज्य पुत्र को सौंप दूँगा।'

इस प्रकार निश्चय करके राजा ने तुरंत द्वारपाल को भेजकर जिसे किर्ती प्रिय है ऐसे पुत्र विमलकीर्ति को बुलवाया राजकुमार ने आकर परम भक्ति से अपने इष्ट देव की तरह अपने पिताजी के चरण स्पर्श किया, और दोनों कर जोड़ कर इस प्रकार बोला-“पिताजी ! कोई बड़ी आज्ञा करके प्रसन्न होकर मुझ पर अनुग्रह करे। उसमें यह पुत्र बालक है ऐसी मन में शंका न रखे। आप आज्ञा करे कि आपके किस शत्रुराजा की पृथ्वी छिन लु? किस पहाड़ी राजा का पहाड़ लु? जलदुर्ग में रहे किस शत्रु का जल के साथ विनाश करना है? इनके अलावा दूसरा कोई भी शल्यकार्य हो तो कहे उसे भी तुरंत मैं उखाड़ फेंकूँगा। मैं बालक हूँ फिर भी आपका पुत्र होने से दुःसाध्य को साधने में मैं समर्थ हूँ, यह आपका पिताजी का प्रभाव है, इसमें मेरी कोई बहादुरी नहीं है” पुत्र के इस प्रकार के वचन सुनकर राजा ने कहा-“हे बड़ी भुजाओ वाले कुमार ! कोई राजा मेरा शत्रु नहीं है, कोई भी पहाड़ी राजा मेरे वचन का उल्लंघन नहीं कर रहा है, किस भी टापू का राजा मेरी आज्ञा का अनादर नहीं कर रहा है,

जिसे साधने के लिये तुम्हे भेजु परंतु हे कुलभूषण ! हे पृथ्वी का भार वहन करने मे घुरंधर ! यह एक भववास ही मुझे हुंमेशा शल्य की तरह पीडा देता है, उसमे से तु मेरा उद्धार कर, और इस परंपरा से आये हुए राज्य को मेरी तरह तुम अंगीकार करो जिससे मैं दीक्षा लेकर इस भववास का हुंमेशा के लिये त्याग कर सकू हे वत्स ! अलंघ्य जैसी गुरुवर्यो की आज्ञा और अभी तुम्हारी की गई प्रतिज्ञा को भक्तिपूर्वक संभाल कर तुझे वह अघटित करना नहीं है ।” यह सुनकर कुमार सोच में पड गया कि पिताश्री ने आज्ञा देकर मेरी प्रतिज्ञा को सुन लौटा कर मुझे निरुत्तर कर दिया ।

राजपुत्र इस प्रकार चिंतित था उसी समय मे राजा ने उसी समय अभिषेक महोत्सव के साथ अपने हाथो से राज्य पर बिठा दिया और कुमार विमलकीर्ति ने जिनका दीक्षाभिषेक किया है ऐसे वे महाराजा शिबिका पर बैठकर तुरंत स्वयंप्रभ नाम के सूरि के पास आये वहाँ पर आचार्य के समीप सर्व सावद्य योग का प्रत्याख्यान करके उन्होंने दीक्षा ग्रहण की संयममरुपी रथ पर आरुढ होकर उस राजमुनि ने अंतरंग शत्रु को जीत कर विधि से साम्राज्य की तरह दीक्षा का प्रतिपालन किया, और बीस स्थानको मे से दूसरे स्थानको मे भी आराधना द्वारा अपने तीर्थकर के नामकर्म का अच्छी तरह पोषण किया, उपसर्गो से उव्देग को न छुते हुए और परीषहो से खुश होकर वे मुनिराज, पहेरेदार जिस तरह अपना प्रहर को पूर्ण करता है उस तरह आयुष्य को पूर्ण करके अंत मे अनशन करके मृत्यु प्राप्त करके आनत नाम के नौवे देवलोक को प्राप्त हुए । मोक्ष के फल को देने वाली दीक्षा का इतना फल तो बहुत ही कम है ।

इस जम्बुद्वीप मे पूर्व भरताद्विके आभूषणरुपी लक्ष्मी से भरपुर विस्तारवाली श्रावस्ती नाम का नगरी हैं । उसमे इक्ष्वाकु कुलरुपी क्षीरसागर को चंद्र समान और अरिओ (शत्रु) को जीतने से यथार्थ नामवाला जितारि नाम का राजा था । मृगो मे सिंह की तरह और पक्षीओ मे गरुड की तरह राजाओ मे उसके जैसा या उससे अधिक शक्तिशाली कोई भी राजा उस वक्त नहीं था । मंडल के भीतर प्रवेश करनेवाले ग्रहो द्वारा ग्रहपति शोभायमान होता है उसी तरह पेदलरुपी प्रवेश करनेवाले राजाओ से वह शोभायमान दे रहा था । मानो वह मूर्तिमान धर्म हो उस तरह व कोई भी अधर्मकारी वचन नहीं बोलता, उस प्रकार आचरण भी नहीं करता, उसी प्रकार वह चिन्तन भी नहीं करता । दुराचारी को शिक्षा करनेवाला और निर्धन को धन देनेवाला उस राजा के राज्य मे कोई भी अधर्मी या निर्धन नहीं था । शस्त्रधारी होकर भी वह दयालु था, शक्तिमान होते हुए भी क्षमावान था । विद्वान फिर भी अभिमान रहित था युवा होकर भी जितेंद्रिय था ।

उस जितारि राजा को रूप और संपत्ति से योग्य ऐसी सेनादेवी नाम की पटरानी थी । वह गुणो के सैन्य की सेनापति तुल्य थी । रोहिणी के साथ चंद्रमा की तरह वह रानी के साथ अन्य पुरुषार्थो को बाधा किये बिना वह राजा योग्य अवसर पर क्रीडा करता था । यहाँ पर विपुलवाहन राजा का जीव नवमे देवलोक मे अपना आयुष्य पूर्ण करके वहाँ से च्यवन करके फाल्गुन मास की शुक्लाष्टमी के दिन मृगशिर नक्षत्र मे चंद्रमा का योग आया था उसी समय सेनादेवी के उदर मे अवतरित हुआ और तिनोलोको मे विद्युत जैसा उद्योत हुआ । रात्रि के अवशेष भाग मे सोई हुई सेनादेवी ने अपने मुखकमल

मे प्रवेश करते हुए चौदह महासुपन देखे । मानो शरदऋतु का मेघ हो ऐसी गर्जना करता और उज्ज्वल बड़ा गजेंद्र स्फटिक मणि के पर्वत के पत्थरो का मानो एक बड़ा गोला हो ऐसा निर्मल वृषभ, कुंकुम जैसी अति रक्त केशवाहिनी वाला केशरी सिंह, दो हाथी जिसे अभिषेक कर रहे हैं वैसी लक्ष्मी देवी, संध्याकाल के बादलो की कांति चुरानेवाली, पंचवर्ण पुष्पो की माला, मानो रूपका दर्पण हो वैसा पूर्ण चंद्र अंधकार का नाश करनेवाला सूर्य मंडल, नाद करते घुंघरो की माल और पताका वाले महाध्वज जिसके मुखपर कमल के पत्तों से ढका हुआ है ऐसा स्वर्ण का जलपूर्ण कुंभ, विकासी कमलो द्वारा मानो हसता हो ऐसा बड़ा पद्मसरोवर, उच्चे तरंगरूपी हाथो द्वारा मानो नृत्य कर रहा है ऐसा क्षीरसमुद्र जिसका प्रतिरूप कहीं पर भी दिखाई नहीं देता हैं । वैसा रत्ननिर्मित वायुयान, पाताल के फणीधरों का मानो मणिसमूह हो ऐसे रत्नपुंज और प्रातःकाल के सूर्य के जैसा प्रज्वलित अग्नि इस प्रकार के चौदह महास्वपनो को देखकर देवी जाग गई और तुरंत राजा के पास जाकर स्वप्न की हकिकत सुनाई राजा ने कहा-हे देवी इस स्वप्न के प्रभाव से आपको तीनोलोक मे वंदन करने योग्य पुत्र की प्राप्ति होगी ।

आसन कंप होने से इंद्रो को तीसरे तीर्थंकर का च्यवन जाना इसलिये वहाँ आकर सेनादेवी को नमस्कार करके स्वपन का अर्थ कहने लगे 'हे स्वामिनी । इस अवसर्पिणी काल मे जगत के स्वामी और तीसरे तीर्थंकर ऐसे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगि' ऐसे स्वपन का अर्थ सुनने से मेघ की गर्जना से जैसे मयूरी हर्षित होती है वैसे ही देवी हर्षित हुई, और शेष रात्रि के जागरण मे ही निर्मगन करके उस दिन से हिरे की खदान जैसे हिरे को और अरणी का वृक्ष जिस तरह अग्नि को धारण करता है उसी तरह सेनादेवी ने बड़े सत्ववान और पवित्र ऐसे गर्भ को धारण किया । गंगा के जल मे सुवर्णकमल की भांति देवी के उदर में गर्भ गूढ तरीके बढने लगा जैसे शरदऋतु में सरसी से कमलो का विकास विशेष रूप से प्राप्त होता है, उसी तरह उस समय देवी की दृष्टि में विशेष प्रकार का विकास होने लगा । गर्भ के अनुभव से प्रतिदिन देवी के अंगो मे लावण्य, स्तन मे पुष्टता और गति मंदता अधिका-अधिक बढने लगी । फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन वह गर्भ धारण करनेवाली आकाश की तरह जगत के लिये हर्षित हुई ।

बादमे नौ मास और साडे सात दिन गये तब माघ मास की शुक्ल चतुर्दशी को मृगशिर नक्षत्र मे चंद्रमा आते, पूर्व दिशा जिस तरह सूर्य को जन्म देती है उसी तरह जरायु और रुधिर वगेरेह दोषो से वर्जित और अश्व की केशराशि वाले जैसे सुवर्णवाले पुत्र को देवी ने जन्म दिया । उसी क्षण तीनो लोको मे अंधकार का नाश करनेवाला एक उद्योग प्रकट हुआ, नारकी प्राणीओ को भी एक क्षण के लिये सुख प्राप्त हुआ, सभी ग्रह उच्च स्थान मे आये, सभी दिशाए प्रसन्न हो रही थी, सुखकारी शीतल हवा बहने लगी, सभी लोग क्रीडा करने लगे, सुगंधित जल की वर्षा होने लगी, गगन मे दुंदुभि नाद हुआ, वायु ने रज दूर की और पृथ्वी उच्छ्वास प्राप्त करने लगी ।

उसी समय अधो (ऊपर के) लोक मे से भोगंकरादिक आठ कुमारिकाए अवधिज्ञान द्वारा प्रभु के जन्म को जानकर स्वामी के (राजा) मंदिर मे आई और भगवंत और माता की तीन प्रदक्षिणा की,

आप भयभीत न हो, ऐसा कहकर अपनी आत्मा की पहचान दिखाई । बाद में ईशान दिशा में जाकर वैक्रिय समुद्रघात करके, संवर्त वायु द्वारा एक योजन तक कंटक इत्यादी दूर करके, भगवान को प्रणाम करके गोपियों की तरह प्रभु के गुणगान गाती उनके पास बैठी उसी तरह आसन के कम्पन्न से प्रभुका जन्म हुआ जानकर मेघंकरा वगेरेह आठ ऊर्ध्वलोकवासी दिक्कुमारीकाए वहाँ पर आई और जिनेश्वर तथा जिनेश्वर की माताजी को नमस्कार करते हुई तत्काल अभ्र (बादल) विकृत किया । उससे सुगंधी जलवृष्टि करके सूतिका ग्रह की चारों ओर एक योजन तक रजकणों को शांत कर दिया और पंचवर्णी पुष्पो की वृष्टि की; बाद में जिनेश्वर को झुककर उनके गुणों का गान करती हुई वे अपने उचित स्थान पर हो गई । पूर्वरुचकाद्रि पर रहने वाली नंदा, नंदोतरा वगेरेह आठ दिक्कुमारीकाएँ आकर नमस्कार करके अपने हाथों में दर्पण रखकर पूर्व दिशा तरफ खड़ी रही । दक्षिणरुचकाद्रि में रहनेवाली समाहारा वगेरेह आठ दिक्कुमारीयां वहाँ पर आकर जिनेश्वर और उनकी माताजी को नमस्कार करके हाथ में कलश लेकर दक्षिण दिशा में खड़ी रही । पश्चिम रुचकादि में से इलादेवी वगेरेह आठ दिक्कुमारीकाएँ आई नमस्कार करके हाथ में पंखे रखकर पश्चिम दिशा में गान करती हुई खड़ी रही । उत्तर रुचकादि पर से अलंबुसा वगेरेह आठ कुमारीकाएँ वहाँ आई भगवंत और उनकी माता को पहले की तरह नमस्कार करके हाथ में चामर रखकर गान करती हुई उत्तर दिशा में खड़ी रह गई विदिशा में रहनेवाली रुचक पर्वत से चित्रा वगेरेह चार दिक्कुमारीयाँ आई, जिनेश्वर तथा माताजी को नमन करती हुई, हाथों में दिपक रखकर ईशान दिशा में गीत गाती हुई खड़ी रह गई । रुचकव्दिप के मध्य में से रूपा वगेरेह-चार दिक्कुमारीकाएँ वहाँ पर तत्काल आई । उन्होंने भगवान की नाभिनाल को चार अंगुल रखकर उसका क्षेपण किया; बाद में वहाँ पर एक गढा (खाड़ा) खोदकर वह नाल उसमें गाड़ दी और उस गढे को रत्न और वज्र से पाट दिया और उस पर दूर्वा से पिठिका बोध (बना) दी बाद में भगवान के जन्मग्रह से संबंधित पश्चिम के अलावा पूर्व, दक्षिण और उत्तरदिशा में चतुःशाल (चौक) सहित तीन कदली गृह विकसित (बनाया) किया । बाद में अपने दोनों हाथों के द्वारा लेकर जिनमाता को हाथ का सहारा देते हुए, दक्षिण दिशा की चतुःशाला में ले जाकर वहाँ पर सिंहासन पर बैठाया, और लक्षपाक तैल से अभ्यंगन करके सुगंधित व्दिय उध्दर्जन से दोनों का उध्दर्तन किया । बाद में पूर्व दिशा के चतुःशाला में ले जाकर सिंहासन पर बैठाकर उन्होंने सुगंधित उबटन (पानी) से स्नान करवाया, देवदूष्य वस्त्र से उनके अंगों को पोछ दिया, और गोशीर्ष चंदन के रससे उन्हें चर्चित करके देवदूष्य वस्त्र तथा आभूषण पहनाये । बाद में भगवान और भगवान की माताजी को उत्तर दिशा में केले के चतुःशाला में ले जाकर रत्नमय सिंहासन पर बैठाया । वहाँ उन्होंने आभियोगिक देवताओं के पाससे गोशीर्षचंदन के काष्ठ मंगवाकर, उनकी समिधा करके अरणी के दो काष्ठों के घर्षण से उत्पन्न अग्नि से यज्ञ किया; उस अग्नि से बनी भस्म की उन्होंने विधि द्वारा दो रक्षापोटली (तावीज) बनाकर दोनों हाथों पर बांध दिया । बाद में 'आप पर्वत के जैसे लंबे आयुष्यवान बने' ऐसा प्रभु के कान में कहा, पाषाण के दो गोलों का उन्होंने आस्फालन किया । बाद में प्रभु को और उनकी माता को सुतिकाग्रह में ले जाकर शय्या पर सुलाकर वे उच्च स्वर में मंगलगीत गाने लगी । बाद में वे सभी स्थान पर चली गई ।

उस समय प्रभु के चरणकमलो के पास जाने की इच्छा हो उस तरह सभी इंद्रों के आसन कंपायमान हो गये । आत्मज्ञान (अवधि) से भगवान के जन्म का भास होते ही मानो शक्रेन्द्रे उस दिशा संन्मुख सात-आठ कदम चल कर भगवान तीर्थकर को वंदन करके । घंटनाद के घोष से और सेनापति की उद्घोषणा से एकत्रित हुए वे देवता तथा अपना परिवार के साथ पालक वायुयान मे बैठकर, नंदीश्वरदीप जाकर वायुयान संक्षिप्त करके अकेले प्रभु के निवासगृह के पास आये । प्रथम निवासगृह को अपने छोटे वायुयान सहित प्रदक्षिणा करके ईशान दिशा मे वायुयान को रखकर नीचे उतरे । बाद मे इंद्र ने प्रभु के वासगृह मे प्रवेश किया और प्रभु के दर्शन होते ही उन्होंने भक्तिपूर्वक नमन किया । बाद मे जिनेश्वर को और उनकी माता की तीन प्रदक्षिणा की पाचो अंगो से पृथ्वी का स्पर्श करके बारंबार नमस्कार किया । बाद मे सेनादेवी को अवस्वापिनी निद्रा देकर और उनके पास प्रभु का प्रतिबिंब रखकर इंद्रने अपने पाँच स्वरूप विकसित किये-एक स्वरूप से प्रभु को धारण किया, एक स्वरूप से सिर पर छत्र धारण किया, दो स्वरूप से दोनो ओर चामर डालने लगे और एकस्वरूप से आगे वज्र को उछालकर चलने लगे । इस तरह जय जय शब्द का नाद करते हुए देवताओ के परिवार के साथ इंद्र प्रभु को लेकर क्षणभर मे मेरुपर्वत के शिखर पर पहुँचे ।

वहाँ पर अतिपांडुकबला नाम की शिला के उपर सिंहासन के बारे मे जगत्पति को उत्संग (गोद)मे लेकर शक्रेंद्र बैठे है । उसी समय मे आसनो के कंपन होने से अनाहत (अवधि)आत्मज्ञान व्दारा भगवान का जन्म जानकर तत्काल अच्युतेंद्र, प्राणतेंद्र, सहस्रारेंद्र महाशुकेन्द्र, लांतकेन्द्र, बह्मेन्द्र, माहेन्द्र, सनतकुमार, इशानेंद्र,चमर, बलि, धरण, भूतानंद, हरि, हरिसह, वेणुदेव, वेणुदारी, अग्निशिख, अग्निमाणव, वेलंब, प्रभंजन, सुघोष, महाघोष, जलकांत, जलप्रभ, पूर्ण, अविशिष्ट, अमित, अमितवाहन, काल, महाकाल, सुरुप, प्रतिरुप, पूर्णभद्र, मणिभद्र, भीम, महाभीम, किंनर, किंपुरुष, सत्पुरुष, महापुरुष, अतिकाय, महाकाय, गीतरति, गीतयशा, संनिहित, समान, घाता, विधाता, ऋषि, ऋषिपाल, ईश्वर, महेश्वर, सुवत्सक, विशालक, हास, हासरति, श्वेन, महाश्वेन, पवक, पवकपति, सूर्य और चंद्र ये तिरसठ इंद्र सभी ऋद्धि और परिवार के साथ प्रभु के जन्माभिषेक के लिये मेरु पर्वत पर मानो पडोस मे रहते है उस तरह तुरंत आ गये । बाद मे अच्युत इंद्र की आज्ञा से आभियोगिक देवताओने, स्वणकि, चाँदिके, रत्नो के, सोना और चाँदि, सोना और रत्नो के चाँदी और रत्नो तथा सोने के, चाँदी और रत्नो के उसी तरह मृतिकाके (मिट्टी) एक हजार आठ-आठ कलश बनाये, उसी प्रकार भगरीयाँ, दर्पण, सुप्रतिष्ठ (डब्बे) रत्न की टोकरीयाँ थाल; पात्रिका और पुष्पो की चंगेरीयाँ तत्काल बनवाई बाद मे वहाँ से निकलकर ईंद्र के मन मे हर्ष उत्पन्न करने के लिये क्षीरसागर वगेरेह क्षीरसागरो मे से और दूसरे तीर्थो मे से उन्होने जल मृतिका और कमल लिये और हिमाद्रि पर्वत से औषधि और भद्रशाल, वन मे से उत्तम प्रकार के पुष्प इत्यादि अन्य और भी सुगंधी द्रव्य लेकर वे वहाँ पर उपस्थित हुए । बाद मे सभी सुगंधी द्रव्य डालकर उन्होंने भक्ति से तीर्थजल को सुगंधितमय कर दिया, बाद मे अच्युत इंद्र, देवताओ ने लाये कलशो व्दारा पारिजात के पुष्पो की प्रथम कुसुमांजलि करके प्रभु को स्नान करवाने लगे । उस अच्युतेन्द्र ने किये हुए प्रभु के स्नान के समय देवता हर्षित

होकर मनोहर वाद्य गीत और नृत्य करने में प्रवृत्त हो गये। बाद में आरणाच्युत ईन्द्र ने प्रभु को दिव्य अंगरागपूर्वक पूजा की यथाविधि वंदन किया। बाद में शक्र के अलावा बाकी के बासठ (तरसठ) ईन्द्रो ने भी जगत को पवित्र करनेवाला स्नान प्रभु को करवाया। बाद में ईशान ईंद्र ने अपने पांच स्वरूप में एक में गोद में लीया एक में छत्र धारण किया। दो दो स्वरूप से चामर रखे और एक स्वरूप में शक्र की तरह त्रिशूल लेकर आगे खड़े रहे। बाद में भक्ति में चतुर ऐसे शक्र ने प्रभु की चारों दिशाओं में बड़े शींगवाले स्फटिक के चार वृषभों को प्रस्थापित किया। उन वृषभों के आठ शृंग के अग्रभाग के मूल भाग से अलग-अलग लेकिन मध्य भाग से मिश्रित हुई जलधाराएँ निकलकर प्रभु के मस्तक पर गिरकर प्रवाहित होने लगी।

इस प्रकार सौधर्म कल्पके इंद्र ने अति भक्ति से दूसरे ईन्द्रो ने किये हुए स्नान से विलक्षण प्रकार से प्रभु का स्नान किया बाद में शक्रेंद्र ने उन वृषभों को समेट करके जगद्गुरु की पूजा करके हर्षित हुए प्रणाम करते हुए इस प्रकार स्तुति का आरम्भ किया।

हे भगवान् ! विश्व के पालनहार करनेवाले ! बड़ी समृद्धियणियों के सहित और तीसरे तीर्थंकर जैसे आप भगवंत को मेरा नमन है। हे विभो ! जन्म से ही प्राप्त तीन ज्ञान और चार अतिशयो से आप जगत में विलक्षण हैं और आप में स्फूर्त (प्रगट) एक हजार आठ लक्षण रहे हुए हैं। हमेशा प्रमादी पुरुष के प्रमाद के छेदन के कारणरूप ऐसा ही आप का जन्मकल्याण आज मेरे जैसे के कल्याण के लिये ही हुआ है, हे जगत्पति ! यह संपूर्ण रात्रि प्रशंसा करने योग्य हो गई है, कारण कि उसमें निष्कलक चंद्ररूप जैसे आप प्रगट हुए हो। हे प्रभो ! आपको वंदन करने के लिये आवागमन करनेवाले देवताओं से यह मनुष्यलोक अभी हाल में स्वर्गलोक जैसा प्रतित होता है। हे देव आपके दर्शनरूप अमृत के स्वाद (आनंद) जिसके तिल संप्लुष्ट हुवे हैं ऐसे अमृतभोगी देवताओं को अब जीर्ण हुए। स्वर्ग के अमृत की कोई आवश्यकता नहीं है। यह भरतक्षेत्ररूपी सरोवर में कमलरूप जैसे हे भगवान् ! आपके चरणों में मैं भ्रमर तरह विलीन हो जाऊँ। अधीश ! जो हमेशा आपके दर्शन करते हैं वे मनुष्य भी धन्य हैं, कारण आपके दर्शन का उत्सव स्वर्ग राज्य दर्शन से कई गुना अधिक है।

इस प्रकार स्तुति करके इंद्र ने पांच स्वरूप एक रूपमें (करके) ईशानेंद्र के पास से प्रभु को लिया और दूसरे स्वरूपों से पूर्व की तरह क्रियाएँ शुरू कीं। बाद में प्रभु को वस्त्र, अलंकारों से अलंकृत करके सेनादेवी के पास बगल में रखकर उल्लोच पर श्रीदामगंडक बांधा; और प्रभु के तकिये के नीचे दो कुंडल तथा रेश्मी वस्त्रयुगल रखकर अवस्वापीनी निद्रा और पास में रखा हुआ अर्हत का प्रतिबिम्ब हर लिया। बाद में स्वर्ग के पति इंद्र ने आभियोगिक देवताओं के पास कल्पवासी देवताओं में भुवन पतिओं में व्यंतरो में और ज्योतिष्क देवों ने ऐसी उद्घोषणा की की “जो कोई प्रभु की माता का अथवा प्रभु का अशुभ सोचेंगे उनके मस्तक के सात टुकड़े कर दिये जायेंगे।” बाद में इंद्र ने प्रभु के अंगुठों में पान करने के लिये अमृत रस का संक्रमण किया। क्योंकि तीर्थंकर स्तनपान करते नहीं हैं। जब उन्हें मुख को प्यास लगती है। तब वे अपने अंगुठों का ही पान करते हैं। बाद में प्रभु का निरंतर सर्व धात्री (धाण्य) कर्म करने के लिए इंद्र ने पांच अप्सराओं को आज्ञा की बाद में प्रभु को झुककर शक्रेंद्र वहाँ

से नंदिश्वर व्दीप गये । सभी सुर तथा असुर नंदिश्वर व्दीप आकर शाश्वत अर्हतो की प्रतिमाओ का अष्टाह्निकोत्सव करके अपने गंतव्य स्थानो पर चले गये ।

प्रातःकाल मे जितारिराजा ने अपने घर पुत्र को प्राप्त जगतपूज्य अर्हत भगवान का बडा जन्मोत्सव किया । पूरी नगरी मे राजमंदिर की तरह घर-घर, मार्ग-मार्ग, चौक और गल्लियों मे भी उत्सव मनाया जा रहा था । प्रभु गर्भ मे थे उसी समय शंभा (सिंग) धान्य भी काफी मात्रा मे हुआ था । इससे राजाने उनका नाम संभवनाथ अथवा शंभवनाथ इस तरह का नाम रखा । बालस्वरूपी जगतपति को वारंवार देखकर महाराजा अपनी आत्मा के अमृत मे मग्न हो गये है ऐसा मानने लगे । प्रभु के स्पर्श करने की इच्छा से राजा उत्कृष्ट माणिक्य की तरह उन्हे उत्संग, (गोद) हृदय पर बारंबार धारण करने लगा । इंद्र व्दारा नियुक्त पांच धात्रीओ भी भक्ति का विस्तार करके, देह की छाया की तरह प्रभु के समीप के भाग को भी छोडती नहीं है । कभी प्रभु उत्संग पर से उतरकर निर्भय होकर भ्रमण करके शेरनी को बालसिंह थकवाते है । उसी प्रकार धात्री को थकवाते थे । प्रभु जो ज्ञानवान है, लोगो को बालचेष्टा बतलाने के लिए रत्नमणिमय भूमिपर गिरे हुए चंद्र के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने के लिये अपना हाथ डालते थे । मनुष्यस्वरूप धारण करके समान आयु धारण करके हुए देवताओ के साथ क्रीडा करते थे । उसके साथ क्रीडा करने के लिये दूसरा कोन समर्थ है । क्रीडा से दौडते हुए मानो प्रभु के आगे हाथीयो की नकल करते हो वैसे उसी तरह अपनी गर्दन मोडते-मोडते देवताओ को दौडाते थे । खेल खेलते बाललिला मे गिरा हुए और 'रक्षा करो-रक्षा करो' ऐसा बोलते देवताओ पर प्रभु परिणाम दया करते हुए योग्य कृपा करते थे ।

इस प्रकार विचित्र क्रीडाओ से तरह-तरह हास्यासपद प्रदोष काल की तरह चंद्र उल्लंघन करता है वैसे प्रभुने बचपन बीताया । उस समय चारसो धनुष ऊँचे और स्वर्ण की जैसी कांतिवाले जगद्गुरु कुतुहलता से पुरुष का रूप धारण करके मेरुपर्वत के जैसे शोभायमान होने लगे । उनके मस्तक के मध्यभाग मे छत्र के जैसा गोल और उन्नत दिखने लगा । केश स्निग्ध और श्याम हुए , ललाट की शोभा अष्टमी के चंद्र की दिखाई देने लगी, लोचन (आंख) से कान की सीमा तक विश्रांत हुए, कान कन्धे के भाग तक लटकने लगे, कंधे वृषभ के उभरे भाग की तरह दिखाई देने लगे, भुजाए बडी हुई, सीनेका भाग विशाल चौडा बना, उदर का भाग सिंह की तरह नरम मुलायम बना, जंघा गजेन्द्र की सुंद जैसी दिखाई देने लगी, पैरो के गुल्फ का हिस्सा अल्प दिखाई देने लगा । चरण कूर्म के पृष्ठ जैसा उन्नत और तलुए बराबर दिखने लगा । अंगुलिया सरल हुई । शरीर पर की केशराशि अलग-अलग श्याम तथा स्निग्ध हुई और मुख के श्वास कमल के जैसा सुगंधित हुआ । इस तरह लगातार मलिनता रहित और स्वभाव से सभी अंगो मे सुंदर जैसे जगतपति शरदऋतु द्वारा जैसे पूर्णिमा का चंद्रशोभायमान होता है उसी तरह यौवन आयु से अधिक शोभायमान होने लगा ।

एक समय उत्सव की अतृप्ति के कारण माता पिताने देवकन्या जैसी राजकन्याओ की शादि के लिए प्रभु को विनंती की बडे मनवाले प्रभु ने भोगफल कर्म शेष है यह जानकर माता-पिता की आज्ञा पालन करने के लिये राजकन्या के साथ पाणिग्रहण करने की मान्यता दे दि । प्रभु की संमति मिली

इसलिए जितारि राजा और इंद्र प्रत्यक्ष आनन्द संभव स्वामी के विवाह महोत्सव आरंभ कर दिया । उसमे हाहा और हूहू नामके गंधर्व गंभीर मृदंगो को बजाकर मधुर स्वर से गायन करने लगे रंभा, तिलोत्तमा वगैरह अप्सराएँ नृत्य करने लगी और कुलीन नारियों उच्चे स्वर मे मंगल गान करने लगी । विवाह महोत्सव के पश्चात हथनीओ के सामने हाथी की तरह चातुर्य से रमणीय जैसी वह हजारो रमणीयो के संग प्रभु किसी समय नंदनवन जैसे उद्यानो की श्रेणीयों मे, कभी रत्नागिरी के शिखर जैसे क्रिडा पर्वतो मे कभी अमृतके कुंड जैसी (वापीका) क्रीडाओ मे, कभी स्वर्ग के वायुयान जैसी चित्रशालाओ मे क्रीडा करने लगे । इस तरह युवावस्था मे विविध भोगो को भोगते हुए ऐसे प्रभु के पंद्रह लाख पूर्व निर्गमन हुए । उस समय जितारि राजा को उस समय संसार पर वैराग्य हो जाने से प्रभु को आग्रह करके मुद्रिका पर रत्न की तरह अपने राज्य पर उन्हे स्थापित किया और स्वयं सद्गुरु के चरणकमल मे जाकर दीक्षा लेकर अपना स्वार्थ (साधना) साधने लगे । बडे पराक्रमी संभवस्वामी भी पिता के आग्रह से राज्य का स्वीकार करके सर्व पृथ्वी के पुष्पो की माला की तरह सभी का रक्षण करने लगे । प्रभु के प्रभाव से प्रजा अनेक प्रकार के दुःख उपद्रव आदि तथा भय रहित और पूर्ण आयुष्य भोगनेवाली बनी । किसीके उपर भी प्रभु को भृगुटि भी चढानी नहीं पडती थी । तो धनुष पर प्रत्यंचा चढाने की बात का अवकाश ही कहाँ ? इस तरह राज्य करते हुए और भोगकर्म को भोगते हुए ऐसे प्रभुने चार पूर्वांग (चौरासी लाख वर्ष) सहित चौवालिस लाखो पूर्वो का निर्गमन किया ।

एकबार जिनकी आत्मा तीन ज्ञानो से व्याप्त है ऐसे स्वयंबुद्ध प्रभु इस प्रकार की संसार की स्थिति से चिंतित होकर चिंतन करने लगे - “अरे ! इस संसार मे विषय के स्वाद का सुख जहर मिलाकर किये हुए मिष्ट भोजन जैसा आरंभ मे मधुर लेकिन परिणाम अनर्थ को देनेवाला है । बिन उपजाऊ भूमि मे मीठे जल की तरह इस संसार मे प्राणीओ को जैसे तैसे मनुष्यत्व प्राप्त होता है, ऐसे मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी मूढ लोग पैर धोने मे अमृतरस के प्रयोग की तरह वह मनुष्य जन्म को विषयसेवन मे व्यर्थ गवा देता है ।” इस प्रकार प्रभु चिंतित थे उसी समय लोकांतिक देवताओ ने इस प्रकारी विज्ञप्ति प्रसारित कि कहा ‘हे स्वामी ! तीर्थ प्रवर्तारो’ ऐसा कहकर देवता चले गये । इसलिये बाद मे दीक्षा लेने के उत्सव मे उत्कठित ऐसे प्रभुने सांवत्सरिक दान देने का आरंभ किया । उस समय इंद्र के आदेश करने से कुबेर की प्रेरणा से जृम्भक देवता लावारिस मर्यादाओ का उल्लंघन करनेवाले, गिरी (पहाड) मे रहा हुआ, श्मशान वगैरेह स्थानो पर रहा हुआ, घर के भीतर गुप्त रखा हुआ धन काफी दिनों से खोया हुआ है । नष्ट हुआ स्वर्णादिक द्रव्य सभी स्थानो से लाकर श्रावस्ती नगरी के चौराहे पर तीन रास्तो पर गल्लियो मे उस प्रकार दूसरे प्रदेशो से लाकर मे उसके पर्वतो पर शिखर जितने ढेर लगाने लगे । स्वामी ने सेवक पुरुषो के पास नगरी मे उँचे प्रकार की यह घोषणा करवाई ‘जिसकी जो अर्थी हो वो आकर मांग लेवे ।’ उसी तरह निर्धन को दान देते ऐसे प्रभु हमेशा एक करोड आठ लाख सुवर्ण (सोनैया) का दान देते थे । इस तरह एक वर्ष मे प्रभुने तीनसो अठ्ठासी करोड और अस्सी लाख सुवर्णमुद्रा का दान किया ।

वार्षिक दान के अंत मे अपने आसन चलित होने से इन्द्र अंतःपुर के परिवारो को साथ मे लेकर वहाँ आये । प्रथम प्रभु के गृह की प्रदक्षिणा करके भूमि से चार उंगल उपर उठकर वायुयान से उतरे ।

विनयशील वे इन्द्रो ने भक्ति से प्रभु की प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया बाद में अच्युत इन्द्र ने आभियोगिक देवताओं ने लाये हुए तीर्थों के जलकुंभों द्वारा जन्माभिषेक की तरह प्रभु का विधिपूर्वक दीक्षा संबंधी अभिषेक किया। दूसरे इंद्रो ने भी अनुक्रमानुसार जगत्पति को भक्ति से दीक्षा कल्याणक संबंधी स्नान करवाया। सुर और असुरों की तरह राजाओं ने भी तत्काल भक्ति से संभवस्वामी को पवित्र जल द्वारा स्नान करवाया। बाद में देवताओं के स्नान पश्चात् आर्द्र ऐसे देवाधिदेव के शरीर को सुवर्ण के दर्पण के तरह देवदूष्य वस्त्र से पोछ डाला और गोशीर्ष चंदन से प्रभु को विलेपन करके वे अद्वितीय रेशमी वस्त्र भक्तिपूर्वक धारण करवाया। मानो हिरे की खदान का सर्वस्व हो ऐसे मुगुट प्रभु के मस्तक पर आरोपण किया। मानो आकाशमुक्तामणिमय हो ऐसे दो कुंडल कान में पहनाये गये। कंठ में हिमालय पर्वत पर से गंगा के प्रवाह के जैसा हार पहनाया। बाहु के उपर मानो सूर्य किरणों द्वारा रचित केयूर और कंकण धारण करवाये और चरणकमल में कुंडलाकार बनाये गये नाल जैसे कड़े पहनाये इस प्रकार से प्रभु को आभूषण धारण करवाने के पश्चात् स्वामी के लिये सामंत राजाओं ने चरणपीठ सहित सिंहासन वाली सिद्धार्थ नामकी एक शिबिका की रचना की। अच्युत इन्द्र ने भी आभियोगिक देवताओं से एक शिबिका विकृत रचना करवाई। वह वायुयानी देवता के वायुयानों की मानो अधिष्ठायिका देवी ऐसी दिखाई देने लगी। अच्युत इन्द्र ने, वह शिबिका को श्रीचंदन में अगारु की तरह राजाओं की शिबिका में अंतर्हित कर दिया। बाद में इन्द्र ने जिनको हाथ का सहारा दिया है ऐसे प्रभु शिबिका पर आरुढ़ हुए और हंस जैसे कमल पर बैठता है उसी प्रकार प्रभु भीतर के सिंहासन पर बैठे। श्रेष्ठ अश्व जिस तरह रथ को वहन करते उसी प्रकार प्रथम मनुष्यों ने बाद में धनवात की तरह पृथ्वी का वहन करते हैं उसी प्रकार देवताओं ने शिबिका को उठाया उस समय चारों ओर से मेघ गर्जना जैसे वाजिंत्र बजने लगे। गंधर्व कान में अमृत जैसा गायन करने लगे। अप्सराएँ विचित्र अंगहार करके नृत्य करने लगी, बंदीजन स्तुतिपाठ करने लगे, ब्राह्मण ब्रह्म (वेद) का पठन करने लगे। कुल की वृद्धा स्त्रियाँ उच्चे स्वर में मंगल आशिष देने लगी। कुलीन कांताएँ मनोहर मंगल गाने लगी। आगे-पीछे और दोनों ओर देवता अश्व की (स्वेशी) भाति चेष्टा करने लगे और लोग नेत्रों को प्रफुल्लित करके देखने में लगे तथा अंगुली निर्देश से प्रभु को दिखाने लगे। इस तरह के महोत्सवपूर्वक जगह-जगह पर नगर के लोग मंगलमय आचरण करने लगे। मानो अमृतवर्षा हो रही है ऐसी दृष्टि से जगत को आनंद देते हुए देवता चामरो से झोका देते हुए और सिर पर छत्र धारण करते हुए प्रभु श्रावस्तीनगरी के मध्यभाग से होकर सहस्राम्रवन में आये। वहाँ पर हार की तरह दीक्षा ग्रहण करने इच्छुक जगद्गुरु, वृक्ष पर से जैसे मयूर उतरता है वैसे ही शिबिकारत्न पर से उतरे तुरंत उन्होंने माल्य और सर्व अंलकारादि का प्रभु ने त्याग किया और इंद्र ने दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र स्कंध पर धारण कर लिया। माघ मास की पूर्णिमा का चंद्र मृगशीर्ष नक्षत्र में आनेवाले दिन के पिछले भाग में छठ तप को करनेवाले प्रभु ने एक लीलामात्र में मानो पूर्व में किये हुए कर्म हो उसी तरह अपने मस्तक के केश को पांच मुष्टि द्वारा (स्वीचा) लोच किया। तत्काल इंद्रो ने उस केश को अपने वस्त्रों के अंत में प्रसाद के रूप में ग्रहण करके क्षीरसागर में क्षेपण किया। क्षीरसागर से वापस लौटकर इंद्र ने तुरंत द्वारपाल की तरह सुर, असुर और मनुष्यों का

कोलाहल को मुष्टिशंङ्गा से निवृत्त किया बाद में 'सर्व सावध योग का मैं प्रत्याख्यान करता हूँ' ऐसा कहते हुए प्रभु ने देवता, पर्षदानी के समक्ष चरित्र का स्वीकार किया। मानो केवलज्ञान का एक सत्यंकार आवाहन हो ऐसा मनःपर्यव नामका चौथा ज्ञान उसी समय प्रभु को प्राप्त हुआ, उस समय मानो अग्नि में डाला हुआ हो ऐसा एकांत दुःख द्वारा जले हुए नारकी जीवों को भी क्षणभर के लिये सुख हुआ। दीक्षा को ग्रहण करने त्रिलोकपति के साथ दूसरे एक हजार राजाओं ने भी तिनके की तरह राज्यों का त्याग कर दिया, स्वेच्छा से दीक्षा ग्रहण की।

बाद में इंद्र ने भगवान को नमस्कार करके अंजली जोड़कर भक्तिपूर्वक वाणी से इस प्रकार स्तुति आरंभ की-

“चार प्रकार के ज्ञान को धारण करनेवाले, चतुर्विध धर्म को बतानेवाले और चार प्रकार की गतिवाले प्राणीओं के गण को प्रीति देनेवाले हे प्रभु! आपकी जय हो। हे तीन लोक के पति तीर्थंकर! इस भरतक्षेत्र की भूमि धन्य है कि जिसमें जंगमतीर्थरूप आप विहार करेंगे हे नाथ! जिस तरह पंकज (कमल) कीचड़ में उत्पन्न होता है फिर भी वह कादव (कीचड़) से अलिप्त रहता है उसी तरह आप संसार में रहते हैं फिर भी वे संसार में लिप्त नहीं होते हैं। हे जगतप्रभु! कर्मरूपी पत्र को छेदन में समर्थ खड्ग की धार जैसा तुम्हारा यह महाव्रत जय प्राप्त करता है उसी प्रकार ममता रहित फिर भी कृपालु है। मनुष्य (निग्रंथ) होते हुवे भी बड़े हैं तेजस्वी हैं फीर भी सौम्य हैं धीर हैं फीर भी संसार से डरते हैं फिर भी देवताओं के अत्यंत पूज्यनीय ऐसे आप विहार करके विश्व को तारनेवाले उपवास छुड़वाकर हे स्वामी आप पारणा करेंगे! रोगी को औषधि की तरह अविरति ऐसे बड़े उपकार को उत्पन्न करनेवाले आपके दर्शन हुए हैं। हे तीन जगत के नाथ! मैं आपके पास इतना ही मांगता हूँ की मेरा मन आप में व्याप्त हो आप हमारे में अंकित हो इस तरह सदा हमारे साथ रहा करें”

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेंद्र तथा अच्युतादि इंद्र प्रभु के सान्निध्य में स्मरण करते करते अपने गंतव्य स्थानों पर गये। दूसरे दिन उसी नगरी में सुरेन्द्रदत्त राजा के घर उपवास छोड़ने की इच्छा से गये। प्रभु आये देखकर राजा खड़ा हो गया और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उत्तम दूधपाक (क्षीर) लेकर 'इसे ग्रहण करें' ऐसा कहने लगा। जगत के अद्वितीय पात्ररूपी ऐसे प्रभु ने वह पायसान्न को अेषणीय, कल्पनीय और प्रासुक समझकर अपने हस्तरूपी पात्र में ग्रहण किया। स्वाद में जिसका मन विरक्त है ऐसे प्रभु ने उस पायसान्न से दातार को कल्याण करनेवाला और सिर्फ प्राण को धारण करनेवाला उपवास छोड़ा। उस समय दिग्गज की गर्जना जैसा दुंदुभि का नाद हुआ, तुटी हुई मोती की माला में से मोती गिर जाते हैं उसी प्रकार आकाश में से द्विय वसुधारा की (धनकी) वृष्टि होने लगी। नंदनवन के मानो सभी पुष्पों की वृष्टि हुई हाथीओं के मद जैसा पानी की बारीस हुई। मानो सभी एक छेर पर पकड़ के रखे हो उसी तरह देवताओं ने वस्त्र का उत्क्षेप किया और 'अहोदान, महादान तथा सुदान' ऐसी आकाशवाणी हुई, जिस स्थान पर भगवंत ने उपवास छोड़ा था उस स्थान पर सुरेन्द्रदत्त ने एक सुवर्ण मणिमय पीठ तैयार करवाया। राजा सुरेन्द्रदत्त प्रभु के चरणों की तरह उस पीठ की त्रिकाल पूजा करता था और पूजा किये बिना कभी भी भोजन नहीं करता था।

भगवान् संभवनाथ प्रभु वहाँ से निकलकर अनेक गाव, द्रोणमुख, नगर, खदान, कर्बट, खेट, मंडब, पतन, वन और दूसरे नये-नये स्थानों पर अेकाग्र दृष्टि रखकर चौदह वर्ष तक विहार किया । विहार करते-करते प्रभु नये नये अभिग्रह करते थे, बिना उद्वेग के बाईस परिषद् को सहन करते थे, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति को धारण करते थे, पांच समिति का स्वीकार करते थे और मौन रखकर निर्भिक होकर स्थिर रहते थे । अनुक्रमानुसार सहस्राब्द वनमें शालवृक्ष के नीचे शुक्लध्यान के दूसरे पाये के अनुसार वर्तन करते प्रभु ने कायोत्सर्ग किया । ध्यान में वर्तन करते समय प्रभु को वृक्ष के सुखे पत्तों की तरह गिर पड़े उसी प्रकार चार प्रकार के धातीकर्म कर क्षय हो गया, इसलिये कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी के दिन चंद्रमा मृगशिर नक्षत्र आने पर छह तप किया है जिसने ऐसे प्रभु को भूत भविष्य और वर्तमान काल की सभी वस्तुओं को बताने में उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । उस समय में परमाधामिकों ने किये हुए, क्षेत्र से उत्पन्न हुए और सीधे दुःखों की प्राप्ति से दुःख का नाश होने से नरक में रहने वालों को भी क्षणभर के लिये सुख प्राप्त हुआ और सभी सुर-असुर के इंद्र अपने आसनों से चलित होने से केवलज्ञान का महिमा करने के लिये वहाँ पर उपस्थित हुए ।

बाद में समवसरण करने के लिये वायुकुमार देवताओं ने एक योजना तक पृथ्वी की सफाई की और मेघकुमार देवताओं ने उसमें सुगंधित जल छिड़का । बाद में व्यंतरो ने सुवर्ण और रत्न के पाषाणों से भूमि को बांध लिया और उसके उपर पांच वर्ण के पुष्प बिखेर दिया । उसके बाद उन्होंने चारों दिशाओं में श्वेत छत्र, ध्वज, स्तंभ और मधुरमुखादि चिन्हों से सुशोभित ऐसे चार तोरणों से सजाया । उनके बीच में भुवनपतिओं ने रत्न पीठ बनाई । उसके चारों ओर सुवर्ण के कांगरावाला रुपा का दुर्ग की रचना की । उसके मध्य में ज्योतिष्क देवताओं ने पृथ्वीरूपी स्त्रि मानो कंकण हो वैसे रत्नों का सुवर्ण का दुर्ग बनाया । उसके उपर वायुयान पतिओं (वैमानिक) ने कांगरावाला रत्नमय दुर्ग बनाया । प्रत्येक दुर्ग के चार-चार द्वार बनाये । दूसरे मध्य में दुर्ग के भीतर ईशान कोने में देवताओं ने एक देवछंद की रचना की तीसरे दुर्ग के पृथ्वी के मध्य भाग में व्यंतरो ने दो कोश और आठ सौ धनुष्य ऊँचों (प्रभु के शरीर से बारा गुना) एक चैत्यवृक्ष बनाया । उसके नीचे मणीमय पीठ बांध कर एक पादपीठ वाला रत्न का सिंहासन बनवाया । उस देवछंद पर तीन सुंदर छत्रों की रचना की, दोनों ओर चंद्र जैसे उज्ज्वल चामर धारण करवा कर दो यक्षों को खड़ा किया, प्रभु के धर्मचक्रीपन को निर्देश करता प्रकाशमान धर्मचक्र समवसरण के अग्र भाग में स्थापित किया । बाद में देवताओं ने संचार किये हुए सुवर्ण के नौ कमल पर चरण का आरोपण करते और कोटि देवताओं द्वारा लपेटे हुए प्रभुने पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश किया । वहाँ जाकर चैत्यवृक्ष की तीन प्रदक्षिणा देकर 'नमस्तीर्थाय' ऐसा कहकर प्रभु देवछंद में रखे हुए सिंहासन पर पूर्वाभिमुख में आरुढ़ हो गये । तुरंत व्यंतरो ने स्वामी के प्रभाव से दूसरे अन्य तीन दिशाओं में भी रत्न के सिंहासन पर प्रभु के प्रतिबिंबों को स्थापित किया । उस समय प्रभु के मस्तक के पिछले भाग में प्रकाशितमा मंडल हुआ आगे इन्द्रध्वज हुंवा और आकाश में दुंदुभिनाद हुवा । बाद में पूर्वद्वार से प्रवेश करके और प्रभु को नमस्कार करके साधु अग्नि कोण में बैठे और वैमानिक स्त्रियाँ तथा साध्वीयाँ उनके पीछे भाग में खड़ी रहीं । भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देवता पश्चिम

द्वार से प्रवेश करके प्रभु को झुक कर नमन करके वायव्य कोण में अनुक्रम से बैठे । वैमानिक देवता, नर और नारीयों उत्तर द्वार से प्रवेश करके स्वामी को झुक कर अनुक्रम से ईशान दिशा में बैठे । इस तरह प्रथम दुर्ग में श्रीमान चतुर्विध संघ, दूसरे दुर्ग में तिर्यच और तीसरे दुर्ग में सभी वाहन एकत्रित किये । बाद में शंकरे स्वामी को नमस्कार करके अंजलि जोड़कर भक्तिपूर्वक वाणी से इस प्रकार स्तुति का आरंभ किया-

हे प्रभु ! आपको बुलाया नहीं फिर भी सभी के सहायक हो, कारण बिना भी वात्सल्यवान है, प्रभु प्रार्थना किये बिना भी आप उपकारी हो और संबंध बिना के बांधव है, इसलिए हे नाथ ! अभ्यंग (स्नान) किया बिना ही स्निग्ध हृदयवाले, मालपकर्षण बिना उज्ज्वल वचन बोलनेवाले, प्रक्षालन किये बिना ही निर्मल शीलवाले और शरण करने लायक ऐसे आपके चरणों में मैं आश्रय पाना चाहता हूँ । हे स्वामी ! शांत फिर भी वीर व्रतवाले, समतावान और सभी में समानता से वर्तन करनेवाले ऐसे आप कर्मरूपी कुटिल, कंटक को आपने कूट डाला है । अभय फिर भी महेश, अगद फिर भी नरक का छेदन करनेवाले (कृष्ण) और अराजस फिर भी ब्रह्मरूप ऐसे आपको हमारा नमस्कार है । हे प्रभु ! सिंचन बिना ही फलद्रुप और गिरने से पहले ही बढे ऐसे आप संकल्प रहित कल्पवृक्ष है, इसलिये आपसे हमें बड़ा फल प्राप्त हो । हे स्वामी ! द्रव्यादि संगरहित, ममता से वर्जित, कृपालु, मध्यस्थ और जगत के पालन करनेवाले ऐसे आप जिनेश्वर का मैं किसी भी प्रकार से त्रिशुलादि चिन्ह बिना भी सेवक हूँ । हे नाथ ! नहीं गोपवेला (छिपाये) रत्न के निधिरूप, बिना आधार का कल्पवृक्ष और नहीं चिंतित चिंतामणिरूप जैसे आप के बारे में मेरी इस आत्मा को अर्पित किया है । हे प्रभु ! मैं फल की चिंता से रहित हूँ और आपकी मूर्ति फलस्वरूप ही है इसलिये 'क्या करना ? इस विचार में जड़ बना मैं मुझे क्या करना चाहिए ? यह बतलाने का आप प्रसाद दे ।'

इस प्रकार की स्तुति करके इंद्र विराम पाया बाद में भगवान संभव प्रभु ने विश्व परउपकार करने की इच्छा से इस तरह देशना देने का आरंभ किया-

इस संसार में वस्तुतः सभी वस्तुएं अनित्य हैं । फिर भी प्रथम लगनेवाली सहज मधुरता और सुख के लिए प्राणी उसी में मुर्छित रहते हैं । अपने से दूसरों से और सभी ओर से आपत्तियाँ हमेशा आती रहती हैं । ऐसे प्राणी यमराज के मुखमें दांतों के बीच में रहकर भी अहा ! कैसे कष्ट से जीते हैं ! अनित्यता वज्र जैसे देह को भी सम्मिलित (फसाती हैं) करती हैं । तो इस कदली के गर्भ जैसे प्राणीओं की क्या बात करनी ? यदि कभी इस शरीर को स्थिर करने की इच्छा करे तो भी वह पुराने और सड़े हुए घास के बने खेत के रक्षक प्राणीयों को डरानेवाले पुरुष की कृति की तरह होता है । ऐसा समझे ! मरणरूपी बाघ की मुखगुफा में बसनेवाले प्राणीयों के रक्षण करने के लिये मंत्र, तंत्र और चिकित्सा सभी बेकार हैं । जैसे-जैसे पुरुष की आयु बढ़ती है वैसे-वैसे प्रथम उसे जरावस्था ग्रस्त करती जाती है और बाद में उसके लिये यमराज जल्दी तैयारी करते हैं । अहा ! प्राणीयों के जन्म को धिक्कार है ! यह शरीर यमराज के वेश में है इस तरह सही-सही मान ले तो कोई भी प्राणी अन्न का एक भी ग्रास को ग्रहण नहीं करेगा । तो पापकर्म करने की बात ही क्या करना ? जिस तरह पानी में बुलबुला उत्पन्न होकर विलय होता रहता है उसी तरह शरीर उत्पन्न होता है और नष्ट भी होता है । समृद्धिवाला काल, धनवान या निर्धन,

राजा या रंक, समजदार या मुख, सज्जन या दुर्जन किसी का भी समानरूप से संहार करने के लिये प्रवृत्त होता है। इस काल को गुण मे दाक्षिण्यता नहीं है और दोषो मे द्वेष भी नहीं है। लेकिन वह तो बडे वन मे लगी आग की तरह सभी प्राणीयो का एक ही तरह से संहार करता है। कुशास्त्र से मोहित पुरुषो ने 'कोई भी उपाय से काया निरुपाय' हो ऐसी शंका भी करनी नहीं चाहिए। जो मेरुपर्वत का दंड और पृथ्वी का छत्र बनाने मे समर्थ है वो भी दुसरे को बचाने में समर्थ नहीं होते है। किडे से लेकर इंद्र तक उस यमराजका शासन फैला हुआ है। उसमे काल के चंगुल से बचने की याचना कोई भी समजदार मनुष्य करता नहीं है। कभी किसीने अपने पूर्वजो मे से किसी को भी जिवित देखा है तो काल को याचना करने के बात न्यायमार्ग से दूसरी दिशा से संभव है क्या? ऐसा तो कही दिखता नहीं है। 'बल और रुप हरनेवाली वृद्धावस्था से शिथिल होती है।' इस बात के अनुभव से विद्वान पुरुष 'यौवनवय अनित्य है,' यह बात खरी है होनी ही चाहिए। कामिनीयाँ कामदेव की लीला से यौवन काल मे जिनकी इच्छा होती थी, वही पुरुषो को वृद्धावस्था मे धूंक-धूंक कर उसका त्याग करते है। धनवान पुरुषो ने धन को बहुत क्लेश से प्राप्त करके उसका उपभोग किये बिना रक्षण करके एकत्रित किया है वह भी एक क्षण मात्र मे नाश हो जाता है। देखते देखते मे नाश हो जाता है ऐसे धनवानो क धन को फेस या बुलबुले की उपमा क्यो न दि जाय? अपना वास दूसरे के यहाँ कही भी न्यास करके उसमे विकार या अपकार करो, लेकिन इस संसार मे मित्र या बंधुजनों के समागम है वह अंत मे विनाश को प्राप्त होता है। जो संसार मे हमेशा अनित्यता का ध्यान करते है वे अपने पुत्र को मृत्यु प्राप्त हो जाने पर भी शोक नहीं करते है। जो मूढ अनित्यता का आग्रह रखते है वे अपने घर की एक दिवार गिरजाने पर रुदन करते है। शरीर, यौवन, धन और बंधु वगेरेह अनित्य है ऐसा नहीं है लेकिन यह सब सचराचर जगत ही अनित्य है। इस तरह सभी का अनित्य जानकर प्राणीयोने परिग्रह का त्याग करके नित्य सुखदायक शाश्वतपद (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर तत्काल कई पुरुष और स्त्रियाँ ने स्वामी के चरणकमल के पास मे दीक्षा ग्रहण की। बाद मे चारु वगेरेह गणधरो को प्रभु ने स्थिति उत्पाद और नाश ऐसी त्रिपदी का उपदेश किया। उस त्रिपदी के अनुसार एकसो दो गणधरो ने चौदहपूर्व सहित द्वादशांगी की रचना की बाद मे प्रभु ने खडे होकर इन्द्र द्वारा लाई गई वासक्षेप उन पर डालकर उनको द्रव्यादिक द्वारा अनुयोग तथा गण की अनुज्ञा दि। उस समय देवता और मनुष्योने दुंदुभि की ध्वनि करके गणधरो पर वासक्षेप किया और वे गणधर प्रभुकी वाणी को ग्रहण करने के लिये खडे रहे। बाद मे प्रभु पूर्वाभिमुख की ओर फिर से दिव्य सिंहासन पर बैठकर गणधरो को शिक्षारूप देशना दि। जब पहली पौरुषी पूर्ण हुई तब प्रभुने देशना समाप्त की। उसी समय राजभवन से विपुल मात्रा मे शाली का बलि आया, उस बलि को आकाश मे उड़ाया इसलिए उसमे से बिस्वरा हुआ आधा भाग आकाश मे से देवताओ ने ले लिया और आधा भाग राजाने तथा अन्य लोगो ने हर्षसे बांट लिया। बादमे तीर्थकर भगवान ने उठकर उत्तर द्वार से निकल कर स्वयं श्रान्त नहीं हुए थे फिर भी दूसरे गढ मे रचे हुए देवछंद पर विश्राम लिया; कारण कि ऐसी मर्यादा है बाद मे गणधरो के अग्रणी चारु गणधर ने प्रभुकी चरणपीठ पर बैठकर स्वामी के प्रभाव से संशय को छेदन करनेवाली देशना दि। दूसरी पोरसी पूर्ण हुई इसलिये चारु गणधर कालबेला

पर जिस तरह शास्त्र के अध्ययन से विराम लेते हैं वैसे ही देशना विधि से विराम लिया । उसके बाद सूर, असूर और राजा वगैरेह उसी तरह उत्सव पर आये हुए लोग उत्सव समाप्त हो जाने पर चले जाते हैं उसी प्रकार प्रभु को नमस्कार करके हर्षित अपने-अपने गंतव्य स्थानों पर चले गये ।

उस संभवनाथ स्वामी के तीर्थ में त्रिमुख नाम का यक्ष उत्पन्न हुआ । उसे तीन नेत्र, तीन मुख और छै हाथ थे, उसका श्यामवर्ण था, मयुर उसका वाहन था, दाहिन तरफ की तीन भुजाओं में उसने नकुल, गदा और अभय (माला) को धारण किया था बाई ओर की तीन भुजाओं में बिजोरु, माला और अक्षसूत्र रखा था । उसी तरह वह तीर्थ में दुरितारि नाम की एक देवी (यक्षणी) उत्पन्न हुई उसे चार भुजाएँ थी, वर्ण गौर था और मेष का वाहन था । दक्षिण की ओर की दो भुजाओं में वरद और अक्षसूत्र और वाम तरफ की दोनों भुजाओं में सर्प और अभय से वह देवी शोभायमान हो रही थी । वह त्रिमुख यक्ष और दुरितारि देवी दोनों प्रभु के शासनदेवता बने । वे निरंतर प्रभु के पास में आत्मरक्षक की तरह रहने लगे । उसके बाद चौत्तीस अतिशयवाले संभवनाथ प्रभु ने साधुओं के परिवार के साथ उस स्थान से दूसरी जगह विहार किया ।

विहार करते हुए प्रभु के दो लाख साधु, तीन लाख छत्तीस हजार साध्वी, दो हजार डेढ़सौ चौदपूर्वधारी, नौ हजार छेसो अवधिज्ञानी, बारह हजार डेढ़सौ मनःपर्यवज्ञानी, पंदरह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार आठसो वैक्रियलब्धिवाले, बारह हजार वादलब्धिवाले (वादी) दो लाख तिरानबे हजार श्रावक और छे लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं का परिवार बना । प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात चार पूर्वांग और चौदह वर्षों से न्यून ऐसे एक लाख पूर्व तक विहार किया बाद में सर्वज्ञ प्रभु अपना मोक्षकाल समीप जानकर परिवार सहित समेतशिखर पर्वत पर आये । वहाँ पर उन्होंने एक हजार मुनिओं के संग पादपोषण अनशन किया । उस समय सूर असूरो के इंद्र परिवार के साथ में आकर भक्तिपूर्वक प्रभु की सेवा करने लगे । एक मास के अंत में पर्वत की तरह निष्कंप जैसे प्रभु ने सर्व योग का निरोध करनेवाला शैलेशी नामक अंतिम ध्यान प्राप्त किया, और चैत्रमास की शुक्ल पंचमी के दिन मृगशिर नक्षत्र आते चार अनंत को सिद्ध करते संभवनाथ ने मोक्षको प्राप्त किया प्रभु के अंश हो अंशे एक हजार मुनि भी उसी विधि से उसी पद को प्राप्त हुए ।

प्रभु ने कुमारपन में पंद्रह लाख पूर्व, राज्य में चार पूर्वांग सहित चौवालीस लाख पूर्व और दिक्षा में चार पूर्वांग वरिवंत अेक लाख पूर्ण इसरितसे सबमिलाके के साठ लाख पूर्व का आयूष्य और अजितनाथ स्वामी के निर्वाण बाद तीस लाख कोटि सागरोपम गये तब संभवनाथ प्रभु निर्वाणपद को प्राप्त हुए । संभवनाथ प्रभु का शरीर संस्कार उसी तरह दूसरे भी योग्य कर्म था वह इंद्रो ने यथाविधि किया । बाद में प्रभु की दूढ़े भी उन्होंने आपस में बांट ली । देवताओं ने दांत तथा अस्थिओं का ग्रहण की । बाद में इंद्र और देवता अपने-अपने स्थानों पर गये । वहाँ पर प्रभु के अस्थियाँ माणवक स्तंभ के उपर पूजन करने के लिये वे उत्कर्ष तरीके से स्थापना की । तीर्थकर का क्या पूजा करने लायक नहीं है ? अर्थात् सर्वदेह पूजन करने योग्य है ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये-तृतीये पर्वणे

श्री संभवनाथचरितवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीय सर्ग

श्री अभिनंदनस्वामी चरित्र

गुणरूप वृक्ष की समृद्धि को बढ़ाने वाला और जगत को आनंद करनेवाला संवरराजा के पुत्रश्री अभिनंदन स्वामी को मैं वंदन करता हूँ। भव्यजनो की मोहनिद्रा को नाश करने में प्रातःकाल स्वरूप और तत्त्वज्ञानरूप अमृत के कुंभरूप उन प्रभु का उज्ज्वल चरित्र अब मैं कहूँगा।

इस जम्बुद्वीप के पूर्व विदेह में मांगलिक कार्यों का उत्पत्तिस्थान तुल्य मंगलावती नामका एक सुंदर विजय है। उसमें समुद्र की तरह सर्व रत्नों की खदान और पृथ्वी के मस्तक पर रत्नरूप रत्नसंचया नामकी सर्व नगरीयों में रत्न समान नगरी है उसमें लक्ष्मी से कुबेर जैसा और बल से मानो दूसरा महाबल हो ऐसा महाबल नामका राजा राज्य करता है। गंगा, सिन्धु और रोहितांशा नामकी तीन नदियों में से जैसे हिमाचल शोभा दे उस तरह उत्साह मंत्र और प्रभुता यह तीन शक्तियों से वह शोभा देता था। चार दांतों से युवा गजेंद्र की तरह शत्रुवर्ग को जीतनेवाला चार उपायों से वह प्रकाशित हो रहा था। बुद्धि का भंडार वह राजा अरिहंत देव को, साधु गुरु को और जिनोपज्ञ धर्म को ही हमेशा मानता था। दान, शील, तप, और भाव ये चार प्रकार के धर्म में वह हमेशा रमता था कारण महापुरुषों का पुण्य पुण्यानुबंधी ही होते हैं।

ऐसा वह विवेकी महाराजा सभी जगह अनित्यता जानकर और संसार से उद्वेग पाकर सिर्फ देशमात्र आश्रय के त्यागी ऐसे श्रावकधर्म के आराधन से संतुष्ट नहीं हुआ, इसलिये इंद्रियों का दमन करनेवालों में श्रेष्ठ जैसे उन्होंने विमलसूरि के चरणों के पास आकर सर्वविरतिपन अंगीकार किया साधुपन से सोचता हुआ वह राजा दुर्जनो की निंदासे हृदय में खुश होता था और सज्जनों ने कि हुई पूजा से वह विपरित लज्जित होता था। पापी लोग उसे कलेश करवाते थे फिर भी वह कभी उद्वेग नहीं करता था, और बड़े लोग पूजा करते तो भी वह जरा भी गर्व नहीं करता था; रमणीय उद्यान वगैरेह में विहार करता था, लेकिन उसमें उसे राग नहीं आता, और सिंह, बाघ वगैरेह भयंकर अरण्यों में विहार करने में उसे विराग नहीं होता था। हेमंतऋतु में हिम गिरने से गहन रात्रिओं में हाथी के आलान स्तंभ की तरह निश्चित कार्योत्सर्ग करके वह निर्गमन करता था। सूर्य की गर्मी से भयंकर ब्रीष्मऋतु में धूप में रहकर का उस्सग्ग से भी अग्नि से पवित्र किये हुए वस्त्रों की तरह वह प्रकाशित था। वर्षाऋतु में हाथी की तरह ध्यान से दो नेत्रों को स्थिर करके वृक्ष नीचे प्रतिमा धारण करके वह रहता था। जिस तरह ऋण(करख) रहित पुरुष धन एकत्रित करता है उसी तरह अकावली और रत्नावली वगैरेह अनेक प्रकार के तप करके तपसंपत्ति उन्होंने प्राप्त की थी। उन्होंने बीस स्थानको में से कुछ स्थानको की आराधना द्वारा अंत में तीर्थकरनाम कर्म उपार्जित किया और दीर्घकालतक व्रत पालन, अनशन लेकर, मृत्यु प्राप्त कर विजय विमान को महर्द्धिक देवता हुए।

इस जंबुद्विप में भरतक्षेत्र के भीतर इंद्र की नगरी जैसी अयोध्या नामकी पुरी है। उस नगरी में घर-घर रहे हुए मणिमय स्तंभों में प्रतिबिंब हुए चंद्रमा स्थावर पदार्थों को भी शृंगाररूप दर्पण की शोभा



श्री अभिनंदन भगवान

लाडवाडो तीर्थ, खंभात, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

सुंदरजी खेराज

गाम : सांगली, महाराष्ट्र

देता है। वहाँ पर हरेक घर के आंगन में वृक्षों पर क्रीड़ा की मयूरीने खींच-खींचकर हार लटकाये हैं, इसलिए वे वृक्षो कल्पवृक्षों के जैसा भास होता है। वहाँ पर ही चैत्यो की श्रेणीयाँ गिरते चंद्रकांत मणिओ से झरनेवाले बड़े पर्वत की हरियाली को फैलाते हैं। चैत्य के आगे रत्नों से बांधी हुई पृथ्वीयो में तारो के प्रतिबिंब पड़ते हैं, उन देवताओने रखी हुई पुष्पांजलि जैसे सुशोभित हैं। जिसमें बाल ललनाए खेल रही हैं ऐसी गृहवापिका जिसमें से अप्सराए निकलती हैं। ऐसे क्षीरसागर की लक्ष्मी को हर लेती हैं। उसमें कंठ तक मङ्गमय गौरांग स्त्रियों के मुखो से वापिकाए सुवर्ण के कमलवाली क्षणभर दिखती हैं। नये मेघ से पर्वत के नीचे की भूमि की तरह विशाल उद्यानो से उस नगरीके बाहर की भूमि श्याम रंग से आच्छादित हो रही हैं। देवकृत बड़ी खाई से वह नगरी का दुर्ग चारो ओर से लपेटा गया है। उस नगरी में स्वर्ग के बारे में कल्पवृक्ष की तरह घर-घर में दातार पुरुष सुलभ हैं लेकिन याचक दुर्लभ हो गये थे।

उस नगरी में इक्ष्वाकुवंशारूपी क्षीरसागर में समुद्र में चंद्र समान और सभी शत्रुओ की लक्ष्मी को स्वयंवर द्वारा धारण करनेवाला संवर नाम का राजा है। आज्ञा से ही सभी भुवन तल को साधनेवाले उस राजा के म्यान में से कृपण के खजाने से द्रव्य की तरह कभी भी कृपाण-तरवाल बाहर नहीं निकलती हैं। बड़ी भुजाओ वाला और अपने उग्र प्रताप से समर्थ ऐसे उस राजाने एकचंद्र वाले आकाश की तरह समग्र पृथ्वी एकक्षत्रवाली बना दी थी। उसने पृथ्वी को दृढ़ रूप से धारण कर ली थी। नहीं तो दिग्यात्रा में प्रयाण करनेवाला उस राजा के सैन्य के भार से पृथ्वी सहस्र बार फट जाती। दिशाओ में से दासीयों की तरह खींचकर लाई हुई चंचल ऐसी लक्ष्मी को भी अपने गुणों से बंदि बनाकर रखा था। अन्य राजाओ के कई दंड उसके पास आते थे, फिर भी वह कभी गर्वित नहीं होता था। कारण नदीयों के जल से समुद्र जरा भी गर्व नहीं करता है। प्रसन्न चितवाला हमेशा निर्लोभी और प्रमाद रहित ऐसा वह राजा धनाढ्य और दरिद्रता में वह मुनि की तरह समदृष्टि से वर्तन करता था। वह प्रजा को धर्म के लिये शिक्षा करता था, लेकिन धन की इच्छा नहीं करता और प्रजा के रक्षण के लिये शत्रुओ को शिक्षा करता; द्वेष बुद्धि से नहीं करता अकेले ओर राज्य के सभी कार्य ओर एक तरफ धर्म का कार्य को तराजु की भाँति समभाग की तरह वह अपनी आत्मा में धारण करता था।

उस संवर राजा को सिद्धार्थ नाम की रानी थी। शुद्ध वंश में उत्पन्न हुई और गुणो से भरी मनोहर वह राणी अंतःपुर के आभुषणरूप में उसकी गिनती होती थी। विलास द्वारा मंद ऐसी गति से और बहुत मधुर वाणी से वह मधुर आकृतिवाली राणी राजहंसीनी जैसी शोभायमान थी। पवित्र लावण्य की सरिता(नदी)रूप उस रमणी के मुख, नेत्र, हाथ और चरण कमल जैसे मनोहर थे। नेत्ररूपी कमल मानो इन्द्रनील मणिमय है, दांत मानो मुक्तामणिमय हैं, अधर पल्लव मानो परवाला से व्याप्त हो, नख मानो पद्मराग मणि से प्रचुर हैं, अंग मानो सुवर्णमय हैं और सभी अंग मानो रत्नमय हैं ऐसी वह महाराणी अति रमणीय जान पड़ती थी। नगरीयो में जैसे अयोध्या, विद्याओ में जिस तरह रोहिणी और नदियो में गंगा है उस तरह वह देवी सतीयों में अग्रसर थी। कभी भी वह अपने पतिपर प्रेम से भी गुस्सा नहीं करती थी, कारण कुलवान स्त्रियां व्रत की तरह अपने पतिव्रता के अनुसार अतिचार लगाने में वह भी सहायक थी। अपने आप को सभी परिस्थितियों के अनुकूल ऐसी वह प्रिय रानी में राजा का नील के

रंग जैसा अव्यभिचारी प्रेम था । मद होनेवाले स्थानों से दूर अबाधित रहनेवाली वे राजदंपती सर्व धर्म को हानि न लगे इस तरह का बर्ताव करते हुए सांसारिक सुख भोग रहे थे ।

इस तरफ महाबल के जीव ने विजय विमान में तैत्तिरीय सागरोपम का आयुष्य सुख में मङ्गमय निर्गमन किया । आयु पूर्ण होने पर बैशाख मास की शुक्ल चतुर्थी के अभिजित नक्षत्र में चंद्र आते उन महात्मा का जीव वहाँ से च्यवनकर सिद्धार्थ देवी के उदर में अवतरित हुआ । जब तीन ज्ञानों को धारण करनेवाले प्रभु गर्भ में आये तब तीन लोक में उद्योत हो रहा था और नारकी के जीवों को भी क्षणभर सुख हुआ । रात्रि में सुख से सो रही महादेवी ने रात्रि के अंतिम प्रहर में अपने मुख में प्रवेश करते हुए, चौदह स्वप्न देखें । चारदांत वाले हाथी डोलरना के फुल जैसा श्वेत वृषभ, चौड़े मुखवाला केशरी सिंह, अभिषेक से मनोहर ऐसी लक्ष्मी, पंचवर्णी पुष्प की माला, परिपूर्ण चंद्र, प्रकाशमान सूर्य, छोटे-छोटे घुंघरुवाला ध्वज, सोनेका कलश कमलसे भरा सरोवर अछलता समुद्र, मनोहर विमान, सुंदर रत्नों का एक ढेर; और ध्रुवा रहित अग्नि इस प्रकार के चौदह महास्वप्न देखकर जाग्रत हुई देवीने राजा से निवेदन किया । 'हे देवी इशस्व प्लसे आपको तीन जगत में पुजनीय पुत्र होगा अशा राजा ने कहा ! तुरंत इन्द्रोने आकर कहाकी आपके पुत्र चौधे तीर्थकर बनेंगे' ऐसा स्वप्न फल सुनकर देवी को ऐसा हर्ष हुआ उससे उनकी निद्रा दूर चली गई और शेष रात्रि उन्होंने जाग्रत अवस्था में निर्गमन किया । उसी समय से कमल के कोश में बीजकोश की तरह सिद्धार्थ देवी के उदर में वह गर्भ दिनो दिन गूढ़ रीत से बढ़ने लगा । सिद्धार्थ देवी ने भी उस गर्भ को सुख से धारण कर लिया, कारण कि ऐसे महापुरुषों का जन्म अवतार संपूर्ण जगत के सुख के लिये ही होता है ।

गर्भधारण करने के नौ मास और साडेसात दिनों के बाद माघ मास की शुक्ल द्वितीया के दिन चंद्र अभिचि नक्षत्र में आते ही देवी ने सूर्य जैसे तेजस्वी पुत्र को सुख से जन्म दिया । उसका वर्ण सुवर्ण जैसा था और वानर (बंदर) का लांछन (चिन्ह) था । प्रभु का जन्म होते ही तीनों लोक में उद्योत हो रहा था । क्षणभर के लिये नारकीय प्राणीयों को सुख हुआ उस समय दिक्कुमारीयोंने अपने-अपने स्थान से आकर देवी और कुमार का यथायोग्य सूतिकर्म किया । शक्रेंद्र भी अपने आसन के कम्पन्न से अर्हत का जन्म हुआ है यह जानकर पालक वायुयान में बैठकर देवताओं सहित वहाँ पर आये । वायुयान उपर से उतरकर प्रभु के सुतिकागृह में प्रवेश कर स्वामी को और स्वामी की माताजी को नमस्कार किया । बाद में देवी को अवस्वापिनी निद्रा में रखकर, उनके बगल में प्रभु का प्रतिबिंब रखकर (इन्द्र) धर्मेन्द्र ने पांच स्वरूप किये अेक इंद्र ने प्रभु को पकड़ के रखा, दूसरे इंद्रने छत्र धारण किया । दो इंद्रों ने दोनों ओर चामर रखे अेक इंद्र वज्र को नचाते नचाते हुए आगे चला, बाद में क्षणभर में मेरुपर्वत पर आकर अतिपांडुकबला नाम की शिला के विशेष सिंहासन पर प्रभु को गोद में लेकर बैठे उस समय वहाँ पर सह परिवार सहित दूसरे तीरसठ इंद्र भी वहाँ आये और जल से भरे कुंभों द्वारा विधि अनुसार प्रभु को स्नान करवाने लगे बाद में ईशान इंद्र ने पांच रूप करके एक रूप में प्रभु को रखा, एक रूप से छत्र धारण किया । दोनों रूप में दोनों ओर से चामर डालने लगे और एक रूप में त्रिशूल लेकर आगे खड़ा रहा । बाद में शक्रेंद्र अपनी तुष्टि के लिये चार दिशा में स्फटिक के चार वृषभ, (विकुर्ची) बनाकर

उनके शृंग मे से निकलती हुई जलधारा द्वारा प्रभु को स्नान करवाया बाद मे चंदन का विलेपन करके वस्त्र अलंकारादिक धारण करवा कर, आरति उतार कर शक्रेंद्र अंजली जोडकर इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

“चौथे तीर्थकर, चौथे आरारुप आकाश मे सूर्य समान और चौथे पुरुषार्थ (मोक्ष) की लक्ष्मी का प्रकाश करनेवाले हे प्रभु ! आप की जय हो ! हे नाथ ! लंबे समय से आपसे सनाथ हुआ यह जगत अब विवेक की चोरी करनेवाला मोहादिक से कभी भी उपद्रव को प्राप्त नहीं होगा ! हे प्रभु ! आपके पादपीठ मे जिनका मस्तक रहता है ऐसा मेरे लिये पुण्यरुप परमाणु के कण जैसी आपकी चरण रज दीर्घकाल मे स्थापित हो । हे ईश ! मेरे नेत्र आपके मुख के विशेष आसक्त होने से नहीं देखने लायक वस्तु को देखने उत्पन्न हुए उन नेत्र कमल को हर्षाश्रु की उर्मियो द्वारा क्षणभर मे धोडालो । हे प्रभु ! लंबे समय की ममता के दर्शन से उत्पन्न हुए मेरे रोमांच चिरकाल की असददर्शन (मिथ्यादर्शन) की वासना को दूर करो । हे नाथ ! मेरे नेत्र सर्वदा आपके मुख को देखकर विलास प्राप्त करे । मेरे हाथ आपकी उपासना करे और मेरे कान आपके गुण गान के श्रोता बने । हे देवाधिदेव ! कुंठित ऐसी मेरी बुद्धि यदि आपके गुण को ग्रहण करने की ओर उत्कंठावाली हो तो उसका कल्याण हो, क्योंकि उसे दूसरो से क्या होगा । हे नाथ ! मैं आपका शिष्य, दास, सेवक और किंकर हूँ इस तरह आप मेरा स्वीकार करो । इससे अधिक मैं आपसे कुछ भी कहना नहीं चाहता हूँ ।”

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेंद्र पांच रुप होकर ईशान इंद्र के पाससे प्रभु को लेकर, पूर्व की तरह छत्र वगेरेह धारण करके क्षणभर मे प्रभु के घर पहुँचा; वहाँ पर प्रभु की माताजी अवस्वापिनी निद्रा तथा प्रभु प्रतिबिंब हारी लेकर साक्षात प्रभु को उस स्थिति मे माता के साथ स्थापित किया । बाद मे शक्रेंद्र वहाँ से दूसरे इंद्र मेरुपर्वत से जैसे आये थे वैसे ही अपने स्थान को लौट गये । प्रातःकाल मे संवर राजा ने सभी लोगो मे हर्ष के अेक छत्ररुप पुत्र का जन्मोत्सव किया । जब प्रभु गर्भ मे थे उस समय कुळ, राज्य और नगरी सर्व अभिनंद (हर्ष) प्राप्त थे, इसलिए माता पिता ने उनका अभिनंदन ऐसा नाम दिया । अपने अंगुठे मे से इंद्र द्वारा संचारित अमृत का पान करते और देवांगना रुप धात्री द्वारा पालन कराते प्रभु अनुक्रम से बढने लगे । विचित्र प्रकार के खिलौने हाथ मे रखकर आते सूर-असूर के कुमारो के साथ विचित्र क्रीडा करते थे । ऐसे प्रभु ने अपना बाल्यकाल का उल्लंघन किया । उद्यान का वृक्ष जिस तरह वसंत को प्राप्त होता है उसी तरह प्रभु के सभी अंगो मे शोभायमान यौवनवय प्राप्त हुआ । साडेतीनसो धनुष्य ऊँची काया, झुले जैसा वृक्ष हो अथवा लक्ष्मी के दो झुले बांधे हो ऐसी जांघ तक की लंबी दो भुजाएँ, अर्धचंद्र समान शोभायमान ललाट और पूर्णचंद्र की शोभा का अनुकरण करता मुखमंडल से विशेष शोभा के पात्र हुए । सुवर्णमय मेरुपर्वत के शिला जैसा वक्षस्थल, पुष्ट स्कंध, कृशउदर, मृगनि की जैसी जंघाए और कुर्म के जैसे उन्नत चरणो से प्रभु मनोहर लगते थे । प्रभु इस विषय मे निःस्पृह थे फिर भी अपना भोगकर्म जानकर मातापिता की प्रार्थना से उन्होंने अनेक राजपुत्रीओ के साथ विवाह किया । तारों के बिच मे जैसे चंद्रमा की तरह राजकुमारीयों के संग क्रीडा करने के लीये उद्यान, सरोवर वापी और पर्वत पर वगेरेह मे प्रभु स्वेच्छा से विहार करने लगे ।

इस तरह प्रभु ने अहमिंद्र की तरह सुख में मग्न रहकर साढ़े बारह लाख पूर्व निर्गमन किया । फिर संवर राजाने प्रभु से प्रार्थना करके राज्य पर आरुढ़ किया और स्वयं प्रव्रज्यारूपी राज्य ग्रहण किया । प्रभु ने एक गाव की तरह उस पृथ्वी का राज्य अपनी लीलामात्रसे संचालन करने लगे । जगत का रक्षण करने में चतुर ऐसे प्रभु को इतना पृथ्वी का पालन करना यह किसी विसात में था? इस तरह राज्य करते हुए प्रभु को आठ पूर्वांग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व निर्गमन हो गये ।

अनुक्रम में प्रभु को दीक्षा लेने की इच्छा हुई, उसी समय मनोभाव को जाननेवाले मंत्रियों की तरह लोकांतिक देवता आकर इस प्रकार से विज्ञप्ति करने लगे- 'हे नाथ ! अब संसारवास से मुक्त हो और धर्मतीर्थ प्रवृत्त करे । आपके प्रवृत्त किये हुए तीर्थ से दूसरे अनेक प्राणी इस दुस्तर संसाररूपी सागर को पार कर जायेंगे ।' इस प्रकार विज्ञप्ति करके लोकांतिक देवता चले गये । बाद में प्रभु ने निदान (नियाणा) रहित वार्षिक दान देने का आरंभ किया । इंद्र की आज्ञा से कुबेर की प्रेरक से जृम्भक देवता द्रव्य ला लाकर प्रभु को दान देने के लिये पूर्ति करने लगे । सांवत्सरिक दान देने के पश्चात् चौसठ इंद्रो ने प्रभु का विधिवत् दीक्षाभिषेक किया बाद में अंगराग लगाकर, अद्वितिय वस्त्र और आभूषण धारण करके जगत्पति स्वार्थसिद्धि करने के लिये अर्थसिद्ध नामकी शिबिका पर आरुढ़ हुए । प्रथम मनुष्यो ने और बाद में देवताओं ने उस शिबिका उठाली । शिबिका पर बैठकर प्रभु सहस्राम्र वन में गये । वहाँ उन्होंने अपने आभूषण वगैरेह सर्व उतारकर छोड़ दिया । इसलिए इंद्र ने उनके कंधे पर देवदूष्य वस्त्र डाला । माघ मास की शुक्ल द्वादशी को अभिचि नक्षत्र में दिन के पिछले भाग में प्रभु ने छठ तप कर पंचमुष्टि लोच किया । शक्रेंद्र प्रभु के केश को अपने उत्तरीय वस्त्र के छोर पर लेकर क्षणभर में क्षीरसागर में प्रवाहित कर के वापस लौट आया । बाद में (इंद्र ने) सुर-असुर और मनुष्य संबंधी कोलाहल को शांत करवाया, इसलिए प्रभु ने सामायिक सूत्र का पठन करके चारित्र का स्वीकार किया । उसी समय मनःपर्यव नाम का चौथा ज्ञान प्रभु को उत्पन्न हुआ । उस समय क्षणभर नारीकीय जीवों को भी सुख हुआ । शरीर के मैल की तरह राज्य छोड़कर दूसरे एक हजार राजाओं ने भी प्रभु के साथ ही मोह का नाश करने के लिये प्रव्रज्या ग्रहण करके । बाद में प्रवासी पुरुष वर्षाकृत में आपने स्थान पर चले जाते हैं उसी तरह शक्र वगैरेह सभी इंद्र परिवार सहित प्रभु को नमस्कार करके अपने-अपने स्थानों पर गये ।

दूसरे दिन अयोध्या नगरी के राजा इंद्रदत्त के घर पर प्रभु ने परमान्न (क्षीर) से उपवास छोड़ा । उस समय देवताओं ने द्रव्य की वृष्टि, पुष्पकी वृष्टि सुगंधि जल की वृष्टि, आकाश में दुंदुभि का नाद और वस्त्रों का उत्क्षेप किया । हर्ष के परवश हुए सुर-असुर और मनुष्यों ने 'अहो दान, अहो दान, अहो सुदान' ऐसी घोषणाएँ की वहाँ, से श्री अभिनंदन प्रभु ने दूसरे स्थान पर विहार किया । प्रभु के चरणस्थान में इंद्रदत्त ने पूजन करने की इच्छा से एक रत्नपीठ बनवाई । प्रभु ने छद्मस्थ से परिसहो को सहन करके अष्टारह वर्ष तक विविध अभिग्रहों को धारण करते करते विहार किया ।

इस प्रकार विहार करते हुए प्रभु एकबार सहस्राब्द वन में आये। वहाँ पर छठ तप करके रायण के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके रहे। ध्यान में रहते शुक्लध्यान के दुसरे पाये के अन्त में घातीकर्म का क्षय होने से पौष मास की शुक्ला चतुर्दशी के अभिचि नक्षत्र का चंद्र होने पर प्रभु ने निर्मल केवलज्ञान प्रगट हुआ जो ज्ञान क्षणभर नारकी जीवों को भी पीडा का नाश करने में औषधरूप हो गया। अवधिज्ञान द्वारा प्रभुको केवलज्ञान हो जाने की खबर जानकर चौसठ इंद्र वहां आकर एक योजन अनुसार प्रदेश में समवसरण रचा। देवताओं द्वारा संचार किये हुए सुवर्णकमल पर चरण को धारण करते हुए प्रभु पूर्व द्वार से उसमें प्रवेश किया और समवसरण के मध्य में रहे दो कोस और दोसो धनुष्य (प्रभु के शरीर से बारह गुना) उंचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके 'तीर्थाय नमः' ऐसा कहते हुए प्रभुने देवच्छंद के मध्य भाग में रहे पूर्वाभिमुख सिंहासन को अलंकृत किया। बाद में देव, असुर और मनुष्य सहित चतुर्विध संघ अपने-अपने योग्य द्वार से प्रवेश करके योग्य स्थान पर बैठे। उसी समय भगवान को नमस्कार करके, अंजलि जोड़े शक्रेंद्र रोमांचित शरीर से निम्नलिखित अनुसार प्रभु की स्तुति करने लगे।

“हे भगवान् ! आपने हमेशा कष्ट करके ऐसा मन, वचन और काया की चेष्टा का संहार करके शांत मनरूपी शल्य को अलग किया है। हे नाथ! आपकी इंद्रियां संमत भी नहीं हैं वैसे उच्छृंखल भी नहीं हैं।” वैसे सौम्य प्रकार से प्रतिपादन करके आपने इंद्रियों पर विजय प्राप्त की है। योग के जो आठ अंग कहे गये हैं वे तो सिर्फ प्रपंच मात्र हैं, नहीं तो वह योग बाल्यपन से आरंभ करके आपकी साम्यता को किस प्रकार प्राप्त होगी? हे स्वमिन् ! लंबे समय से साथ में रहनेवाले विषयो में आपको विराग है और अदृष्ट ऐसे योग में सात्त्विक है, वह हमें तो अलौकिक लगता है, जैसा आप अपकार करनेवाले के ऊपर राग करते हो ऐसा दुसरे उपकार करनेवाले पर राग नहीं करते हैं। अहो ! आपका सब अलौकिक है। हे प्रभु ! आपने हिंसक पुरुषों पर उपकार किया और जो आश्रित थे उनकी उपेक्षा की ऐसा आपका अनुचित चरित्र का कोन अनुकरण कर सकता है? हे भगवान् परम समाधि में आप आपकी आत्मा को इस तरह जोड़ दिया है कि जिससे 'मैं सुखी हूं या दुःखी हूं अथवा सुखी या दुःखी नहीं हूं' ऐसा भी आपके मन भी नहीं आता है। जिसमें ध्याता, ध्यान और ध्येय यह त्रिपुटी अेकात्मता को प्राप्त है ऐसे आपके योग का माहात्म्य पर दुसरो को श्रद्धा कैसे नहीं आयेगी?’

इस प्रकार स्तुति करके इंद्र ने विश्राम लिया, इसलिये प्रभु ने अेक योजन तक की फैलती गंभीर गिरा से देशना देना आरंभ किया —

“यह संसार एक विपत्तियों की खदान है। इसमें गिरते मनुष्य को माता, पिता, मित्र, बंधु या दुसरा कोई भी शरणरूप होते नहीं हैं। इंद्र और उपेन्द्रादि जैसे भी जो मृत्यु की चपेट में आते हैं वे मृत्यु को भी पीडा करनेवाला ऐसा कौनसा पुरुष शरणेच्छु जनो को शरण करने लायक है? अहा ! इस संसार में माता, पिता, बहन, भाई और पुत्र देखते रहते हैं और रक्षण बिना के इस जीव को उसके कर्म यमराज के गृह में खींच ले जाते हैं। मूढ बुद्धिवाले पुरुष अपने कर्मों से मृत्यु को प्राप्त करते ऐसे अपने

स्वजन को देखकर शोक करते हैं, लेकिन वे 'अपनी आत्मा को भी कर्म वैसे ही ले जायेंगे' ऐसा शोक करते नहीं। बड़े भयानक जंगल में मृग के बच्चे की तरह दुःस्वरूपी दावानल की प्रज्वलित ज्वालाओं से विकराज ऐसे इस संसार में प्राणी को कोई भी शरणभूत नहीं है। अष्टांग आयुर्वेद से, संजिवनी औषधियों से और मृत्युंजयादिक मंत्रों द्वारा भी मृत्यु का रक्षण होता नहीं है। खड्ग के पिंजरे के मध्यभाग में रहे हुए और चतुरंग सेना से घिरे हुए बड़े राजाओं को भी यमराज के किंकर गरीब की तरह हठ से खींच कर ले जाते हैं। जिस तरह पशु मृत्यु से बचने का उपाय जानते नहीं हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी नहीं जानते हैं, यह कैसी मूढ़ता है? जो खड्ग मात्र के साधन से पृथ्वी को निष्कण्टक करते हैं, वे भी यमराज की भ्रुकुटि के बल से भयभीत होकर मुँह में उंगलियाँ डालते हैं, यह कैसी विचित्रता है! पाप रहित मुनिओं के खड्ग की धार जैसे व्रत भी मृत्यु का उपाय नहीं कर सकते हैं। अहा! शरण बिना का, राजा बिना का, नायक बिना का और उपाय बिना का यह जगत यमराज रूपी राक्षस से निगल जाता है! जो धर्मरूप उपाय है वह भी मृत्यु के सामने नहीं चलता है। फिर भी वह उपाय शुभ गति देनेवाला माना जाता है, इसलिये प्रव्रज्या (दीक्षा) रूपी उपाय ग्रहण करके जिसमें अक्षय सुख है ऐसे मोक्ष के लिये ही प्रयत्न करना योग्य है।

ऐसी प्रभु की देशना से अनेक नरनारीयों ने तत्काल दीक्षा ली और वज्रनाभ वगैरह एक सौ सोलह गणधर हुए। उन्हें विधिअनुसार अनुयोग और गण की अनुज्ञा देकर प्रभुने शिक्षारूपी धर्मदेशना दी। बादमें प्रभुने उत्पाद, व्यय और ध्रुवमय त्रिपदी उन्हें कहकर बताई। उस त्रिपदी के अनुसार उन्होंने द्वादशांगी की रचना की। प्रथम पौरुषी पूर्ण हुई इसलिए प्रभु ने देशना समाप्त की। बाद में राजाने बलि मंगवाई उसे उड़ाई, इसलिए देवता, राजा और मनुष्य अनुक्रम में ले गये। बाद में जगत्पति वहाँ से उठकर बिच वाले दुर्ग में आकर ईशान दिशा में रहे हुए देवछंद पर विराजमान हो गये। बाद में प्रभु के चरणपीठ पर बैठकर वज्रनाभ गणधर जिसे वे लोग केवली जैसा जाना था और जो श्रुतकेवली थे उन्होंने देशना दी जब दुसरी पौरुषी पूर्ण हुई तब देशना समाप्त की। उस समय देवता इत्यादि सभी प्रभु को नमस्कार करके अपने-अपने स्थानों पर गये।

उनके तीर्थ में शासनदेवता में श्याम कांतिवाला, हाथी के वाहन पर बैठनेवाला, दो दक्षिण भुजाओं में बिजोरु और अक्षसूत्र धारण करनेवाला और वाम भुजाओं में नकुल और अंकुश को रखनेवाला यक्षेश्वर नामका यक्ष हुआ जो प्रभु की सेवा में हमेशा तत्पर रहता था, और श्याम वर्णवाली, कमल के आसन पर बैठनेवाली दो दक्षिण भुजा में वरद और पाश को धारण करनेवाली, दो वाम भुजा में नाग और अंकुश धारण करनेवाली कालिका नामका नित्य प्रभु के पास रहनेवाली शासनदेवता हुई चोत्रीश संअतिशयो से युक्त अंशे प्रभु ग्राम, आकर और नगर वगैरह में प्राणीयों को बोध करते हुए विहार करने लगे। तीन लाख साधु, छे लाख तीस हजार साध्वी, नौ हजार आठसौ अवधिज्ञानी, एक हजार पांचसौ चौदपूर्वी, इग्यारह हजार छैसो पचास मनःपर्यवज्ञानी, चौदह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार

वैक्रियलब्धिवाले, और इग्यारह हजार वादलब्धिवाले, दो लाख अठ्ठासी हजार श्रावक और पाच लाख सताईस हजार श्राविकाएँ-इतना बड़ा परिवार प्रभु ने पृथ्वी पर विहार करते समय हुआ। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद आठ पूर्वांग और अठ्ठारह साल में कम लाख पूर्व व्यतीत हुए सते अपना निर्वाणकाल समीप जानकर प्रभु समेतशिखर पर्वत पर आगमन किया। वहाँ पर इंद्र सहित देवता और राजाओं के मान्य प्रभु ने एक हजार मुनियों के साथ एक मास का अनशन ग्रहण किया। बाद में भवोपग्राही कर्म का भेद करनेवाले ऐसे शैलेशी ध्यान पर आरुढ़ हो कर अनंत चतुष्क को सिद्ध करके भगवान अभिनंदन प्रभु बैशाख मास की शुक्ल अष्टमी को चंद्र पुष्यनक्षत्र में आने पर एक सहस्र मुनियों के संग मोक्ष में गये हुए।

कुमार अवस्था में साडे बारह लाख पूर्व, राजवी पद पर आठ पूर्वांग सहित साडे छत्तीस लाख पूर्व और दीक्षा में आठ पूर्वांग उणा कम एक लाख पूर्व -इस तरह पचास लाख पूर्व का आयुष्य प्रभु ने निर्गमन किया। श्री संभवनाथ स्वामी के निर्वाण के बाद दस लाख करोड़ सागरोपम बितने पर अभिनंदन स्वामी निर्वाणपद को प्राप्त हुए।

श्री अभिनंदन स्वामी ने काल करने के बाद सुर-असुरों ने उनका और दूसरे मुनिओं का अंगसंस्कार किया और प्रभु की दाढ़ और अस्थियों का पूजन करने के लिये ले गये। बाद में वे नंदीश्वर द्वीप में जाकर शाश्वत अर्हत के बिंबो का अष्टाह्निक उत्सव करके अपने-अपने देवलोक में गये और निर्वाण स्थान पर आये हुए राजा अपनी-अपनी राजधानियों में लौट गये।

इत्याचार्य श्री हेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि
श्री अभिनंदनस्वामी चरितवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीय सर्ग

श्री सुमतिनाथ चरित्र

इस अपार संसाररूपी महासागर को उतारने में सेतु (मर्यादा) रूप और उत्कृष्ट ज्ञान के हेतु ऐसे श्री सुमतिनाथ भगवान को मेरा नमस्कार करके, भव्य प्राणीयो के कल्याणरूपी वृक्ष को पालने में नीक के जल जैसा वह प्रभु का चरित्र उनके प्रसादसे कह जायेगा ।

यह जंबूद्वीप में काफी ऋद्धि से पूर्ण पूर्वविदेह में तिलकरूप पुष्कलावती नामका अेक विजय है । उसमें शंखपुर नामका एक सुंदर नगर था । उसमें बड़े चैत्य और महलो की विचित्र ध्वजाओ से पूरा आकाश व्याप्त रहता था । उस नगर में विजय करनार विजयसेन नामका राजा राज्य करता था । भुजवीर्य से शोभायमान वह राजा की सेना सिर्फ शोभा के लिये थी । सभी अंतःपुर की स्त्रियों में आभूषणरूपी सुदर्शना नाम की एक प्रिया (रानी) थी । वह चंद्र की लेखा की तरह हमेशा सुदर्शना (सुंदर दर्शन है जिसका) थी । रति के साथ कामदेव की तरह विस्तृत वैभवशाली विजयसेन राजा उसके साथ क्रीडा करके अपना समय व्यतीत कर रहा था ।

एक समय किसी उत्सव के दिन आने पर नगरके सर्व समृद्धि एवं परिवार सहित उद्यान में क्रीडा करने गये । उस समय मानो मूर्तिमान राज्यलक्ष्मी हो वैसी सुदर्शना राणी भी छत्रचामर से अलंकृत ऐसी अेक हथनी पर बैठकर वह उद्यान में आई । वह मानो दिक्कन्याए हो ऐसी अमूल्य आभूषणों की शोभा को धारण करनेवाली आठ स्त्रियों के समूह में कोई एक स्त्रि उसे दिखाई दि । अप्सराए जैसे इंद्राणी की उपासना करती है उसी तरह वह आठ वधुओ द्वारा उपासना की हुई उस सुंदर स्त्री को देखकर सुदर्शना अपने चित्त में परम दिस्मय हो गई । 'यह स्त्रि कौन है ? उसके पासवाली आठ बालाए कौन हैं ?' यह जानने के लिये देवी सुदर्शना ने अपने एक सेवक को जाँच करने की आज्ञा दि । वहाँ जाकर पूछ के आकर वह देवी सुदर्शना से कहने लगा-हे महारानी ! वह स्त्रि इस नगर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठी नंदिसेणकी सुलक्षणा नामकी स्त्रि है । उस सुलक्षणा के दो पुत्र हैं, उन दो पुत्रों की चार-चार स्त्रियां हैं । वह आठ स्त्रियां दासी की तरह अपनी सास की सेवा करने यहाँ साथ में आई हैं ।' ऐसा सुनकर सुदर्शना अपने मन में सोचने लगी कि 'अहा ! ये शोठानी धन्य हैं जो अपने पुत्रों का मुख देखती हैं और मानो नागकन्या हो वैसी स्वरूपवान और कुलवान आठ पुत्रवधुएँ जिसकी सेवा में सर्वदा रहती हैं । मेरे जैसी पुण्यरहित स्त्रि को धिक्कार है जिसे कोई भी पुत्र या पुत्रवधू कुछ भी नहीं है । फिरभी मैं अपने पति के एक हृदयरूप हूँ फिर भी मेरा जीना व्यर्थ है । इधर-उधर उपर नीचे हाथों को उछालता हुआ, चारों ओर धूल से मिश्रित हुआ पुत्र वृक्ष पर वानर की तरह कलाबाजीयों खाता हुआ पुण्यवंती स्त्रियों के उत्संग बीच क्रीडा कर रहा है बिना फल की वृक्ष लताओं की तरह और बिना जल के पर्वत की तरह बिना पुत्र के स्त्रि शोक करने और निंदा करने के लायक है । जिन स्त्रियों को पुत्र के जन्म, नाम, चौल और विवाहादि संस्कार महोत्सवों की प्राप्ति नहीं होती है उन्हें दुसरे उत्सवों से क्या काम के है ?'



श्री साचादेवसुमतिनाथ भगवान
मातर तीर्थ, गुजरात



श्री साचादेवसुमतिनाथ भगवान
तलाजा तीर्थ, गुजरात



श्री साचादेवसुमतिनाथ भगवान
मीरांबीका रोड तीर्थ, अहमदाबाद, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

रुषभदेव जैन श्वे. मू. संघ, मिरांबीका रोड

गाम : नारणपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१३, गुजरात

इस प्रकार सोचती सुदर्शना देवी हिम ते पिडित पद्मिनी की तरह मुरझाई हुई मुखवाली और विषादयुक्त सहित अपने भवन में लौट गई। अपनी प्रिय सखियों को विदा कर मानो बिमार सी हो निःश्वास छोड़ती हुई अपनी शैया पर लेट गई वहाँ पर वह कुछ भी बोलती नहीं थी। भोजन नहीं करती, कोई शृंगार भी नहीं करती, केवल रत्न की पुतली की तरह शून्य मन से पड़ी थी। परिवार लोगो से ऐसी स्थिति को सुनकर, महाराज विजयसेन स्वयं वहाँ आकर प्रेमपूर्वक कोमल शब्दों से कहने लगे- हे देवी ! मैं स्वयं तुम्हारे आधीन हूँ फिर भी आपका कौनसा मनोरथ अपूर्ण है जिससे आप मरुस्थल में पड़ी हंसनी की तरह फड़फड़ा रही है ? क्या तुम्हारे अंतर की कोई पिडा है अथवा कोई नई व्याधि हुई है ? या किसीने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है ? या आपने कोई दुःखपन (दुस्वप्न) आपने देखा है ? या कोई बाहर या भीतर अपशकुन हुआ है ? तुम्हें कोई भी खेद हुआ हो तो उसका कारण कह दो। मेरे पास तुम्हें कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए।' सुदर्शना निःश्वास छोड़कर गदगद स्वर से कहने लगी-हे प्रिय नाथ ! आपकी आज्ञानुसार किसीने भी मेरी आज्ञा को खंडित नहीं किया है, उसी प्रकार मुझे कोई व्याधि, पीडा, दुःखपन अथवा अपशकुन या कोई भी मुझे पिडित नहीं कर रहा है, लेकिन एक बात मुझे बहुत पिडा दे रही है वह यह है कि जब तक हमें पुत्र प्राप्ति नहीं होती है, पुत्रका हम मुख नहीं देखते हैं तब तक यह राज्य संपत्ति, विषयसुख, हमारी प्रीति यह सब व्यर्थ है। जैसे निर्धन पुरुष लक्ष्मीवान की लक्ष्मी को देखकर उसकी इच्छा रखता है वैसे मैं पुत्रवानो के पुत्र को देखकर मैं भी उसी प्रकार की इच्छा रखती हूँ। यह कितने बड़े खेद की बात है यदि हम मनरूपी तराजु में एक तरफ सभी सुख और एक तरफ पुत्र प्राप्ति का सुख रखकर तौलेगे तो उसमें पुत्रप्राप्ति का पलड़ा भारी होगा। वनमें पुत्र परिवार के साथ घूमते मृगादिक पशु अच्छे दिखाई देंगे लेकिन पुत्रविहीन हम धिक्कार के पात्र हैं। कारण हमारा भाग्य उनसे कम है'।

बाद में राजाने कहा- 'हे देवी ! आप शांत हो जाइये, देवताओं की आराधना करके मैं तुम्हारा मनोरथ थोड़े समय में पूर्ण करूँगा। जो पराक्रम से साध्य नहीं है, जो बुद्धि से दिखाई नहीं देता है, जो मंत्रों का विषय नहीं है, तंत्रों से दूर है और दुसरे उपायों से भी दुर्लभ है वह पुरुषार्थ से प्रसन्न करके देवी-देवताओं से प्राप्त कर सकते हैं। हे मानिनी ! आपका यह मनोरथ सिद्ध हो गया है ऐसा ही समझे अब आप शोक क्यों कर रही हो ? मैं पुत्रप्राप्ति के लिये अपनी कुलदेवी की आराधना में बैठूँगा।

इस तरह रानी को आश्वासन और धीरज देकर विजयसेन राजा स्नान करके, पवित्र वस्त्रों को धारण करके अपने भवन से निकलकर कुलदेवी के स्थान पर गया। वहाँ पर कुलदेवी की पूजा अर्चना करने के पश्चात् पुत्रलाभ हो वहाँ तक अन्नपान का त्याग कर दृढ़ निश्चय करके बैठे। जब छट्ठा उपवास हुआ तब कुलदेवी प्रसन्न हुई और राजा को कहा वरदान मांग अंशे कहा राजा कुलदेवी को नमस्कार करके बोले- 'हे कुलदेवी माते ! आप प्रसन्न होकर सर्व पुरुषों में श्रेष्ठ उत्कृष्ट पुत्र का लाभ हमें दो' यह सुनकर 'देवलोक से आकाशवाणी हुई कोई उत्तम देव आपका पुत्र होगा।' ऐसा वरदान देकर कुलदेवी तुरंत अंतर्ध्यान हो गई। राजाने कुलदेवी के वरदान वाली सारी बात अपनी प्रिय रानी को सुनाई, उससे मेघ गर्जना से बगुलेकी तरह उस कहानी को सुनकर रानी बहुत खुश

हुई, दुसरे दिन मासिक धर्म में आई सुदर्शना देवी के कोख में देवलोक से कोई महर्द्धिक देवता उत्पन्न हुआ। उस समय सोई हुई महादेवी ने केशर के जैसा लाल रंगवाला एक किशोर केसरी सिंह को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। तुरंत भयभीत हुई महारानी शय्या पर से उठकर अपने मुख में सिंह के प्रवेश का वृत्तान्त राजा को सुनाया। यह सुनकर राजन् ने कहा- 'हे देवी ! इस स्वप्न ने कुलदेवी के वरदान को सत्य किया है (वरदान रूपी वृक्ष का यह फल प्रकाशित किया) सिंह के जैसा पराक्रमी बलवान पुत्र आपकी कोख से जन्म लेगा' ऐसा स्वप्न के बारे में जानकर और सुनकर महारानी बहुत खुश हुई शेष रात्रि शुभ कथाएँ करते करते दोनों ने बिताई।

उत्तम सरिता (नदी) के जल में सुवर्णक कमल की भांति देवी के कोख में गर्भ बढ़ने लगा। एक समय देवी को उत्पन्न अनुभूति से वे महाराज से कहने लगी- 'मैं सभी प्राणीयों को अभय देना चाहती हूँ, हमारे नगर में ऐसी घोषणा करना चाहती हूँ और सभी जिनालयो में अष्टाह्निका उत्सव करवाने की इच्छा रखती हूँ। तब राजाने कहा- 'हे देवी ! गर्भ के प्रभाव से कुलदेवी के वरदान और स्वप्न को सार्थक करनेवाली आपकी अनुभूति है। उत्तम इच्छावाले (!) गर्भ के प्रभाव से ही आपकी ऐसी इच्छा हुई है, कारण प्रतिमा का प्रभाव अधिष्ठायक देव को उचित ही होता है'। इस प्रकार कहकर राजाने भयभीत लोगों को अभयदान दिया, पट बजाकर हमारी घोषणाएँ प्रसारित की। अष्टप्रकार की पूजा से तथा दिव्य संगीत से सभी जिनालयो में अष्टाह्निका उत्सव करवाया।

वह अनुभूति (संकल्प) पूर्ण होने पर पुर्णचंद्र के जैसी उज्ज्वल मुखवाली देवी प्रसन्न हुई और समय आने पर लता समय आने पर फल देती है उसी प्रकार एक पुत्ररत्न को उन्होंने जन्म दिया। उस समय सभी राजाओं में शिरोमणि विजयसेन राजाने रत्नचिंतामणि की तरह उद्घोषणा करवाके याचकों को उनकी इच्छानुसार दान देने लगे और हृदयरूपी समुद्र के समान बड़ा महोत्सव करवाया। बाद में उसी तरह अपने इष्टजनों की तरह नगरवासीयों ने भी महोत्सव किया। बाद में देवी के स्वप्न अनुसार महाराजने पुत्र का नाम पुरुषसिंह ऐसा मनोहर नामकरण किया। अनुक्रम से वृद्धि पाकर विशाल भुजाओं वाला वह कुमार रूप से कला से और कुल से अपनी जैसी श्रेष्ठ आठ कन्याओं से विवाह किया। अप्सराओं के साथ देव की तरह वह उनके साथ कुमार पल-पल पर क्रीड़ा करता विषयसुख भोगने लगा।

एक समय मानो साक्षात् वसंत हो या मानो साक्षात् वसंत का मित्र कामदेव हो ऐसा वह कुमार स्वेच्छा से क्रीड़ा करने उद्यान में गया। वहाँ रूप से और शम से आनंद का जय-जयकार करनेवाला ऐसा विनयनंदन नाम के सूरि को समवरसेला उसने देखा। उन्हें देखते ही मानो अमृत का पान किया हो उस तरह कुमार की आंखें, हृदय और दूसरे अंग भी पूर्ण विकसित हो गये। क्षणभर में उन्हें देखकर राजकुमार सोचने लगे 'जैसे वेश्या के पास रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करना है, चोर के साथ रहकर धनको छिपाना, युवा बिल्ली के साथ रहकर अपनी अमृत की सुरक्षा को और डाकीनी की पास में रहकर अपनी चालाकी करना मुश्किल है संभालना मुश्किल काम है। इसी तरह इस मुनि का अनुपम रूप और यौवनमय देखते हुए विषयवृत्ति रूप उन्माद का हेतु उदय होता है। फिर भी ऐसा कठिन व्रत

का धारण करना दिखता है वैसा कठिन भी है। हेमंतऋतु में हिम, ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गर्मी और वर्षा ऋतु में सनसनता तेज पवन सहन हो सकता है लेकिन यौवनकाल में कामदेव का उपद्रव किसी भी प्रकार से सहन नहीं हो सकता है। फिर भी ऐसे कामदेव को जितनेवाले मुनि आज भी पुण्य के बंधन से बंधे पुण्य से भाग्य योग से मेरे देखने में आया है जो माता, पिता अथवा गुरु जैसी मुझ में प्रित उत्पन्न करती है।' इस प्रकार सोचकर राजकुमार तुरंत उनके पास में आया, हृदय को आनंद देनेवाले विनयनंदन मुनि को उसने वंदना की। मुनि ने कल्याणरूपी अंकुर का उत्पन्न करने में मेघवृष्टि जैसी धर्मलाभ आशिष देकर राजपुत्र को आनंदित किया। फिर कुमार नमस्कार करके बोला-“हे मुनिराज ! नवयुवा होने पर भी आप ने ऐसा व्रत धारण किया है यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है। इस अवस्था में यत्नपूर्वक विषयाभिमुख हुए हो, उस विषय के परिणाम और दुष्परिणाम के बारे में मैं जानता हूँ। इस संसार में मैं भी किंचित मात्र सार देखता नहीं हूँ परंतु वैसे संसार का परित्याग करने के लिये आप जैसे कोई अलग (विरल) पुरुष वही तैयार होते हैं। हे स्वामिन् ! आप इस संसार सागर में तैरने का उपाय मुझे दिखाइये और पथदर्शक की तरह आप मुझे आपके मार्ग पर ले चले। हे महामुनि कंकड की खोज में पर्वत पर से माणिक मिल जाते हैं, उसी प्रकार आप खेलने आये और मुझे मिल गये।”

इस प्रकार जब राजकुमार ने कहा। तब कामदेव के शत्रु जैसे वे महामुनि नये मेघ की भाँति गंभीर मुद्रा से इस प्रकार कहा-“जैसे मांत्रिक पुरुष को सभी भूत पिशाच शांति के लिये होते हैं। वैसा वैराग्यवान पुरुष को यौवन ऐश्वर्य रूपादिक जै अभिमान के स्थान है वह शांति के लिये होता है श्री भगवान संसाररूपी सागर को तैरने के लिये उत्तम नाव जैसा यतिधर्म अपनाने के लिये कहा है। वह यतिधर्म याने संयम, सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप, क्षमा, मृदुता, आर्जव और मुक्ति यह दस प्रकार का है। प्राणातिपात निवृत्ति वह है संयम; असत्य वचनो का परिहार करना वह अमृषावाद; अदत्तादान (चोरी) छोड़कर संयम की शुद्धि रखना वह है शौच; नव गुप्ति सहित काम इंद्रियो का संयम करना वह है ब्रह्मचर्य; शरीर में भी ममता रहितपन वह अकिंचनता; अनशन, उनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायाकलेश और संलीनता-ये छे प्रकार बाह्यतप और प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, स्वाध्याय, विनय, कायोत्सर्ग और शुभ ध्यान ये छे प्रकार के अभ्यंतर तप ये दोनों मिलकर बारह प्रकार के तप, शक्ति या अशक्ति फिर भी क्रोध का निग्रह (छोड़कर) करके सहन करना और क्षमा; मान का जय करना मद के दोष का त्याग करना उसे मृदुता; माया को जीत कर मन, वचन, काया से वक्रता छोड़कर देनी आर्जव और बाह्य तथा अभ्यंतर वस्तुओं में तृष्णा का विच्छेद वह मुक्ति, यह दस प्रकारका धर्म संसार समुद्र में से पार लगने में समर्थ है और वह निर्दोष धर्म चिंतामणि रत्न की तरह इस जगत् में पुण्य से ही प्राप्त होता है।”

इस प्रकार से मुनिराज की वाणी सुनकर राजकुमार पुरुषसिंह विनयपूर्वक इस प्रकार बोले-“हे प्रभु ! निर्धन को धन का भंडार बताना उसी तरह आपने मुझे अच्छी तरह गृहवास बताया है, लेकिन इस धर्म का है गृहवास में संसाररूपी वृक्ष का उत्तम श्रोत है लेकिन हे भगवंत ! इस संसाररूपी दुरगम निवास से मैं तो उद्वेग पाया हूँ इसलिये मुझे धर्मराज की राजधानीरूपी दीक्षा दे।” राजपुत्र के

वचन सुनकर विनयनंदन सूरि बोले-“हे राजकुमार ! आपका यह मनोरथ बहुत ही श्रेष्ठ और पुण्य की संपत्ति को जोड़नेवाला है । बड़ी बुद्धिवाला, विवेकी और दृढ़ निश्चय रखनेवाले हे महासत्य ! आप व्रत के भार को धारण करने योग्य है । इसलिये हम आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे परंतु आप नगर में जाकर पुत्रवत्सल माता पिता की आज्ञा लेकर आएं क्योंकि जगत में प्राणी का पहला गुरु मातापिता होते हैं ।” मुनि के ऐसे वचन सुनकर पुरुषसिंह नगर में गया, मातापिता के पास जाकर हाथ जोड़कर दीक्षा लेने की आज्ञा के लिये जानकारी दी । पुत्र के ऐसे वचन सुनकर उन्होंने कहा-“हे वत्स ! इस समय तुम्हें दीक्षा लेने का योग्य समय नहीं है । कारण पंच महाव्रतों के पालन का भार आप सह नहीं सकोगे । संयमी पुरुष को अपने शरीर से ममता का लगाव छोड़कर और रात्रि भोजन का त्याग करके, बियालीस दोषों से रहित ऐसे पिंड का भोजन करना पड़ता है । नित्य उद्योगी कर्म, ममता से रहित; परिग्रह से वर्जित और गुण में तत्पर ऐसे को मुनि पांच समिति और तीन गुप्ति हमेशा धारण करनी पड़ती है । इसमें भी विधिपूर्वक मासादिक प्रतिमा तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अनुकरण करके अनेक प्रकार के अभिग्रह करने पड़ते हैं । यावज्जिवित स्नान का त्याग करना, पृथ्वी पर शयन करना, केशों का लोच करना (सिर के बाल हाथों से खिंचकर निकालना) शरीर का असत्कार करना, गुरुकुल में हमेशा निवास परिसर और उपसर्गों की अनुमोदना सहित सहनशीलता और अठारह हजार शीलके अंगों का अवधारण, इत्यादि सभी नियमों को दीक्षा लेनेवालेको पालन करना पड़ता है । हे सुकुमार कुमार ! इस प्रकार के नियमों का पालन करना लोहे के चने चबाने के समान है, अपार समुद्र को दोनों हाथों से तैरने के बराबर है । खड्ग की धार पर पैरों से चलने के समान है । अग्नि का ज्वालाओं का पान करने के बराबर है । तराजु पर मेरुपर्वत तौलने के बराबर है , बड़ी नदी के बहावविरुद्ध दिशा में तैरने के बराबर है, अकेला व्यक्ति बलवान सेना से विजय प्राप्त करने के बराबर है, फिरते हुए चक्र पर वेध करना मुश्किल कार्य है । ग्रहण की हुई दीक्षा का आजीवन पालन करना यही एक बड़ा सत्व है वही अगाध धैर्य, वही बड़ी बुद्धि और वही बड़ा बल है ।”

इस प्रकार अपने मातापिता के वचन सुनकर राजकुमार प्रसन्न होकर बोला-“हे पूज्यपाद ! आप कह रहे हैं वह बराबर है । दीक्षा का पालन करना बड़ा कठिन कार्य है, लेकिन मैं आपको जानकारी देता हूँ कि संसार में रहकर जो कष्ट उत्पन्न होते हैं उसके आगे दीक्षा का कष्ट अकेल सौ कष्टों का एक भाग भी नहीं है । वचन से कुछ कह नहीं सकते श्रवण से कुछ सुन नहीं सकते, ऐसी प्रत्यक्ष नरक की वेदना दूर रही लेकिन इन लोगों के बीच निरपराधीओं का ताड़न जाति बंधन, छेदन और तर्जनादि का निर्देश असहनीय पिडाएँ; मनुष्य को कोढ़ी रोग की पिडा, कैद, अंग को कुतरना, त्वचा को उखाड़ना, शरीर को जला देना, मस्तक को काट देना आदि वेदनाएँ, स्वर्गवासी देवताओं के प्रियजनो का वियोग, शत्रु से पराभव और च्यवन का ज्ञान से होने वाला असह्य दुःख देखने में आता है ।” राजकुमार ने अपने मातापिता को इस प्रकार कहा, तब पुत्र को शाबाशी देते हुए खुश होकर उन्होंने उसे व्रत लेनेकी आज्ञा दी । पिता ने जिसका हर्ष से निष्क्रमणमहोत्सव किया है ऐसे राजपुत्र फल की प्राप्ति के लिये जैसे वनस्पति के पास जाता है ठीक उसी प्रकार दीक्षा के लिये राजकुमार मुनि के पास आया । वहाँ

सामायिक उच्चारण करके पुरुषसिंह कुमार ने विनयनंदन मुनि के चरणकमल के पास बैठकर भवसागर तैरने के लिये नाविक के रूप में दीक्षा ग्रहण की। प्रमाद रहित सभी प्राणियों की रक्षा करते हुए उस राजकुमार ने राज्य की तरह दीक्षा का दृढ़ होकर पालन किया। उसके साथ बीस स्थानको में से कुछ स्थानों की आराधन करके उसने उज्ज्वल ऐसा तीर्थकर नामकर्म उपार्जित किया। बहुत समय तक विचरण करके अंत में अनशन करके काल को प्राप्त करके वैजयंतविमान में महर्द्धिक देवता बना।

इस जंबुद्विप में भरतक्षेत्र के भीतर बड़ी संपत्तिओं के स्थान स्वरूप विनीता नामकी नगरी है। मानो दूसरे द्विपोसे चंद्रमा के बिंब लाकर रचना की हो वैसे रूपा धातु के बुर्ज से नगरी के आस-पास एक बड़ा दुर्ग शोभायमान हो रहा था। अनेक रत्नों के भंडार-समान उस नगरी में राजाओं ने सुरक्षा के लिये रूपा धातु का दुर्ग बनाया था। मानो वह शेषनाग कुंडलाकार होकर उसकी रक्षा करता हो ऐसा भास होता था। वहाँ पर चुने से निर्मित महलो के रत्नजडित छज्जे पर गिरने वाले चंद्र के प्रतिबिंब को घर की बिल्लियाँ दही का पिंड समझकर उसे चाटती थी। वहाँ पर खेल रहे शुकपक्षी घर-घर 'अर्हत देव और साधु गुरु' ऐसा वह पठन करते थे, और उसे ही सुनते थे। हर घर में जलाने में आनेवाले अगर धूप में से निकलती धुएँ की लहरे आकाश में तमाल वृक्ष के वन के दृश्य विस्तार फैला रही थी जल के रहट में से उछलते जल बिंदुओं से आच्छादित वहाँ के उद्यानों के भीतर मानो भयभीत होकर ठंडी से डरते हो वैसे सूर्यकिरण कदापि उनके भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। उस नगरी में इक्ष्वाकु वंश में तिलकरूप मेघनामक राजा था। वह महामेघ की तरह सभी जगत को आनंद देता था। उस राजा की राज्यलक्ष्मी याचकों को कृतार्थ करने के लिये सदैव याचकों में वितरित की जाती थी। फिर भी नाली के जल की तरह उसमें अधिक वृद्धि होती थी। दूसरे राजा आकर पांच अंगों से पृथ्वी को स्पर्श करके मेघराजा के सामने झुकते थे और वस्त्र अलंकार तथा रत्नादिक उपहारों से उनकी अर्चना करते थे। मध्याह्न का सूर्य जिस प्रकार देह की छाया को सिकुड़ता है उस प्रकार उसका फैलता हुआ प्रताप शत्रुओं की लक्ष्मी का संकोच करता था। बड़ी समृद्धि से, बड़ी शक्ति से बड़े प्रभाव से चौंसठ इंद्रों के उपरांत मानो पैंसठवा इंद्र हो ऐसा वह प्रतापी राजा दिखाई पड़ता था।

उस राजा को मांगलिक स्थानरूप मंगला नामकी पत्नि थी। उस शीलवती रानी मानो देहधारी कुललक्ष्मी हो ऐसी दिखाई पड़ती थी। वह रानी निरंतर अपने पति के हृदय में रहती थी और राजा उसके हृदय में रहता था। वासगृह में सिर्फ देखाव मात्र का बाह्य निवास था। गृह या उद्यान वगैरेह में महारानी घूमती रहती, वहाँ पर भी अपने पति का ध्यान देवताओं से भी अधिक ध्यान करती थी। वह विशाल आँखों वाली कांताने अपने रूप, लावण्य और सौभाग्य से देवांगना को तो दासी रूप किया था, अपने सुंदर मुख से चंद्र को भी दास बनाया था। उसका अधिक उज्ज्वलरूप और लावण्य उंगलियों की मुद्रिका की तरह परस्पर एक दूसरे को शोभायमान करते थे। इंद्राणी के संग इंद्र की तरह वह देवी के साथ सुख भोगते हुए उस राजा को रानीसे अक्षय प्रीति हो गई।

अब पुरुषसिंह का जीव जो वैजयंतविमान में गया हुआ है वह तैत्तिरीय सागरोपम का आयुष्य भोगकर श्रावण मास की शुक्ल द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में चंद्र के आने पर वहाँ से च्यवन कर

मंगलादेवी की कोख में जन्म लिया उस समय मंगलादेवी ने तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले वे चौदा महास्वप्न देखे और पृथ्वी जिस तरह गूढ़ रहस्यों को धारण करती है उसी प्रकार मंगलादेवी ने तिनभुवन के आधार ऐसे गर्भ को धारण किया।

इसी बीच कोई धनिक व्यापारी अपनी दो समान आयु की पत्नियों को साथ लेकर-व्यापार करने के लिये वह नगरी से दूर परदेश गया। मार्ग में उसकी एक पत्नि ने पुत्र को जन्म दिया, उस पुत्रको दोनों पत्नियों ने सपत्नियोंने (शोक्यो) समदृष्टि से उसका पालन कर बड़ा किया। किंतु वह व्यापारी परदेश से धन उपार्जित करके आते समय रस्ते में उसका निधन हो गया। 'दैव की गति निराली है' शोक से आसु बहाती, दीन मुरझाई हुई वे दोनों पत्नियाँ अपने पति का अग्निसंस्कार करवा के और्ध्वविहिक क्रिया करके वापस लौटी बाद में उनमें से एक कपटी स्त्रिने 'उस पुत्र और धन मेरा है' ऐसा कहकर असली पुत्र की माता से झगडा करने लगी। उनमें से एक असली माता, पुत्र और धनको चाहती थी दुसरी कपटी माता पुत्र और पुत्र धनका योग की इच्छा रखती थी। वे दोनों जल्दी से अयोध्या नगरी में आई वहाँ पर उन दोनों ने अपने कुल में और अंत में न्यायालय धर्मासन के पास भी शिकायत की, फिर भी उनके झगडे का जरा भी निपटारा नहीं हुआ। वहाँ से विवाद करती हुई वे दोनों राजा के पास आई। राजाने राज्यसभा में उन्हें बुलाकर उनके विवाद का कारण पुछा, प्रथम पुत्र की दुसरी माताने राजा से कहा "हे राजन ! हमारा यह झगडा इस नगर के सभी स्थानों पर चर्चित है, परंतु किसीने भी इस का निर्णय नहीं किया है; दुसरो के दुःख से स्वयं क्यों दुःखी करे ? इस पृथ्वी पर दुसरो के दुःख से दुःखी और दुसरो के सुख से सुखी ऐसे आप धर्मराज हैं, इसलिए हमें बराबर न्याय मिलेगा ऐसा मानकर मैं आपके शरण में आई हूँ। यह मेरा पालक पुत्र है इसका लालन-पालन मैंने किया है, इसलिए सब धन भी मेरा ही है; कारण जिसका पुत्र हो धन भी उसका होता है। बाद में पुत्र की जननी ने कहा- हे कृपालु राजन् ! यह पुत्र और धन मेरा है। यह मेरी सौत संतानहीन है। वह द्रव्य के लोभ से मेरे साथ क्लेश कर रही है। पहले यह मेरे पुत्र के साथ वह भी पालन करती थी। उस समयमें मैं उसे सरलता से उसे पालन करने देती थी, उसे रोका नहीं, इसलिये अब स्नेह के साथ पैर के पास सुलाने से तकिया भी मांगने वाली बन गई है। इसलिए महाराज ! आप न्याय करने के लिये तैयार हो जाइये, यह झगडा आपको निपटाना पड़ेगा। राजा जांच करके या जांच बिना ही जो कुछ फैसला देते हैं वह फैसला मान्य होता है अमान्य नहीं" इस प्रकार दोनों नारीयां बोल रही थी तभी राजा बोले- "यह दो स्त्रियाँ मानो एक डाल से जुड़ी हो वैसी बराबर समान हैं। दोनों स्त्रियाँ जब विसदृश रूपवाली होती हैं तो जिसके साथ पुत्र की मुखाकृति मिलती है वह उसका पुत्र है ऐसा अनुमान कर सकते हैं, लेकिन इस पुत्र में दोनों स्त्रियों का मिलता हुआ नजर आ रहा है। इसलिए यह भी अनुमान नहीं कर सकते हैं और यह बालक बोल भी तो नहीं सकता है। तो इसकी पहली और दुसरी माता कौन है ? यह ज्ञान की बात कैसे कर सकते हैं। इस झगडे के निर्णय में चिंतित होकर, राजा विचार ही विचार में नित्य कार्य करने का मध्यान समय हो गया इसलिये सभासदों ने कहा-"हे प्रभु ! इन दोनों का विवाद वज्रग्रंथि की गुथियाँ की तरह उलझा हुआ है, छःमास में भी हम यह भेद नहीं पा सकते हैं, अभी आपके

नित्यकर्म का समय हुआ है तो चले, क्षणभर बाद इस पर विचार करें। “अच्छा वैसे करते हैं” ऐसा कहकर राजाने सभा विसर्जन का आदेश दिया और फिर नित्यकर्म करके वे रानी के महल में गये।

वहाँ मंगलादेवी ने कहा ‘हे स्वामी ! मध्याह्न (दुपहर के) कार्य के लिये आज अधिक समय कैसे लगा ? राजाने दोनों नारीयों के विवाद का वृत्तान्त रानी को सुनाया। गर्भ के प्रभाव से जिसकी सुमति जाग्रत हुई है’ ऐसी वह मंगलादेवी इस प्रकार कहने लगी- ‘हे देव ! स्त्रियों के विवाद का निपटारा भी स्त्रियों को ही करना चाहिए वही उपयुक्त होगा। इसलिए उन दोनों के विवाद का निर्णय मैं करूंगी’ बाद में राजा महारानी को लेकर राज्यसभा में आये। वहाँ उन्हें फिर से दोनों स्त्रियों के विवाद का कारण पुछने पर उन्होंने पहले की तरह कह दिखाया। रानी उनके बोलने और उत्तर देने के तरीके देखकर और सोचकर कहने लगी-नारीयो मेरे उदर में तीन ज्ञान को धारण करनेवाला तीर्थकर उत्पन्न हुआ है, उनके जन्म के बाद अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर वे तुम्हारे विवाद का निर्णय करेंगे। इसलिए आप वहाँ तक दोनों राह देखे।’ दूसरी माता ने यह बात मान ली, लेकिन पुत्र की असली माता ने कहा-‘हे महादेवी ! मैं एक क्षण के लिये भी पुत्र से अलग नहीं रह सकती हूँ और मेरे लाडले को उस लम्बे समय तक अपनी (शोक्य) को सौंप भी नहीं सकती हूँ। आप (प्रभु)सभी की माता हैं तो आप आज ही और इसी समय निर्णय किजिये’ ऐसी पुत्रमाता के वचन सुनकर मंगलादेवी ने निर्णय करके कहा-“यह स्त्रि कालविक्षेप सहन नहीं कर सकती है इसलिए यह पुत्र इसी का है, यह दूसरी स्त्रि पराया पुत्र और धन दोनों मेरे आधीन रखने के निर्णय से कालक्षेप करने का मान्य करती है इसलिए यह इसकी वास्तविक स्वरी माता नहीं है। कारण असली माता कभी भी अपने पुत्र को दूसरेके आधीन रखना कैसे सहन कर सकती है। इसलिए हे माते ! आप जराभी अपने पुत्र से दूर नहीं हो सकती है यह मेरे देखने में और समझने में आया है कि यह पुत्र तुम्हारा है उसे लेकर घर जाओ। कभी इस स्त्रिने पुत्रका लालन पालन किया होगा इससे उसका पुत्र नहीं हो जाता है, क्योंकि कोयल के बच्चों का पालन कौआ की मादा करती है परंतु वे कोयल के ही कहलाते हैं। गर्भ के प्रभाव से देवी ने उनका इस प्रकार निर्णय किया और ऐसा निर्णय सुनकर सभी चतुर्विध सभा नेत्रविकसित करके विस्मयसे देखने लगी। बाद में सुबह होने पर कमलिनी और कुमुदिनी तरह पुत्रसे हर्षित और खेद व्यक्त करती हुई दोनों अपने घर गईं। मानो गर्भ सिकुड़ कर रहता हो इस तरह वह देवी के गर्भ में रहकर वेदना रहित विकसित होता हुआ गर्भ शुक्ल पक्ष की भांति चंद्र की तरह अनुक्रमिक बढ़ने लगा। बाद में नौ मास साढ़े सात दिन बाद बैशाख मास की शुक्ल अष्टमी का चंद्र मध्याह्नक्षत्र में आने पर पूर्व दिशा जैसे चंद्र को जन्म देती है वैसे मंगलादेवी ने सुखसे त्रौचपक्षी के चिन्हवाला सुवर्णवर्णी पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस समय तीन लोको में उद्योत हुआ। क्षणभर के लिये नारकी जीवों को भी सुख मिला, इंद्रोके आसन कंपायमान हुए, प्रथम दिककुमारीयों वहाँ पर आकर यथायोग्य सूतिकर्म किया। बाद में शक्रेंद्र आकर मंगलादेवी की शय्या से प्रभु को मेरुपर्वत पर ले गये। वहाँ पर अच्युतादि तिरसठ इंद्रोने आकर शक्रेंद्र के उत्संग में रखे हुए प्रभु को तीर्थजल से अभिषेक किया। बाद में ईशानेंद्र के उत्संग में प्रभु को बिठाकर शक्रेंद्र ने स्फटिक के चार वृषभ के शिंगों में से निकलने वाले जल द्वारा प्रभु का स्नान करवाया,

बाद मे विलेपन करके वस्त्रालंकार पहना कर आरती उतारकर शंकरेन्द्र भक्ति से इस प्रकार स्तुति करने लगे-

“हे देव । आपके जन्म से यह पृथ्वी कल्याणकारक बन गई है, जब आप अपने चरणकमलो द्वारा विहार करेंगे तब तो केशी होगी उसका क्या कहना ? हे भगवान ! आपके दर्शन सुख ये हमारी दृष्टियाँ कृतार्थ हुई हैं, आपका पूजन करने से ये हाथ कृतार्थ हुए हैं । हे जिनानाथ ! आपके स्नान, अर्चन वगैरेह का जो महोत्सव मनाया गया है वह एक लम्बे समय तक मेरे मनोरथरूपी प्रसाद के उपर कलशरूप हुआ है । हे जगन्नाथ ! इसकाल मैं इस संसार की प्रशंसा करता हूँ कि, जिसमे मुक्ति का एक निबंधरूप आपके दर्शन प्राप्त हुए । हे देव ! स्वयं उठती हुई समुद्र की लहरो की गिनती होती है, लेकिन मेरे जैसा पुरुष अतिशय के पात्र ऐसे आपके गुणों की गिनती नहीं कर सकता है । धर्मरूपी मंडप के स्तंभरूपी जगत को आगे बढ़ने (प्रकाशकरने में) के सूर्यरूप और दयारूपी, बेल के आश्रयरूपी वृक्ष जैसे हे जगत्पति ! इस विश्व की रक्षा करो । हे देव ! मुक्ति के बंध द्वार खोलने की कुंजी (चाबी) आपकी देशना पुण्यवंत प्राणीयो को ही सुनने को मिलती है । हे भुवनेश्वर ! उज्ज्वल दर्पण जैसे मेरे मन दर्पण मे हमेशा प्रतिबिंबित आपकी मूर्ति मेरे मुक्तिसुख का कारण बने ।”

इस प्रकार स्तुति करके शंकरेन्द्र प्रभु को लेकर क्षणभर मे वहाँ से अडुकर मंगलादेवी के पास आये, वहाँ पर प्रभु को रखकर अपने निवास स्थान पर गये । प्रभु गर्भ में थे उस समय उनकी मति काफी अच्छी थी इसलिये पिताने उनका **सुमति** ऐसा नाम रखा । इंद्र की आज्ञा से धात्रीयोंने आकर लालन-पालन किये हुए बाल्यकाल को लांघकर युवावस्था मे प्रवेश किया । उस समय प्रभु की उँचाई तीन सौ धनुष्य जितनी हुई, कंधे पृष्ठ हुए, भुजाएँ शास्वारूपी जंघातक लंबी हो गई, इसलिए मानो वह बड़े कल्पवृक्ष के भांति शोभायमान दिखने लगे । उनकी लावण्यरूपी (नदी में) तैरनेवाली मच्छलीओ की तरह ललनाओकी आंखो चंचल होने (खेलने) लगी । उन्होने अपना भोगकर्म है ऐसा जानकर मातापिता के आग्रह से सौंदर्यवती राजकन्याओ के साथ प्रभुने पाणिग्रहण संस्कार किया । जन्म से दस लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब पिताके अतिआग्रह से प्रभुने राज्यभार ग्रहण किया । मानो वैजयंत विमान मे रहे हो इस तरह बारह पूर्वागसहित उन्तीस लाख वर्ष पूर्व राज्यावस्था मे प्रभुने निर्गमन किया । स्वयं बुद्धिशाली है फिर भी लोकांतिक देवताओ के बोध देने से (याद दिलान से) श्री सुमतिनाथ प्रभुने दीक्षा लेने की इच्छा द्वारा वार्षिक दान देना आरंभ किया । वार्षिक दान के अंत मे जिनके आसन चलित हुए हैं ऐसे इंद्रोने और राजाओने स्वामी का दीक्षाभिषेक किया । बाद मे प्रभु **अभयंकरा** नामकी शिबिका पर आरुढ होकर सुर-असुर और मनुष्यो के साथ आये वहाँ बैशाखसुदि नवमी के दिन मध्याह्न समय मे मघा नक्षत्र मे चंद्र के आने पर हजार राजाओ के साथ नित्यभक्त ऐसे प्रभु ने दीक्षा ली । बाद मे मानो दीक्षा का नजदीक का संबंध हो अथवा मित्र हो ऐसा मनःपर्यव नामका ज्ञान उसी समय प्रभु को उत्पन्न हुआ ।

दुसरे दिन विजयपुर मे पद्मराजा के घर प्रभुने परमान्न से पारना किया । देवताओ ने उसके घर पर सुवर्णवृष्टि वगैरेह अद्भूत दिव्य प्रगट किया । राजाने नित्य पूजन के लिये उस स्थान पर रत्नपीठ

बनवाया । वही से विविध अभिग्रहो को धारण करते और परिषद् को सहन करते हुए प्रभु बीस साल तक पृथ्वी पर विहार किया । गाव आकर इत्यादि में विहार करते करते प्रभु एकबार फिर अपने दीक्षाग्रहण वाले सहस्राम् वन में आ पहुँचे । वहाँ पर प्रियंगु वृक्षकी जड़ों के पास बैठकर ध्यान में प्रभु को अपूर्वकरणसे क्षपक श्रेणी में आरुढ हो गये, इसलिए उनके सभी घातीकर्म टूट गये । चैत्रमास की शुक्ल एकादशी को मघा नक्षत्र में चंद्र आते जिन्होंने छद्वा तप किया है । ऐसे प्रभु को उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । आसन कंपनसे इस वृत्तांत को जानकर सभी इंद्र सुर-असुरों के साथ वहाँ आये । उन्होंने देशना देने के लिये समवसरण की रचना की । उसमें प्रभुने पूर्वद्वार से प्रवेश करके उसके मध्य भाग के एक कोश के और सोलह सौ धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके बाद में 'तीर्थाय नमः' ऐसा कहकर प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठे, इसलिए देवताओं ने अन्य तीन दिशाओं में प्रभु के प्रतिबिंब स्थापित किये । सुर-असुर और मनुष्य सहित चतुर्विध संघ भी योग्य स्थान पर बैठा । बाद में इंद्र नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करने लगा-

“हे भगवन् ! यह अशोक वृक्ष भ्रमर गुंजन से मानो गाता हो चलायमान पत्रों से मानो नृत्य करता हो आपके गुणों में रक्त (लाल) होने से ऐसा वह खुश होता हुआ दिखाई देता है । यह देवता जिनके बंधन (डंठल) नीचे हो ऐसे पुष्पों को योजन के प्रमाण से आपकी देशना भूमि पर अधिक मात्र में वर्षा कर रहे हैं । आपका मालवकौशिक प्रमुख ग्राम तथा राग से पवित्र ऐसा जो ध्वनि दिव्यध्वनि होती है उसे मृग भी हर्ष से हर्षित होकर ऊँची गर्दन करके उसका रसपान करते हैं (सुनते हैं) आपकी आगे रही हुई चंद्र जैसी उज्ज्वल यह चामरश्रेणी मानो आपके मुखकमल की सेवा करने आई हंसों की पंक्ति हो ऐसी शोभा देती है । सिंहासन पर बैठकर जब आप देशना देते हैं तब मृग सिंह की सेवा करने के लिये मानो आये हैं वैसे वे देशना सुनने के लिये आये हैं । ज्योत्सना से व्याप्त ऐसा चंद्रमा जिस तरह चकोर पक्षी को हर्षित करता है उसी प्रकार मुख मंडलसे प्रकाशित कांतिओं वाला (भामंडलयुक्त) ऐसे आप सभी की दृष्टि से परम हर्ष देते हैं । हे विश्वपति ! आपके सामने आकाश में होनेवाले दुंदुभिनाद सर्व जगत् में व्याप्त पुरुषों के बारे में आपके बड़े साम्राज्य को निर्देश करता हो ऐसा प्रतीत होता है । पुण्य समृद्धियों के क्रम जैसे और तिनलोक के उपर आपके प्रौढपन को दिखाता हुआ ये तीन छत्र आपके उपर शोभा दे रहे हैं । हे नाथ ! ऐसी आपकी चमत्कारी प्रतिहार्य लक्ष्मी को देखकर कौन मिथ्या दृष्टिवाला भी आश्चर्य नहीं करेगा ?”

इस प्रकार स्तुति करके शक्र इंद्र ने विश्राम किया । बाद में सुमतिनाथ प्रभुने सभी भाषाओं के अनुसार वाणी से देशना देने आरंभ किया ।-

इस जगत् में कार्याकार्य के ज्ञान की योग्यता प्राप्त प्राणीयों को अपने कर्तव्य में मूढ़ नहीं रहना चाहिए । पुत्र, मित्र तथा स्त्रि वगैरेह की और अपने शरीर की जो सत्क्रिया करने में आती है वह सभी पर कार्य है, उसमें कोई भी स्वकार्य नहीं है । प्राणी अकेला ही जन्म लेता है । अकेलाही मृत्युको प्राप्त होता है और भविष्यकाल में संचित किये हुए कर्मों को अकेला अनुभव करता है । अकेला चोरी से उपार्जन किया

हुआ धन सभी मिलकर खाते हैं, और वह चोरी करनेवाला अकेला नरक में अपने कर्मों से उसे दुःख भोगने पड़ते हैं। दुःखरूपी दावानल से भयंकर और विस्तृत इस भवरूपी जंगल में कर्म के वश अकेलाहि जी भटकता है। अतः में जीवको भाइ आदि सहायकारी होते नहीं हैं। यह शरीर है ऐसा कहते हैं तो वह शरीर उल्टा सुखदुःख के अनुभव को देनेवाला है। सुखदुःख का अनुभव देनेवाला शरीर हमारा सहायकारी है ऐसा हम कहते हैं तो वह शरीर तो उल्टा सुख दुःख का अनुभव को देनेवाला है सुख दुःख का अनुभव में यह शरीर सहायकारी है पूर्व भव से साथ में नहीं आते हैं और अगले जन्म में भी साथ नहीं आनेवाला है। इसलिए उसकी चपटे में (हडबडाहट में) आकर मिली हुई इस काया को सहायकारी कैसे कह सकते हैं? 'धर्म को अधर्म सहायकारी है?' इस तरह मानते हैं वह भी सत्य नहीं है, कारण धर्म अधर्म की सहायता मोक्ष में थोड़ी भी नहीं है। इसलिए इस संसार में मनुष्य शुभ अशुभ कार्य करता हुआ घूमता रहता है और अपने शुभाशुभ कर्म के योग्य शुभ अशुभ फल का अनुभव प्राप्त करता है। उसी प्रकार अनुत्तर ऐसी मोक्षलक्ष्मी को भी वह अकेला ही ग्रहण करता है कारण वहाँ पूर्वोक्त सभी सगे संबंधी का वियोग होने से दूसरे किसी के साथ रहना संभव नहीं है। इसलिए संसार के संबंधित दुःख और मोक्षसंबंधित सुख वह अकेला भोगता है। उसमें कोई भी सहायक नहीं है। जिस तरह हाथ पैर मुक्त होनेपर अकेला मनुष्य तुरंत समुद्र को पार कर लेता है, लेकिन हृदय हाथ पैर वगैरेह से बंधा हुआ मनुष्य उसको पार नहीं कर पाता है उसी प्रकार जो धन और देह पर आसक्त होता है वह इस संसार के भवसागर को पार नहीं कर सकता है। परंतु उसके विरुद्ध आसक्त बिना का अकेला स्वस्थ प्राणी है तो वह तुरंत भवसागर को पार कर लेता है। सांसारिक सभी बंधनों को छोड़कर प्राणी अकेला शाश्वत सुखवाला मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिए।"

इस प्रकार की प्रभु की देशना सुनकर प्रतिबोध प्राप्त बहुत से नरनारीयो ने निःसंग होकर चारित्र्य ग्रहण किया। उसमें से चमर वगैरेह सौ गणधर हुए। वे प्रभु के पास से त्रिपदी प्राप्त करके द्वादशांगी की रचना की। जब प्रथम पौरुषी पूर्ण हुई तब प्रभु ने देशना समाप्त किया। बाद में प्रभु के चरणपीठ पर बैठकर गणधर ने देशना देना शुरू किया। जब दूसरी पौरुषी पूर्ण हुई तब उन्होंने भी देशना समाप्त की। इसलिए इंद्रादिक देवता अर्हत को नमस्कार करके अपने-अपने स्थानों पर लौट गये।

उन प्रभु के तीर्थ में सफेद वर्णवाला, गरुड के वाहनवाले, दो दक्षिण भुजा में वरद और शक्ति को धारण किये अन्य दो वाम भुजाओं में गदा और पाश रखनेवाला, सदा साथ में रहनेवाला तुंबरु नामका यक्ष शासन देवता हुए। वैसे ही सुवर्ण की कांतिवाले पद्म पर बैठनेवाली दो दक्षिण भुजा में वरद और पाश को धारण किया है। दूसरी वाम भुजाओं में बिजोरु और अंकुश को धारण रखनेवाली और लगातार प्रभु के पास में रहनेवाली महाकाली नामकी यक्षणी शासनदेवी बनी। वचन के पैतीस अतिशय से शोभायमान प्रभु भव्य प्राणीयो को बोध करते हुए इस पृथ्वी पर विहार करने लगे।

बहुत समय पृथ्वी पर विहार करते हुए चौतीस अतिशयवाले सुमतिनाथ प्रभुके तीन लाख बीस हजार साधु, पांच लाख तीस हजार साध्वी, दो हजार चारसौ चौद पूर्वी, इग्यारह हजार अवधिज्ञानी दश हजार साडे चारसो मनःपर्यवज्ञानी, तेरा हजार केवलज्ञानी अठारह हजार चारसो वैक्रियलब्धिवाले, दस हजार साडे चारसौ वादलब्धिवाले, दो लाख ईक्यासी हजार श्रावक और पांच लाख सोलह हजार श्राविको का परिवार हुआ । केवलज्ञान की उत्पत्ति से आरंभ करके सुमतिनाथ प्रभु ने बीस साल और बारा पूर्वांग उना (कमा) ऐक लाख पूर्व पृथ्वीपर विहार किया । अनुक्रम से अपने को मोक्ष काल को समीप आया हुआ देखकर समेतशिखर पर्वत पर आये । वहाँ पर एक हजार मुनिओ के साथ अनशन ग्रहण किया । अेक मास के अंत मे भवोपग्राही चार अघातीकर्म को समाप्त कर, अनंतचतुष्क को प्राप्त करके, शैलेशी ध्यान मे प्रवर्तन करते हुए चैत्रमास की शुक्ल नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र मे चंद्र का योग होने पर एक हजार मुनिओ के साथ सुमतिनाथ स्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए ।

दस लाख पूर्व कुमार अवस्था, उन्तीस लाख और बारा पूर्वांग राज्य पूर्वांग उणा (कम) लाख पूर्व व्रतधारण मे इस तरह सुमतिनाथ प्रभु चालीस लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण किया । अभिनंदन प्रभु के निर्वाण उपरांत नौ लाखक्रोड सागरोपम जाने के बाद सुमतिनाथ प्रभु मोक्ष मे गये । बाद मे सभी इंद्र प्रभु के शरीर को दुसरे सहस्र मुनियो के शरीर को विधिपूर्वक अग्निसंस्कार करके वहाँ से नंदीश्वर द्वीप मे जाकर प्रभु के निर्वाणपर्व का महोत्सव करके अपने अपने गंतव्य स्थानो पर गये ।

इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीय पर्वणि

श्री सुमतिस्वामीचरित्र वर्णनो नाम तृतीय सर्गः ॥३॥

चतुर्थ सर्ग

श्री पद्मप्रभु चरित्र

पद्म के जेशे वर्णवाले, मानो लक्ष्मी की लीला के निवास स्वरूप पद्म के समूह जैसा पद्मप्रभु श्री जिनेश्वर को हम वंदन करते हैं। उन प्रभु के असाधारण प्रभाव से मैं कम बुद्धिवाला हूँ फिर भी कुकर्मों का नाश करनेवाले उनके चरित्र के बारे में मैं कह रहा हूँ।

घातकी खंड द्विप में पूर्व विदेह क्षेत्र के मंडनरूप वत्स नामके विजय में सुसीमा नामकी उत्तम नगरी थी। वहाँ पर शत्रुओंको परास्त करनेवाला अपराजित ऐसा अपराजित नामका राजा था। इंद्रियो को अपने वश में करनेवाला राजा मानो देहधारी धर्म हो वैसा दिखाई देता था। उस राजा को न्याय ही उसका मित्र था। धर्म ही सुहृद (मित्र) था। गुण ही उसका धन था। दूसरे मित्र सुहृद और धन जो था वह केवल बाहर दिखावे के लिये थे। वृक्ष में पत्तों की तरह सरलता, शील और सत्वादिक जो उसके उर्जित गुण उसमें थे। वे परस्पर आभूषण के तौर पर थे। विवेकी जनो में शिरोमणि वह राजा क्रोधरहित रहकर शत्रुओं को शिक्षा प्रदान करता था। अनासक्त मनसे सांसारिक सुख का अनुभव करता हुआ और अलुब्ध लक्ष्मी को धारण कर रहा था।

एक बार देवता जिस प्रकार अमृतपान करते हैं उसी तरह वह अर्हत भगवान का प्रवचनरूप अमृत का पान करता हुआ वह तत्त्व निष्ठ चित्त द्वारा चिंतन करने लगा- “अहा ! इस संसार में संपत्ति, यौवन, रूप, शरीर कामिनीयाएँ, पुत्र, मित्र और महल ये सब प्राणी को छोड़कर जाना बहुत मुश्किल लगता है। परंतु वही प्राणी अपने जीवनकाल में ही अपनी दुर्दशा को प्राप्त करता है। या मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। तब पक्षी अपने नाश किये हुए अंडे को छोड़ देते हैं वैसे संपत्ति वगैरह उसको छोड़ देती है। पक्षी जैसे एक पंख से उड़ान भरते हुए वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है वैसे ही पूर्वोक्त पदार्थों में एक चरण से उड़ान भरने के बराबर है एक तरफा स्नेह करता हुआ मंदबुद्धि प्राणी अपने स्वार्थ से पदभ्रष्ट हो जाता है। इसलिए जहाँ तक पुण्य कर्म के क्षय से संपत्ति इत्यादि मुझे छोड़े नहीं वहाँ तक पुरुषार्थ का अवलंबन करके मैं स्वयं ही उसका त्याग करूँ” इस प्रकार सोचकर जिसे प्रवाहित वैराग्य प्राप्त हुआ है ऐसे विवेकरूपी मणि के रोहणाचल पर्वत जैसे अपराजित राजा ने अपना राज्य पुत्र को सौंप दिया और पिहिताश्रव आचार्य भगवंत के चरणकमलो के समीप आकर मोक्षमार्ग में महारथ जैसी दीक्षा ग्रहण की। तीन गुप्तिवाला, पाच समितियों से युक्त, निर्मम और परिग्रह रहित ऐसे वह राजर्षि ने तीक्ष्ण खड्ग की धार जैसा चरित्र चिरकाल तक उसका पालन किया। निर्मल मनवाले उस महात्मा ने बीस स्थान को मे से कुछ स्थानको के आराधन द्वारा तीर्थकर नाम कर्म उपार्जित किया, अंत में शुभ ध्यानपरायण होकर आयुष्य का क्षय करके वे बड़े मनवाले मुनि नवमें त्रैवेयक ! में महर्द्धिक देवता हुए।

इस जंबुद्विप में भरतक्षेत्र के भीतर वत्सदेश के आभूषण तुल्य कौशांबी नामकी नगरी है। उस नगरी में बड़े ऊँचे महलो के अग्र भाग में स्थित सिंह की प्रतिमा के पास चंद्र नजदीक आता है उस समय



श्री पद्मप्रभरस्वामि भगवान

महुडी तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

सुलसा सामायिक मंडल की बहनों

गाम : बेलारी, कर्णाटक

सिंह से त्रस्त मृग भाग जाते हैं तब चंद्र भी निष्कलंक हो जाता है। गृहो मे फैलता हुआ धुआँ, संभोग से वस्त्ररहित युवा स्त्रि पुरुषों के युगलो मे वस्त्र की शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ प्रतिगृह में रचे हुए मुक्ताफल के स्वस्तिको के मोती पर शुकपक्षी आ आकर अनार के दाने समज कर चोंच मारते हैं। वहाँ पर सभी पुरुष श्रीमंत धनिक हैं इसलिए वे दुसरो का धन नहीं लूटते हैं। केवल वे उद्यान के पुष्पोकी सुगंध की हवा को वे लूटते हैं। उस नगरी मे धर नामका राजा था। पृथ्वी के ताप को टालने के लिये और मेघ के धारण करने से पर्वत का उसने तिरस्कार किया था। पृथ्वी मंडल पर सभी राजा उसकी आज्ञा का पालन करते थे किंतु पुष्प माला को जेशे अखंड मस्तक पर धारण करते थे। उसके भुजदंड धनुष्य धारण द्वारा प्रचंड दिखाई पडते थे, फिर भी वह कभी दंड देने (लेने) मे सौम्य रहता था किंतु भद्रक हाथी जैसा सौम्य रहता था। एक साथ विस्तार प्राप्त यश और अनुराग से श्रीखंड और चंदन के साथ केशर की तरह उसने सभी दिशाओ का लंबे समय तक रक्षण किया (विलेपन किया)। लक्ष्मीदेवी के लीलागृहरूपी वह राजा वास्तुदेव की तरह वह गुणो के सहज समूह से उत्पन्न हुआ था।

उस राजा को सतीयो की सीमारूप और देवकन्या जैसी रूपवंत सुसीमा नामकी रानी थी। वह हाथ, पैर, और होठो से पल्लववाली, शब्दो से पुष्पित, भुजाओ से शाखाओ वाली मानो कल्पवृक्ष की लताओ जैसी शोभायमान थी। मुख पर लज्जा से वस्त्र ढांक कर पृथ्वी को देखती हुई इर्यासमिती मे लीन मुनि की तरह वह मंद मंद चल रही थी। कांति ने शरीर को, लज्जा ने शीलको, सरलता ने मनको और सत्यता ने उसके वचन को पूर्णरूप से सुशोभित किया था। जब कभी भी वह बोलने लगती थी तब चंद्र की कांति के प्रवाह से रात्रि की तरह अति उज्ज्वल दांत की किरणो से उसकी मनोहर मूर्ति खिल उठती थी। यहाँ पर नवमें ग्रैवेयक मे अपराजित राजा के जीव ने इकतीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके वहाँ माघमास की कृष्ण षष्ठी के दिन चंद्र चित्रा नक्षत्र मे आते ही सुसीमा देवी की कोख मे उत्पन्न हुआ। उस समय तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदा महास्वप्न देवी ने मुख मे प्रवेश करते हुए देखे। गर्भ जब वृद्धि करने लगा तब देवी को पद्म की शय्या पर सोने का आदेश (इच्छा) हुई वह देवताओ ने तुरंत पूर्ण किया। बाद मे नौ मास और साडे सात दिन बाद कार्तिक (वद) मासकी कृष्ण द्वादशी के दिन चंद्र चित्रा नक्षत्र मे आने पर वक्रचार अतिचार को रख कर अन्य सभी ग्रह उच्चे स्थान पर स्थापित होने पर पद्म के जैसे वर्णवाले और पद्म के लांछनवाले पुत्र को देवी ने जन्म दिया।

उस अवसर पर छप्पन दिक्कुमारीयो ने आकर सूतिकाकर्म किया और शक्रेंद्र प्रभु को मेरुपर्वत के मस्तक पर ले गये। शक्रेंद्र के उत्संग मे (पात्रमे) रहे प्रभु को उनके बंधुओ मे जेष्ठ बंधुओ के क्रमानुसार की तरह अच्युतादि इंद्रोने आकर स्नान करवाया। शक्रेंद्र ईशान इंद्र की गोद मे प्रभु को स्थापित करके यथाविधि स्नान कराके पूजा की। बाद मे निम्नलिखित अनुसार स्तुति करने लगा।

हे देव ! इस अपार संसार रूपी मरुदेश मे घूमते हुए प्राणीयो को लंबे समय तक अमृत की प्याऊ के समान आपका दर्शन हुआ है। रूप से अनुपम ऐसे आपको लगातार बिना (थके) पालक झपकाये देखने वाले देवताओ के नेत्र अनिमेषता से कृतार्थ हुई हैं। आपके जन्म समय मे अंधकार में भी प्रकाशमान हुआ इससे नरक मे रहनेवाले जीव को भी कुछ समय के लिये सुख मिला इसलिए आपका तीर्थंकरपन

किसको सुखरूप नहीं है ? हे नाथ ! संसारीयो के पुण्य से ही आप धर्मरूपी वृक्ष को दयारूप नीक के जल से सिंचन करके वृद्धि कराते हैं । हे प्रभु ! जल के शीतलपन की तरह तीन जगत का स्वामीत्व और तीन ज्ञान का धारण करनेवाले आपको जन्म से ही सिद्धि प्राप्त हुई है । पद्म के वर्णवाले, पद्मके चिन्हवाले, पद्म की सुगंध जैसा मुखपवन को धारण करनेवाले, पद्म के जैसा मुखवाले पद्मा (लक्ष्मी) से युक्त और पद्म के गृहरूप ऐसे हे प्रभु ! आपकी जय हो ! हे नाथ ! अपार और गहरे ऐसे इस संसाररूपी सागर आपके प्रसाद से अब छोटा पल्लवित हो जायेगा । हे स्वामी ! अब मैं कल्पांतर का, राजा का अनुतर विमान का निवास की भी इच्छा नहीं रखता हूँ । सिर्फ आपके चरणकमलो की सेवा की इच्छा चाहता हूँ ।

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेंद्र प्रभु को लेकर तुरंत सुसीमादेवी के पास लेकर आये, वहाँ प्रभु को छोड़कर स्वर्ग में चले गये । प्रभु गर्भमें प्रवेश करते ही माता को पद्म की अनुभूति हुई भी उसी तरह पद्म के जैसी प्रभु की कांति थी, इससे उनके पिताजी ने उनका पद्मप्रभु ऐसा नामकरण किया । स्वर्ग की धात्री द्वारा लालन पालन और देवकुमारों के साथ क्रीडा करते प्रभु अनुक्रम वृद्धि पाने लगे और युवावस्था को प्राप्त हुए । उस आयु में वे ढाईसो धनुष्य जितने ऊँचे और विशाल वक्षस्थलवाले श्री विभु मानो लक्ष्मी का पद्मरागमणिमय क्रीडा पर्वत हो ऐसे शोभायमान दिखने लगे । फिर भी प्रभु को संसार सागर का त्याग करने की इच्छा थी । फिर भी लोगों के अच्छे बर्ताव से और माता-पिता के आग्रह से उन्होंने पाणिग्रहण संस्कार किया । जन्म से साडे सात लाख पूर्व जाने के बाद पिता के बहुत आग्रह से प्रभु ने राज्य का कार्यभार संभाल लिया । राज्य का पालन करते हुए जगत्पति ने साडे इक्यास लाख पूर्व और सोलह पूर्वांग निर्गमन करने के बाद पथिक को जिस तरह अच्छे शगुन से चलने की प्रेरणा करता है; उसी तरह संसार को पार करने की इच्छा रखनेवाली प्रभु को लोकांतिक देवताओं ने आकर ऐसी दीक्षा लेने की प्रेरणा की । तुरंत प्रभुने वार्षिक दान देना शुरु किया । उस दान का द्रव्य कुबेर की आज्ञा से जृम्भक देवताओं ने लाकर पुरा किया । बाद में राजा और इंद्रोने जिनका अभिषेक किया है ऐसे प्रभु सुखकारी शिबिका में बैठकर सहस्राम्र वन में गये । वहाँ पर छठ का तप करके कार्तिक कृष्ण (वद) त्रयोदशी के दिन चित्रा नक्षत्र में अपराह्नकाल में प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली ।

दूसरे दिन ब्रह्मस्थल नगर में सोमदेव राजा के घर प्रभु ने परम अन्न से पारणा किया । वहाँ देवताओं ने पांच अद्भूत दिव्य प्रगट किये, और राजा ने प्रभु जहाँ खड़े थे वहाँ एक रत्नपीठ बनवाई । बाद में प्रभु छद्मस्थ में छे मास तक विहार करके अपनी दीक्षा के साक्षीरूप ऐसे सहस्राम्र वन में वापस लौटे । वहाँ पर छठ का तप करके कार्यात्सर्ग के ध्यान द्वारा बरगद के पेड़ के नीचे रहे उस अवसर पर वायु से कांपते बादलों की जाल की तरह प्रभु का घातीकर्म का क्षय हुआ । तत्काल चैत्र मास की पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र में चंद्र आते ही पद्म प्रभु को म्लानि रहित केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । सुर-असुरों ने आकर वहाँ समवसरण रचा । उसमें प्रभुने पूर्व द्वार से प्रवेश किया । बाद में इंद्र की तरह प्रदक्षिणा करते हैं उसी तरह प्रभुने समयवसरण के मध्य में रखे डेढ़ कोश ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके और 'तीर्थाय नमः' इस प्रकार ऊँचे स्वर से उच्चारण करके रत्न सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर प्रभु बैठ गये । प्रभु

के प्रभाव से देवताओं ने उनके जैसा प्रतिबिम्ब बनाकर दुसरी तीन दिशाओं में स्थापना की। बाद में मयूरो का समूह जिस तरह मेघ गर्जना की उत्कंठा से प्रतीक्षा करता बैठता है उसी तरह श्रीमान् चतुर्विध संघ प्रभु की देशना श्रवण करने की उत्कंठा रखकर योग्य स्थान पर बैठा। बाद में सौधर्म कल्प का इंद्र परमेश्वर को प्रणाम करके भक्तिपूर्वक चित से यथार्थ साररूप वाणी द्वारा इस प्रकार से स्तुति करने लगा।

“हे प्रभु ! परीषहों की सेना को मारते और उपसर्गों को सन्मान (नष्ट) करते हुए शमता को प्राप्त हुए हैं। अहा ! आप महान् पुरुषों की कैसी विद्वता ! हे नाथ ! आप विरागी हैं फिर भी मुक्ति को भोगनेवाले हो, अद्वेषी होकर भी शत्रुओं को मारनेवाले हो अहो ! महात्माओं की कैसी दुर्लभ महिमा है। हे देव ! आप हमेशा जिगिषा रहित हैं। फिर भी तीन लोक और अपराध से भय पाते हो के विजयी हो अहा ! बड़े पुरुषों की कैसी चतुराई ! हे नाथ ! किसी को आपने कुछ भी दिया नहीं है और किसी के पास कुछ लिया नहीं है, फिर भी आप में प्रभुपन है। अहा ! विद्वानों की कैसी विचित्र कलाएँ होती हैं ! हे प्रभु ! जो सत्कर्म दुसरे देह त्याग करके भी प्राप्त न कर सके वह सत्कर्म, सत्कर्म संपादन में उदासी जैसे आपके चरणपीठ पर लोटते हैं। रागादिक में क्रूर और सभी प्राणीओं पर कृपालु इससे भयंकर और मनोहर दोनों गुणवाले ऐसे आप ने सभी साम्राज्य पर विजय प्राप्त की है। बड़ों में बड़े और महात्माओं में पूज्यनीय योग्य आप मेरी स्तुति के गोचर हो। हे स्वामी ! दुसरो में जो सब दोषरूप हैं वह आप में गुणरूप हैं। यह आपकी स्तुति अगर गलत हो तो उस विषय में ये सभासद प्रमाणरूप हैं। हे जगत्पति ! आपके चरणों का बारंबार मुझे दर्शन हो ऐसी मैं इच्छा रखता हूँ। इसके अलावा मुझे मोक्ष की भी इच्छा नहीं है।”

इस प्रकार स्तुति करके इंद्र ने विश्राम लिया, इसलिए पेंतीस अतिशयो के सहित ऐसी वाणी से प्रभु ने देशना देने का आरंभ किया।

“यह घोर संसार समुद्र के जैसा अपार है। इसमें चौर्यासी लाख जीवयोनि में प्राणी घूमता रहता है। इस संसार रूपी नाटक में संसारी प्राणी क्षत्रिय, (ब्राह्मण) चंडाल, स्वामी, सेवक, ब्रह्मा और कृमिका वेश धारण करके अनेक चेष्टाएँ करता है। संसारी प्राणी कर्म के संबंध से किराये पर रखी हुई झोपड़ी की तरह किस योनि में वह नहीं गया और किस योनि को उसने छोड़ा नहीं ! इस पूरे लोकाकाश में अपने-अपने कर्म से हरेक प्राणी ने छोटे रूप धारण करके स्पर्श किया हो ऐसी वालग्रा मात्र पृथ्वी पर नहीं है, अर्थात् सभी प्रदेशों का उसने स्पर्श किया हुआ है। इस जगत में नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देव ये चार प्रकार के प्राणी हैं वे प्रायः कर्म के संबंध से बंधकर बहुत दुःख भोगते हैं। पहले तीन नरकों में उष्ण वेदना है अंतिम तीन में शीत वेदना है और मध्य के चौथे नरक में उष्ण और शीत दोनों प्रकार की क्षेत्रवेदना है। उसके अनुसार उस-उस क्षेत्र में दर्द हुआ करता है। उन उष्ण और शीत नरकों में लोहे का पर्वत पर भी कभी लेकर जाते हैं तो वहाँ की भूमि का स्पर्श करने से पहले ही पिघल जाता है अथवा बिखर जाता है। इस प्रकार की क्षेत्रवेदना उपरांत सीधे-सीधे नारकी जीवोंने उत्पन्न कि हुई वेदना तथा परमाधामीकृत वेदना ऐसी तीन प्रकार भी वेदनाओं ने जिनको महादुःख उत्पन्न किया है

ऐसे नारकी के विविध दुःखों से पिडित होकर नर्कभूमि में बसे रहते हैं घटी (घंटी) यंत्रों में उत्पन्न हुए छोटे मुहवाले कुंभ जैसे स्थान में रहनेवाले नारकी जीवों को परमाधार्मिक देव सीसों के तार के रूप से सांचे में से खींचने हैं उसी तरह छोटे द्वार से आकर्षित करते हैं। कुछ नरक की यातनाओं को भोगनेवाले जीवों को वस्त्रों की तरह धोबी पछाड़ की तरह हाथ पैर पकड़ कर वज्रकंटक जैसी संकटकारी शिला के पृष्ठ भाग पर परमाधामी उसे पछाड़ते हैं। कुछ स्थानों पर उनको काष्ठ की तरह आरे से चीरा जाता है दारुण वेदना दी जाती है और कुछ स्थानों पर तिल की तरह उनकी यंत्रों में पिलाई की जाती है। नियमित प्यासे ऐसे जीवों को वहाँ से ले जाकर उनकी प्यास शांत करने के लिये लोहे और सीसे के घोल को वहन करनेवाली वैतरणी नामकी नदी में उतारे जाते हैं। कभी उन्हें छाया में बैठने की इच्छा होती है तो उन्हें असिपत्र वन में ले जाते हैं। वहाँ उस वन में वृक्षों के शस्त्र जैसे पत्तों गिरने से उनके छोटे-छोटे तिल के जैसे टूकड़े हो जाते हैं। किसी जगह वज्रकंटक जैसे शाल्मली के वृक्ष के साथ और किसी जगह अत्यंत गर्म कि हुई लोहे की पुतलियों से आलिंगन करवाया जाता है। उस समय उन्हें स्त्रियों के साथ किया हुये परगमन (वेश्या) की याद दिलाते हैं। किसी स्थान पर पूर्व में किया हुआ मांसभक्षण की लोलुपता की याद दिलाकर उन्हीं के अंगों का मांस काट-काटकर खिलाने में आता है। पूर्व में किये हुए मदिरापान की याद दिलाकर गर्म पिघलता हुआ लोहा पिलाने में आता है। भ्राष्ट्र, खुजली, महाशूल और कुंभीपाक जैसे दर्दों की वेदना निरंतर उन्हें अनुभव कराई जाती है। साथ ही साथ मांस की तरह उन्हें भुना जाता है। उन प्राणीओं के शरीर छिन्नभिन्न हुए अंग फिर से मिल जानेवाले होते हैं। उनके नेत्र, आदि अंग बगुले, गिद्ध और कौओं के वगैरेह पक्षीओं से खिंचवाते हैं। इस प्रकार महादुःखों से हनन किये हुए और एक क्षण के सुख से रहित प्राणी वहाँ रहकर इस प्रकार तैत्तिस सागरोपम जैसे बड़े काल का निर्गमन करता है।

कई प्राणी तिर्यच गति को प्राप्त होकर उसमें ऐकेंद्रियता प्राप्त करते हैं। उसमें भी पृथ्वीकाय रूप होकर हलादि शस्त्रों से चिरा जाता है। हाथी घोड़ों से मला जाता है। जल प्रवाह से पल्लवित होते हैं, दावानल से जल जाते हैं, खारे, खट्टे और मूत्रादिक जल से व्यथा पाते हैं लवण क्षार में लिप्त होने से उष्ण जल में उसे उबाला जाता है। कुंभार प्रमुख उसके देह के घड़े, इट वगैरेह बनाकर उसे पकाते हैं। दिवार में कीचडरूप होकर चुनवाया जाता है। कोई छार मृतक के पुटपाक द्वारा पकाकर शराण से घीसा जाता है। कभी कभी छिनी से उसे चिरा भी जाता है, और पर्वतों की सरिता के प्रवाह से फाड़ा जाता है अपकायके जीव। बिना पके जंतु सूर्य के किरणों से गर्म किये जाते हैं, हिमरूप से उसे ठोस बनाया जाता है। रजकणोंसे उसका शोषण किया जाता है। बहुत क्षारों के संपर्क में आने से सीधे मृत्यु भी हो जाती है। बर्तन में रखकर पकाया जाता है, और प्यासे मनुष्य को पिलाया जाता है। उबले जंतुओं के पानी से प्यास बुझाई जाती है तैअुकायके जीवों को जलादि से बुजाया जाता है। घन से कुटा जाता है। इंधनादिकसे उसे जलाकर चटके लगाये जाते हैं। वायु में रहनेवाले जंतुओं को पंखों वगैरेह से मारा जाता है। क्षण-क्षण शीतोष्ण मुख्य द्रव्य के योग से उसकी मृत्यु होती है। प्राचीन अर्वाचीन से विराधना होती है। मुखादिक पवन पुराने जंतुओं का नाश करनेवाला नया पवन (हवा) के आने से

मर जाते हैं। सर्प मुख से पान करते हैं। कंद प्रमुख दस प्रकार की वनस्पति इस काया को पाये हुए जंतुओं से हमेशा छेदन-भेदन का कार्य चलता रहता है अग्नि से पकाते हैं। खाने के लालचीयों को क्षार प्रमुख के योग से उसे जलाते हैं, और एकत्रित भी करते हैं, सभी अवस्था में भक्षण किया जाता है। पवनो से तोड़ा जाता है, दावानल से भस्म किया जाता है। नदी के प्रवाहित जल से उखाड़ दिया जाता है। इस तरह सभी वनस्पतियाँ सभी को खाने योग्य हो जाती हैं। सभी प्रकार के शस्त्रों से हमेशा क्लेश की परंपरा का अनुभव करती हैं।

दो इंद्रियपन में पूरा वगैरेह होकर गर्म किया जाता है और पिलाया जाता है। कृमि (कीड़े) होते हैं तो उनका पैरो से चुरा बना दिया जाता है। चिड़ियाँ वगैरेह पक्षी उसका भक्षण करते हैं। शंखादिक जंतु भीतर रहकर नष्ट हो जाते हैं। जल वगैरेह (से) को निकाला जाता है। और पेट की बिमारी में जंतुओं का औषधि द्वारा जठर में से उनका पतन किया जाता है। त्रींद्रियपन में जू और खटमल वगैरेह शरीर के साथ मसले जाते हैं। और गर्म पानी से गर्म किया जाता है। चिंटियाँ पैरो से वह समूह से मारी जाती हैं, और अदृश्य ऐसे कुंथवा का आसन से मंथन होता है। चतुरंद्रियपन में मधुमक्खी और भ्रमरादिक जंतुओं मधुभक्षक पुरुषों द्वारा किया गया लाठी प्रहार या ढेले आदि से ताड़न से मारा जाता है। मच्छर और मसला प्रमुख प्राणीयों का पंखे के द्वारा तत्काल मारा जाता है। छिपकली, मक्षिका तथा मकड़ी वगैरेह को निगल जाती हैं। पंचे इंद्रियो में जलचर प्राणी उत्सुक होकर एक दुसरे का ही भक्षण कर लेते हैं, दीमर (मछलीमार) लोक उनको पकड़ते हैं, तथा चर्बोवाले चरबी के लिये उन्हें गलाते हैं। भूमि पर रहने वाले में उत्पन्न प्राणी मांस भक्षक बलवान सिंह प्रमुख प्राणी निर्बल जैसे मृगादिक को मार डालते हैं, शिकार करने वाले शिकारी अपने चित्त को शिकार में लगानेवाली या मांस आदि का भक्षण करनेवाले कमजोर प्राणीयों को मार डालते हैं। कुछ प्राणी भुख, प्यास, ठंडी से गर्मी से या अतिभार के ढोने से वगैरेह उसी तरह चाबुक, अंकुश या कोड़े के मार से असह्य वेदना को सहन करते हैं। खेचर में तितर, शुक, कपोत और चिड़ियाँ इत्यादि प्राणीयों के मांस में लुब्ध हुए श्येन, सीचाणा और गीध पक्षी उनको पकड़कर खा जाते हैं। कई मांस लोभी और पक्षी शिकारी पुरुष उनको नाना प्रकार के उपाय करके पकड़ते हैं अनेक प्रकार के कष्ट देकर उनका विनाश करते हैं। तिर्यच पक्षीओं को अग्नि, जल और शस्त्र से वे भयभीत रहते हैं। अहा अपने अपने कर्मों के बंधन के निबंध का कितना वर्णन करे।

मनुष्य को मानवता मिलने पर भी वह अनार्य देश में उत्पन्न हुए प्राणी ऐसा पाप करते हैं जिसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता है। आर्य देश में भी चांडाल और श्वपचादि जाति में उत्पन्न हुए प्राणी भी ऐसे पाप कर्म करते हैं। फिर उसके अनुसार महादुःख का अनुभव करते हैं। कुछ प्राणी आर्यदेश में उत्पन्न होने के बाद भी अनार्य चेष्टा करनेवाले हैं और उसके कारण वे दुःख, दारिद्र्य और दुर्भाग्य से जलकर निरंतर दुःख भोगते हैं। कुछ लोग पर संपत्ति के उत्कर्ष से अपनी संपत्ति के घर्षण से दुसरो की सेवा द्वारा जले चितवाले होने से दुःख से जीते हैं, कुछ गरीब लोग रोग तथा मृत्यु से ग्रस्त होकर नीच कर्म द्वारा कदर्थना प्राप्त करके दया उत्पन्न कर वैसी दुःखद दशा का अनुभव करते हैं।

मनुष्यपन मे भी घोर नरक मे निवास करने जैसी गर्भवास के दुःख का अनुभव करता है । गर्भवास जैसा दुःख का कारण है ऐसे दुःख का कारण जरा रोग, मृत्यु और दासीपन भी नहीं है । गर्म करके अग्नि जैसे वर्णवाली सुईयो से रोम-रोम मे भेदे हुए पुरुष को जितना दुःख होता है । उससे आठ गुना तकलीफ गर्भवास मे होती है । और योनियंत्र मे से निकलते समय प्राणी को जो दुःख होता है वह गर्भवास के दुःख से भी कई गुना अधिक है । जन्म के बाद बाल्यावस्था मे मूत्रविष्टा से यौवनसमय मे रतिविलासो से और वृद्धावस्था मे श्वास तथा खांसी के रोग से वह प्राणी परेशान होता है । फिर भी उसे कभी भी लज्जा नहीं आती है प्राणी प्रथम बाल्यावस्था मे विष्टा के सुअर, बाद मे यौवनावस्था मे कामदेव का गधा, और अन्त मे वृद्धावस्था मे बुढे बैल बनता है । फिर भी वह पुरुष कभी पुरुष नहीं बनता है । शिशु अवस्था मे मातृमुखी, यौवन अवस्था मे स्त्रिमुखी बनता है । और वृद्धावस्था मे पुत्रमुखी होता है, लेकिन वह मुख प्राणी कभी भी अंतर्मुखी नहीं होता है । धन की लालसा मे वह परेशान हुआ प्राणी सेवा, कृषि, व्यापार, पशुपालन वगैरेह उद्योग से अपने जीवन को निष्फल गंवाता है । कभी चोरी, कभी धूर्त, (घुत) कभी जारपन (व्यभिचार) करने से मनुष्यो को बारंबार संसार मे परिभ्रमण करने के कारण उत्पन्न होते हैं । मोह से अंध बने प्राणी सुखी होते हैं तब कामविलास से दुःखी होते हैं और गरीबी और रोने मे अपना जन्म गवा देते हैं, लेकिन धर्मकार्य करते नहीं हैं । अनंत कर्म के समूह का क्षणमात्र मे नष्ट करने का समर्थ ऐसा मनुष्यपन प्राप्त हुआ है लेकिन पापी पुरुषो पापकर्म किया करते हैं । ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह तीन रत्नो के पात्ररूप मनुष्यपन मे जो पाप कर्म करना वह सुवर्णपात्र मे मदिरा भरने जैसा है । इस संसाररूपी समुद्र मे शमिलायुग के योगको जैसे तैसे प्राप्त यह मनुष्यभव है अहा ! मुख जैसे चिंतामणि रत्न हार जाता है अुसी तरह मनुष्य भवको हार जाता है । स्वर्ग और मोक्ष प्राप्ति के कारणरूप मनुष्यपन प्राप्त हो जाने के बाद भी मनुष्य नरक प्राप्ति के उपाय रूप कर्म के अंदर उद्यम किया करता है यह कैसी दिलगीरी की बात है ! अनुत्तर विमान के देवताए भी बडे प्रयत्न से जिसकी आशा रखते हैं वैसा ही मनुष्यत्व प्राप्त होने पर भी पापी पुरुष उसे पापकर्म मे जोड देता है । नरक मे परीक्ष दुःख है और नर जन्म मे प्रत्यक्ष दुःख है उससे उसके विस्तार के अधिक वर्णन की यहाँ क्या जरूरत है ?

शोक अमर्ष, स्वेद, ईर्ष्या और दीनता वगैरे से जिनकी बुद्धि कुंठित हुई है ऐसे देवताओ मे भी दुःख का साम्राज्य प्रवृत्त हो रहा है । दुसरे कि बडी लक्ष्मी देखकर देवता अपने अल्प सुकृत को संपादन करनेवाले पूर्व जन्म मे जिवितो का लंबेकाल तक शोक मनाते हैं । दुसरे किसी बलवान देवता की ओर से अपने को अडचन उत्पन्न होते ही उसका प्रतिकार करने मे असमर्थ ऐसे देवता तीक्ष्ण जैसे अमर्षरूप शल्यसे निरंतर घुटन (दुःख) महसुस करते रहते हैं । मैने पूर्व जन्म मे कोई भी सत्कार्य नहीं किया है इसलिए इस भव मे सेवक पद को प्राप्त हुआ हूँ' इस तरह सोचते हुए और अपने से अधिक उत्तरोत्तर दुसरे देवो की लक्ष्मी के देखते ही लगातार कितने देवताओं ने ग्लानि की है । कई देवता दुसरे के विमान, स्त्रिरत्न और उपवन संबंधी संपत्ति देखकर जीवन मे ईर्ष्यारूप ज्वलित अग्नि की उर्मिओ में जला करते हैं । कई देवता दुसरे बलिष्ठ देवता की ओर से सभी कुछ लुट जाने पर दीनवृत्ति से

हे प्राणेश ! हे प्रभु ! हे देव ! आप प्रसन्न हो; इस तरह गदगद स्वर से पुकारते हैं । पुण्य से स्वर्गलोक प्राप्त होने के बाद भी कामी देवता काम, क्रोध और भयसे आतुर हुए कभी भी वे स्वयं को स्वस्थ नहीं मानते हैं । फिर भी देवता देवभुवन में से अपने च्यवन के (मृत्यु) चिन्हों को पहले से देखकर 'हम कहाँ छिप जायें' ऐसे बोला करते हैं । और छिप भी जाते हैं । कल्पवृक्षों के पुष्पों की मालाएँ ग्लानि प्राप्त न हो, लेकिन वे च्यवन के पास आते हैं । उस समय देवता के मुखकमल के साथ वे ग्लानि पाते हैं । बड़े बलवान् पुरुषों से भी अकंपित ऐसे कल्पवृक्षों उनके हृदय के साथ संधिबंध शिथिल हो जाने से कंपायमान हो जाते हैं । उत्पन्न हुए तब से प्राप्त हुई और बहुत प्यारी ऐसी लक्ष्मी और लज्जा भी मानो अपराध किया हो उस तरह वे तुरंत छोड़ देती हैं । निरंतर निर्मल ऐसे वस्त्रों की शोभा भी अचानक फैले हुए मलिन और गाढ़े पाप के समूह से हो उस तरह तुरंत मैले हो जाते हैं । मृत्यु समय चिट्टियों के पंख निकलते हैं उसी तरह उन्हें भी उस समय गरीबीपन के साथ दैन्यन्ता आती है और निद्रा रहित फिर भी निद्रा आती है, मरने के इच्छुक ऐसे पुरुष जिस प्रकार यत्न करके भी कुपदार्थों का सेवन करते हैं उसी तरह अज्ञानी देवता ऐसे समय में न्याय तथा धर्म को बाध्य करके विषय पर (राग) गुस्सा करते हैं । निरोगी फिर भी भविष्य में आनेवाले च्यवन से शुरु हुई वेदना मानो वश में हुई हो उसी तरह सभी अंगोपांगों के जोड़ों को तोड़ना शुरु होता है । अर्थात् आलस पर आलस मरोड़ने लगते हैं । मानो दुसरे की संपत्ति को देखने में असमर्थ हैं उस तरह उनकी पदार्थ ग्रहण करने में दृष्टि बिगड़ जाती है । भविष्य में आनेवाले गर्भवास के दुःखों का मानो उन्हें भय लगा हो उस तरह अपने को हुए प्रकंप से चपल अंगों द्वारा दुसरो को भी डराते हैं । पूर्वोक्त चिन्हों द्वारा वे उन्हें च्यवन निश्चय हो जाने से मानो अङ्गों के अंगारों ने उनका आलिंगन किया हो ऐसे विमान में, नंदनवन में, वापिका में किसी भी स्थान पर शांति मिलती नहीं है, उस समय वे विलाप करते हैं कि 'हाय प्रिये ! हे विमानो ! हे वापिकाओ ! और हाय कल्पवृक्ष ! कमभागी ऐसे मेरे वियोग प्राप्त आप अब मुझे कहाँ दिखाई देंगे । अहा ! अमृत की वर्षा करनेवाली वाणी, अमृतमय कांता, रत्न से जड़ित स्तंभ शोभा सहित मणिमय भूमि और रत्नमयी वेदिकाएँ ! तुम किसके आश्रय स्थान पर जाओगे ? रत्न की पदपंक्तिओं से युक्त और श्रेणीबंध कमलवाली हे पूर्णवापिकाओ ! तुम किसके उपभोग के अर्थ में जाओगी । हे पारिजात ! हे संतान ! हे हरिचंदन ! और हे कल्पवृक्ष ! क्या आप इस मालिक को छोड़ दोगे ? अरे ! स्त्रि के गर्भरूप नरक में मुझे परवश होकर निवास करना पड़ेगा ? और मुझे अशुचि रस का बारंबार आस्वादन करना पड़ेगा ? अहा ! मुझे मेरे अपने कर्मों से बंधकर जठर रुपी चुल्हे की जलन से होने वाली वेदना दुःख को सहन करना पड़ेगा । अरे ! रतिसुख का मानो भंडार हो ऐसी देवांगनाएँ कहाँ हैं । और अशुचि का ही स्थान होने से बिभत्स गंदी ऐसी मानव स्त्रियों का भोग कहाँ । इस प्रकार स्वर्गीय वस्तुओं का वारंवार स्मरण करते और विलाप करते हुए देवता दीपक की तरह क्षणभर में बुझ जाते हैं । उसी तरह वहाँ से च्यवन होता है । इसलिये इस संसार के असार देखकर शुभ बुद्धिवाले प्राणी ने दीक्षारूप उपाय से मुक्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए ।”

इस प्रकार की देशना सुनकर हजारों मनुष्य प्रतिबोध पाया । उनमें से कुछ लोगों ने दीक्षा

ग्रहण की, कुछ ने समकित का स्वीकार किया सुव्रत वगैरेह एकसौ सात गणधर हुए। उन्होंने प्रभु से त्रिपदी प्राप्त करके द्वादशांगी की रचना की। जब प्रभु ने देशना से विराम पाये तब सुव्रत गणधर ने देशना दी, कारण कुँअे की क्रिया की तरह पिछे से संग्रह करते हैं उसी तरह शिष्य गुरु की क्रिया का अनुकरण करते हैं। सुव्रत गणधर देशना से विराम पाये बादमे सभी देवता और मनुष्य प्रभु को प्रणाम करके अपने-अपने निवास स्थान पर गये।

उस समय नील अंगोवाला, मृग के वाहनवाला अपनी दोनों दक्षिण भुजाओ मे सफल और अभय धारण करनेवाला और दो वाम भुजाओ मे नकुल तथा अक्षसूत्र को रखनेवाला कुसुम नाम का यक्ष तीर्थका अधिष्ठाता बना। वह यक्ष हमेशा प्रभु के पास रहनेवाला है इसलिये वह शासन देवता कहलाया। उसी प्रकार श्याम अंगोवाली पुरुष के वाहनवाली दो दक्षिण भुजाओ मे वरद तथा बाण को धारण करनेवाली और दो वाम भुजाओ मे कार्मुक तथा अभय को रखनेवाली अच्युता नाम की यक्षणी प्रभु की शासनदेवी हुई। उन यक्ष और शासनदेवी ने जिनका सान्निध्य छोडा नहीं है ऐसे जगत्प्रभु ने विश्व को अनुग्रह करने की इच्छा से ग्राम आकर और नगर मे विहार किया।

प्रभु के तीन लाख तीस हजार साधु थे, चार लाख बीस हजार साध्वी हुई, दो हजार दोसौ चौदा पूर्वाधारी हुए, दस हजार अवधिज्ञानी हुए, दस हजार तीनसौ मनःपर्यवज्ञानी हुए, बारह हजार केवलज्ञानी हुए, सोलह हजार ऐकसौ आठ वैक्रिय लब्धिवाले हुए, नौ हजार छेसौ वादलब्धिधारी हुए, दो लाख छेहत्तर हजार श्रावक हुए, पांच लाख पांच हजार श्राविकाएँ हुई। इतना परिवार प्रभु के केवलज्ञान होने के बाद छे मास और सोलह पूर्वांग उना (कम) जैसे एक लाख पूर्व तक विहार करते हुआ। बाद मे अपने मोक्षकाल का समय नजदीक आया हुआ जानकर वे पद्मप्रभप्रभु समेत शिखर पर्वत पर आये, वहाँ पर मासिक अनशन धारण किया मागसर मास की कृष्ण एकादशी के दिन चंद्र चित्रा नक्षत्र मे प्रवेश करते ही पद्मप्रभप्रभु अधाती चतुष्कर्म को समाप्त करके और अनंत चतुष्टय को सिद्ध करके, तीनसौ आठ अनशन व्रतवाले मुनिओ के साथ चतुर्थ शुक्लध्यान द्वारा चौथे पुरुषार्थ (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

साडे सात लाख और सोलह पूर्वांग कुमार अवस्था मे, साडे इक्कीस लाख पूर्व राज्य पालन मे, सोलह पूर्वांग न्यून (कम) एक लाख पूर्व व्रत मे -इस तरह सब मिलकर तीस लाख पूर्व का श्री पद्मप्रभप्रभु का आयुष्य था। सुमतिस्वामी के निर्वाण के पश्चात नब्बे हजार कोटि सागरोपम जाने के बाद श्री पद्मप्रभप्रभु मोक्षपद को प्राप्त हुये प्रभु को मोक्ष प्राप्ति के बाद भक्तिवाले चौसठ इंद्रोने आकर प्रभु के और अन्य मुनिओ के शरीर का उच्च प्रकार से संस्कार किया, और निर्वाण कल्याणक का बडा महोत्सव किया।

इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीय पर्वणि

श्री पद्मप्रभस्वामिचरित्र वर्णनो नाम चतुर्थः सर्ग ॥ ४ ॥



श्री सुपार्श्वनाथ भगवान
माडवगढ तीर्थ, मध्यप्रदेश

-: सौजन्य दाता :-

राजस्थान जैन श्वेतांबर मू. संघ
गाम : गदग, कर्णाटक

पंचम सर्ग

श्री सुपार्श्वनाथ चरित्र

वेलातट का उल्लंघन करनेवाली केवलज्ञानरूपी समुद्र की मानो लहरे हो ऐसी श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु की देशनावाणी आपकी रक्षा करे। सर्व प्राणीयों का सुबोधरूप अंधकार का नाश करने में दिन शुभ रूप ऐसा सातवे तीर्थकर श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु का चरित्र अब कहता हूँ।

घातकीखंड के पूर्व विदेह क्षेत्र के तिलक जैसा रमणीय विजय में क्षेमपुरी नाम की एक नगरी है। उसमें सूर्य की तरह तेज के स्थानरूप और जगत को आनंददायक श्री नंदीषेण नाम का राजा था। राज्य के तमाम व्यापार में जाग्रत रहनेवाला वह राजा अपने दाहिने हाथ जैसा धर्म प्रधानपद पर था। प्रजा में रहे कंटक जैसे दुष्ट जनसमूह को शिक्षा करने में उसे क्रोध आता था। वह भी लोगों के सुख के लिये था। उसका क्रोध भी धर्म की सुरक्षा के बारे में होता था। इससे उसकी दुसरी क्रिया के बारे में क्या बात करनी? अहर्निश स्मृतिगोचर होते श्री वीतराग भगवान उसे हृच्छय (हृदय में सोनेवाले, पक्षे कामदेव) रूप होते थे, यह बड़े आश्चर्य की बात थी। वह राजा पीडित जनो की पीडा हरने में सदा तत्पर रहता था। लेकिन कामपीडित परस्त्रियो को कभी शरण नहीं देता यह सबसे बड़े आश्चर्य की बात है।

कुछ समय बितने पर बड़े मनवाला नंदीषेण राजाने संसार से त्रस्त होकर अरिदमन आचार्य के पास जाकर दीक्षा ली। तीक्ष्ण महाव्रत का पालन करते वे महामुनि ने बीस स्थानक में से कुछ स्थान की आराधना द्वारा तीर्थकर नामकर्म उपार्जन किया। अंत समय अनशन करके नंदीषेण महामुनि पंचत्व प्राप्त कर छठे त्रैवेयक में महर्द्धिक देवता हुए।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में काशी देश के मुकुटरूप वाराणसी नाम की नगरी है। उसमें रहे प्रकाशित रत्नो की दिवारवाले घरों के भीतर जिस देव के आगे अष्ट प्रकार की पूजा का दीपक हो तो अनुपम शोभा हो जाती है। उस नगरी में मंदिरो के उच्चे ध्वजदंड पर आये हुए चंद्रमा, अेक छत्रवाले धर्मराजा के छत्र की शोभा को धारण करते हैं। उस नगरी के दुर्ग की छतपर क्रीडा करने आई विद्याधरो की स्त्रियों विस्मरण करके सुखसे वही रहती है। रात को आकर आवासगृहो में अंदर आकर शब्द करनेवाले पारापत पक्षी कामदेव को जगाने के लिये मानो मंगलपाठ करते हो ऐसा भास होता है। उस नगरी में सत्पुरुषों की प्रतिष्ठा करने में कल्पवृक्ष के समान और इंद्र के जैसे प्रतिष्ठित को प्राप्त प्रतिष्ठ नाम का न्यायप्रिय राजा था। मेरुपर्वत की तरह महत्त्वतासे अनुपम ऐसा उस राजा के चरणों की छाया में सर्व जगत था। जब वो राजा दिग्विजय करने जाता था उस समय उसके मस्तक पर धारण श्वेत छत्रों और मयूरपंखों के छत्रों से आकाश का क्षेत्र मानो बगुले की अथवा मेघ के चिह्नों से छादित दिखाई देता था। विशेष पुरुषव्रतरूपी आभूषणों को धारण करनेवाला वह राजा जैसे याचको से परास्त (मुहमोडता) नहीं होता था। उसी प्रकार रणभूमि में भी कभी शत्रुओं के सन्मुख परास्त नहीं होता था। बड़ी भुजाओंवाले उस राजा को जन्म से ही किसीकी सहायता नहीं थी। फिर भी वह संपूर्ण

पृथ्वी को क्रीडाकमल की तरह लीलामात्रसे वह धारण कर रहा था ।

वह पृथ्वीपति मानो वह जंगम पृथ्वी हो वैसे वह स्थिरितादिक गुणो के पात्ररूप पृथ्वी नाम की एक रानी थी । वह रानी शील और रूप यह दो नित्य आभूषण उसने पाये थे, और बाहरी आभूषण तो सिर्फ श्रृंगार की शोभा देते थे । ताम्रपर्णी नदी मे मोतीके दानो की तरह उस रानी का स्वभाव से निर्मलता वाले अनेक गुणो से उत्पन्न हुआ था । उस राजयुवती रूप लावण्यरूप जल से और मुख, नेत्र, हाथ, तथा पैर रूप कमलो से लक्ष्मीदेवी के निवासरूप पद्मद्रह हो वैया शोभा देता था । वह पृथ्वीदेवी तीर्थकर की माता होनेवाली है, इसलिये भविष्यकाल मे तो उनकी दासीपद प्राप्त होनेवाला ही था । इस महादेवी रूपसे पराजय प्राप्त देवांगनाओं ने अभी से ही उनकी दासीयां बनके रह रही थी ।

इस ओर नंदीषेण राजा का जीव जो छठे त्रैवेयक मे रहा था उसने अपने अष्टाईस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण किया । वहाँ से च्यवनकर भाद्रपद मास की कृष्ण अष्टमी के दिन चंद्र अनुराधा नक्षत्र मे आने पर, वह पृथ्वीदेवी की कुक्षि में अवतरण किया । सुख से सोये हुए पृथ्वीदेवी ने रात्रि के शेषभाग मे तीर्थकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदह महास्वपनों को देखा । वह गर्भ वृद्धि पाकर उन्होंने एक पांच और नौ फनवाले नाग की शय्या के उपर अपनी आत्मा को सोया हुआ देखा । अनुक्रम मे जेष्ठ मास की शुक्ल द्वादशी को चंद्र विशाखा नक्षत्र मे उपर आते ही स्वस्तिक के चिह्नवाला एक सुवर्णवर्णी पुत्र को उन्होंने सुखपूर्वक जन्म दिया । तुरंत ही अवधिज्ञान से अर्हत्का जन्म जानकर छप्पन दिक्कुमारीयों ने आकर सुतिकर्म किया । उसी तरह शक्रेंद्र भी वहाँ पर आकर प्रभु को मेरुपर्वत के मस्तक पर रही हुई अतिपांडुकबला नाम की शिला पर ले गया । वहाँ बालभावना की तरह प्रभु को उत्संग मे रखकर इंद्र रत्न के सिंहासन पर बैठा । बाद मे समुद्र की लहरो के तट पर रहे हुए पर्वत को स्नान करवाती है उसी प्रकार तीरसठ इंद्रोने तीर्थजल से अनुक्रम मे प्रभु को स्नान करवाया । बाद मे ईशान इंद्र के उत्संग मे प्रभु को बिठाकर स्फटिक के वृषभ के शिंगो मे से निकलती जलधारा से धारायंत्र के जल की तरह शक्रेंद्र ने अभिषेक किया । बाद चंदन आदि का विलेपन तथा वस्त्र अलंकारादिक द्वारा पूजा करके इस प्रकार प्रभु की स्तुति करना आरम्भ किया ।

हे प्रभु ! जिनका स्वरूप अवर्णनीय है ऐसे आपके बारे मे अर्थवाद करने का स्वरूप के वर्णन का आग्रह जो मैं रखता हूँ । तो वह आदित्यमंडल को ग्रहण करने के लिये बंदर को फाल मारने जैसा है, फिर भी हे परमेश्वर ! आपके प्रभाव से ही मैं आपकी स्तुति करूँगा, कारण चंद्रकांतमणि चंद्र की कांति के प्रभाव से ही बिखरता है । हे प्रभु ! आपके सभी कल्याणको के अवसर पर आप नारकीय जीवो को भी सुख देते हैं तो तिर्यच, नर और देवताओ को सुख देनेवाले आप क्यो न बनो ? आपके जन्मोत्सव केसमय तीनों जगत मे जो उद्योत हुआ है वह भविष्य मे उदय होनेवाले केवल ज्ञानरूप सूर्य का अरुणोदय है ऐसा दिखाई देता है, हे परमेश्वर ! मानो आपके प्रसाद के संपर्क से बनी हुई हो वैसे सभी दिशाएँ अभी प्रसन्न हैं । हे पवित्र आकृतिवाले प्रभु ! अभी यह हवा पवन भी सुखकारी बह रहा है, कारण आप के जैसा सुखदायक प्रभु प्रगट होते ही जगत मे प्रतिकूल बर्ताव करनेवाला कौन होगा ? हे प्रभु हमारे प्रमाद को धिक्कार करते हैं जिन्हे आपके जन्मसमय का पता भी नहीं चला है और ये हमारे

आसन को धन्य है कि जिन्होंने चलित होकर आपके जन्मकल्याणक की हमें खबर दी। हे प्रभु ! संकल्प करना, बांधना निसिद्ध है, फिर भी 'आपके दर्शन का फल मुझे आपकी भक्तिरूप में निरंतर मिलता रहे ऐसा संकल्प मैं करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेंद्र प्रभु को लेकर तुरंत आकर प्रभु को पृथ्वीदेवी के बगल में जरासी आहट बिना जैसे थे उसी तरह रख दिया। प्रातःकाल में प्रतिष्ठित राजा को राजपुत्र जन्म की बधाई मिलते ही कारागृह में से बंदीयों को छुड़वाना वगैरह अद्भुत कृत्यों से प्राणीयों को प्रसन्न करते हुए राजाने उस समय आनंद को फलस्वरूप वृक्षरूप विराट महोत्सव किया। प्रभुगर्भ में थे उस समय उनकी माता अच्छे पार्श्व वाले हुए, इससे राजाने प्रभुका सुपार्श्व ऐसा नाम रखा। इंद्र ने अंगठे में संग्रहित अमृत पान करने वाले प्रभु बढने लगे, कारण अमृतपान करनेवाले अर्हंत प्रभु स्तनपान नहीं करते हैं। शिशुअवस्था में ऐसी चपलता से गोद में बारंबार उतर जाते प्रभु अपनी धाव्यमाता के बारंबार छलते अनेक प्रकार से वे खेलने लगे। प्रभु को जितने की प्रतिज्ञा लेकर उनके साथ खेलनेवाले मनुष्य का रूप धारण कर देवताओं को प्रभु लीला मात्र में ही जीत लेते थे। क्रीडा में प्रभु के आगे इंद्र भी मात्र (किश गिनती में थे) थे। विचित्र क्रीडाओं में से कामी पुरुष जिस प्रकार रात में निर्गमन करता है उसी प्रकार से शिशुवय में प्रभुने निर्गमन किया। बाद में दोसौ धनुष्ये उँचे शरीरवाले और सर्व लक्षणों से सम्पन्न ऐसे प्रभु रूपसंपत्ति के आभूषणोरूप युवावस्था को प्राप्त हुए। अपने मातापिता के उत्तर दायित्व से जगत्पति ने राजपुत्रीओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार किया। तिनलोक के स्वामी ने मातापिता की आज्ञा मानकर भोगकर्म के आग्रह से प्रभु ललनाओं के साथ खेलने लगे। "भगवंत कर्म को व्यतीत करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं।" पाच लाख पूर्व कुमारवस्था में व्यतीत किये बाद में पिता के स्थापित राज्य को अपने हाथों में लिया। पृथ्वी का पालन करते हुए उन्होंने बीस पूर्वांग अधिक ऐसे चौदाह लाख पूर्व निर्गमन किया। बाद में प्रभु का मन संसार में से विरक्त हो रहा है ऐसा जानकर लोकांतिक देवता ब्रह्म देवलोक में से प्रभु के पास आये। 'हे प्रभु ! आप स्वयंबुद्ध होने से किसीसे बोध लेते नहीं हैं लेकिन भक्ति द्वारा हम आपको स्मरण कराते हैं, इससे हे नाथ ! धर्मतीर्थ को प्रेरित करें' ऐसा कहकर वे स्वर्ग में गये। बाद में दान देने में चिंतामणि तुल्य और दीक्षाग्रहण के महोत्सव में उत्कंठित ऐसे सुपार्श्वस्वामी ने एक संवत्सर (साल) तक दान दिया। वार्षिक दान के अंत में आसन चलित होनेसे इंद्रोने आकर प्रभु का दीक्षाभिषेक किया। बाद में मोक्षगामी प्रभु विविध रत्नों से मनोहर ऐसी मनोहरा नाम की शिबिका पर बैठे। सुर-असुर तथा नरेश्वरों के अनुकरण अनुसार भगवंत सहस्राग्रवन नाम के उपवन में आगमन किया। वहाँ आकर तीनोलोक के भूषणरूप प्रभु ने आभूषणादिक सब छोड़कर कंधे पर इंद्र ने दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र धारण कर जेष्ठमास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में पिछले भाग में एक सहस्र राजाओं के साथ प्रभु ने छद्म का तप करके दीक्षा ली। उसी समय तुरंत चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ, और क्षणभर में नारकीय जीवों को भी सुख हुआ।

दूसरे दिन पाटलीखंड नगर में महेन्द्र राजा के घर प्रभु ने परम अन्न से पारणा किया। देवताओं ने उस जगह धन की वर्षा, आदि पांच दिव्य प्रगट किये। महेन्द्र राजाने जहाँ पर प्रभु खड़े थे वहाँ पर

रत्नमय पीठ तैयार करवाई । पर्वतो के हाथी जैसे परिषहो की सेना के ताप की जय करते हुए शरीर मे भी आकांक्षाओ से रहित, सुवर्ण और तृण मे समान भाव रखनेवाले अेकाकी, मौनव्रतधारी, अेकांत दृष्टि देनेवाले, विविध प्रकार के अभिग्रह मे तत्पर, भूमि पर नहीं बैठनेवाले, निर्भय, स्थिर विविध प्रकार से कायोत्सर्ग करनेवाले, छद्मस्थ और ध्यान मे तत्पर ऐसे जगत्पति प्रभु नव मास तक पृथ्वी पर विहार किया । विहार करते करते वापस सहस्राग्र वन मे आये । वहाँ पर छद्म का तप करके शिरीश वृक्ष के नीचे बैठकर स्थिर काशुसग्ग मे रहे । दुसरे शुक्ल ध्यान के अंत मे जगद्गुरु ने मानो यह संसार के मर्मस्थल हो वैसो घातीकर्म का नाश किया, उससे फागुन मास के कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन चंद्र विशाखा नक्षत्र मे आते सुपाश्वर् स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है ।

सुर-असुरो के इंद्र तत्काल वहाँ आकर सेवको की तरह प्रभु को देशना देने के लिये समवरण रचा । जगद्गुरु भगवंतने मोक्षद्वार की तरह पूर्वद्वार से उसमे प्रवेश किया, और सुरनरादिको ने भी यथायोग्य द्वार से प्रवेश किया । वहाँ पृथ्वी मे कल्पवृक्ष रुप प्रभुने चारसौ धनुष से अधिक एक कोश उँचे ऐसे चैत्यवृक्ष को प्रदक्षिणा करके और बाद मे अतिशयो से शोभित जैसे जगत्पति 'तीर्थय नमः' ऐसा कहकर उत्तम सिंहासन पर बैठे । पृथ्वीदेवी ने स्वप्न मे जैसा सर्प देखा था वैसा ही सर्प मानो दुसरा छत्र हो उस तरह वह प्रभु के मस्तक पर दिखाई दिया । वहाँ से लेकर वह प्रभु को दुसरे भी समवसरणो मे एक फनवाला, पांच फनवाला अथवा नौ फनवाला नाग हुआ है । प्रभु के बड़े प्रभाव से देवताओ ने दुसरी तीन दिशाओ मे भी प्रभु केजैसे ही प्रतिबिंब स्थापित किये । चतुर्विध संघ भी योग्य स्थानपर आकर बैठा, कारण इस सभा मे अंदर सामान्य मनुष्यो को भी अुचित स्थानमें बैठना जरुरी है । बाद मे सौधर्मकल्पके इंद्र ने प्रभु को प्रणाम करके मस्तकपर अंजली जोडकर निम्नलिखित स्तुति करना आरंभ किया-

“सभी भुवनकोषरुप कमल मे सूर्य समान और प्रथम अर्हंत ऐसे श्री भगवंत ! तुम्हे मैं नमस्कार करता हूँ, हे प्रभु ! अब विश्व का दुःख समाप्त हो गया है, और खुशी हुई है, कारण तीर्थपरावर्तन से यह विश्व मानो परावृत हो गया है ऐसा भास होता है । हे धर्मचक्री प्रकाशवान ऐसे आपके वचनरुप रत्नदंड से आज निर्वाणरुप वैताळ्यगिरी का द्वार खुलेगा । हे नाथ ! उन्नत ऐसे मेघ की तरह आपका दर्शन सभी जीवलोग के संताप को मिटाकर उन्हें हर्षित करने के लिये होता है । अनंत ज्ञानवाले हे भगवन् ! आपकी देशना के वचन सुनकर दरिद्र लंबे समय से द्रव्य पाता है, उसी तरह हम भी दीर्घकाल बाद प्राप्त करेंगे । प्रथम आपके दर्शन से कृतार्थ हुए हम अब अत्युक्तिवाले और मुक्ति के द्वार को प्रकाशित करनेवाले आपके देशनावचनों से आज हम विशेष कृतार्थ होंगे । अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत विर्य और अनंत आनंदमय स्वरुप वाले उसी तरह अतिशयो के पात्ररुप ऐसे आपको योगीस्वरुप को मैं नमस्कार करता हूँ । हे जगत्पति ! इस इंद्रादिक पद प्राप्ति दिखावा है ! क्योकि आपकी सेवा से ही आपके जैसा बना जा सकता है ।”

इस प्रकार स्तुति करके सुरपति विश्राम पाये, तब सर्वज्ञ भगवान ने धर्मदेशना देना आरंभ किया-

“इस लोग मे स्त्रि, पुत्र परिवार, द्रव्य और देहादिक सभी अपनी आत्मा से अलग है। फिर भी उनके लिये अनेक प्रकार के पापकर्म करके मूर्ख मनुष्य अपनी आत्मा को भवसागर के समुद्र मे डुबाता है। जहाँ पर प्राणी अपनी आत्मा से विसदृश होने देख न पाने के कारण अपने शरीर से भी अलग है, तो फिर धन बंधु वगैरेह सहायको का अलगपन कहने मे कुछ विशेष नहीं है। जो अपनी आत्मा, देह, धन और भाईयो से अलग देखता है, उस पुरुष को शोकरूप शंकु द्वारा पीडा कैसे होती है ? यहाँ पर अलगपन का भेद है वह परस्पर के लक्षण के विलक्षणपन से ही जानने योग्य है और वे अपनी आत्मा के स्वभाव को देहादिक भाव के साथ तुलना करते हुए साक्षात्पन मे दिखाई देता है। जो देहादिक पदार्थ है वे इंद्रियो से ब्राह्म है, और आत्मा तो सिर्फ अनुभव से ही गोचर होता है, उन्हे अकेलापन कैसे संभव है ? कभी शंका होती है कि आत्मा और देहादिक पदार्थों का अलगपन होता है तो देह को प्रहरादि होता है तब आत्मा को पीडा क्यों होती है ? उसके समाधान मे कहना है कि तुम्हारा कहना सच है, लेकिन जिनको आत्मा और शरीर मे भेदबुद्धि प्राप्त नहीं होती है, उनके लिये देह पर का प्रहार सिर्फ पीडा उत्पन्न करता है, लेकिन जो देह और आत्मा का भेद अच्छी तरह से अनुभव करके प्रतिपादन किया है, ऐसे मनुष्यो की आत्मा देह पर प्रहरादि होने से पिडित नहीं होता है। भेद को जाननेवाला ज्ञानी पुरुष पिता संबंध से दुःख आ जाता है तो भी पीडा नहीं पाता है और दुसरो मे अपनापन मानकर बैठनेवाला भेदज्ञान रहित अज्ञपुरुष एक सेवक संबंध से दुःख आ जाने पर घबरा जाता है। बिना लगाव से ग्रहण किया हुआ पुत्र भी अलग है और लगाव से ग्रहण किया हुआ सेवक भी पुत्र से अधिक हो जाता है। प्राणी जितने जितने संबंधो से अपने लगाव से प्रिय मानता है। उतने उतने शोक के खीले उसके हृदय मे गाढी जाती (पीडा होती) है। इसलिए इस जगत मे सभी पदार्थ आत्मा से अलग ही है, उस प्रकार जानकर अन्यत्व बुद्धि प्राप्त हुई है। ऐसा पुरुष कोई भी वस्तु के नाश होने से तत्त्वमार्ग मे मोह को प्राप्त नहीं होता है। तुंबिका के ऊपर किया हुआ लेप कुछ समय मे धीरे-धीरे घुल जाता है, ठीक उसी प्रकार ममतारूपी मृत्तिका के लेपन से निवारी दीक्षा को ग्रहण करता हुआ पुरुष उस तुंबिका की तरह थोडे समय मे शुद्धात्मा बनकर इस संसार के भवसागर को तैर जाता है।

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर बहुत लोग प्रभावित हुए और बोध प्राप्त पाये। उसमे से कुछ लोगो ने दीक्षा ली और कुछ श्रावक हुए। विदर्भ वगैरेह पंचान्वे गणधर हुए। उन्होंने प्रभु वाणी से द्वादशांगी की रचना की। प्रभु की देशना पूर्ण होने पर उनके चरण पीठ पर बैठकर विदर्भ गणधर ने धर्मदेशना देना शुरु की। विदर्भ गणधर भी जब देशना से विश्राम पाये तब सभी देवता तथा मनुष्य इत्यादि प्रभु को नमस्कार करके अपने गंतव्य स्थानो पर चले गये।

उन प्रभु के तीर्थ मे हुआ श्याम शरीरवाला, हस्ती के वाहन पर बैठने वाला, दो बाई भुजाओ मे बिल्व और पाश को धारण करनेवाला और दो वाम भुजाओ मे नकुल और अंकुश को धारण करनेवाला मातंग नाम की यक्ष सुपाश्वर्ध प्रभु के पास रहनेवाला शासन देवता हुआ। उसी तरह सुवर्ण जैसी कांतीवाली हस्ती के वाहन पर बैठने वाली, दो दक्षिण भुजा मे वरद और अक्षसूत्र धारण करने वाली, तथा दो वाम भुजाओ में त्रिशूल और अभय को रखनेवाली शांता नाम की यक्षणी सदा प्रभु के पास मे

रहनेवाली शासनदेवी हुई। बाद में सूर्य जिस तरह कमल का विस्तार करता है फैलाता है, उसी तरह भव्य प्राणीयो का प्रतिबोध विकास विस्तार करते हुए प्रभु वहाँ से अन्य गाव, नगरो इत्यादि में विहार करने चले गये। पृथ्वी पर विचरण करते हुए तीन लाख साधु, चार लाख तीस हजार साध्वी, दो हजार तीस चौदह पूर्वधर, नौ हजार अवधिज्ञानी, नौ हजार डेढसौ मनःपर्यवज्ञानी, इग्यारह हजार केवलज्ञानी, पंद्रह हजार तीन सौ वैक्रय लब्धिवाले, आठ हजार चारसौ वादललब्धिवाले, दो लाख सत्तावन हजार श्रावको और चार लाख तिरानबे हजार श्राविकारें-इस तरह श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु का परिवार हुआ।

केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद नौ मास और बीस पूर्वांगे न्यून ऐसे लाख पूर्व जाने के बाद प्रभु संमैतशिखर पर्वत पर आगमन किया। वहाँ पर सुर-असुरो ने जिसकी सेवा की ऐसे प्रभु ने पांच सौ मुनियों के साथ एक मास का अनशन किया। मास के अन्त में फाल्गुन मास की कृष्ण सप्तमी के दिन मूल नक्षत्र में चन्द्रके आने पर सुपार्श्वनाथ प्रभु उन मुनियों के साथ मोक्षपद को प्राप्त हुए। कुमार अवस्था में पांच लाख पूर्व, पृथ्वी का पालन करने में बीस पूर्वांग सहित चौदह लाख पूर्व और दीक्षापर्याय में बीस पूर्वांग में न्यून एक लाख पूर्व-इस तरह अंदाजित (सब मिला के) सुपार्श्वनाथ प्रभु ने बीस लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण किया। श्री पद्मप्रभ प्रभु के निर्वाण, बाद में नौ हजार करोड़ सागरोपम गये तब श्रीसुपार्श्वनाथ प्रभु का निर्वाणकाल हुआ। प्रभु की मोक्ष प्राप्ति के बाद अच्युत वगेरेह इंद्रोने उनके तथा दुसरे मुनिजनो का अग्निसंस्कार पूर्वक मोक्षपर्व का बड़ा महिमा किया।

इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि

श्री सुपार्श्वस्वामी चरित्रवर्णनो नाम पंचम सर्गः ॥५॥



श्री चंद्रप्रभस्वामि भगवान
नलीया तीर्थ, कच्छ, गुजरात



श्री चंद्रप्रभस्वामि भगवान
प्रभासपाटन तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

दमयंतिबहन महेशभाई स्वीमतवाले

गाम : सुरत, गुजरात



षष्ठ सर्ग

श्री चंद्रप्रभु चरित्र

चंद्र की कांति की भांति मोहरूपी बडे अंधकार का नाश करनेवाली और आनंद देनेवाली चंद्रप्रभ प्रभु की वाणी को वंदना करके भव्य प्राणीयो के मोहरूपी बडी हिमशिला का विनाश करने मे सूर्य का आतप वाले तेजस्वी चंद्रप्रभ प्रभुके चरित्र की कथा का वर्णन करता हूँ ।

घातकीखंड द्विप के प्रागविदेह क्षेत्र के आभूषणरूप मंगलावती विजय मे रत्नसंचया नाम की एक नगरी थी । भोगावती नगरी मे शेषनाग की तरह उस नगरी मे उग्र पराक्रमवाला और कमल की तरह लक्ष्मी के गृह(रूप)पद्म नाम का राजा था । दिव्य संगीत को करनेवाला गंधर्वों की और अप्सराओं को उल्लंघन करनेवाली वारांगनाओ का परिवार उसकी सेवा कर रहा था । मनोहर ऐसा दिव्य अंगराग से और पहने हुए रेश्मीवस्त्रो से उस के सभी अंगो पर विशेष प्रकार से लक्ष्मी शोभ रही थी । अहर्निश दुसरे राजा उसके शासन मे रहते थे । उसके पास बहुत बडा संग्रह था और उसकी प्रजा निरंतर स्वस्थ रहती थी । इस तरह उस महाराजा को कोई भी किसी तरह का लेक्षमात्र दुःख नहीं था । फिर भी तत्वेताओं मे श्रेष्ठ ऐसा वह राजा संसारवास में वैराग्य को भजता था । इसलिए केसरी सिंह की तरह गिरिराज का आश्रय ग्रहण करता है उसी तरह उसने संसार भेदन करने के लिये युगंधर गुरु के पास से दीक्षा ग्रहण की । विविध अभिग्रहों को धारण करनेवाले, मन का दमन करनेवाले, इंद्रियो का निग्रह करनेवाले और अपने शरीर मे भी आकांक्षा रहित जैसे वे मुनिराज ने बहुत लंबे काल तक चारित्र पालनकर और अंत मे बडे मूल्यो द्वारा महारत्न खरीद करता है उस तरह बीस स्थानको मे से कुछ स्थानको के आराधन द्वारा दुर्लभ ऐसा तीर्थकरनामकर्म उर्पाजन किया । काल व्यतीत करके आयुष्य को व्यतीत करके व्रतरूपी वृक्ष के प्रथम फलरूप वैजयंत नाम के वायुयान मे उन महातपस्वी उत्पन्न हुए ।

इस जंबूद्विप में भरतक्षेत्र के अंदर पृथ्वी के मुख के जैसी (चंद्रपुरी) चंद्रानना नामकी नगरी थी उसमें जल वैभव जो रत्नादिक उसको बाहर निकालकर समुद्र ने मानो पात्र सदृश निर्माण की हो ऐसी अनेक रत्नोवाली हाट की श्रेणी शोभा दे रही थी । पृथ्वी पर उतरे हुए संध्याकाल के बादल को ऐसे रंग-बिरंगी तरह तरह के आकृतिवाले उसमे घर थे, और उसके उद्यान के भीतर मस्तक से चरण तक कंपरहित कायोत्सर्ग करके रहे हुए चारण मुनिओ, पुरुषाकृतिवाला मानो पर्वत हो ऐसा प्रतिष्ठित होते थे । वहाँ रात्रि मे वासगृह मे पडे हुए अपने प्रतिबिंबो द्वारा 'यह कोई स्त्रि है ?' ऐसी भ्रमित होकर स्त्रियाँ अपने पति पर विलाप (गुशा) करती थी । उस नगरी मे समुद्र की तरह जिसे धारण नहीं कर सकती है ऐसे पुरुषो मे शिरोमणि और अपने सैन्य से पृथ्वी की आच्छादित करनेवाला महासेन नाम का राजा था । उसका प्रताप उसके पराक्रम का परम भक्त होकर रहता था और चाकर की तरह पृथ्वी को

विजय करने का हमेशा काम करता था। उसके शासन का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता था। ऐसा वह महासेन राजा पृथ्वी पर राज्य करता था। उस समय सभीजन जन्म से परधन का हरण करने में विश्राम कर रहे थे। उस अधीश्वर महाराज का अंतःकरण समुद्र के मध्य की तरह लब्ध नहीं होता था। वह चंद्र के जैसा अति आह्लादक था और कल्पवृक्ष के जैसा वह दानेश्वरी था। गंगातट पर हंसनी क्रीडा करती है उस प्रकार उसके कपाट जैसे विशाल वक्षःस्थल पर हमेशा लक्ष्मी अनन्य मनसे खेलती थी।

महाराजा महासेन की अति मनोहर मुखलक्ष्मी द्वारा चंद्र का विजय करनेवाली और संपूर्ण लक्ष्मणोवाली लक्ष्मणा नाम की पत्नि थी। वह सुंदर स्त्रि सभी अंगों में अतुल्य लावण्य तथा रूप को धारण करती थी और दृष्टि से उसी तरह वाणी से अमृत को ही बरसाती थी। अतिमंद मंद चलती वह रमणी, पैर-पैर प्रफुल्लित स्थलकमलो की आरोपण करती हो उस तरह लगती थी। कुटिलता मात्र उसकी भुकुटी में और गति में थी लेकिन चित में नहीं थी, और तुच्छता मात्र उसके मध्य भाग कटिप्रदेश में थी, लेकिन बुद्धि संपत्ति में नहीं थी। उसका बड़ा शीलगुण शेनापतिके जेशा सर्वातिशायी गुणों को सेना की तरह अलंकृत करता था।

इस ओर वैजयंत विमान में रहे हुए पद्मराजा का जीव तैतीस सागरोपम के आयुष्य को पूर्ण करके वहाँ से च्यवनकर के चैत्र मास की कृष्ण पंचमी के दिन चंद्र अनुराधा नक्षत्र में आते ही लक्ष्मणादेवी की कोख में अवतरण हुआ। उस समय सुख से सो रहे लक्ष्मणादेवी तीर्थकर जन्म की जानकारी देनेवाले चौदा महास्वप्न को देखा और रत्नगर्भा पृथ्वी की तरह रत्नों के सर्वस्व ऐसे उज्ज्वल अलक्षित गर्भ को लक्ष्मणादेवी ने सुख से धारण किया। अनुक्रम में पौष मास की कृष्ण द्वादशी के दिन चंद्र अनुराधा नक्षत्र में आने पर उस महादेवी ने चंद्र के चिन्हवाला चंद्रवर्णी पुत्र रत्न को जन्म दिया। उस समय आसन कंपन होने से आठवे अर्हत् का जन्म हुआ जानते ही छप्पन दिक्कुमारीयोंने आकर सुतिकर्म किया। बाद में जन्मस्नान करने की इच्छा रखनेवाला सौधर्मेन्द्र देवताओं के परिवार सहित वहाँ आकर प्रभु को मेरुपर्वत के शिखर पर ले गया। वहाँ अतिपांडुकबला नाम की शिला पर प्रभु को उत्संग में लेकर इंद्र रत्नसिंहासन पर बैठा, वहाँ अच्युत वगेरेह तिस्सठ इंद्रोने हर्ष उल्लास के साथ अनुक्रम से प्रभु को स्नान करवाया। बाद में इशान इंद्र प्रभु के अंकरूप पर्यंक (गोद) में लेकर बैठा। बाद में सौधर्मेन्द्र वृषभ के शृंग में उच्छलते जल से प्रभु को स्नान करवाया और दिव्य अंगराग, नेपथ्य और वस्त्रों से भगवंत की भक्तिपूर्वक अर्चना करके इस प्रकार स्तुति करना आरंभ किया।

हे प्रभु! आकाश को सहारा देने की बुद्धि से पैर उपर उठाकर रहनेवाले टीटेडा पक्षी की तरह अनंत गुणवाले ऐसे आपकी स्तुति करने में जो मैं प्रवृत्त हुआ हूँ वह पंडितों के हास्य का पात्ररूप हूँ। तो भी आपके प्रभाव से व्यापक बुद्धि को प्राप्त हुआ मैं आपकी स्तुति करने में समर्थ हो सकता हूँ, कारण एक लेशमात्र बादल का भाग पूर्व दिशा के पवन के संगम से सभी दिशाओं में फैल जाता है। उसी प्रकार

हे प्रभु ! भव्य प्राणीयो के देखने मात्र से अथवा ध्यान करने मात्र से आप उनके कर्मरूप पाश के भेदन के लिये कोई अपूर्व शस्त्ररूप बन जाते हो । सूर्य से कमल का अभ्युदय होता है उसी प्रकार विश्व के अंधकार का भेदन करनेवाले ऐसे अपूर्व सूर्यरूप आपके जन्म से आज जगत में शुभ कर्म का उदय हुआ है । चंद्र के किरण मात्र गिरने से जिस तरह शोफालिका के पुष्प झड़ जाते हैं उसी प्रकार आपके दर्शन मात्र से मेरा अशुभ कर्म अपना फल दिये बिना ही गल जायेगा । विश्व को अभय देनेवाला आपका दीक्षाधारी स्वरूप तो एक ओर रह गया, लेकिन हे भगवन् ! आप इस बाल्यावस्था की मूर्ति से भी प्राणीओ के दुःख हर लेते हो । वन के वृक्षों का उन्मूलन करने के लिये उन्मत गजेन्द्र आता है उसी तरह आप संसार जिसका मूल है ऐसे सभी कर्मों का भेदन करने के लिये आप अवतरित हुए हो । जिस तरह मुक्ताहार इत्यादि मेरे हृदय का बाह्य आभूषण है उसी तरह जगत के पति ऐसे आप मेरे हृदय के आंतर भूषण हो ।

इस प्रकार की स्तुति करके शक्रेंद्र ईशानेंद्र के पास से प्रभु को लिया, और लक्ष्माणादेवी के पास यथोचित स्थान पर स्थापन किया । सुबह महाराजा महासेन ने बड़ा उत्सव किया, कारण अर्हत् भगवान का जन्म दुसरे स्थान पर भी उत्सव होता है तो अपने घर उत्सव होता है तो कौनसी बड़ी बात है क्या कहना ! प्रभुगर्भ में थे तब उनकी माता को चंद्रपान करने की इच्छा हुई थी उसी तरह उनकी चंद्र जैसी कांति थी इसलिए पिता प्रभुने चंद्रप्रभ इस नाम से बुलाने लगे । चंद्र जैसी गौरप्रभा के भरपुर मंडल से मनोहर ऐसा बालप्रभु का रूप मानो वैजयंत विमान में ही रहते हो उस तरह शोभा देता था । वृक्षलता के जैसे धात्रीयों के कर पल्लवों को आकर्षित करते प्रभु गजेन्द्र के शिशु की तरह प्रतिदिन बढ़ने लगे । तीन ज्ञानको धारण करनेवाले फिर भी प्रभु, देवस्वरूप न होकर अपनी बाल्यावस्था मानो स्वेच्छा से प्राप्त हुई हो उस प्रकार मुग्ध दिखने लगे । जिस प्रकार पथिक अति रसिक बातें करवाकर मार्ग का प्रवास करता है उसी प्रकार चंद्रप्रभ प्रभुने विविध क्रीडाओं से शिशुकाल में ही कई कार्य किये ।

डेढसौ धनुष उन्नत शरीरवाले प्रभु बाल्यस्वरूप सरिता (नदी) को पार करके स्त्रि वर्ग को वश में करने के लिये कारणरूप यौवन को प्राप्त हुए । अपने भोगकर्म को जानकर मातापिता की आज्ञा पालन के लिये प्रभु ने अपने योग्य ऐसी राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया । दीक्षा लेने के उत्सुक ऐसे प्रभु जन्म से ढाई लाख पूर्व के बाद मातापिता की प्रार्थना से, अध्ययन करनेवाले की तरह अनध्याय का पालन करता है उस तरह चौबीस पूर्वांग युक्त ऐसे साढ़े छे लाख पूर्व तक पृथ्वी का पालन किया । बाद में प्रभु के जानने पर भी नियति के अनुसार निश्चित समय पर ज्योतिषीयों की तरह लोकांतिक देवताओं ने आकर प्रभु को दीक्षा के समय की जानकारी दी । कोई धनवान दीक्षा लेना चाहे और दान दे उसी तरह दीक्षा लेने की इच्छा रखनेवाले ऐसे प्रभुने उसी समय से सांवत्सरिक दान देना आरंभ किया । साल के अंत में जिनके आसन चलित हुए हैं ऐसे इंद्रोंने आकर सेवकों की भांति प्रभु का दीक्षाभिषेक किया । बाद में शोभा से मनोहर ऐसी मनोरमा नाम की शिबिका पर नर, सुर,

असुर तथा इंद्रोके परिवार के साथ प्रभु आरुढ़ हुए । लोगों ने स्तुति की, गाये और हर्ष से देखे हुए ऐसे भगवान सहस्राम्र वन नाम की उद्यान मे आये । शिबिका पर से उठकर तीन रत्नो को (ज्ञान, दर्शन, चरित्र) ग्रहण करने की इच्छा वाले फिर भी प्रभु ने रत्नालंकारादि का त्याग किया, और पौष मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन अनुराधा नक्षत्र मे पिछले प्रहर मे छठ का तप करके एक हजार राजाओ के साथ दीक्षा ग्रहण करके तुरंत मनुष्यक्षेत्र मे रहते हुए प्राणीयों के मनोद्रव्य को प्रकाशित करनेवाला मनःपर्यव नाम का चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

दुसरे दिन पद्मखंड नगर मे सोमदत्त राजा के घर प्रभु परम अन्न का पारणा किया । देवताओने वहाँ वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट किये । राजाने प्रभु के चरणो से अंकित पृथ्वी पर रत्नपीठ करवाये । सूर्य के तेज को पराभव करनेवाले, बड़े हिम से भी पराभव नहीं पानेवाले, ओस के जलकणो को बिखरने वाले, पवनो द्वारा नहि कंपनेवाले, सरोवर के जल को हिममय कर देनेवाले, हेमंत ऋतु संबंधी अर्द्ध रात्रि के पवन से भी प्रतिमा को अखंडित रखनेवाला, मानसेरहित व्याघ्रसिंहादिक दुष्ट हिसंक प्राणीयों से भयंकर ऐसे अरण्य मे और बहुत श्रावकोवाले नगर मे बराबर गति और स्थिति रखनेवाले, एकाकी ममता रहित, मौनधारी, निर्गुण और ध्यान मे तत्पर ऐसे प्रभुने छद्मअवस्था मे तीन मास तक विहार किया । विहार करते हुए प्रभु फिर से सहस्राम्र वन मे आये । पुन्नाग वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके रहे । दुसरे शुक्ल ध्यान के अंत मे रहे हुए प्रभु की शिशिरऋतु वहाँ (बादमें) मे व्यतिक्रम्या बाद मे जैसे हिम का विनाश होता है ठीक उसी प्रकारसे उनका घातीकर्म का विनाश हो गया । फाल्गुन मास की कृष्ण सप्तमी के चंद्र अनुराधा नक्षत्र मे आनेपर छठ तप जिन्होंने किया है उन प्रभु को उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । तुरंत सुर-असुरो के इंद्रोने योजन प्रमाण क्षेत्र मे प्रभु को देशना देने के लिये समवसरण रचा । देवताओने संचार किये हुए नौ कमलो के चरणन्यास से पवित्र करते हुए ऐसे प्रभु ने उसमे पूर्व द्वार से प्रवेश किया । परंपरा की अर्हत की स्थिती का पालन करते हुए ऐसे प्रभु अष्टाहरसौ धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके 'तीर्थाय नमः' ऐसी वाणी का उच्चारण करते रत्नसिंहासन पर पूर्वाभिमुख की ओर बैठे । बाद मे सुर, असुर और मनुष्यसहित चार प्रकार का संघ योग्य द्वार से प्रवेश करके यथोचित स्थान पर बैठा । बाद मे इंद्र ने पांच अंगो से पृथ्वी का स्पर्श करके भगवंत को प्रणाम करके भक्ति के वेग से निम्नलिखित स्तुति करना आरंभ किया ।

“हे प्रभु ! सुर, असुर और नरो ने मस्तक पर धारण किया हुआ । तीन लोक का चक्रवर्ती ऐसा आपका शासन जगत मे विजय को प्राप्त होता है । हे भगवान ! प्रथम तीन ज्ञान को धारण करनेवाले बाद मे मनःपर्यवज्ञान को धारण करनेवाले और अधुना अब केवलज्ञान वाले ऐसे आप हमे दिनोदिन अधिकाधिक दिखाई दिये हो । हे नाथ ! मार्ग के वृक्षो की छाया की तरह विश्व का उपकार करनेवाला आपका उज्ज्वल केवलज्ञान की जय हो ! हे भगवान् जहाँ तक सूर्योदय हुआ नहीं है वहाँ तक ही अंधकार रहता है, जहाँ तक केसरीसिंह आता नहीं है वहाँ तक ही गजेन्द्र मद मे अंधे रहते हैं। जहाँ तक

कल्पवृक्ष प्राप्त नहीं होता तब तक ही दारिद्र्य रहता है । जहाँ तक वृष्टिकारक मेघ बरसता नहीं है तब तक ही जल की कमी रहती है और जहाँ तक पूर्ण चंद्रोदय होता नहीं तब तक दिन का ताप रहता है, उसी तरह आप दिखाई नहीं देते हैं वही तक जगत में कुबोध रहता है जो प्राणी नित्य आपको देखते हैं सेवा करते हैं और ध्यान करते हैं उनका मैं हर्ष से लंबे समय तक अनुमोदन करता हूँ । हे प्रभु ! हाल में आपके प्रसाद से आपके दर्शन का फल उत्तम सम्यक्त्व मुझे यावज्जिवित निश्चित रहने रूप हो ।”

इस तरह स्तुति करके इंद्र मौन रहे बाद में जगद्गुरु ने मेघ के जैसे गंभीरवाणी से इस प्रकार से देशना देना आरंभ किया ।

“अनंत क्लेशरूपी तरंगों से युक्त इस भवसागर पल-पल में सभी प्राणीयों को उपर नीचे और बाये दाये फेका करता है । जिस तरह अशुचि स्थान में क्रीड़ाएँ किंडे प्रिति करते हैं उसी तरह प्राणी इस क्षणिक शरीर पर प्रीति करते हैं, और वह शरीर उन्हीं को एक बंधनरूप हो जाता है । रस, रुधिर, मांस, चरबी, अस्थि, मज्जा, वीर्य, आतडीयाँ और विष्टा वगैरेह अशुचि के स्थानरूप इस देह में शुचि किस तरह संभव है ? नौ द्वारों में से झरके दुर्गंधित रस के झरते से रौंदा हुआ यह देह जो पवित्रता संकल्प करना, वह ही मात्र बड़े मोह का विलास है । वीर्य और रुधिर से उत्पन्न हुआ, मलिन रस से बड़ा और गर्भसे जरायु (अमाल) से ढका हुआ यह देह पवित्र कैसे होगा ? माता ने खाया हुआ अन्न से उत्पन्न हुआ और रस नाडी में से होकर आये हुए रस का पान करके वृद्धि पाया हुआ शरीर पर कौन पुरुष इस शरीर को पवित्रता मानेगा ? दोष, धातु और मल से भरा, कृमि और गंदुपद के स्थान पर तथा रोगरूपी सर्प के गणोंद्वारा खाये हुए इस शरीर को कौन शुचि कहेगा ? स्वादिष्ट अन्न, पान, क्षीर, इक्षु और दुसरे घृतादि विगय पदार्थ भी भोजन करने के बाद विष्टारूप में परिवर्तित हो जाता है वह शरीर कैसे शुचि कह लायेगा ? जिसमें विलेपन किया सुगंधित अकर्म तत्काल मल बन जाता है, उस शरीर में किस तरह शौचमय माना जायेगा ! सुगंधित तांबुल का आस्वादन करके सोया हुआ मनुष्य सबेरे उठकर अपने मुख के दुर्गंध की जुगुप्सा करता है वह शरीर शुचि कैसे माना जायेगा ? सुगंधी, पुष्प, धूप और पुष्पमालादिक स्वयं सुगंधित है, वे भी जिसके संग से दुर्गंधता को पा लेते हैं, वह काया किस तरह पवित्र मानी जाय ? मांजा हुआ, विलेपन किया हुआ और सेंकड़ों घड़ों से धोया हुआ । यह शरीर लेकिन यह अशुचि देह कलाल (शराब) के घड़े की तरह पवित्रपन को प्राप्त नहीं होता है । मृत्तिका, जल, अग्नि, पवन और सूर्यकिरणों के स्नान द्वारा जो इस देह का शौच कहते हैं । ऐसे गतानुगतिक लोगों ने सही तरह से छिलके कुटे हैं । इसलिये ऐसे अशुचि शरीर द्वारा मात्र मोक्षफलोत्पादक तप करना, कारण बुद्धिमान लोगों ने स्वारे समुद्र में से रत्न की तरह असार में से सार का उद्धार करना ही उत्तम है ।”

इस तरह प्रभु की धर्मदेशना से बहुत से प्राणीयों ने प्रतिबोध प्राप्त किया और हजारों ने दीक्षा ली ।

भगवान चंद्रप्रभु को दत्त वगैरेह तिरानबे गणधर हुए, उन्होंने उत्पादादि त्रिपदी द्वारा

द्वादशांगी की रचना की। प्रभु की देशना के अंत में चरणपीठ पर बैठकर दत्त गणधर ने प्राणीयों को बोध देनेवाली देशना देना शुरू किया। संगीत पूर्ण होनेपर युवान नागरिकों की चरह मनुष्य देवता वगैरेह उस देशनाके अंत में अपने-अपने स्थानों पर गये। उनके तीर्थ में हंस के वाहन वाला दक्षिण भुजा में वत्स और वाम भुजा में मुद्गर धारण करनेवाला विजय नाम का यक्ष और हंस के वाहनवाली पीले अंगवाली दो दक्षिण भुजा में खड्ग और मुद्गर धारण करनेवाली तथा दो वाम भुजा में फलक और फरसी को रखनेवाली भूकुटी नाम की देवी ये दोनों भगवन्त के शासन देवता बने।

हमेशा वे दोनों शासनदेवता जिनके सान्निध्य में रहे हुए हैं ऐसे सभी अतिशयो के पात्र ऐसे चंद्रप्रभप्रभु आकाश में चंद्र की तरह पृथ्वी पर विहार करने लगे, और ढाई लाख साधु, तीन लाख अस्सी हजार साध्वी, दो हजार चौदहपूर्वी, आठ हजार अवधिज्ञानी, आठ हजार मनःपर्यवज्ञानी, दस हजार केवलज्ञानी, चौदह हजार वैक्रियलब्धिवाले, सात हजार छैसो वादलब्धिवाले, ढाई लाख श्रावक और चार लाख इक्यानवे हजार श्राविका-इस प्रकार प्रभु का परिवार हुआ। चौबीस पूर्वांग और तीन मास वर्जित एक लाख पूर्व विहार करके प्रभु संमेलगिरी पर आये। वहाँ पर एक हजार मुनियों के संग प्रभु ने अनशन व्रत ग्रहण किया। सुर-असुरों सेवा में प्रभु के साथ एक मास तक रहे। बाद में सभी योगों का निरोध करके बिना कंपित ध्यान को प्राप्त हुए प्रभु के भवोपग्राही चार कर्म तत्काल क्षीण हो गये। भाद्रपद मास की कृष्ण सप्तमी के दिन चंद्र श्रवण नक्षत्र में आने पर चंद्रप्रभ प्रभु उन मुनिओं के साथ परमपद को प्राप्त हुए।

ढाई लाख पूर्व कुमार अवस्था में, चौबीस पूर्वासहित साडे छै लाख पूर्व राज्यस्थिति में और चौबीस पूर्वांग रहित एक लाख पूर्व व्रत पालन में इस तरह सब मिलकर दस लाख पूर्व का आयुष्य प्रभु ने निर्गमन किया। सुपार्श्व स्वामी के निर्वाण बाद नौ सो कोटि सागरोपम बिते तब श्री चंद्रप्रभप्रभु निर्वाणपद को प्राप्त हुए। श्री चंद्रप्रभप्रभु मोक्ष में जाने के बाद सुरेश्वरों ने उनके और दूसरे मुनियों का विधिवत अङ्घ्रिसंस्कार किया और फिर वे देवलोक में गये।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि

श्री चंद्रप्रभस्वामिचरित्रवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥



श्री सुविधिनाथ भगवान

सूरत तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

निरव जयंतिलाल शाह खीमतवाले

गाम : सुरत, गुजरात

सप्तम सर्ग

श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ) चरित्र

पुष्पो की माला की तरह तीनो जगत के मस्तक पर वहन करने योग्य निर्मल और पापनाशक श्री पुष्पदंत प्रभु के निर्मल शासन को वंदन करता हूँ। नौवे तीर्थकर श्री पुष्पदंत प्रभु के निर्दोश चरित्र को उनके प्रभाव से प्रभावित समर्थ बुद्धिवान हुआ मैं किर्तन करने लिये तत्पर होता हूँ।

पुष्करवर नाम के श्रेष्ठ द्वीपादिके पूर्व विदेह मे पुष्कलावती विजय मे पुंडरीकिणी नाम की एक नगरी थी। महा हिमवत पर्वत पर महापद्म द्रह के जैसा गंभीर महापद्म नाम का वहाँ राजा था। उसने जन्म से ही स्विकार किया हुआ धर्म बाल्यावस्था तथा यौवनावस्था मे भी शरीर को शोभा के साथ उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त कर रहा था। ब्याज से आजिविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य जैसे ब्याज बिगर पडे धन से खेद पाता है उसी तरह विरति बिना का एक मुहूर्त मात्र जाने पर भी वह राजा खेद प्राप्त करता था। जैसे पथिक रास्ते मे आनेवाली नदी मे उतरते उतरते भी जलपान कर लेता है उसी प्रकार वह राजा भी धर्म काम करते-करते राज्य का कामकाज भी करता था। उत्तम बुद्धिवाला वह राजा प्रमादरहित अपने उत्तम कुल की तरह निर्मल श्रावकधर्म का अच्छी तरह चिरकाल तक पालन करता था। संतोष मे ही निष्ठावाला फिर भी राजा धर्म के कार्य मे संतोष प्राप्त नहीं करता था और दुसरो के अल्प धर्म करनेवाले को अपने से भी अधिक मानता था।

इस प्रकार वर्ताव करता वह राजा ने युद्ध का अंत पाने के लिये दिव्य अस्त्र की तरह संसार का पार पाने की इच्छा से जगन्नाथ गुरु से दीक्षा ग्रहण करके। संखेलना मे माननेवाला पुरुष जिस तरह मरण तक अनशन का पालन करता है उसी तरह श्रावक धर्म का निर्वाह करने के पश्चात राजा दृढ होकर महाव्रत का पालन करने लगा। अंत मे बहुत दुस्तप ऐसे एकावली वगैरेह तप द्वारा करके और अर्हत प्रभु की भक्ति करके उसने ऊँचे प्रकार के तीर्थकरनाम कर्म उपार्जन किया। इस तरह के आचरणो से अपना आयुष्य निर्गमन करके वह राजर्षि वैजयंत नाम के विमान मे महर्दिक देवता हुआ।

इस जंबूद्वीप के बारे मे दक्षिण भरताद्व में संपति द्वारा बडी कांकंदी नाम की एक नगरी है। वहाँ के महलो के भीतर मोतीयों की भगलरे, मनस्विनी स्त्रियों को वश मे करने लिये मानो कामदेवकी निर्मल मालाए हो ऐसी शोभा दे रही थी। वहाँ के देवमंदिरो में होनेवाला चार प्रकार का संगीत खेचरों की स्त्रियों की गति को स्तंभन करने के लिये मंत्ररुप हो जाता था। प्रफुलित कमलो से भरपुर और निर्मल जलवाले वहाँ के सुंदर जलाशय स्पष्ट नक्षत्र संयुक्त शरदऋतु के बादलवाले आकाश की शोभा का अनुकरण हो रहा था। उस नगरी मे याचक लोग गुरु की तरह दूर से दाताओ के सामने जाकर पाद्य पात्र देते थे, और वे योग्य द्रव्य देने के द्वारा प्रसन्न करते थे। उस नगरी मे पृथ्वी को मानो कंठाभरण हो और लक्ष्मी द्वारा मानो ग्रैतेयकवासी देवता हो ऐसा सुग्रीव नाम का राजा था। उसकी आज्ञा नगर, अरण्य, सागर और पर्वतो के बारे मे किसी स्थान पर मंत्र सिद्ध आयुध की तरह रुकती नहीं थी। पर्वत की तरह उससे उत्पन्न हुई नितिरुप सरिता (नदि) कीर्तिरुप कल्लोलवाले जल को वहन करती हुई समुद्र तक फैली हुई थी। सभी राजाओं में शिरोमणी उस राजा का यश राशिरुप सागर दुसरे सभी

भूभृतो (राजा के पक्ष में पर्वतो) की फैली हुई कीर्तिरूपी सरिताओं का ग्रास कर लेता था ।

सभी दोषो रहित, निर्मल गुणो से अभिराम और सभी रमा (स्त्रि)ओ में शिरोमणी रामा नाम की एक पत्नि थी । गगन में चंद्रकांति की तरह स्वाभाविक सौंदर्य की भूमिरूप और दृष्टिओ को आनंद प्रदान देनेवाली इस भूतल पर वह एक ही स्त्रि थी । दोनों पक्षों से शुद्ध शोभायमान और मधुर स्वरवाली वह रानी राजहंसीनी की तरह हमेशा पति के मानसरूपी सरोवर में रहती थी । उसके अनुपम रूप से पराजय प्राप्त रति रतिको पाती नहीं और प्रीति प्रीति को पाती नहीं । परस्पर अनुरूप ऐसे उस राजा सुग्रीव और रानी रामा का समय रोहिणी और चंद्र की तरह अनेक प्रकार की क्रीड़ा करके समय व्यतीत कर रहे थे ।

यहाँ वैजयंत विमान में रहे महापद्म राजा का जीव तैंतीस सागरोपम तक का आयुष्य भोग कर फाल्गुन मास की कृष्ण नवमी के दिन चंद्र मूल नक्षत्र आने पर वहाँ से च्यवनकर के रामादेवी के कोख में अवतरित हुआ । उस समय देवी ने तीर्थंकर के जन्म को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न मुख में प्रवेश करते दिखाई दिये । हिमालय में से निकलती गंगा नदी अपने अंदर क्रीड़ा करते गजेन्द्र के बालक को धारण करती है उसी तरह रामादेवी ने जगत के आधारभूत प्रभु को गर्भ में धारण करने के बाद पूर्ण समय होने पर माघ मास की कृष्ण पंचमी के मूल नक्षत्र में आते ही मगर के चिन्ह युक्त श्वेत वर्णवाले एक पुत्र रत्न को देवी ने जन्म दिया । उस समय भोगंकरादि छप्पन दिक्कुमारीयों ने आकर प्रभु तथा प्रभु की माता का सुतिकर्म किया । बाद में सौधर्म कल्प का अधिपति अभियोग्य देवता की तरह आकर प्रभु को ग्रहण किया और भक्ति से मेरुपर्वत के शिखर पर ले गया, और उसकी चूलिका पर दक्षिण की ओर पांडुकबला नाम के शिलापर रहे हुए सिंहासन पर प्रभु को गोद में रखकर बैठा । वहाँ अच्युत भक्तिवाले अच्युतादिक तीरसठ इन्द्रो ने तीर्थ जलसे प्रभु को स्नान करवाया । बाद में पहरेदार की तरह अपना पहरा समाप्त होने पर बाद में अपनी रक्षणीय वस्तु दूसरे पहरेदार को सौंपता है, उसी तरह सौधर्मेन्द्र ईशानपति को प्रभु सौंप दिये । ईशानपति के उत्संग में रहे हुए प्रभु को वृषभ के शृंग में से निकले सुगंधित जल से स्नान करवाया, बाद में अंगरागो से अर्चा करके तथा आभूषणादिक से अर्चना और आरती उतारकर शक्रेंद्र प्रभु की स्तुति करने लगा ।

धर्मरूपी हवेली के दृढ स्तंभरूपी, सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत के द्रहरूप और जगत को आनंद देनेवाले मेघरूप ऐसे हे त्रिभुवन पति ! आप की जय हो हे जगदीश ! आपके एक अलग ही प्रकार के अतिशय को हम क्या कहें जो आपके माहात्म्यगुण से खरीदे हुए यह तीनलोक आपके दासपन को पाये हैं । जिस तरह आपके दासपन से मैं प्रकाशित हूँ-शोभा देता हूँ, उसी तरह मेरे स्वर्गराज्य में भी मैं शोभा नहीं पाता हूँ । कारण चरण के कडे में जड़ा हुआ रत्न शोभा देता है वैसा पर्वत पर गिरा हुआ कड़ा शोभा नहीं देता है । मोक्ष में जाने की इच्छा रखनेवाले आप, वैजयंत विमान मोक्ष स्थान से नजदीक फिर भी मोक्ष के लिये भ्रान्ति में भटकता ऐसे लोगों को मार्ग दिखलाने के लिये ही आप यहाँ आये हैं । इस भरतक्षेत्र रूप गृह के आप एक लंबे समय तक के देवता हैं, इसलिए आपके आने पर गृह धर्म, मे गृहस्थ की तरह आज निश्चितरूप से आनंद पाये । हे विश्वनाथ ! यह सर्व देवताओं का समूह, आपके अतिशायी रूप के अंदर अवतार को पा लेते हैं, अर्थात् वे सभी का रूप आपके रूप में समा जाता है । चंद्र की ज्योत्सना जैसी आपकी कांति के बहाव स्पृहा सहित लीन हुए हमारे लोचन आज लंबे अंतराल

के बाद अच्छे नसीब के कारण चकोर पक्षी का आचरण कर रहे हैं। वासगृह में या सभा में बैठते उठते, चलते ऐसे मेरे सभी अर्थ की सिद्धि को देनेवाले आपके नामरूप मंत्र का स्मरण करे।”

इस प्रकार की स्तुति करके इंद्र ने प्रभु को लेकर रामादेवी के पास जिस स्थिति में थे उस स्थिति में स्थापन किया। प्रभु जब गर्भ में थे तब उनकी माता सभी विधि में कुशल हुए थे। इससे ‘सुविधि’ और पुष्प के दोह दसे प्रभु के दांत आये थे इसलिए ‘पुष्पदंत’ इस तरह प्रभु के दो नाम मातापिता ने बड़े महोत्सव से शुभदिन पर नामकरण किया। जन्म से मेष संक्राति के दिवस की तरह प्रभु बड़ा अंतर दिखाते हुए अनुक्रम में बढ़ने लगे। मानो मूर्तिमान क्षीरसागर हो ऐसे, सौ धनुष ऊँचे श्वेत अंगवाले प्रभु रूप से पवित्र ऐसे यौवन को प्राप्त हुए। प्रभु संसार से विरक्त थे। फिर भी पिता के अत्यंत आग्रह से शोभा द्वारा लक्ष्मी का विजय करनेवाली राजकन्याओं से विवाह किया। जन्म से पचास हजार पूर्व जाने के बाद राज्य में लुब्धता नहीं फिर भी पिता के दक्षिण्यता के कारण राज्यभार ग्रहण किया। बाद में अष्टाईस पूर्वांग सहित उतना ही काल (पचास हजार पूर्व) उन्होंने विधि द्वारा राज्यकृद्धि का पालन किया। बाद में जब प्रभुने व्रत लेने की इच्छा कि तब मानो मीठा बोलनेवाले हो ऐसे लोकांतिक देवताओं ने आकर व्रत के लिये प्रभु को प्रेरित किया। बाद में किसी भी प्रकार की कामना रहित ऐसे प्रभु ने चिंतामणि की तरह एक वर्ष तक याचको को इच्छानुसार दान दिया, सांवत्सरिक दान के अंत में देवताओं ने जन्म काल की तरह प्रभु का विधि से दीक्षाभिषेक किया। सुरअसुरों से घिरे हुए प्रभु सूरप्रभा नाम की शिबिका पर बैठकर सहस्राम्र वन में गये। वहाँ मार्गशिर-मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के मूलनक्षत्र में तीसरे पहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने छठ तप करके दीक्षा ग्रहण की।

दूसरे दिन श्वेतपुर नगर में पुष्कराजा के घर पर प्रभु ने परमअन्न से पारणा किया। वहाँ देवताओं ने वसुधारादिक पांच दिव्य प्रगट किये। पुष्पराजा ने प्रभु के चरण स्थान पर एक रत्नपीठ बनवाई। अकेले, ममता, रहित, संग रहित और परीषद् को सहन करते ऐसे प्रभु ने चार मास तक छद्मस्थरूप से विहार किया। फिर से घूमते-घूमते सहस्राम्र वन में आये। वहाँ मालुरवृक्ष के नीचे प्रतिमारूप खड़े रहे। बाद में क्षपकश्रेणी पर आरुढ़ होकर अपूर्वकरण के क्रम से कार्तिक मास की शुक्ल तृतीया के दिन मूलनक्षत्र में प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तत्काल सुरअसुरों ने आकर समवसरण रचा। प्रभु ने पूर्व द्वार से उसमें प्रवेश किया। वहाँ मध्य में रचे हुए बारहसौ धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष को सभी अतिशयो से शोभित ऐसे प्रभु ने प्रदक्षिणा की, और ‘तीर्थाय नमः’ ऐसा कहकर प्रभु सिंहासन पर पूर्वाभिमुख आरुढ़ हुए। अब देवताओं ने शेष तीन दिशाओं में प्रभु के रूप स्थापित किये। बाद में देवादिक पर्षदा योग्य स्थानों पर आकर बैठी, बाद में शक्र इंद्र ने प्रभु को प्रणाम करके निम्नलिखित स्तुति का आरंभ किया।

“हे प्रभु ! आप वितराग हैं तो आपके हाथ पैर राग (लाल) क्यों हैं ? आपने यदि कुटिलता को छोड़ दिया है तो आपके केश कुटिल (वक्र) क्यों हैं ? आप प्रजा के गोप (पालनकर्ता) हैं तो आपके हाथ में दंड क्यों नहीं है ? आप निःसंग हैं तो विश्व के नाथ के कैसे कहलाते हो ? यदि आप ममता रहित हैं तो सभी पर दया क्यों दिखाते हो ? यदि आपने अलंकार मात्र का ही त्याग किया है तो आपको वे रत्न (ज्ञान, दर्शन, चरित्र) क्यों प्रिय हैं ? यदि आप सभी को अनुकूल हो तो मिथ्यादृष्टि पर आप क्यों द्वेष करते हो ? यदि आप स्वभाव से सरल हो तो पूर्व में छद्मस्थरूप क्यों रहे थे ? यदि आप

दयालु हैं तो कामदेव का निग्रह क्यों किया ? यदि आप निर्भय हैं तो संसार से क्यों भयभीत होते हो ? यदि आप उपेक्षा करने में तत्पर हो तो विश्व के उपकारक क्यों हो ? यदि आप अदीप्त हैं तो सौर्यभामंडल से दीप्त क्यों हो ? यदि आप शांतस्वभावी हैं तो चिरकाल तक तपते क्यों हो ? यदि आप रोष रहित हो तो कर्म पर क्यों रोष रखते हो ? इस प्रकार जिसका स्वरूप जान नहीं सकते हैं । वे बड़े से भी बड़े हैं और अनंत चार ज्ञानादि को सिद्ध करनेवाले ऐसे आप भगवंत को मैं नमस्कार करता हूँ ।”

इस प्रकार स्तुति करके इंद्र ने विराम लिया बाद में भगवान सुविधिस्वामी ने निम्नलिखित देशना दि-

यह संसार अनंत दुःख के समूह का भंडार है, जहर का उत्पत्ति स्थान जैसे सर्प है उसी प्रकार संसार का उत्पत्ति स्थान आस्रव है । जंतुओ के मन, वचन और काया की जो क्रिया वह योग कहलाता है । वह योग प्राणी शुभाशुभ कर्म का आस्रव है इसलिये वह आस्रव कहलाता है । मैत्री वगैरेह भावना से वासित चित (मन) प्राणी शुभ कर्म का संग्रह करता है और कषाय तथा विषयो से आक्रांत हुआ चित प्राणी को अशुभ कर्मों को संग्रहित करवाता है । श्रुतज्ञान आश्रित ऐसा सत्य वचन शुभ कर्म का उपार्जन करवाता है और उस से विपरित होता है तो अशुभ कर्म के उपार्जन हेतुभूत हो जाता है । असत् कार्यों में से वापस मुड़कर सत्कार्य में परावर्तित शरीर शुभ कर्म का संग्रह करवाता है, हमेशा आरंभी तथा जीवघातक शरीर द्वारा अशुभ कर्म का संग्रह होता है । कषाय, विषय, योग, प्रमाद अविरति मिथ्यात्व और आर्त तथा रौद्र ध्यान यह अशुभ आस्रव का हेतु है । जिस कर्मपुद्गल में ग्रहण करने के हेतुभूत है वे आस्रव कहलाते हैं । वे कर्म ज्ञानावरणादिक भेद से आठ प्रकार के हैं । ज्ञानदर्शन के संबंध में ज्ञानदर्शनवालो के प्रति और ज्ञानदर्शन उत्पन्न करवाने के हेतुओ में जो विघ्न, निहव, पिशुनता, आशातना, घात और मत्सर करना वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म बांधने के हेतुभूत आस्रव हैं । देवपूजा, गुरुसेवा, पात्रदान, दया क्षमा सराग, संयम, देशविरति, अकाम, निर्जरा, शौच, और बालतप वह सद्बुद्ध (शातावेदनी) कर्म बांधनेवाले आस्रव हैं । अपने या दुसरो के अथवा दोनों के दुःख, शोक, वध, ताप, आक्रंदन और विलाप या पश्चाताप उत्पन्न करना, करवाना, वह अशातावेदनी कर्म बांधने के कारण है । वीतराग के, शास्त्र के, संघ के, धर्म के और सभी देवताओ के अवर्णवाद बोलना, तीव्र मिथ्यात्व का परिणाम है । सर्वज्ञ और सिद्धदेव का निहव करना, धार्मिक मनुष्यों को तकलीफ देना, गलत मार्ग पर चलने का उपदेश देना, अनर्थ करने का आग्रह रखना, असंयमी की पूजा करना, अविचारित कार्य करना और गुरु की आज्ञा का पालन न करना इत्यादि दर्शनमोहनीय बांधने के आस्रव हैं । किसी का मजाक करने की आदत, सकाम उपहास विशेष हंसने का स्वभाव, बहुत बोलनेवाला, दैन्यपन दिखानेवाली उक्ति यह हास्यमोहनीय आस्रव हैं, अनेक देश देखने की उत्कंठा, अनेक प्रकार के खेल खेलना और दुसरो के चित्त को आकर्षित करना यह रतिमोहनीय के आस्रव हैं । असूया पाप करने की प्रकृति, दूसरे के आनंद का नाश करना और किसीको अकुशल देखकर उपहास करना यह अरतिमोहनीय के आस्रव हैं अपने में भय के परिणाम, दुसरो को भय दिखाना, यातनाएँ देना और निर्दयपन दिखाना-यह भयमोहनीय के आस्रव हैं । स्वयं शोक उत्पन्न

करके शौच करना (आत्मा को अपवित्र रखना) दुसरे को करवाना और रुदन करने में अतिआसक्ति रखना-यह शोकमोहनीय का आश्रव है। चतुर्विध संघ को अपशब्द बोलना, उनकी ओर तिरस्कार दिखाना और सदाचार की निंदा करना- ये जुगुप्सामोहनीय के आश्रव हैं। ईर्ष्या, विषयो में लोलुपता, मृषावाद, अति वक्रता और परस्त्रि के विलास में आसक्त- ये स्त्रिवेद बांधने के कारण हैं। अपनी स्त्रिमात्र में संतोष अनीर्ष्यालु स्वभाव, मंद कषाय और अवक्राचार शील ये पुरुषवेदना के आश्रव हैं स्त्रि तथा पुरुष दोनों के स्पर्श चुंबनादि अनंगसेवा, उग्र कषाय, तीव्र कामेच्छा, पाखंड और स्त्रि के व्रत का भंग करना- ये नपुंसकवेद बांधने का आश्रव है। साधुओं की निंदा करना, धर्मिष्ठ लोगों के कार्य में विघ्न डालना, मधु मांसादि से अविरत पुरुषों के पास उन अविरति की प्रशंसा करना, देशविरति पुरुषों को बारंबार बाधाएँ डालना, अविरति स्त्रिआदि के गुणों का आख्यान करना, चारित्र को दूषण देना और दुसरे के कषाय और बिना नोनीकषाय की चर्चा करना ये चारित्रमोहनीय कर्म बांधने के सामान्य आश्रव हैं। पंचेंद्रियो प्राणीयों का वध, बहुत आरंभ तथा परिग्रह, अनुग्रह करने का त्याग, मांस भोजन, सदा स्थिर वैरबुद्धि, रौद्रध्यान, अनंतानु बंधी कषाय, कृष्ण, नील और कापोत लेश्या, असत्य भाषण, परद्रव्यहरण बारंबार मिथुनसेवन और इंद्रियो को परवशपन ये नर्कगति आयुष बांधने के आश्रवो हैं। गलत मार्गों पर चलने की देशना, मार्ग का नाश, गुप्त तरीके से धन का रक्षण, आर्तध्यान, शल्यसहित माया (कपट) आरंभ, परिग्रह, शील में तथा व्रत में सातिचार, नील तथा कापोत लेश्या और अप्रत्याख्यानी कषाय वह तिर्यच गति का आयुष्य बांधने के आश्रव हैं। अल्प परिग्रह तथा आरंभ, स्वाभाविक कोमलता और सरलता कापोत और पीत लेश्या धर्मध्यान में अनुराग, प्रत्याख्यानी कषाय, मध्यम परिणाम, दान देनेवाला, देव और गुरु का पूजन, पूर्वालाप, प्रियालाप, सुख से समजानेवाला, लोकसमूह में मध्यस्थपन ये मनुष्य गति के आयुष्य बांधने के आश्रव हैं। सराग, संयम, देश संयम, अकाम निर्जरा, कल्याण मित्रों का परिचय, धर्मश्रवण करने का शील, पात्रदान, तप, श्रद्धा, तीन रत्नों की आराधना, मृत्युसमय पद्म अथवा पीत लेश्या का परिणाम, बालतप, अग्नि जल वगैरेह साधनाद्वारा मृत्यु को प्राप्त होना। गले में स्वयं फांसी का फंदा डालकर मृत्यु और अव्यक्त सामायिकपन ये देव गति के आयुष्य बांधने का आश्रव है।

मन वचन काया की वक्रता, दुसरे को छलना, माया प्रयोग करना, मिथ्यात्व, पिशूनता, चित्त की चपलता, सुवर्णादिक का प्रतिच्छंद करना याने बनावटी सुवर्णादि बनाना, जूठी गवाही देना, वर्ण गंध रस और स्पर्श का अलग तरह से संपादन करना, किसी के अंगउपांग काटना कटवाना, यंत्र तथा पंजर की क्रिया, जूठे माप, जूठे तौल, तथा जूठे तराजू बनाना, उपयोग में लाना अन्य की निंदा, आत्मप्रशंसा, हिंसा, असत्य बोलना चोरी, परस्त्री गमन, बड़ा आरंभ, बड़ा परिग्रह कठोर बोलना तथा कनिष्ठ भाषण करना, उज्ज्वल वेशादिक से मद करना वाचाल, आक्रोश करना, सौभाग्य का उपघात, कामण करना, त्यागी की विडंबना, दंभ करना अनुमार्ग गमन यति होकर कौतुक पैदा करना, ब्रह्मा प्रमुख को अलंकार देना, दावानल जलाना, देवादिक के मिष (बहाने) से गंधादिक वस्तु की चोरी करना, तीव्र कषाय, चैत्य उपाश्रय उद्यान और प्रतिमाओं का विनाश करना और अंगारादिक १५

कर्मदान की क्रिया करना ये सभी अशुभनाम कर्म का आस्त्रव है। उपर कहे गये से विरुद्ध क्रिया, संसार से भीरुता, प्रमाद का नाश, सद्भावना का अर्पण, शांति वगैरेह गुण धार्मिक पुरुषो का दर्शन, संभ्रम और उनका सत्कार-वह शुभनाम यावत् तीर्थकर नाम कर्म बांधने के आस्त्रव है।

१ अर्हंत २ सिद्ध ३ गुरु ४ स्थविर ५ बहुश्रुत ६ गच्छ ७ श्रुतज्ञान और ८ तपस्वी भक्ति (मुनि) ९ आवश्यकदि क्रिया १० चारित्र मे तथा ११ ब्रह्मचर्य सेवन मे अप्रमाद १२ विनय १३ ज्ञानाभ्यास १४ तप १५ त्याग (दान) १६ शुभध्यान १७ तीर्थ प्रभावना १८ चतुर्विध संघ की समाधी उपार्जित करके, साधुओकी सेवा १९ अपूर्व ज्ञान का ग्रहण करना और २० समकित दर्शन की शुद्धि ये बीस (स्थानक) आस्त्रव पहले और अंतिम तीर्थकरो ने स्पृश किये हुए है। दुसरे तीर्थकरोने उसमे से एक दो या तीन स्थानको को स्पृश (आराधना) किया है। परनिंदा, अवज्ञा और उपहास, सदगुणो का लोप, जाने अनजाने का दोष का कथन, अपनी प्रशंसा, जाने अनजाने गुण दोष की प्रशंसा, अपने दोषो को छिपाना (ढकना) और जाति वगैरेह का मद करना ये नीच गोत्र के आस्त्रव है। नीच गोत्र मे कह गये उससे विपरित आस्त्रव गर्वरहित और मनवचन काया से विनय करना ये उच्चगोत्र के आस्त्रव है। दानलाम, वीर्यभोग तथा उपभोग मे मिष से वा मिष बिना याने बिनाकारण किसी को यातना देना बाधक बनना ये अंतराय कर्म के आस्त्रव है।

इस प्रकार से आस्त्रवो से जन्म पाये इस अपार संसाररुपी सागर मे दीक्षारुपी नाव द्वारा विद्वान पुरुष को भवसागर पार करने योग्य है।

चंद्र की कांति से कुमुद बोध प्राप्त करने विकसित होता है उसी तरह प्रभु की ऐसी वाणी धर्मदेशना से हजारो पुरुषो ने बोध प्राप्त किया। प्रभु के समक्ष कई लोगो ने दीक्षा ग्रहण की। प्रभु को बराह वगैरेह अठ्ठासी गणधर हुए। जब प्रभु देशना देकर विश्राम किया तब श्री बराह गणधर ने धर्मदेशना दि। गणधर देशना पूर्ण करके सुर-असुरो नंदीश्वर द्वीप पर जाकर अष्टाहिका उत्सव करके अपने-अपने स्थानो पर चले गये।

प्रभु श्री सुविधिनाथ के तीर्थ मे श्वेत अंगवाले कछुअे के वाहनवाले दो दक्षिण भुजाओं में बिजोरु और अक्षसूत्र तथा दो वाम भुजाओं मे नकुल और भाला धारण करनेवाला अजित नाम का यख प्रभु के पास मे रहनेवाला शासन देवता हुआ। उसी तरह गौरवर्ण वाली वृषभ के वाहन पर सवार, दो दक्षिण भुजाओ मे वरद और अक्षसूत्र तथा दो वाम भुजाओ मे कलश और अंकुश धारण करनेवाली सुतारा नाम की यक्षीणी प्रभु केपास रहनेवाली शासनदेवी हुई ये दोनो देवताओ से अधिष्ठित और कृपारस के सागर जगत्पति प्रभु लोगो को बोध कराते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे।

अठ्ठाईस पूर्वांग और चार मास उणा (कम) ऐसे एक लाख पूर्व तक विहार करते हुए प्रभु के दो लाख साधु, एक लाख बीस हजार साध्वीओ आठ हजार चारसौ अवधिज्ञानी, डेढ हजार चौदह पूर्वधारी, साढे सात हजार मनःपर्यवज्ञानी, सात हजार पांच सौ केवलज्ञानी, तेरह हजार वैक्रमलब्धिवाले, छै हजार वादलब्धिवाले, दो लाख उनत्तीस हजार श्रावक और चार लाख बहत्तर हजार श्राविकाऐं इतना परिवार हुआ। अंत मे प्रभु का समेत शिखर पर्वतपर आगमन हुआ। वहाँ पर एक हजार मुनियों के

साथ अनशन करके एक मास तक उस तरह रहें । कार्तिक मासकी कृष्ण नवमी के दिन मूलनक्षत्र मे हजार मुनियों के साथ शैलेशी (प्रकाशमय) ध्यान मे लीन होकर प्रभु अव्यय पद (परमपद) को प्राप्त हुए ।

अर्द्ध लाख पूर्व कुमार आयु मे अष्टाईस पूर्वांग सहित अर्द्ध लाख पूर्व राज्य पालन मे और अष्टाईस पूर्वांग रहित एक लाख पूर्व व्रत मे कुलमिलाकर दो लाख पूर्व आयुष्य श्री सुविधिनाथ प्रभु का था । श्री चंद्रप्रभ प्रभु के निर्वाण बाद नब्बे कोटि सागरोपम जाने के बाद सुविधि स्वामी का निर्वाण हुआ । प्रभु के निर्वाण होने के बाद सभी इंद्रोने एक हजार मुनियों के साथ नौवे प्रभु का विधिवत शरीरसंस्कार करने के लिये मोक्षप्राप्ति का अनुपम महिमा किया । बाद मे सभी अपने-अपने परिवार सहित स्वस्थानक पर गये ।

श्री सुविधि स्वामी के निर्वाण बाद कुछ समय बीतने पर महाकनिष्ठ अवसर्पिणी कालके दोष से साधुओं का लोप हो गया । बाद मे जिस तरह मुसाफिर दुसरे को मार्गपूछते हैं वैसे धर्म के अनभिज्ञ लोग स्थविर श्रावकों को धर्म पूछने लगे । जब वे अपने अनुसार धर्म कहने लगे, तब लोग उनकी श्रावकोचित अर्थपूजा करने लगे, इस तरह पूजा होने से द्रव्यादिक मे लुब्ध होकर वे स्थविर श्रावको ने तत्काल नये कृत्रिम शास्त्रो की रचना करके उसमे विविध तरह के बडे फलवाले दान प्रगट किये, वैसे प्रतिदिन द्रव्यादिक मे लोभी आचार्य होकर उन्होंने इह लोक और परलोक मे निश्चित फलवाले बडे दान जैसे कन्यादान, पृथ्वीदान, लोहदान, तिलदान, कपासदान, गोदान, स्वर्णदान, रुप्यदान, गृहदान, अश्वदान, गजदान और शय्यादान वगैरेह विविध दानो को मुख्य दानो मे गिनती करवाई और बडी इच्छावाले और वैसे ही दुष्ट आशयवाले उन्होंने वे सभी दान देने (लेने) के लिये स्वयं योग्य पात्र हैं और अन्य अपात्र हैं ऐसा बताया । इस तरह लोगो की वंचना करते फिर भी वे लोगो के गुरु बन बैठे । वृक्ष बिना के देश मे अरंडा के वृक्षो की लोग वेदिका रचाते हैं ।

इस तरह श्री शीतल स्वामी का तीर्थ प्रवर्तनतक इस भरत क्षेत्र मे सर्वप्रकार तीर्थोच्छेद रहा । जिससे उस समय मे रात्रि मे उल्लु पक्षी की तरह कनिष्ठ ब्राह्मणो ने इस भरतक्षेत्र पर अपना एकछत्र राज्य चलाया । उसके बाद मे दुसरे छे जिनेश्वरो के अंतर मे याने श्री धर्मनाथ और शांती नाथ के बीच अंतर तक इस तरह बीच-बीच मे मिथ्यात्वप्रवर्त रहा, और तीर्थ का उच्छेद हो जाने से उस समय मे मिथ्यादृष्टियो का अस्वलित प्रचार हुआ ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीय पर्वणि

श्री सुविधिस्वामिचरित्रवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टम सर्ग

श्रीशीतलनाथ चरित्र

चंद्र कि किरणों की तरह चंद्रविकासी कमल चंद्र को देखते विकसीत होता है इसी तरह बोध करनेवाले श्री शीतलनाथ प्रभु के चरण आपको मोक्ष देनेवाले हो तीनों जगत की श्रोत्रइंद्रिय को शीतल करनेवाले इस शीतल भगवान के चरित्र का कथा वाचन (पठन) करेंगे ।

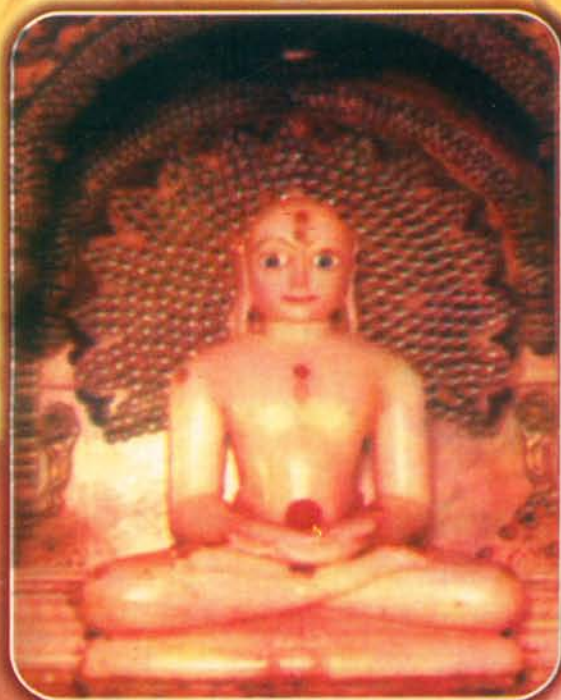
पुष्करवर द्वीपार्ध में पूर्वविदेहक्षेत्र के आभूषणरूपी वज्र नाम का विजय में सुसीमा नाम की एक उत्तमनगरी है । अनुत्तर विमानवासीयों में से मानो कोई देव यहाँ हो ऐसे सभी राजाओं में उत्तम पद्मोत्तर नाम का वहाँ राजा था । उस राजा का शासन का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता था, वह सभी प्राणियों पर करुणा रखता था, उससे उसमें वीर और शांतरसरूप दोनों मानो सहोदर हो इस तरह दोनों साथ में रहते थे । जिस तरह धनवान अपने धन के भंडार का रक्षण करने और उसमें वृद्धि करने में हमेशा जागृत रहता है, उसी तरह वह राजा अनेक निर्विघ्न उपायों से धर्म को बढ़ाता था और नित्य धर्म आराधना में जागृत रहता था । 'आज या कल इस संसार का त्याग करूँ' ऐसा चिंतन करता, वह राजा विदेशी प्राहुणा (महेमान) की तरह संसारवास में अनास्था से (विचलित मनसे) रहता था । इस तरह करते-करते योग्य अवसर मिलने पर एक पाषाण के टुकड़े की तरह उसने अपने विस्तृति राज्य को छोड़कर त्रीस्ताध नाम के सूरि के समीप दीक्षा ग्रहण की । अतिचार रहित व्रतों का आचरण करते ऐसे ये सुबुद्धिमान राजमुनि ने आगमोक्त स्थानको के आराधन द्वारा तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया । विविध अभिग्रहों से और तीव्र तपों से पुरा आयुष्य निर्गमन करके प्रांते वे प्राणत नामके दसवे देवलोक के अधिपति हुए ।

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र के बारे में लक्ष्मी से सुंदर भदिलपुर नाम की एक श्रेष्ठ नगरी थी । समुद्र की मोड़ से जंबुद्वीप की जागतिक शोभती है उसी तरह चारों ओर खाई से घेरा हुआ उस नगर का सुवर्णमय दुर्ग शोभा दे रहा था । सायंकाल में बाजार की दुकानों में दीप पंक्तिओं से ऐसी शोभायमान लग रही थी मानो नगर लक्ष्मी ने सुवर्ण की माला गले में पहनी हो ऐसी लग रही थी । बड़ी समृद्धि से भुजंग (नगर के विलासी पुरुष) और वृंदारक (नगर के बड़े पुरुष) जनो को विलास करने के स्थान रूप उस नगर में भोगावती (नागदेवताओं की नगरी) और अमरावती (वैमानिक देवताओं की नगरी) सार से ही मानो बसा हुआ है लग रहा था । उस नगर में बसनेवाले धनवान उत्सव में मानो अपने स्वजनो को आग्रह करके खिलाते हैं उसी तरह दानशालाओं में भोजनार्थी लोगों का विविध प्रकार से भोजन करवाते थे । उस नगर शत्रुओं के मंडल को झुकानेवाला दृढरथ नाम का राजा था । वह समुद्र की तरह पुरे भूमंडल पर फैला हुआ था । बड़े-बड़े महर्षि उसके गुणों का वर्णन करते थे उस समय वह अवगुणों का वर्णन करते हैं उस तरह से वह अधिक लज्जित हो रहा था । शत्रुओं के पास से बलात्कार से ग्रहण की हुई लक्ष्मी याचकों को देकर अदत्तादान दोष का मानो प्रायश्चित लेता हो ऐसा प्रतीत होता था । उसके सामने कई राजा बारंबार भूमि पर लोटते हुए राजवीपनकोप्राप्त करते थे । बड़े विद्वान



श्री शीतलनाथ भगवान

वंथली तीर्थ



श्री शीतलनाथ भगवान

कलकत्ता तीर्थ

—: सौजन्य दाता :-
निमचछावनी जैन श्वे. मू. संघ की बहनों की ओरसे
 गान : नीमच छावनी, मध्यप्रदेश

गुरुजन थोड़ा सा ज्ञानोपदेश करने पर वह ज्ञानोपदेश के जल में गिरे हुए तेल की बुंद की तरह वे राजा के अंतःकरण में विस्तार पा लेते थे। नदियों में गंगा की तरह मानो सतियों में अग्रेसर और हृदय को आनंद देनेवाली नंदा नाम की उस राजा को एक पटरानी थी। मंद मंद चरणकमलो से मनोहर चाल से चलती। वह रानी के पास राजहंसी भी चाल सिखने के लिये मानो उसकी शिष्या हो ऐसी जान पड़ती थी। वह रानी जब सुगंधित मुखश्वास से कुछ भी बात करती थी तब उसके वचन सुगंध के प्रसार से भ्रमरो को आकर्षित करने का मंत्ररूप होता था। उस रूपवती रानी को अपनी उपमा घटती थी, कारण महत्व में आकाश को दूसरी उपमा नहीं घट सकती थी। महाराणी नंदा अपने गुणों से दृढरथ राजा के हृदय में मानो दृढरूप पिरोयी हो ऐसी वे जान पड़ती थी। महाराजा दृढरथ उस रानी के चित्त में मानो अंकित हो उस तरह रह रहे थे।

यहाँ प्राणत कल्प में पद्मोत्तर राजा का जीव का बीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण किया। वहाँ से च्यवनकर बैशाख मास की षष्ठी के दिन चंद्र पूर्वाषाढा नक्षत्र में आते ही नंदादेवी की कोख में वह जीव उत्पन्न हुआ। उस समय तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदह महास्वप्न सुख से सो रहे देवी ने उनका अवलोकन किया। बाद में माघ मास की कृष्ण द्वादशी के दिन चंद्र पूर्वाषाढा नक्षत्र में आने पर श्रीवत्स के लांछनवाले और सुवर्णजैसे वर्णवाले पुत्र को देवीने जन्म दिया। उस अवसर आठ अधोलोकवासी, आठ ऊर्ध्वलोकवासी आठ-आठ रुचक द्विप में चारों दिशाओं में पर्वतों पर रहनेवाली चार विदिशा के पर्वत पर रहनेवाली और चार रुचक द्विप के बीच में रहनेवाली ये मिलकर छप्पन दिक्कुमारीकाएँ आसन चलित होने से वहाँ पर आकर, उन्होंने सूतिकाकर्म किया। बाद में देवताओं के साथ शक्रेंद्र तुरंत वहाँ आये प्रभु को लेकर मेरुपर्वत के मस्तक पर गये। वहाँ प्रभु को उत्संग में लेकर अतिपांडुकबला नाम की शिला के ऊपर के रत्नमय सिंहासन पर वे बैठे। अच्युतादिक इंद्रोने समुद्र, नदियाँ और द्रवों में से मंगवाये गये जल द्वारा प्रभु का अभिषेक किया। उसके बाद शक्रेंद्र ने ईशान इंद्र की गोद में प्रभु को स्थापित कर स्वयं विकुर्वे स्फटिकमय चार वृषभ के शृंगाग्र में से निकलते हुए जल से प्रभु को स्नान करवाया और दिव्य अंगराग तथा आभूषणादिक से प्रभु को अर्चित करके निम्नलिखित स्तुति करने लगा।

“हे प्रभु ! इक्ष्वाकु कुलरूपी क्षीरसागर में चंद्ररूपी और इस जगत की महानिद्रा का नाश करने में सूर्य समान ऐसे आप जयवंत बर्ताव करें। हे नाथ ! आपको देखने, आपकी स्तुति करने और आपका पूजन करने के लिये मेरे शरीर में अनंत नेत्र, अनंत जिह्वा, अनंत भुजाएँ हो ऐसी मैं इच्छा रखता हूँ, दसवे तीर्थंकर प्रभु ! आपके चरणकमलों में ये पुष्पो को स्थापन किये हैं इस से अब मुझे उसका फल संपादन हो गया है। दुःख के ताप से पिडित लोगों के अमाप आनंद देनेवाले आप इस मनुष्य लोक में नये मेघ के समान अवतरित हुअे हैं। वसंत ऋतु के आगमन से वृक्षों की तरह आपके दर्शन से सभी प्राणी शोभायमान हुए हैं। जो दिन आपके दर्शन से पवित्र है वही दिन मेरे सही दिन है। अन्य दिन तो वे मेरे लिये कृष्णपक्ष की रात्रि जैसे हैं। आत्म के साथ नित्यरूप से पिरोयेगये प्राणीयो के कुकर्मों, अयस्कांत मणि से लोहे की तरह आप के दर्शन से आज अलग हो जाअे इस लोक में स्वर्ग

मे या दुसरे किसी भी स्थान पर भी रहता हूँ तो आपको ही हृदय मे वहन करनेवाला मैं आपका वाहन बनू ऐसी इच्छा रखता हूँ ।”

इस प्रकार दसवे तीर्थंकर की स्तुति करके शक्रेंद्रे प्रभु को लेकर नंदादेवी के पास जिस तरह से पहले थे, उसी प्रकार वापस रख दिये । प्रातःकाल होने पर राजा दृढरथराजाने समाचार सुनकर हर्षित राजाने कैदीयों को कारागृह से मुक्त किया और बड़ा महोत्सव मनाया, ऐसे पुरुषो का जन्म जगत के मोक्षार्थ मे होता है । प्रभु जब गर्भ मे थे तब राजा का तप्त हुआ शरीर अंग नंदादेवी के स्पर्शमात्र से शीतल हो गया इसलिये राजाने प्रभु का नाम शीतल ऐसा नाम रखा । समुद्र की लहरों की वृद्धि की भांति देवकुमारो की निरंतर सेवा से जगत्पति दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे । अनुक्रम मे प्रभु ने शिशुवय को लांघकर और राहगीर की तरह गाव से नगर मे पहुँचता है उसी प्रकार से वह शिशुवय से यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ । जिसकी दोनो और बड़ी बेल लटकती हो ऐसे वृक्ष की तरह जांघ तक लंबे हाथवाले प्रभु का नब्बे धनुष्य ऊँचा शरीर शोभायमान था । फिर भी प्रभु विषय सुख भोगने मे निःस्पृह थे फिर भी वे हाथी की तरह पिंड (आहार) का ग्रहणकरता है उसी तरह मातापिता की प्रार्थना से कुलीन कन्या का पाणिग्रहण किया । पचीस हजार पूर्व की आयु होने के बाद पिता के दाक्षिण्यता से प्रभु ने राज्य का भार स्वीकार किया । अपूर्व पराक्रमवाले प्रभुने पूर्वक्रम से आये हुए राज्य का पचास हजार पूर्वतक विधि से पालन किया ।

बाद में प्रभु का मन संसारवास मे से विरक्त हुआ । तत्काल लोकांतिक देवताओं के आसन चलित होने से वे अवधिज्ञान से जाना कि ‘जंबूद्विप मे दक्षिण भरतार्द्ध के भीतर दसवे तीर्थंकर उत्पन्न हुए है । वे हाल व्रत ग्रहण करने के लिये इच्छावान बरत रहे हैं, इसलिए हम वहाँ जाकर उस कार्य उन्हे प्रेरित करे, कारण अपना ये हमेशा का कार्य है’ इस प्रकार सोचकर सारस्वतादिक देवताओ ब्रह्मलोक मे से वहाँ आकर प्रभु को नमस्कार करके इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगे- ‘हे नाथ ! अरण्य मे जलप्रवाह की तरह यह दुस्त संसार मे तीर्थ अभाव हुआ है, इसलिए जगत पर कृपा करके धर्मतीर्थ को प्रवृत्त करे ।’ इस प्रकार कहकर लोकांतिक देवता ब्रह्म देवलोक मे चले गये ।

बाद मे शीतलनाथस्वामी ने सांवत्सरिक दान देना आरंभ किया । वार्षिक दान के अंत मे इंद्रो के आसन चलित हुए, इसलिए वे आकर शीतल प्रभु का दीक्षाकल्याणक संबंधी स्नात्रमहोत्सव किया । बाद मे तीनो जगत के आभूषणरूप प्रभु ने अंगराग तथा वस्त्राभूषण धारण किये, अेक इंद्रने हाथ को पकडा और दुसरे इंद्रोने चामर ली प्रभु चंद्रप्रभा नाम की शिबिका पर आरुढ हुऐ । बाद मे हजारो सुर-असुर और मनुष्यो के परिवार के साथ प्रभु अपने नगर के बाहर सहस्राम्र नाम के वन मे आये । वहाँ आकर जिन्हें मोक्षगति प्रिय है ऐसे प्रभु ने संसारसागर तैरने की इच्छा से अपने सभी आभूषण तत्काल भार की तरह उतारकर रख दिये । इंद्र ने डाले हुए देवदुष्य वस्त्र कंधे पर डालकर धारण कर प्रभु ने प्रथम पांच मुष्टि द्वारा केश का लोच किया । उस केश को क्षीरसागर मे डालकर आने पर इंद्र सर्व कोलाहल को निषेध किया और द्वारपाल की तरह अंजलि जोडकर प्रभु के आगे खडा रहा । बाद में माघ मास की कृष्णद्वादशी के पिछले प्रहर मे चंद्र पूर्वाषाढा नक्षत्र मे आते ही छठतप जिन्होंने कियाहै

ऐसे प्रभू ने एक हजार राजाओं के साथ सुर-असुर और राजाओं के समक्ष सर्व सावध योग का प्रत्याख्यान किया, अर्थात् चारित्र्य स्वीकार किया। उसी समय उन्हें मनःपर्यव नाम का चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ, और देवता वगैरेह सर्व प्रभु को प्रणाम करके अपने-अपने स्थानों पर गये।

बाद में दूसरे दिन रिष्ट नगर में पुनर्वसु राजा के घर परमअन्न से पारणा किया। वहाँ पर देवताओं ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट किये, और राजा ने जहाँ पर प्रभु खड़े थे वहाँ एक सुवर्णपीठ बनवाई। बाद में विविध अभिग्रह को धारण करते और परीषद् को सहन करनेवाले ऐसे प्रभु छद्मस्थ तीन मास तक विहार करके सहस्राग्र वन में फिर से आये। वहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे प्रभु कायोत्सर्ग ध्यान में रहें। जगत के गुरु ऐसे प्रभु ने सुभट जिस तरह दुर्ग पर चढ़कर शत्रुओं को मारता है उसी तरह शुक्ल ध्यान के दूसरे पाये पर चढ़कर धातिकर्म का नाश किया। तत्काल पोषमास की कृष्ण चतुर्दशी को चंद्र पूर्वाषाढा नक्षत्र में आते ही शीतलनाथ स्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुरअसुरों ने आकर चार-चार द्वारवाले रत्न, सुवर्ण और रूपा के तीन गढ़वाला समवसरण रचा। उसमें प्रभु ने पूर्वद्वार से प्रवेश करके उसके मध्य में रहे हुए एक हजार और अस्सी धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके 'तीर्थाय नमः' ऐसा उच्चारण करके रत्नसिंहासन पर पूर्वमुखे बिराजमान हुये। देवताओं ने उनके जैसे ही तीन प्रतिबिंब बना करके दूसरी तीन दिशाओं में स्थापन किये। बाद में मयूर जिस तरह मेघ गर्जना की उत्कंठा से राह देकर बैठते हैं, उसी तरह मनुष्य, देवता वगैरेह सभी प्रभु की देशना श्रवण करने की उत्कंठा रखकर योग्य स्थान पर बैठे। उस अवसर पर सौधर्मकल्प का इंद्र मस्तक द्वारा पृथ्वीतल का स्पर्श करके शीतलनाथ स्वामी को प्रणाम करके अंजलि जोड़ इस प्रकार से स्तुति करने लगा।

'हे तीन भुवन के पति ! जो पुरुष आपके चरणकमल के नाखून की कांति के जलरूपी जल से प्रवाह में स्नान करके अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं वे धन्य हैं। सूर्य से जैसे आकाश, हंस से सरोवर और राजा से जैसे नगर उस तरह आपसे भरतक्षेत्र शोभा दे रहा है। सूर्य का अस्त और चंद्र का उदय के बीच अंतर में अंधकार से प्रकाश का पराभव होता है उस तरह नौवे और दसवे दो प्रभु के अंतर में मिथ्यात्व से धर्म का पराभव हुआ। विवेकरूपी लोचन बिना का यह जगत मानो दिग्मूढ हो गया हो उस तरह सभी प्रकार से कुमार्गों में प्रवृत्त हैं। सभी लोग भ्रान्ति पाकर अधर्म को धर्मबुद्धि से अदेव को देवबुद्धि से और कुगुरु को गुरुबुद्धि से ग्रहण करते हैं। इस तरह यह जगत नरकरूप के गढ़ में गिरने जैसा तैयार हो गया था। उसी समय उसके पुण्योदय से रचा भाविक दया के समुद्र ऐसे आप अवतरित हुये हो। हे प्रभु ! जहाँ तक आपका वचनरूपी अमृत इन लोगों में फैला नहीं है वहाँ तक इन लोगों में मिथ्यात्वरूपी सर्प चिरकाल समर्थ होकर प्रवृत्त रहेगा, लेकिन घातीकर्मों के क्षय से आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है उसी प्रकार आपके उपदेश से इस जगत के मिथ्यात्व का नाश होकर समकित की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेंद्र विराम पाये, बाद में शीतलनाथ प्रभु ने अमृत जैसी मधुरवाणी से इस प्रकार देशना देना आरंभ किया।

“इस संसार में सर्व पदार्थादि विविध जातिके दुःख के कारण और क्षणिक हैं, जिससे सभी

प्राणीयो को मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए वह मोक्ष संवर करने से हो सकता है। सर्व आश्रवो का जो निरोध करना वह संवर कहलाता है। वह संवर द्रव्य और भाव से दो प्रकार है। जो कर्मपुद्गल के ग्रहण का छेद करते हैं वह द्रव्यसंवर कहलाता है, जिसमे संसारहेतु क्रिया का त्याग होता है वह भावसंवर कहलाता है। जिन-जिन उपायों से जिन-जिन आश्रवो का निरोध होता है वे-वे आश्रव निरोध के लिये विद्वानो ने वे-वे उपाय योजना उचित है। वे उपाय इस प्रकार हैं— क्षमा से क्रोध का, कोमलता से मान का, सरलता से माया का और निःस्पृहता से लोभ का निरोध करना। असंयम द्वारा उन्मत्त हुए विष जैसा विषयो का महामति पुरुष ने अश्वंड संयम द्वारा निरोध करना। तीन गुणियो से तीन योग को वश में करना। अप्रमाद से प्रमाद को साध्य करना और सभी साध्य योग के त्याग से अविरतिको साधना (अपने पास रखना) संवर को अर्थ उद्यम करनेवाले पुरुष ने सुदर्शनसे मिथ्यात्व का और चित्त की उत्तम स्थिरता से रौद्रध्यान का विजय करना, जिस तरह मध्यचौक में आये हुए बहुतसे द्वारवाले घर के द्वार जो खुले रहते हैं तो उसमें जरूर रजकण प्रवेश होते हैं और प्रवेश हुए रजकण (स्नेह चिकनाई) के योग से तन्मयता से बंध जाते हैं। लेकिन यदि उस घर के द्वार बंद कर दिये जाते हैं तो उसमें रजकण प्रवेश नहीं करते हैं, उसी तरह दृढता से वह बंद भी नहीं होती है। जिस तरह किसी सरोवर में चारों तरफ नालियाँ खुली हुई होनेपर बाहर का पानी सरोवर में प्रवेश कर जाता है, लेकिन नालियों के मुँह यदि बंद कर दिये जाते हैं तो जरासा पानी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता है, उसी प्रकार किसी भी जहाज के मध्य भाग में छिद्र हो जाने पर उसमेंसे पानी प्रवेश कर जाता है लेकिन यदि उस छिद्र को बंद कर देते हैं तो पानी जरा भी प्रवेश करता नहीं है, उसी तरह योगादिक आश्रव द्वारो का सभीप्रकार से बंद करने से संवर से शोभते ऐसे जीव में कर्मद्रव्य का प्रवेश नहीं हो सकता है। आश्रव द्वारका निरोध संवर द्वारा होता है, और वह संवर क्षमा वगैरेह भेद के बहुत से प्रकार कहे गये हैं। चढते-चढते गुण स्थानो में जिसका संवर होता है उस-उस नाम का संवर कहलाता है। पारंगतो में (अविरति सम्यग्दृष्टि में) मिथ्यात्व का उदय बंध हो जाने से संवर होता है वह मिथ्यात्वसंवर कहलाता है। देशविरति वगैरेह गुणठाने में जो संवर होता है वह अविरति संवर है। अप्रमत्तसंवर वगैरेह गुणठान में संवर होता है वह प्रमादसंवर कहलाता है। उपशांतमोह और क्षीणमोह गुणठाने में कषाय का संवर होने से वह कषाय संवर कहलाता है। अयोगकेवली नाम का चौदवे गुणठाने में योगसंवर संपूर्ण होता है। जैसे नियमित छिद्ररहित जहाज द्वारा समुद्र के अंतिम छोर तक पहुँच जाता है वैसे ही सद्बुद्धिवाला पुरुष उपरोक्त संवरयुक्त होकर इस संसार के अंत के छोर को पा लेता है”

इस प्रकार की प्रभु की देशना सुनकर बहुत से जीव प्रतिबोध पाये। किसी ने दीक्ष ली, और किसीने श्रावकपन का स्वीकार किया। प्रभु का आनंद वगैरेह इक्यांसी गणधर हूरे। प्रभु की धर्मदेशना पूर्ण हो जाने पर आनंद गणधरने धर्मदेशना दी, और आनंद गणधर की देशना पूर्ण हो जाने के बाद सुर-असुर और नरेश्वरो ने प्रभु को नमस्कार करके अपने स्थानो पर गये।

उससमय तीन नेत्रोवाला, चार मुखवाला, पद्म के आसनपर बैठनेवाला, श्वेत वर्णवाला, अपनी

चारो दाहिनी भुजाओं में क्रमशः बिजोरु, मुद्गर, संपाद और अभय को धारण करनेवाला और चार बाईं भुजाओं में क्रमशः नकुल, गदा, चाबुक और अक्षसूत्र को धारण करनेवाला ब्रह्म नाम का यक्ष और मुग जैसा नील वर्णवाली, मेघ के वाहनवाली, दो दक्षिण भुजाओं में वरद और पास को धारण करनेवाली और दो वाम भुजाओं में फल और अंकुश को रखने वाली अशोका नाम की देवी ये दोनों दसवे तीर्थंकर श्री शीतलनाथ प्रभु के शासन देव बने ।

वे दोनों शासनदेवता जिनकी उपासना करते हैं ऐसे शीतल प्रभु ने तीन मास में उणा (कम) पच्चीस हजार पूर्व तक विहार किया । एक लाख मुनियों, एक लाख छैं हजार साध्वी, चौदहसौ चौदपूर्वधारी सात हजार दोसौ अवधिज्ञानी, साठेसात हजार मनःपर्यवज्ञानी, सात हजार केवलज्ञानी, बारह हजार वैक्रियलब्धिवाले, पांच हजार आठसौ वादलब्धिवाले, दो लाख नवासी हजार श्रावक तथा चार लाख अष्टावन हजार श्राविकाएँ इस प्रकार शीतलनाथ प्रभु के विहार करते समय परिवार हुआ ।

मोक्ष प्राप्ति का समय नजदीक आने पर प्रभुने संमैतशिखर पर्वत पर आगमन किया । वहाँ पर एक हजार मुनियों के साथ एक मास का अनशन किया । मास के अंत में वैशाख मास की कृष्ण द्वितीया के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र में चंद्र के आने पर शीतलनाथ प्रभु उन मुनियों के साथ मोक्ष में गये । कुमार आयु (वय) में पच्चीस हजार पूर्व पृथ्वी के पालन में पचास हजार पूर्व का आयुष्य पूर्ण किया, दिक्षा पर्याय में पचीश हजार पूर्व सब मिलाके अे लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण किया । श्रीसुविधिस्वामी के निर्वाण बाद नवकोटि सागरोपम गये तब श्री शीतलनाथ प्रभु का निर्वाण काल हुआ । हजार मुनियों के साथ श्री शीतलप्रभु मोक्ष को प्राप्त हुए । बाद में अच्युत वगेरेह इंद्रोने यथायोग्य उनका तथा दुसरे मुनिजनो को बड़ी शोभावाले निर्वाणगमन का महिमा किया और बाद में अपने अपने देवलोक में गये ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि
श्रीशीतलनाथस्वामी चरित्रवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥८॥

श्रीसंभवप्रभृति तीर्थकृतां तृतीये ऽष्टानां चरित्र महापर्व वरेऽष्टसर्गे ।
ध्येयं पदस्थामिव वारिरुहेऽष्टपत्रे ऽनुध्यायतो भवति सिद्धिरवश्यमेव ॥९॥
समाप्तं चेदं तृतीयं पर्व

पर्व-४ : प्रथम सर्ग

श्री श्रेयांसनाथ चरित्र

श्री श्रेयांसनाथ प्रभु अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव

त्रिपुष्ठ वासुदेव, अचल बलदेव चरित्र

श्री श्रेयांसप्रभोः पादाः श्रेयो विश्राणयंतु वः । निःश्रेयसपथलोक दीपायित

नखांशवः ॥१॥

“मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने में जिनका नखो दीपक का आचरण है ऐसे श्री श्रेयांस प्रभु के चरण आपको श्रेय दें ।” अब तीनों जगत को पवित्र करनेवाला और कर्मरूपी वल्लीओं को काटनेवाला श्री श्रेयांसप्रभु का चरित्र कहते हैं ।

पुष्कवर द्वीपार्द्ध में पूर्व विदेहक्षेत्र में कच्छ नाम के विजय के अंदर क्षेमा नाम की उत्तम नगरी है । वहाँ राजाओं के मुगतों से जिनके चरणकमलरूपी कमल घिस जाते हैं ऐसे नलिनीगुल्म नाम का गुणोत्तम निर्मल राजा था । जगत में एक ही महाभुज और बड़े पराक्रमवाले उस राजा ने अपने राज्य के अंग विकल (अलग) न हो इस तरह मानकर अपने मंत्र (विचार) बल से शत्रुओं की लक्ष्मी का आकर्षण करनेवाले मंत्री रखे थे । पूरे देश को स्वर्ग का देश जैसा सभी अरिष्टरहित (तकलीफों से दूर) किया था । वैताड्यगिरि तथा विद्याधर के नगर की स्पर्धा करे ऐसे दुर्गों का निर्माण करवाया था, कुबेर के भंडारों को भी पिछे छोड़ दे ऐसे समृद्धशाली खजाने बनवाये थे, हाथी, घोड़े, पैदल और रथों से पुरी पृथ्वी को ढक दे ऐसा सैन्य एकत्रित किया था और शत्रुओं के हृदय रूप क्षेत्र को प्रेम की खेती कर सके ऐसे मित्र बनाये थे । विवेक से निर्मल मनवाला वह महाप्राज्ञ राजा साररूपी शरीर, यौवन और लक्ष्मी को असार मानता था । शुद्ध बुद्धिवाला वह राजा कनिष्ठ भोजन से दिन की तरह और कुशय्या से रात्रि की तरह राज्य में आसक्त हुये बिना समय व्यतीत कर रहा था । अंत में धर्मबुद्धिवाले उस नृपति ने तत्त्वबोधरूपी औषधिद्वारा राज्यरूपी रोग छोड़कर ब्रजदत्त मुनि ने दी हुई दीक्षा ग्रहण की, तीव्र तप से गर्म होते हुए और परिषहों को सहन करते हुए वे ममतारहित राजमुनि कर्म की तरह शरीर को कृश करते हुए विहार करने लगे । प्रवचन सिद्धांत में कहेहुए अर्हद्भक्त्यादिक स्थानको के आराधन से उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म दृढ तरीके से उपार्जन किया । अवसानकाल में वे तपस्वी मुनि शुभ ध्यान धारणकर और चार शरण लेने में तत्पर होकर महाशुक्र नाम के सातवे स्वर्गलोक में गये ।

यह जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र का आभूषण और भूमि का मानो रत्नमय नुपुर (पैरों की पायल) है ऐसा सिंहपुर नाम का नगर है । वहाँ के मंदिरों की रत्नमय दिवारों पर तारों के प्रतिबिंब पड़ते हैं । इसलिए वह रंगबिरंगी पट की शोभा धारण करती है । उस नगर के दुर्ग के आलय में मेघ आकर



श्री श्रेयांसनाथ भगवान

शामलानी पोल तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

चिंतामणी पार्श्वनाथ जैन श्वे. मू. संघ

गाम : नवसारी, गुजरात

विश्राम लेते हैं। वह दृष्टिदोष की रक्षा के लिये मानो काजल का टिका लगाया हो ऐसा प्रतीत होता है। वहाँ के धनवान लोगो के घर में घूमती हुई स्त्रियाँ सुंदर नुपूरशब्दों द्वारा लक्ष्मीदेवी हमेशा संगीत उत्सव मनाती थी। जब वर्षा होती थी तब नगरी के घरों में से फैलता जल का प्रवाह मानो रत्नों को बहाकर ले जाते हो ऐसा महसूस होता था, उससे वे उस समय रत्नाकर के प्रवाह की तुलना को पाते थे।

इस सुंदर नगर में यश द्वारा व्याप्त, भुजपराक्रम से समर्थ और विष्णु के जैसा पराक्रमवाला विष्णुराज नाम का राजा था। उसमें इंद्रिय जय नाम का ऐसा ऐक उत्तम गुण था जो पृथ्वी में डाले हुए बीज की तरह धान्य राशि उत्पन्न करता है उसी तरह गुणराशि को उत्पन्न करता था। प्रणाम करनेवाले पर तुष्ट बनती थी और शत्रु पर रुष्ट बनी हुई उस राजा की दृष्टि लक्ष्मी की और भय की स्वयंवर मालारूपी हो रही थी जिस तरह योग्यता से दानधर्म और सत्य वचन से वाणी शोभा देती है उस तरह उज्ज्वल यश से उसका पराक्रम शोभा देता था। शौर्य, गांभीर्य, और धैर्यादिक गुणों की क्रीड़ा का तथा संगीत का एक स्थान था। इंद्र को ज्यो इंद्राणी उसी तरह स्थिरता के गुण से मानो दुसरी पृथ्वी हो उस तरह स्वरूपी से प्रकाशित विष्णु नाम की उसकी पत्नि थी। वह शिरिष के पुष्पों जैसी कोमल अपने शरीर पर खड्ग की धारजैसा तीक्ष्ण सतीव्रतरुण आभूषण धारण करती थी। जिस तरह महाराज विष्णु पराक्रम से अनुपम थे उसी तरह रानी रूपलावण्य की संपत्ति से अनुपम थी। वह अपनी गति में ही मंद थी लेकिन धार्मिककार्य में मंद नहीं थी और देह के मध्य भाग में ही तुच्छ (कृश) थी लेकिन आशय (विचार) में तुच्छ नहीं थी। परस्पर उनका चित्त पिरोया हुआ हो उस तरह निर्विघ्न क्रीड़ा करते वह राजा और रानी में परस्पर अक्षय प्रीति से बंधे हुए थे।

इस तरफ महाशुक्र देवलोक में से नलिनीगुलम राजा का जीव अपना उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके ज्येष्ठ मास की कृष्ण षष्ठी को चंद्र श्रवण नक्षत्र में आते ही वहाँ से च्यवनकर विष्णुदेवी की कोख में अवतरण किया। उस समय नारकी जीवों को भी सुख मिला और तीनों लोकों में उनका स्वागत (अद्योत) हुआ, कारण तीर्थंकरों का हरेक कल्याण में एकक्षण होता है। उस समय विष्णुदेवी ने तीर्थंकर के जन्म से पूर्व सूचित चौदह महास्वप्नों को मुख में प्रवेश करते हुए देखा। प्रथम स्वप्न में मानो संक्षेप हुआ वैताड्य पर्वत हो ऐसा श्वेतवर्णी हस्ती, दुसरे स्वप्न में मत्स्य सहित शरदऋतु का मेघ हो ऐसे ऊँचे शृंगवाला श्वेत वृषभ, मानो छत्र धारण किया हो ऐसी ऊँची पुच्छवाला केशरीसिंह, मानो दुसरी अपनी मूर्ति हो ऐसी अभिषेक होती हुई लक्ष्मीदेवी मानो अपनी मूर्तिमान यश हो ऐसी सुगंधित पुष्पमाला, मानो अमृत का कुंड हो ऐसा ज्योत्सना सहित पूर्णिमा का चांद मानो देवलोक का सीमंत रत्न हो वैसा ही देदीप्यमान सूर्यमंडल, शाखाओं से युक्त वृक्ष हो वैसा चंचल पताकावाले ध्वज, मानो कल्याण का भंडार हो ऐसा पूर्ण कुंभ, मानो दुसरा पद्महृद हो वैसा बड़ा पद्मवाला सरोवर, मानो स्वर्ग पर चढ़ने का इच्छुक हो वैसा उछलते लहरोंवाले समुद्र, पालक विमानों का अनुज बंधु हो ऐसा उत्तम विमान, रत्नाकर का सर्वस्व हो ऐसा रत्नपुंज और बड़े मंडल को हरनेवाला निर्धूम अग्नि-इस प्रकार चौदह महास्वप्न देखे।

भाद्रपद मास की कृष्ण द्वादशी के दिन श्रवणनक्षत्र मे विष्णुदेवी ने गेंडे के चिन्ह वाले सुवर्णवर्णी पुत्र को जन्म दिया । उस समय आसनकंपन से प्रभु का जन्म जानकर अधोलोक मे बसनेवाली भोगंकरादिक आठ दिक्कुमारीकाए वहाँ पर आई । वे तीर्थकर की माता को नमस्कार करके । 'आप भयभीत न हो' ऐसा कहकर अपने आगमन की जानकारी देकर सूतिकागृह की चारो ओर एक योजन तक संवर्तक वायुद्वारा जमीन साफ करके माता के नजदीक गान करती हुई खड़ी रही नंदन उद्यान मे कूट पर रहनेवाली होने से ऊर्ध्वलोक संबंधी मेघंकरादि आठ दिक्कन्याओं ने आकर प्रणाम करके अपनी पहचान देकर सुगंधित जल युक्त बादल विकसित करके सूतिकागृह की चारो ओर एक योजन पृथ्वी पर जल बरसाया । बाद मे पुष्पवर्षा करके तथा सुंदर धूप सुलगाकर विष्णुदेवी के नजदीक अर्हंतगुणो का ज्ञान करती हुई खड़ी रही । बाद मे पूर्व रुचक से नंदोतरादिक आठ कुमारिकाएँ दक्षिण रुचक से समाहादिक आठ कुमारिकाएँ, पश्चिम रुचक से ईलादिक आठ कुमारिकाएँ और उत्तर रुचक से आलंबुशादिक आठ कुमारिकाएँ आकर अर्हंत तथा माताको नमस्कार करके, अपनी पहचान देकर दर्पण, झारी, पंखा और श्वेत चामर धारण करके पूर्वादिक दिशाओ मे अनुक्रम मे गान करती हुई खड़ी रही । रुचक पर्वत की विदिशाओ मेसे चित्रादिक चार कुमारिकाएँ आई पहले की तरह नमस्कार करके हाथ मे दीपक लेकर विदिशाएँ गान करती हुई खड़ी रही । रुचक द्विप मे रहनेवाली रुपादिक चार दिक्कुमारीकाएँ वहाँ आकर अर्हंत तथा उनकी माता को नमस्कार करके अपनी पहचान देकर चार अंगुलसे अधिक प्रभु की अमाल रखकर उसका छेदन किया, और वह वही गढा खोदकर उसमे वही गाढ दिया । उस विवर को वज्र रत्नो से भरकर उसके ऊपर अपूर्व धो द्वारा निबिड पीठीका बनवाई, बाद मे उन्होंने सूतिकागृह की तीनो दिशाओ मे सिंहासन और चतुःशाल सहित तीन कदलीगृहो की रचना की, और प्रभु के हाथ में तथा माता को भुजा पर ग्रहण करके दक्षिण दिशा के कदलीगृह मे चतुःशाल के मध्य मे सिंहासन ऊपर स्थापित किया । वहाँ शतपाकादिक तैल से दोनो को मर्दन करके सुगंधित द्रव्य और सूक्ष्म उबटण द्वारा सुखस्पर्श से उनकी मालीश की । वहाँ से पूर्व दिशा के कदलीगृह के चतुःशालवाले सिंहासन पर ले जाकर वहाँ गंध पुष्पवाले शुद्ध जलद्वारा उनको स्नान करवाया । बाद में वस्त्र अलंकारादिक पहनाकर उत्तर के कदलीगृह के चतुःशालवाले सिंहासन पर बिठाया । बाद मे चुल्हे के अग्नि से गोशीर्षचंदन जलाकर उसकी भस्म से दोनो के हाथो पर रक्षाग्रंथि बांधी और 'पर्वत जैसा लंबा आयुष्यवाले हो' इस प्रकार प्रभु के कान में कहकर रत्नमय पाषण के दो गोले आमने-सामने टकराकर बाद मे प्रभु तथा माता को सूतिकागृह मे ले जाकर उनके पास उन्होंने मांगलिक गीत गाये । उसके बाद वे सभी अपने-अपने स्थानो पर चली गई, बाद में सौधर्मेद्र अवधिज्ञान द्वारा प्रभु के जन्म को जानकर वहाँ आकर, पालक विमानद्वारा प्रभु के सूतिकागृह की प्रदक्षिणा करके और ईशान दिशा में पालक विमान रखकर सूतिकागृह मे प्रवेश करके अर्हंत को तथा माता को नमस्कार किया । बाद मे माता को अवस्वापिनी निंद्रा देकर उनकी बगल मे प्रभु का प्रतिबिंब रखकर इंद्र ने अपने पांच रूप स्थापित किये । एक रूप प्रभु को धारण करके दुसरे रूप से सिर पर छत्र धारण

किया, दो रूप से दोनो बाजू चामर धारण किये और एकरूप मे वज्र लेकर प्रभु के आगे चले, क्षणभर मे मेरुपर्वत पर अतिपांडुकबला शिलापर इंद्र आये । वहाँ उत्संग मे प्रभु को रखकर सिंहासन पर बैठे ।

बाद मे अच्युत इत्यादि नव कल्पेन्द्र, चमर वगैरेह बीस भुवनपति इंद्र, काल वगैरे बत्तीस व्यंतरो के इंद्र और सूर्य तथा चंद्र ये दो ज्योतिष्क इंद्र-सब मिलाकर तिरसठ इंद्र प्रभु के जन्मस्नानमहोत्सव मनाने वहाँ आये । उनकी आज्ञा से तुरंत आभियोगिक देवताओं ने पूर्ण कुंभ वगैरेह स्थापित किये । उसके बाद अच्युतादिक सर्व इंद्रोने अनुक्रम से पवित्र तीर्थोदक जलद्वारा प्रभु को स्नान करवाया ।

अंत मे ईशानपति के उत्संग मे प्रभु को बैठाकर शक्रेंद्र ने चारो दिशाओं मे स्फटिक के चार वृषभ स्थापित किया । उनके शृंग मे से निकलती हुई एकत्रित जलधारा से शक्रेंद्र ने प्रभु का स्नान करवाया । बाद मे वह स्फटिक के वृषभो को लेकर शक्रेंद्र चंदनादिक द्वारा प्रभु का अर्चन करके आरती उतार करके नीचे लिखि स्तुति करना आरंभ किया—

“हे प्रभु ! सर्व कल्याणको मे श्रेष्ठ आपका जन्मकल्याणक पवित्र भक्तिवाले ऐसे मेरे कल्याणकारी बनो । हे ईश ! आपको मैं कितना स्नान कराऊँ ? आपका कितना पूजन करूँ ? आपका मैं कितना स्तवन करूँ ? मुझे आपकी आराधना करने मे तृप्ति नहीं होती है । हे प्रभु ! आपके जैसा रक्षक होने से कुतीर्थकरूपी व्याघ्र से त्रस्त इस धर्मरूपी वृषभ अब ये भरतक्षेत्र मे स्वेच्छा से विचरण करे । हे देवाधिदेव ! आज अच्छे भाग्य से मेरे हृदयरूपी मंदिर मे आप निवास करके उसे सनाथ किया है । जिस तरह आपके चरणनाखून के किरण मेरे शिर आगे फैलने से मुझे आभूषण लगते हैं उस तरह मुकुटादि आभूषण से नहीं होता है । हे त्रिजगतनाथ ! आपके गुणों की स्तुति (प्रशंसा) करते मुझे जो प्रसन्नता मिलती है वैसी प्रसन्नता उन चारणभाट की मेरी स्तुति करने से भी प्रसन्नता नहीं मिलती है । आपके पास भूमि पर बैठने से जो मेरी अन्नती होती है ऐसी अन्नती सौधर्म सभामें सिंहासन पर बैठने में भी नहीं मिलती है । हे प्रभु ! आपके जैसे स्वामी की परतंत्रता मे लंबे समय तक रहने का इच्छुक हूँ उसी तरह मेरे राज्य की स्वतंत्रता मे मैं नहीं रहना चाहता हूँ ।”

इस प्रकार की स्तुति करने के बाद प्रभु को लेकर इंद्र माता के पास आये, प्रभु को माता के पास रखकर माता के पास रखा हुआ प्रभु का प्रतिबिंब तथा अवस्वापिनी निद्रा हरली । शक्रेंद्र प्रभु के सूतिकागृह मे से और दुसरे इंद्र मेरुपर्वत से विदा किये हुए सेवको की भांति नंदीश्वरद्वीप होकर अपने-अपने स्थानों पर गये ।

प्रभु के जन्म के समाचार मिलते ही प्रातःकाल (सुबह में) विष्णुराजा ने एक बड़ा महोत्सव मनाया । उस समय मानो एक छत्रवाला हो ऐसा प्रमोद सर्वत्र प्रवृत्त होने लगा । मातापिता ने श्रेयकारी दिन उत्सव द्वारा श्रेयांस ऐसा प्रभु का नामकरण किया । इंद्र ने आदेश करके भेजी हुई पांच धात्रीयों ने लालन-पालन किये हुए प्रभु, इंद्र द्वारा संचारित अमृतवाले अपने अंगुठे का पान करते हुए वृद्धि हो रही थी । प्रभु तीन ज्ञानको धारण किये होने पर भी बाल्यावस्था मे योग्य जैसी मुग्धता दिखा रहे थे, कारण सूर्य प्रचंड किरणोवाला होने पर भी वह प्रातःकाल मे अपनी प्रचंडता दिखाता नहीं है । सुर-

असुर और मनुष्यों के कुमारी के साथ क्रीडा करते प्रभु रथ से उतर कर हाथी पर बैठे जाते, उसी तरह शिशुवय मे से उतरकर यौवनवय पर आरुढ हो गये । प्रभु की काया अस्सी धनुष ऊँची हुई है । फिर भी स्वयं को संसार पर वैराग्य का बर्ताव होने पर भी पिता के आग्रह से राजकन्याओं का पाणिग्रहण किया । जन्म से इक्कीस लाख वर्षों के पश्चात पिता की प्रार्थना से प्रभु ने पृथ्वी का भी भारग्रहण किया । जिसकी महिमा अक्षीण है जिस श्रेय के भंडाररूप ऐसे श्रेयांस प्रभु ने बियालीस लाख वर्षोंतक भूमंडल पर शासन प्रवृत्त किया ।

बाद मे जब प्रभु संसार से विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करनेके इच्छुक हुए तब उस समय शुभ शगुन की तरह लोकांतिक देवताओ ने आकर प्रेरणा दि । उस दिन से इंद्र की आज्ञा से कुबेर की प्रेरणा से प्रेरित जृम्भक देवताओ ने पूर्ति द्रव्य द्वारा प्रभु ने वार्षिक दान देना शुरु किया । सालभर होने के बाद इंद्रोने आकर, मानो कर्मरूपी शत्रुओ के विजय के लिये हो उस तरह जल्दी से प्रभु का दीक्षाभिषेक किया । बाद मे दिव्य अंगराग का विलेपन करके, रत्नके आभूषणो से सुशोभित करके, मांगलिक और दिव्य वस्त्र धारण करवाकर, मानो मूर्तिमान मांगल्य हो वैसे प्रभु के सेवक तरह नम्र सौधर्म इंद्रने हाथ का सहारा देकर, दुसरे इंद्र छत्रचामर धारण करके उन्हे घेर लिया । रत्नो द्वारा निर्मल ऐसी सुंदर कांतिवाली विमलप्रभा नाम की शिबिका पर बैठकर सुरनरो से प्रवृत्त प्रभु सहस्राम्र वन मे पधारें । वहाँ आकर शिबिका पर से उतर कर आभूषणादिक का त्याग करके और इंद्र ने दिया हुआ देवदुष्य वस्त्र कंधे पर धारण करके फाल्गुन मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन पूर्वाह्नकाल मे श्रवणनक्षत्र मे चंद्रका योग आने पर छठ तप करके प्रभु ने पंचमुष्टि लोच किया । प्रभु के केश अपने उत्तरीय वस्त्र के छोर पर लेकर शक्र इंद्र ने पवन की तरह क्षणभर मे क्षीरसागर मे बहा दिये । बाद मे इंद्र मुष्टि की संज्ञा करके सर्व कोलाहल शांत किया, उसी समय प्रभुने विश्व को अभय देनेवाला चारित्र ग्रहण किया । प्रभु के साथ एक हजार राजाओ ने राज्य को तिनके भांति छोडकर वह व्रत ग्रहण किया बाद मे सुरअसुरो के अधिपति, नंदीश्वर द्वीप मे शाश्वत अर्हत प्रतिमाओं की अट्ठाई महोत्सव करके अपने-अपने स्थान पर गये । दुसरे दिन सिद्धार्थ नगर मे नंदराजा के घर प्रभु परमअन्न से पारणा किया । देवताओ ने वहाँ वसुधारादिक पांच दिव्य प्रगट किया, और नंदराजा ने प्रभु के चरणस्थानो पर रत्न की पीठ बनवाई । बाद मे उस स्थान से पवन की तरह प्रतिबंध रहित ऐसे प्रभु ग्राम, खान और नगर वगैरेह मे विहार करने को प्रवृत्त हुये ।

प्रथम वासुदेव त्रिपुष्ट आदि का चरित्र

इस तरह पूर्व महाविदेह क्षेत्र में शिरोमणि पुंडरीकिणी नाम की नगरी में सुबल नाम का राजा चिरकाल से राज्य करता था। उसने उचित समय आने पर मुनिवृषभ नाम के सूरिके पास दीक्षा ली और उत्कृष्ट तप से सिद्ध मृत्यु को प्राप्त होकर अनुत्तर विमान में देवों की तरह उत्पन्न हुए।

अब राजगृही नगरी में विश्वनंदी नाम का राजा था। उसकी प्रियंगु नामक पत्नि की कोख से विशाखनंदी पुत्र हुआ। विश्वनंदी राजाको विशाखाभूति नाम का एक लघु बंधु युवराज था। वह बुद्धिमान, वीर्यवान, विनीत और न्यायी था। उस विशाखाभूति की धारिणी नाम की स्त्रिके कोख से पूर्व जन्म के उपार्जित सुकृतो द्वारा मरीचि का जीव पुत्ररूप में अवतरित हुआ। मातापिता ने उसका विश्वभूति ऐसा नाम रखा। धात्रीयों के लालन-पालन किया हुआ वह पुत्र अनुक्रम में बड़ा हुआ। समग्र कलाकलापों का अभ्यास करके उसने सर्व कलाएँ प्राप्त की। अनुक्रम में शरीर के मूर्तिमान समान आभूषणरूप युवावस्था को प्राप्त हुआ। बाद में अनेक स्त्रियों का पाणिग्रहण करके मानो पृथ्वी पर नंदनवन आया हो ऐसा बहुत सुंदर पुष्पकरंडक नाम के उद्यान में अंतःपुर की स्त्रियों के साथ वे क्रीडा करने लगा।

एकबार राजपुत्र विशाखनंदी को उस उद्यान में क्रीडा करने की इच्छा हुई, लेकिन वह उद्यान कभी भी विश्वभूति बिना खाली नहीं दिखाई दिया। एकबार विशाखनंदी की माता की दासीयां पुष्प लेने के लिये उद्यान में गईं, उनोंने वहाँ अंतपुर के साथ विश्वभूतिको क्रीडा करते देखा वह देख के मनमें ईर्ष्या भूतपन्न हुई और उन्होंने आकर प्रियंगुदेवी से कहा-युवराज विशाखाभूति का पुत्र विश्वभूति ही हाल राजा हो ऐसा मालुम पड़ता है, दूसरा कोई राजा जानता नहीं है, कारण अपने अंतःपुर साथ वे पुष्पकरंडक उद्यान में क्रीडा कर रहे हैं, और अपने राजकुमार निवारित होकर बाहर रहते हैं। यह वचन सुनकर प्रियंगु रानी कोप करके कोपगृह में जाकर बैठ गई। राजाने आकर पुछा-‘ऐसा क्यों किया ? तब वह बोली-“युवराज के कुमार विश्वभूति अकेला ही पुष्पकरंडक उद्यान में क्रीडा करता है और आपके होते भी मेरा कुमार रंक की तरह बाहर खड़ा रहता है यह कैसी बात ? राजाने कहा-‘मानिनी ! अपने कुल में ऐसी व्यवस्था है कि जहाँ एक क्रीडा करता हो वहाँ दूसरा तक प्रवेश न करे।’ राजाने इस प्रकार कहा फिर भी प्रियंगुदेवीने यह मान्य नहीं किया, तब अन्य उपाय को जाननेवाले राजाने युद्धप्रयाण का घंटानाद बजवाया, उस के साथ उद्घोषणा करवाई कि “पुरुषसिंह नाम का एक सामंत हमारी आज्ञा मानता नहीं है, इसलिए उसे जितने के लिये प्रयाण कर रहे हैं” यह खबर सुनकर कुमार विश्वभूति संभ्रम से राजा के पास आकर कहने लगा—‘क्या मेरे होते हुए पिताजी आप युद्ध करने के लिये प्रयाण करेंगे ?’ इस प्रकार कहकर वह आग्रह से राजा को समझाकर विश्वभूति स्वयं एक बड़ी सेना को लेकर सामंत की राज्यभूमि की ओर निकल पड़ा। कुमार को आने की बात सुनकर वह सामंत संभ्रम से सामने आया और एक सेवक की भांति भक्ति दिखाकर अपने मंदिर में उन्हे

ले गया। बाद में अंजली जोड़कर कहा 'हे स्वामिन् ! क्या आज्ञा है ?' ऐसा कहकर हस्ती, अश्व, वगैरेह की भेट दी और विश्वभूति के मनका उसने रंजन किया। किसी भी प्रकार को विरोध नहीं दिखाया, इसलिए विश्वभूति जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से वापस मुड़ गया, कारण निरपराधी पर कोप कौन करेगा ?

विश्वभूति के जाने के बाद विशाखनंदी को पुष्पकरंडक उद्यान में प्रवेश करवाया। परदेश से आने के बाद विश्वभूति पूर्व की तरह फिर से उद्यान में क्रीड़ा करने के लिये आया। उद्यान में प्रवेश करते ही पहरेदारने 'कुमार विशाखनंदी उद्यान में हैं' ऐसा कहकर उन्हें रोका। मर्यादा और बल का समुद्र विश्वभूति तुरंत वहाँ खड़ा रहा। उसने सोचा कि 'अरे ऐसा कपट करके इस वन के वन में से हाथी की तरह मुझे बाहर निकाला हुआ लगता है, इसलिये अब मुझे क्या करना चाहिए ? ऐसा सोचकर कोप करके मद मस्त हाथी की तरह दांत द्वारा ताड़न करता है उस तरह मुष्टि द्वारा काफी फलवाला कोठे के वृक्ष पर ताड़न करके उसके आघात से गिरे हुए फलो से नीचे की पुरी पृथ्वी आच्छादित हो गई। वह पृथ्वी को दिखाते हुए विश्वभूति ने पहरेदार को कहा- 'यदि मेरे बड़े पिताजी के भक्ति का अंतराय न होता तो आज तुम्हारे सभी के मस्तक मैं इस कोठे के फलो की तरह जमीन पर ढेर कर देता, लेकिन जिन भोगविलास के लिये किसी के साथ इस तरह उससे छल करना पड़ता हो ऐसे सर्प की फन की तरह भयंकर भोगों से मुझे छुटकारा मिल गया' इस प्रकार कहकर विश्वभूति ने तिनके की तरह सभी समृद्धि को छोड़ दिया, और संभूतिमुनि के चरणों में पास जाकर व्रत ग्रहण किया। यह खबर जब विश्वनंदी के सुनने में आई, तब वे अंतःपुर तथा परिवार को लेकर युवराज सहित स्वयं वहाँ पर आये, और सूरि के चरण स्पर्श करके नमस्कार करके विश्वभूति के पास आकर आनंद रहित होकर गदगद स्वर से इस प्रकार कहा- " हे वत्स ! हमेशा तुम हमारी आज्ञा लेकर ही सभी कार्य करता था लेकिन आज यह कार्य तुने साहस से कैसे किया ? क्या हमारे भाग्य का नाश होने लगा ऐसा जानकर तुमने इस प्रकार किया ? हे वत्स ! इस राज्य को धारण करने में तुम्हारी आवश्यकता थी तुम्हारे पर ही आज्ञा थी। उन आज्ञाओं को तुम इस समय एकाएक क्यों भंग कर रहे हो ? तुम हमारी आपत्तियाँ के सहायक हो, इसलिए अभी भी इस व्रत को त्याग दो, इच्छानुसार भोग भोगों और पहले की तरह पुष्पकरंडक उद्यान में ईच्छानुसार क्रीड़ा करो" विश्वनंदी के ऐसे वचन सुनकर विश्वभूति बोला- " अब मुझे भोगसंपत्ति से मुक्ति मिल गई है। क्योंकि इस संबंधी सुख वस्तुतः दुःस्वरूप ही है। इस संसाररूपी कारागृह में स्वजनस्नेहरूपी तंतु मजबूत पाश जैसे हो जाते हैं और अपनी लार से मकड़ी अपने जाल में फँस जाती है वैसे ही प्राणी अपने मोहसे उसमें बंध जाता है, इसलिए अब मुझे उस बारे में आप कुछ भी कहना नहीं, मैं उत्कृष्ट तपका आचरण करूँगा, क्योंकि वह परलोक में सहायभूत होने के लिये साथ में आयेंगे।" इस प्रकार का उत्तर सुनकर राजा पश्चाताप करता हुआ घर पर गया, और विश्वभूति मुनिने गुरु के साथ वहाँ से विहार करने के लिये निकल पड़े।

छठ अठम का तप करने तत्पर और गुरु सेवा करने में उद्यमवंत ऐसे विश्वभूत मुनिने अनुक्रम से सूत्रार्थ का अध्ययन करते हुए बहुत समय व्यतीत किया। बाद में गुरु आज्ञा से अकलविहारी प्रतिमा

धारण करके ग्राम, आकर और वगैरेह मे अकेले विहार करने लगे विविध अभिग्रहो को धारण करते हुए और विहार करते महामुनि एकबार मथुरानगरी में आ पहुँचे । उस समय उस नगरी के राजा की कन्या जो अपनी बुआ की पुत्री थी उससे विवाह करने के लिये विशाखानंदी बड़े परिवार के साथ वहाँ आ पहुँचा था । महामुनि विश्वभूतिमासक्षपन के पारणे के लिये घूमते-घूमते कुमार विशाखानंदी की छावनी के पास आ पहुँचे । ‘ये विश्वभूतिकुमार’ ऐसा कहकर कुछ लोगो ने वे विशाखानंदी को बताया । उसे देखकर विशाखानंदी को उस समय गुस्सा आया उसी समय अचानक एक गाय की टकर से घूम पड़े जिससे उन्हें लगने से मुनि गिर पड़े । उन्हें गिरते हुए देखकर विशाखानंदी ने हसते-हसते कहा— ‘कोठे के वृक्ष पर से कोठे को गिराने का बल इस समयें कहाँ छिप गया ?’ ऐसे वचन बोलते विशाखानंदी को देखकर विश्वभूति मुनि उन वचनों को अमर्ष (अभिमान) द्वारा सहन नहीं कर सके, तुरंत उस गायको दो शींगो से पकड़कर घास की तरह आकाश मे उसको घूमाया । बाद मे निवृत्ति पाकर के विश्वभूतिमुनि हृदय मे इस प्रकार सोचने लगे की— ‘अहो ! मैं निःसंग हूँ, फिर भी शेषवाला (गुस्सेवाला) यह विशाखानंदी अद्यापि मेरे बारे मे बुरा सोचता है मन मे रखता है, इसलिए मैं इस उग्र तपसे प्रभावशाली तप द्वारा मैं आनेवाले पूर्व जन्म मे बहुत पराक्रमी बनूँ’ इस प्रकार उसने निश्चय किया । उसकी इस तरह आलोचना किये बिना ही कोटि वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके मृत्यु प्राप्त करके वे मुनि महाशुक्र विमान मे उत्कृष्ट आयुवाले देवता हुए ।

दक्षिण भरतार्द्ध की भूमि का मानो मुकुट है वैसा ऊँचे दरवाजैवाला पोतनपुर नाम का नगर था । उस नगर मे किरणो से सूर्य शोभा देता है उसी तरह गुणों से शोभित रिपुप्रतिशत्रु नाम का राजा राज्य करता था । छै खंडो से भरतक्षेत्र की तरह राजा छै गुणों से शोभा देता था, और चार दांतो से औरावत की तरह चार प्रकार की साम, दाम, भेद और दंड की राजनिति से प्रकाशित था । वह शौर्य मे सिंह के जैसा, पराक्रम मे हस्ती जैसा, रूप मे कामदेव जैसा और बुद्धि मे बृहस्पति के जैसा था । पृथ्वी को साध्य करने मे प्रगट पराक्रमी वह राजा बुद्धि और पराक्रम दो भुजाओं की तरह परस्पर एक दुसरे को शोभा देता था । उस राजा को शरीरधारिणी मानो पृथ्वी हो ऐसी कल्याण के स्थानरूप भद्रा नाम की एक पटरानी थी । वह रानी पतिभक्तिरूप कवच धारणकर, पहरेदार की तरह वह जागृत रहकर, रत्न के निधानकी तरह हमेशा अपने शील की रक्षा करती थी नेत्ररूपी दीपक को मानो अमृतमयबाती हो, शरीरधारी मानो राज्यलक्ष्मी है वैसी मूर्तिमती मानो कुलव्यवस्था है ऐसी वह निरंतर प्रकाशित थी । एकबार प्रथम कहा हुआ सबल का जीव अनुत्तर विमान मे से च्यवनकर के वह महादेवी की कोख मे अवतरित हुआ । उस समय सुख से सो रही महादेवी को रात्रि के अंतिम प्रहर मे बलभद्र के जन्म को सूचित करनेवाले चार महास्वप्न देखे । उस समय उत्पन्न हुए परमानंद से पराभव पाकर दूर चली गई हो ऐसी निद्रा चली गई, इसलिए रानी ने उस स्वप्न की बात राजा को इस प्रकार से बताई — हे स्वामिन् ! आज रात को प्रथम स्फटिकमणि का जैसा उज्ज्वल चार दांतवाला हस्ती, बादल के भीतर चंद्र प्रवेश करता है उस तरह मेरे मुख मे प्रवेश करता हुआ देखा । बाद मे शरद ऋतु में बादलों से बना हुआ निर्मल कांतिवाला और सरल पुछवाला एक गर्जना करता हुआ वृषभ देखा । बाद मे दूर फैलते

हुए किरणों के अंकुरोंसे मानो दिशाओं को कर्णभूषण की रचना करता हो ऐसा चंद्रमा देखा, अंत में जिसमें भ्रमर का मधुर गुंजन कर रहे थे ऐसे विकसित कमलों से शतमुख द्वारा गान करता हो ऐसा एक पूर्ण सरोवर देखा । हे नाथ ! इन स्वप्नों का मुझे क्या फल मिलेगा वह कहो क्योंकि सामान्य जनो को उत्तम स्वप्नो का फल पूछना भी योग्य नहीं है ।” राजाने कहा—“ हे देवी ! लक्ष्मी से देव के जैसा और लोकोत्तर बलवान तुम्हें बलभद्र पुत्र की प्राप्ति होगी ।”

बाद में सुख से गर्भ का निर्वाह करते हुए, अनुक्रमिक पूर्व दिशा जिसकी तरह सूर्य को जन्म देती है उसी तरह भद्रादेवी ने पूर्ण समय पर श्वेतवर्णवाले, बड़ी भुजाओंवाले और अस्सी धनुष्य की ऊँचाई शरीरवाले पुत्र को जन्म दिया । चक्ररत्न उत्पन्न होनेपर जिस तरह चक्रवर्ती महोत्सव करता है उस तरह पुत्ररत्न उत्पन्न होनेपर महाराजा ने बड़े आडंबर से महोत्सव मनाया । बाद में शुभ दिन शुभ राशि का चंद्र होनेपर राजाने बड़े उत्सव से पुत्र का अचल ऐसा नाम रखा । नीक द्वारा वृक्ष की तरह दिनोदिन शरीर की कांतिका अधिकाधिक विस्तार करता हुआ बालक धात्रीयों से वृद्धि पाने लगा । वह अचल कुमार जन्म के बाद कुछ काल जाने के बाद वह केतकी जैसे पुष्प को धारण करती है उस तरह भद्रादेवी ने दुबारा गर्भ धारण किया । पूर्ण काल समाप्त होने पर गंगा जिस तरह कमलिनी को जन्म देती है उसी तरह देवी ने सर्व लक्षणो से सम्पन्न ऐसी एक पुत्री को जन्म दिया । राजाने मृग के बच्चे जैसी नेत्रोवाली उस चंद्रवदना पुत्रीका नाम मृगावती ऐसा रखा । तापसो के उत्संग में मृगनी की तरह लोगोके उत्संग में संचार करती हुई उस मृगनयनी बाला निर्विघ्न वृद्धि पाने लगी । उस बालिका को अपनी कटि पर बैठाकर घर के आंगन में घूमनेवाली विचरण करती हुई ऐसी धात्रियाँ रत्न की पुतलीयों से घर के खंभे शोभा देते हैं वैसी वह शोभा दे रही थी । अनुक्रमिक बालावस्था लांघकर वह मृगावती कामदेव को जीवन देनेवाली और शरीर की लक्ष्मी को विशेष करनेवाली ऐसी यौवन को प्राप्त हुई ।

उसका मुख तथा भ्रुकुटी से मानो चंद्र का दंतपत्र हो ऐसा शोभायमान था । भ्रमर सहित कुमुद पुष्प हो जैसे उसके कृष्ण धवल नेत्र शोभा देने लगे । उसका कंठ मानो मुखरूप कमल की नाल हो ऐसा सुंदर दिखाई देने लगा । सरल उंगलियोवाले दोनो हाथ कामदेव के दो भाथा हो वैसा प्रतित होने लगा । शरीर की लावण्यरूपी सरिता के मानो चक्रवाक पक्षी हो जैसे उसके स्तन हुए । मानो स्तनभार के श्रम लगने से उदर कृशता को पाया हो । कामदेवकी क्रीडा करने के वापिका हो ऐसी उसकी गंभीर नाभि दिखाई देने लगी । रत्नाचल की मानो तटी हो वैसी बड़े नितंबोवाली दिवार दिखाई देने लगी । कदली स्तंभो के जैसी क्रमिक वर्तुलाकार ऊरु शोभा देने लगे और ऊँची नालवाले दो कमल हो जैसे सरल जांघवाले चरण दिखने लगे । इस प्रकार नौयोवना की लक्ष्मी जिसके सभी अंगोसे विभूषित है ऐसी वह मृगावती मानो विद्याधरी की अधिष्ठात्री देवी हो ऐसी शोभा देने लगी । मृगावती यौवन अवस्था की ओर अग्रेसर होती गई उस तरह भद्रादेवी को उसके लिये वरकी भी चिंता होने लगी । एकबार भद्रादेवीने ‘मेरी तरह राजा भी चिंतीत हो उसके विवाह की चिंता करे’ ऐसा समझकर मृगावती को राजा के पास भेजा । उसे देखकर कामदेव के बाण से घायल बना हुआ राजा ‘यह मेरी पुत्री है’ इस तरह जाने अंजाने में न जानकर उस तरह वह हृदय में चिंता करने लगा—“अहो ! तीनों जगत की

स्त्रियों को विजय प्राप्त करवाने में श्रेष्ठ ऐसा नारी सौंदर्य कामदेव का विजयी शस्त्र है। भूमि और स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त करना सुलभ है लेकिन हृदयवल्लभा बाला (स्त्रि) मिलना दुर्लभ है। सुर-असुर, नरपतिओं के पुण्य से अधिक और सैंकड़ों जन्मांतर में उपार्जित मेरे पुण्यों से मुझे यह बाला प्राप्त हुई है” इस प्रकार सोचकर रिपुप्रतिशत्रु राजाने मधुर आलाप से उसे अपने पास बुलाकर प्राणवल्लभाबाला को तुरंत उत्संग पर बिठाकर स्पर्श, आलिंगन और चुंबन से अनुराग दिखाकर उस सुंदरी को वृद्ध दासीओं के साथ राजाने उसे अंतःपुर में भेज दिया। बाद में लोकापवाद से बचने के लिये एक बार राजाने अधिकारी वर्ग के साथ पुरजनों को बुलाकर इस प्रकार पुछा। “मेरी भूमि में, गांव में, घर में, या अन्य स्थान पर उत्पन्न हुआ तो वह किसका कहलायेगा? उसे आप कहे” लोगो ने कहा “जो रत्न आपकी भूमि में उत्पन्न होता है उसके सच्चे स्वामी आप हैं, दुसरा कोई भी नहीं है”। इसतरह तीनबार निर्णय करवाकर बाद में अपनी मृगावती कन्या को दिखाकर फिरसे कहा- “यह मेरा कन्या रत्न है, उसे मैं आपकी आज्ञा से विवाह करूँगा। ऐसे राजा के वचन सुनकर सभी नगरजन लज्जित होते हुए अपने-अपने घर गये। बाद में राजाने गांधर्व विवाह से अपनी पुत्री से विवाह किया। राजा अपनी पुत्री का पति बना, इससे वह पृथ्वी पर प्रजापति ऐसे नाम से उसे ख्याती प्राप्त हुई सभी लोगों में उपहास के पात्र बनी हुई और कुल को कलंक लगानेवाले पति से भद्रादेवी बहुत ही लज्जित हुई।

बाद में अपने पुत्र अचलकुमार को लेकर वह भद्रादेवी दक्षिण देश में चली गई। कारण जहाँ दुर्जनो के ताने वचन सुनना न पड़े वही देश उत्तम है। मानो नया विश्वकर्मा हो ऐसे उस अचलकुमार ने उस देशमें अपनी माता के लिये माहेश्वरी नाम की एक नगरी बसाई। बाद में कुबेरने जिस तरह अयोध्या को धन से भरा था उसी तरह अचल बलदेव ने नगरी को दुसरी जगहों के से धन लाकर भर दिया। बादमें उसने कुलीन प्रधानोंसे, आत्मरक्षक सेवकों की देखभाल से मानो मूर्तिमान पुरदेवी हो इस तरह अपनी माता को नगरी में रखा था। स्त्रियों का शिरोरत्न ऐसी भद्रादेवी भी शीलरूपी अलंकार को धारणकरके देवपूजादिक षट्कर्म में तत्पर में रहकर उस नगरी में रहने लगी। बाद में भक्तिमान ऐसा अचलकुमार पोटनपुर नगर में अपने पिता के पास आया। जैसा तैसा भी हो लेकिन सत्पुरुषों के पिता पूज्य हैं। अचलकुमार पूर्ववत् पिता की सेवा करता हुआ वहाँ रहा। विद्वान पूज्य पुरुषों के चरित्र चर्चा नहीं करते हैं।

अब चंद्र और रोहणी की तरह राजा ने उस मृगलोचना मृगावती को पटरानी का पद दिया। कुछ समय बीतने पर विश्वभूति मुनि का जीव महाशुक्र देवलोक से च्यवनकर उस मृगावती की कोख में अवतरित हुआ। रात्रि के पिछले प्रहर में वासुदेव के जन्म की सूचना देनेवाले सात स्वप्न मृगावती देवी ने सोते-सोते देखा। पहले स्वप्न में कुंकुम जैसा अरुण केसरवाला, चंद्र की रेखा जैसे तीक्ष्ण नाखूनोवाला और चामर के जैसे पुष्पों को धारण करनेवाला युवान केसरीसिंह देखा। दुसरे स्वप्न में जिनके हाथ में (सूँठ में) क्षीरोदक से भरे हुए कुंभ हैं ऐसे दो हस्ती जिनका अभिषेक हो रहा है। ऐसे लक्ष्मी पद्मासन पर बैठे देखा। तीसरे स्वप्न में महाअंधकार को चिरता हुआ, रात्रि में दिन का प्रकाशित करता उग्र पुंज सूर्य देखा। चौथे स्वप्न में स्वच्छ और स्वादिष्ट जलसे भरा हुआ मुखपर पुंडरिक

कमलो से अर्चित हुआ और स्वर्ण की घंटा तथा पुष्पों की मालावाला कुंभ देखा । पाचवे स्वप्न मे अनेक जलचर जाति भरा कल्लोल को उछालता समुद्र देखा । छठे स्वप्न मे पांचवर्ण के मणियों की कांति के प्रसार से आकाश के आंगन मे इंद्रधनुष की विस्तार फैलता हुआ रत्नों की राशि देखने मे आयी । सातवे स्वप्न मे ज्वालाओं से आकाश को पल्लवित करता और दृष्टि के आलोक द्वारा सूख देता निर्घूम अग्नि दिखाई दिया ।

इस तरह सात स्वप्न देखकर मृगावती जाग गई और उसने राजा को बतलाया । राजाने कहा- “हे देवी ! इस स्वप्न से आपको अर्द्धचक्री (वासुदेव) पुत्र होगा ।” प्रातःकाल मे राजाने निमित्तया (जोतिषि) से भी पूछा ? तब उन्होंने भी स्वप्न का फल उपरोक्त ही बताने पर कहा । बुद्धिवान पुरुषो के बोलने मे फरक नहीं पडता है । गर्भ का समय पूर्ण होने पर रानी ने सर्वलक्षणो से युक्त अस्सी धनुष्य ऊँचे शरीरवाला और कृष्ण वर्णवाले एक पुत्र का प्रसव हुआ । उस समय दिशाएँ प्रसन्न हुई, पृथ्वी उल्लास पायी और राजा भी अन्य लोगो की तरह हर्षित हुआ । गोपाल जिस तरह गायों को खूटे से छोडता है और वे हर्षित होती है उसी तरह हर्षित रिपुप्रतिशत्रु राजाने कैद किये कैदियों को कारागार से मुक्त किया । आनेवाली वासुदेव की लक्ष्मी के लिये मार्ग पहले से ही मुक्त करके रखता हुआ स्थान रिक्त करता हो वैसे कामधेनु की तरह याचको को इच्छानुसार दान देने लगा । लोग मे भी पुत्रविवाह की तरह राजपुत्र के जन्म का बडा महोत्सव मनाया जाने लगा । हाथ मे मांगलिक वस्तुएँ लेकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ राजमंदिर की ओर आने लगी । वहाँ पर सभी का समावेश न होने से एकत्र बडी भीड इक्की हो गई । राजगृह की तरह शहर मे भी सभी जगह प्रवेश द्वारो पर पत्ताकाए तोरण लगने लगे । जगह-जगह संगीत प्रसारण हो रहा था । पुत्र की पीठ पर तीन वंश के निशान देखकर राजाने बडे उत्सव से उसका त्रिपुष्ट ऐसा नाम रखा । धात्रीयों के लालन-पालन किया हुआ और अचल बलदेव के साथ क्रीडा करता हुआ त्रिपुष्ट कुमार धीरे-धीरे बढने लगा । महावत के पीछे बाल हस्ति के जेशे आगे चलता बलभद्र के पिछे पैरो के घूंघरु बजाता हुआ वह त्रिपुष्ट कुमार क्रीडा करने लगा ।

योग्य आयु होने पर दर्पण प्रतिबिंब की तरह ग्रहण करता है उस तरह उस महाप्रज्ञ कुमार ने उपाध्याय को साक्षी रखकर लीलामात्र मे सर्व कलाग्रहण कर ली । अनुक्रमिक कवच धारण करनेवाला और दृढ वक्षस्थलवाला वह महाभुज कुमार अनुज (छोटा) था फिर भी मानो बलभद्र का वयस्क (मित्र) हो ऐसा दिखाई देने लगा । अंतर रहित नित्य क्रीडा करते ये दोनो भाई मानो मूर्तिवंत शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तरह शोभा देते थे । नील और पीले वस्त्र को धारण करनेवाले और ताड तथा गरुड के चिन्हवाले वे दोनो भाई मानो सुवर्णगिरी तथा अंजनगिरी हो ऐसे शोभा देते थे । वे बलदेव और वासुदेव क्रीडा से चलते तो भी उनके चरणन्यास से वज्रपात की तरह पृथ्वी कंपायमान हो जाती थी । पुरुषों मे गजेन्द्र समान वे दोनो भाई जब हाथी पर चढते तब उन प्रौढ हाथी भी कुंभस्थल पर उनके हस्ततल का आस्फालन सहन नहीं कर सकते थे । क्रीडा करते वे अपनी प्रचंड भुजाओ द्वारा जब पर्वत के शिखर पर चोट करते थे तब बडे पर्वत के शिखर भी अेक समूह जैसे (छोटे) दिखाई देते थे । वे दोनो कुमार बडे दैत्यादिक से भी डरते नहीं थे । दुसरो की क्या बात करनी ? निर्भीक ऐसे वे उनके शरणो मे आते

उसका रक्षण करते । परस्पर अत्यंत स्नेह होने से अचलकुमार बिना त्रिपुष्टकुमार बिना अचलकुमार अकेले नहीं रहते थे । मानो दो शरीर और एक आत्मा हो उस तरह वे साथ साथ रहते थे ।

इस ओर रत्नपुर नगर मे मयूरग्रीव नाम का राजा की नीलांजना नाम की रानी की कोख से अश्वग्रीव नाम का प्रतिवासुदेव उत्पन्न हुआ । वह महाभुज अस्सी धनुष्यके शरीरवाला, नये मेघ के जैसी कांतिवाला था और चौर्यासी लाख वर्ष की आयुष्यवाला था । बड़े हस्तीओं के कुंभस्थानो को फाड़ डालने पर भी जिस तरह सिंह को क्रोध शांत नहीं होता है उस तरह अनेक शत्रुओं को कुटने से शांत न होनेवाला अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव की भुजाओ की खुजली शांत नहीं होती थी । वह महाबाहु और पराक्रमी वीर रणसंग्राम मे ऐसा कुतुहली था कि युद्ध करने से वह प्रसन्न होता था तथा शत्रुओ के नम्र होने से प्रसन्न नहीं होता था । उसका प्रताप वरुणास्त्र की तरह शत्रुओ की पत्निओं के नेत्रकमल से अभ्रुजल का आकर्षण करके बरसाता था । उसके हाथ मे दिशाओं के चक्र का आक्रमण करनेवाला एक चक्र था, जो शत्रुओ के उत्पात का मानो दुसरा सूर्य था ऐसा जान पडता था । बड़े राजा भी हृदय मे घुसकर भी वह प्रतिवासुदेव अपने को विरोधी समजकर मार न डाले इस डर भय से वे मन में चिंतित रहते थे । उसके बुरे के बारे मे सोच भी नहीं सकते थे । योगी पुरुष जिस तरह प्रभु को नहीं भूलते है उसी तरह कोई भी राजा अपने हृदय में से उसको भूल नहीं सकते थे । वह अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव ने अपने पराक्रम से जिसने वैताढ्य पर्वत अघाट शिलामय स्तंभ रूप है ऐसे इस भरतक्षेत्र के तीन खंड स्वाधीन कर लिया । उसी तरह विद्याधरो मे भी उत्तम ऐसे वे प्रतिवासुदेव मानो वैताढ्य पर्वत की दो भुजाएँ हो वैसी विद्याधरो की दो श्रेणीयों विद्या और पराक्रम से पराजित कर लिया । मागध, प्रभास और वरदाम तीर्थों के अधिपतियों ने अपना राजा है उस प्रकार भेट उपहार रखकर अर्चना की । सोलह हजार मुगुटबद्ध राजा उसके उग्र शासन को मुगट की तरह अपने मस्तक पर संभाल धारन के रखा था ।

इस तरह वह बड़ी भुजाओंवाला प्रतिवासुदेव अेकक्षत्र साम्राज्य को भोगता और कालका निर्वाह करता हुआ इस पृथ्वी पर इंद्र की तरह रहने लगा । एक दिन स्वेच्छा से क्रीडा करते अश्वग्रीव राजा को, अचानक आकाश मे उत्पातकारी मेघ की तरह हृदय में चिंता उत्पन्न हुई- “दक्षिणार्द्ध के भरतक्षेत्र मे जो कोई राजा है वे सभी समुद्र मे पर्वतो की तरह मेरी भुजाओं के बल मे मग्न है, तथापि पृथ्वी मे एक मल्ल जैसा, मुझे मारनेवाला, मृगो में केसरीसिंह के जैसा, कोई राजा का पुत्र जन्म लेगा ? यह जानना अशक्य है फिर भी मुझे जानना चाहिए ।” ऐसा निश्चय करके उसने अश्वबिंदु नाम का एक निमित्या को द्वारपाल द्वारा बुलवाया । राजाने अपना विचार उससे पुछा, इसलिए वह बोला- “हे राजन् ! पाप शांत हो, यह अमांगलिक वचन का नाश हो । इस सर्व जगत को विजयी करनेवाले ऐसे आपका अंत करनेवाला यमराज स्वयं भी समर्थ नहीं है तो मानव मैं ऐसा दुसरा कौन समर्थशाली है जो आपका वध करनेवाला हो सकता है ?” फिर से अश्वग्रीव ने कहा- “अरे निमित्तज्ञ ! अर्थवाद छोडकर जो यथार्थ (सत्य) है वह कहो” आप पुरुष चादु वचन नहीं बोलते है” इस प्रकार प्रतिवासुदेव ने जब आग्रह करके पुछा तब उस निमित्त्याने लग्नादिक का विचार करके स्फुटाक्षर मे कहा-हे राजन् ! आपके चंडवेग नाम का दूत का जो पराभव करेगा और पश्चिम दिशा के अंत मे रहे हुए सिंह का जो वध करेगा

वह आपका भी वध करनेवाला होगा ।” निमित्तिया की ऐसी कहानी सुनकर, मेघ गर्जना से यात्री की तरह अश्वघ्नीव राजा को ग्लानि हो गई, लेकिन उपर से कृत्रिम पूजा करके उस निमित्तिया को शत्रु के दूत की तरह विदाय किया । उस अवसर पर एक युवान केसरीसिंह ने पश्चिम देश को विरान कर दिया है ऐसा समाचार मिला, इसलिये राजाने उस सिंह का वध करनेवाले पुरुष को जानने के लिये उस प्रदेश में शालि के पौधे बोये और उस शालि की रक्षा के लिये सोलह हजार राजाओं को रहने की आज्ञा की वे राजा अनुक्रमिक शस्त्रादि द्वारा स्तब्ध होकर वहाँ जाकर ग्वाले जिस तरह गायों से क्षेत्र की रक्षा करते हैं उसी तरह केसरी सिंह से उस शालि की रक्षा करने लगे । एक बार प्रतिवासुदेव सभा में आकर अपने अमात्य, सेनापति और सामंत वगैरेह सभासदोंको संबोधित करके कहने लगा कि—“मेरे सामंत राजाओं में और सेनानीयों में हाल असाधारण पराक्रमी कोई भुजबल कुमार है ?” उन्होंने कहा सूर्य के आगे कौन तेजस्वी हो सकता है ? पवन से कौन पराक्रमी है, गुरुड से अधिक गति वेग वाला कौन है, मेरुपर्वत के आगे किसकी गौरवगाथा हो सकती है और समुद्रसे अधिक कौन गंभीर कहलायेगा, उसी तरह महापराक्रमी जैसे आपके सामने कौन पुरुष आपसे अधिक पराक्रमी हो सकता है ?” राजाने कहा—“तुम्हारे यह वचन सब चाटु वचन हैं, वास्तविक नहीं हैं । हमेशा बलवान पुरुष से अधिक बलवान पुरुष रहते हैं । इसलिये यह पृथ्वी बहुरत्ना कहलाती है ।” उसी समय वहाँ पर सुंदर नेत्रोवाला एक मंत्री बृहस्पति की तरह बोल उठा—“हे राजेंद्र ! इस पृथ्वी पर प्रजापति राजा के देवता जैसे दो राजकुमार हैं, वे सभी मनुष्यवीरों को तिनके की तरह गिनते हैं ।” मंत्री के वचन सुनकर तत्काल राजाने सभा विसर्जित की और चंडवेग नाम का अपने एक दूतको कोई मतलब समझाकर प्रजापति राजा के पास भेज दिया । वह दूत अच्छे-अच्छे रथी और श्रेष्ठ घुड़स्वारों को लेकर अपने राजा के तेज की तरह पोतनपुर नगर में आ पहुँचा ।

वहाँ प्रजापति राजा सर्व अलंकारों से विभूषित होकर जलजंतुओं सहित वरुण की तरह अचल तथा त्रिपृष्ठ कुमार, सामंत राजाओं, सेनापतियों बड़े अमात्य सेनापति और पुरोहित प्रमुख मान्य उसी तरह प्रधान पुरुषों के साथ महर्द्धिक देव की भांति सभा में बैठा था, और निःशंक संगीत करवा रहा था । उस संगीत में विचित्र अंगचेष्टा और अंगहार पूर्वक सुंदर नृत्य हो रहा था । ध्वनि से कम और मृदंग के घोषसे आकाश गुफा की तरह गुंज रहा था । गायन के स्पष्ट उद्गार से मधुर वीणा को जीवन प्राप्त हो रहा था । ग्राम तथा राग रागिणी प्रगट करनेवाली वीणा श्रुतियों को व्यक्त कर रही थी । ताल के अनुसार गायन हो रहा था उस समय द्वारपाल जिसकी प्रवेश गति रोक नहीं सके ऐसा चंडवेग दूत बिजली की गति की तरह तुरंत संगीत सभा में प्रवेश हो गया । प्रतिवासुदेव के दूत को अचानक आया देख सामंत राजाओं सहित प्रजापति राजा भी भ्रमित हो गया और स्वामी की तरह वह स्वामी के दूत को संभ्रम सहित मान देने के लिये खड़ा हो गया । बड़े सत्कार के साथ उसे आसन पर बैठाया । बाद में राजाने उसके स्वामी के हालचाल पुछा बिना अवसर की बिजली देखने से आगमन अध्ययन का भंग होता है उसी तरह उस दूत को बिना अवसर आया हुआ देखकर संगीत में भंग हो गया, सभी संगीतकार अपने-अपने स्थानों पर चले गये, कारण कि जब स्वामी का चित्त व्यग्र हो

जाता है तब कलाकारों को अपनी कला दिखाने का अवकाश ही नहीं रहता है। उस समय संगीत के रंग में भंग करनेवाले उस दूत को देखकर त्रिपुष्ट कुमार से रहा नहीं गया, इससे उसने बगल में बैठे किसीसे पुछा—“अरे ! समय को नहीं जाननेवाला यह मनुष्यरूपी पशु कौन है कि जिसे यह मालुम नहीं कि आगमन की सूचना दिये बिना ही पिताजी की सभा में चला आया ? और उसे देखकर पिताजी भ्रमित होकर खड़े हो गये ? और उसे प्रवेश करने से पहरेदारों ने क्यों नहीं रोका ? इस प्रकार जब त्रिपुष्टकुमार ने पुछा, तब वह पुरुष बोला, “यह राजाधिराज हयग्रीव महाराज का दूत है। इस त्रिखंड भरतक्षेत्र में जितने राजा हैं उनका सभी का महाराजा है अन्य सभी सामान्य राजा हैं, इसलिये तुम्हारे पिताजी उसके दूत को मान देने खड़े हुए और उचित जाननेवाले द्वारपालने उसे रोका नहीं। कारण उस महाराजा के कुत्ते का भी पराभव नहीं कर सकते हैं, तो पुरुषों का पराभव कैसे कर सकते हैं ? यह दूत हयग्रीव राजा का माना हुआ दूत है और इसे प्रसन्न करने से महाराजा हयग्रीव भी प्रसन्न होगा। इस दूत के प्रसाद से ही राजाओं के राज आबाद रहते हैं, इस दूत की अवज्ञा करके उसे गुस्सा करवाने से महाराज भी गुस्से हो जाते हैं। कारण राजा दूत की दृष्टि के अनुसार ही बर्ताव करते हैं। जब यमराज की तरह दुःसह दुर्लभ असमर्थ हो जाता है। तो उसके राज्य की तो बात क्या कहनी है। इस प्रकार सुनकर तुरंत त्रिपुष्टकुमार ने कहा—“इस जगत में वह स्वामी अथवा वह सेवक ऐसा निर्णय नहीं किया जाता है, यह सब अपनी-अपनी शक्तिके आधीन है। मैं वाणी मात्र से अभी कुछ नहीं कहता हूँ, कारण कि खुद प्रशंसा करना और दूसरों की निंदा करना यह सत्पुरुषों को लज्जित करानेवाला है, तथापि समय आने पर मेरे पिता का तिरस्कार करनेवाले उस हयग्रीव को पराक्रम द्वारा छिन्न ग्रीव (गरदन काटकर) भूमि पर गिरा दूँगा। हे सेवक ! जब पिताजी उसे बिदा करे तब तुम मुझे सूचित करना, जिससे मैं उसे योग्य होगा वह दिखला दूँगा।” ऐसे त्रिपुष्टकुमार के राज्यविरुद्ध के वचन भी उस पुरुष ने स्वीकार कर लिया। कारण सेवकको राजा के पुत्र को भी राजा की तरह ही मानना चाहिए। बाद में चंडवेग दूत ने अपना कोई अधिकार हो नियुक्त सेवक की भांति प्रजापति राजाको संबोधित करके कुछ राज्यप्रयोजन कहकर सुनाये। राजाने वे सभी सन्मानपूर्वक मान्य किया और उसे उपहार भेट इत्यादि देकर चंडवेग को विदाई दी। परिवार सहित रथ में बैठकर वह प्रसन्न होते हुए पोतनपुर की ओर निकल पड़ा। उसे विदाई की खबर मिलते ही वह महाबलवान त्रिपुष्टकुमार उसके आगे जाकर पवन सहित जवानल जिस तरह राहगीर को रोकता है उसी तरह उसे रोका और कहा कि “अरे धीठ ! पापिष्ठ ! दुष्ट ! पशु ! तुम दूत होने पर राजा की तरह क्यों बर्ताव करते हो ? हे मूर्ख ! जिस तरह तुमने संगीत के रंग में भंग किया, उसी तरह दूसरे को न मारनेवाला न इच्छा न रखते हुए भी प्रेरित होता है क्यों ! अक साधारण गृहस्थ के घर राजा आता है तो भी वह पहले दस्तक (समाचार) देता है बाद में प्रवेश करता है ऐसी विद्वानों की नीति कहती है, फिर भी तु मानो पृथ्वी का सीनाचिर कर अचानक निकल कर राज्य सभा में कैसे आया ? ये तो मेरे सरल स्वभाव पिताजीने तुम्हारा नीति विरुद्ध कार्य होने पर भी तुम्हारा स्वागत किया वह व्यर्थ था। हे दुष्ट ! जिस शक्ति से तु दुर्विनीत हुआ है वे तुम्हारी शक्तियों को प्रकाशित कर अन्यथा नहीं तो तुम्हारे यह अन्यायरूपी वृक्षका फल तो तुम्हें

अभी दिखाता हूँ।” इस प्रकार कहकर त्रिपृष्ठकुमारने मुष्टि का प्रहार उठाकर मारने जाते हैं वहाँ पासमे रहे अचलकुमार (बलदेव) नजदीक आकर उसे रोकते हुए कहा—“हे कुमार ! बस करो, इस नररूपी कीड़े पर प्रहार मत करो । आक्रोश करनेवाले भी गिदड (शृगाल) जैसी के ऊपर केसरीसिंह भी प्रहार नहीं करते ” । दूत कभी गलत आचरण करता है तो भी वह वध करने के पात्र नहीं है । अशुभ बोलनेवाला ब्राह्मण भी उसकी ब्रह्मण्यता के लिये वध करने योग्य नहीं होता है । इससे इस प्रकार के कठोर पुरुष पर से क्रोध को नियंत्रण में रखो । हाथी के दन्तघात का स्थान ऐरंडा का वृक्ष नहीं होता है” इस प्रकार अचलकुमार के कहनेपर, त्रिपृष्ठ हाथी की तरह अपनी सूँठ को संकोचित करता है उस प्रकार उठाई मुष्टि वापस खिंच ली और अपने सुभटों को आज्ञा दी कि “संगीत के रंग में भंग डालनेवाले इस पापी दूत को जिवंत छोड़कर शेष सब कुछ हर लो” बाद में कुमार की आज्ञा से घर में बैठे श्वान की तरह सुभटों ने उसे यष्टि और मुष्टि से उसे काफी मार मारा । बाद में वध स्थान की ओर ले जानेवाले वध पुरुष के पाससे सबकुछ ले लेते हैं उसी तरह उसके पास से सब कुछ अलंकार आदि ले लिया । बाद में वह दूत हाथी के साथ रक्षक पुरुष की तरह उनके प्रहार से प्राणों की रक्षा के लिये याचना करने लगा । पृथ्वी पर लोटने लगा । उसकी ऐसी स्थिती देखकर उसके परिवार, हथियारादिक रखकर, भक्ष छोड़कर जिस तरह कौआ भाग जाते हैं वैसे जान लेकर भाग खड़े हुए । बाद में उस दूत की गधे की तरह उसकी पिटाई की, चिड़ियों की तरह चुग कर लुटकर, नट पुरुषों की तरह उसे नचाकर दोनों कुमार अपने घर की ओर चले गये।

यह वृत्तान्त लोगो से सुनकर राजा प्रजापति के चित में घाव लगा हो उस तरह चिंतित हुआ । “अरे ! मेरे कुमारों ने ऐसा अयुक्त कार्य क्यों किया, लेकिन अपने को ही घोंड़ों में गिरा दिया हो तो दूसरे को क्या कहना ? इस चंडवेग दूत के ऊपर जो आक्रमण किया है वह उसके ऊपर नहीं किया है किन्तु अश्वघ्नीव राजा के ऊपर आक्रमण किया है, कारण दूत है वह स्वामी का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए जहाँ तक चंडवेग अश्वघ्नीव के पास नहीं पहुँचता है वहाँ तक उससे पहले बुलाकर विनंती करना उचित है, जहाँ से आग लगी हो वही से उसे बुझा देना ही युक्त है ।” इस प्रकार प्रजापति राजाने अपने प्रधानों द्वारा प्रेम से विव्रम वचनों द्वारा प्रणिपात करके वापस बुलाया और हाथ जोड़कर अपने कुमारों ने कि गलती की माफी मांगी बहते हुए पानी की तरह शांत होकर मांगी । क्रोधित हाथी के लिये जिस तरह शीतोपचार करते हैं उस तरह कोप (गुस्से) की शांति के लिये बड़े मूल्यवान पहले से कई अधिक उपहार भेंट उनको दी । बाद में राजाने नम्रता से कहा—“ आप जानते हैं कि एक सामान्य धनवान गृहस्थ के कुमार नवीन यौवन में उन्मत्त हो जाते हैं तो महाराजा अश्वघ्नीव के प्रसाद से तुच्छ संपत्ति द्वारा कुमार स्वच्छंद घूमते हुए वृषभ की तरह विशेष उच्छृंखल हो इसमें क्या कहना ? हे मान देनेवाले मित्र ! उन उन्मत्त कुमारों ने आपका बहुत अपराध किया है । लेकिन आप उसे एक खराब स्वप्न की तरह से उसे भूल जाइये । मेरे मन की वृत्ति को जाननेवाले हे मित्र ! सगे भाई की तरह अपनी प्रिय हैं उसे इस शुष्क कारण के लिये आप छोड़ना नहीं । हे अनघ ! इन मेरे राजकुमार की खराब आचरण के बारे में आप अश्वघ्नीव से कुछ भी निवेदन नहीं करे यही क्षमावान पुरुषों की खरी कसौटी होती है ।”

इस प्रकार के सामवचनरूपी अमृत की वृष्टि से कोपरूपी अग्नि शांत हुआ है ऐसा चंडवेग स्नेह द्वारा कोमल वाणी से बोला—“हे राजन् ! आपके साथ लंबे समय का स्नेह होने से इस तुच्छ बातों का मैंने कोप नहीं किया है, इसमें क्षमा क्या करनी ? आपके ये राजकुमार मेरे मन पराये नहीं हैं । जब बालक गलती करते हैं तो उन्हें छोड़ देना ही उनका दंड है, उसकी शिकायत क्या लेकर नहीं जाते । ऐसी लोक मर्यादा है, आपके कुमारों के आचरण के बारे में राजासे कुछ भी नहीं कहूँगा, कारण हाथी के मुख में आहार डाल सकते हैं, लेकिन वापस नहीं निकाल सकते हैं । हे राजन् ! आप मेरे पर भरोसा रखें और मुझे अब आप आझा दे । मेरे मन में किसी भी प्रकार की कटुता नहीं है ।” इस प्रकार कहते हुए वे दूत से बंधु की भांति आलिंगन करके हाथ जोड़कर प्रजापति राजाने बिदा किया ।

चंडवेग दूत कई दिनों बाद अश्वघ्नीव राजाके पास पहुँचा । उसके पराभव की कहानी बधाई राजा के पास पहले से पहुँच गई थी । कारण कि त्रिपृष्ठ से त्रस्त भागकर आये लोग उसके परिवारवालों ने पहले से ही आकर सभी बात राजा को बता दी थी । विश्व को ग्रसित करने के लिये उद्यत हुआ राजा मानो यमराज हो उस तरह ऊँची गदगद करके और लालनेत्रोवाले अश्वघ्नीव राजाने चंडवेग को देखा, उसे तुरंत ही मनमें निश्चय हुआ कि जरूर किसीने आकर मेरे पराभव का वृतांत बता दिया है । राजा के सेवक उसकी मुखाकृति देखकर उसके मन भावनाओंको जान लेते थे । बांद में राजा के पुछने पर सभी वृतांत सुना दिया । उग्र स्वामी के आगे अन्यथा कहने का कौन साहस करेगा ? बाद में प्रजापति राजा के पास जो कबुलात की उसका ध्यान करके उसने कहा—“हे देव ! मेरे जैसा ही प्रजापति राजा आपका भक्त है, और उसके कुमारों ने जो कुछ किया है वह बचपने कि हुई एक गलती अज्ञता है । अपने राजकुमारों द्वारा ऐसे कृत्य से राजा को दुःख है । सभी राजाओं में आप शक्ति द्वारा अतिशयपन को प्राप्त किया है, उसी तरह प्रजापति राजा आपके ऊपर भक्ति द्वारा सर्व से अतिशय भक्तिमान हुआ है । वह राजा अपने कुमारों के दोष से अपनी आत्मा की निंदा करता था और इसिलिए आपके शासन को ग्रहण करके यह उपहार भेंट उसने भेजी है ।

इस प्रकार कहकर दूतने विश्राम किया, तब हयग्रीव सोचने लगा कि “उस निमित्तिया की वाणी का एक वचन की सच्चाई तो सामने दिखाई दे रही है, लेकिन यदि अब सिंह के वधरूप दूसरे वचन प्रतीति बराबर हो तो शंकास्थान बराबर प्राप्त हुआ है ऐसा मान सकते हैं ।” ऐसा सोचकर उन्होंने एक दूसरे दूत को भेजकर प्रजापति राजा से कहा— ‘आप सिंह के उपद्रव से शालि के क्षेत्र की रक्षा करें ।’ अश्वघ्नीव की ऐसी आज्ञा आने से राजाने त्रिपृष्ठ और अचलकुमार को बुलाकर कहा—“हे कुमारों ! सिंह द्वारा होनेवाले उपद्रव से शालिक्षेत्र की रक्षा करने की आवश्यक आज्ञा हुई है वह आपके दुराचरण का तत्काल फल प्राप्त हुआ है । अब हम इस आज्ञा का खंडन करेंगे तो अश्वघ्नीव राजा यमराज होगा, और अगर उसकी आज्ञा का खंडन नहीं करते हैं तो वह सिंह हमारे लिये यमराज होगा, इस प्रकार दोनों ओर से हमारी अपमृत्यु प्राप्त होगा, तथापि हे वत्सो ! अभी तो मैं सिंह से रक्षा करने के लिये जा रहा हूँ ।” पिता के वचन सुनकर दोनों कुमारों ने कहा—“पिताजी ! अश्वघ्नीव राजा का बल तो हमारे समज में आया ! यह सिंह एक पशु है, और उसे भयंकर जाननेवाला भी पशु ही

है। हे पिताजी ! आप यहाँ पर ही रहे, हम दोनों भाई जायेंगे, और कम समय में सिंह का वध करके आयेंगे। हे नरसिंह ! ऐसे कार्य के लिये आपको क्यों प्रयाण करना चाहिए।” राजाने खेद से कहा—“तुम दोनों कार्याकार्य को नहीं जाननेवाले और कंठ में आपके अभी भी दुध है बच्चे हो हे कुमारो ! उन्मत्त हाथी की तरह तुम दोनों ने मेरी आबरु (ईज्जत) के विरुद्ध काम किया है उसका यह फल प्राप्त हुआ है, तो अब मुझसे दूर रहकर जो कृत्य करोगे तो उसका फल क्या होगा यह मैं कह नहीं सकता” त्रिपृष्ठ ने कहा—“हे पिताजी ! बच्चों की तरह वह मूर्ख अश्वघ्नीव दूसरे को सिंह से डराता है, इसलिए आप यही रहे, और हम दोनों जाकर उस अश्वघ्नीव राजा के मनोरथ सहित उस सिंह का वध करेंगे।” इस प्रकार कहकर बड़े प्रयाससे राजा को समझाकर उनकी आज्ञा लेकर वे अल्प परिवार के साथ जहाँ सिंह था उस भूमि की ओर आये। वहाँ सिंह के द्वारा मारे गये लोगों की अस्थियों का ढेर लगा हुआ था मानो अपयश (का प्रतीक) हो ऐसा प्रतीत हो रहा था।

बाद में सिंह से भयभीत ऊँचे वृक्षों पर चढ़े हुए शाली क्षेत्र के किसानों को कुमारो ने पुछा—“यहाँ पर रक्षा करने के लिये आनेवाले (सोलह हजार) राजा सिंह से शाली क्षेत्र की रक्षा किस तरह से करते हैं ?” किसानों ने कहा—हे कुमारो ! हाथी, घोड़े, रथ और रक्षकों से सज्ज कर उनके द्वारा प्रवाह को रोकने की तरह अपनी और सिंह के बीच में एक व्यूह रचना करते हैं। बाद में तृषातुर हाथी कुएँ में पानी पीने के लिये जाता है उसी तरह सिंह आकर उन सैनिक वगैरह को मारकर फाड़ डालता था, बाद में चला जाता था। इस तरह वे राजा स्वयं (के जानकी शंका) रखकर वे हमारी रक्षा करते हैं” ऐसे उनके वचन सुनकर दोनों सिंह की गुफा की ओर बढ़े वहाँ पर जाकर मेघ की गर्जना के समान उनके रथ के घोष सुनकर वह बंदी के घोष से जैसे राजा जाग जागता है उसी तरह तुरंत सिंह जागा। मानो यमराज की दो दीपिका हो ऐसी भयानक दृष्टि करता, मानो यमराज के ही चामर हो वैसी केशावलि को झटकता हुआ मानो रसातल का द्वार हो ऐसे मुख से जमाहि लेता वह केसरी गरदन को कुछ संकुचित करता हुआ इधर-उधर देखने लगा। ‘यह कोई मात्र रथ के परिवारवाले दो पुरुष हैं’ ऐसा जानकर अनदेखी दिखाकर वह कृत्रिम निद्रा में सो गया। उसकी ऐसी स्थिति देखकर बलदेव ने कहा—शाली क्षेत्रका रक्षण करनेवाले महाराजाओं ने हाथी वगैरह का बलिदान देकर इसे गर्वित किया है।’ बाद में तुरंत नृसिंह त्रिपृष्ठकुमार ने वहाँ जाकर उसे मल्ल कुस्ती योद्धा की तरह उसे ललकारा सिंह को बुलाया। विष्णु का उग्र आवाज सुनकर सिंह अपने मुख के ऊपर कान दोनों टीथीयों चढ़ाकर ‘यह कोई वीर हैं’ इस तरह चिंतन करने लगा बाद में तुरंत मानो साक्षात् रौद्ररस के जैसा वह केसरी मुख फाड़कर भयंकर गर्जना करता हुआ अपनी गुफा से बाहर निकला उस समय मानो स्थल में किसीने दो बड़े खीले लगाये हो ऐसे उसके मस्तक पर दो कान तन गये। दो छोटी दीप दिखाएँ जल रही हो ऐसे पिंगक नेत्र थे। यमराज का मानो शस्त्रागार जैसे डाढ़ और दांतों से भरा हुआ मुख दिखाई दे रहा था। पाताल से निकला हुआ मानो तक्षक नाग हो ऐसी उसकी जिव्हा मुख के बाहर थी। यमराज के घर तोरण हो ऐसी उसके मुख पर एक बड़ी डाढ़ थी। अंतर में जलती हुई कोपरूपी अग्नि दिखा की तरह केशवाली थी। प्राणीयों के प्राण को आकर्षित करनेवाले चिमटे जैसे उसके नाखून

थे, मानो क्षुधातुर सर्प की तरह ऐसे पुछदंड को हिला रहा था ।

इस तरह केसरीसिंह बाहर आकर इंद्र जिस तरह वज्र को पर्वत पर पछाड़ते हैं उसी तरह प्रचंड पुछ को पृथ्वी पर पछाड़ा (पटका) । उसके पूछ के पछाड़ के नाद से वाद्यों नाद से जिस तरह समुद्र के अंदर रहनेवाली जलचर भाग जाते हैं उसी तरह प्राणी भागने लगे । उस समय त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अचलकुमार से कहा—‘हे आर्य ! मेरे होने पर आपको युद्ध करने का अवसर नहीं लेना चाहिए ।’ ऐसा कहकर उन्होंने अचलकुमार को वही रोक दिया । बाद में अकेले सिंह के साथ सामने जाते समय क्षत्रियधर्म को जाननेवाले त्रिपृष्ठकुमार ने सोचा कि ‘यह सिंह पैरो से चल रहा है और मैं रथ पर बैठा हूँ तो पैदल के साथ रथ पर बैठकर युद्ध करना ठीक नहीं है’ ऐसा सोचकर उसने रथ को छोड़ दिया । वीरव्रतरूपी धनवान उस हरिने सोचा कि ‘यह सिंह अस्त्ररहित है और मैं अस्त्रवाला हूँ तो अस्त्ररहित के साथ अस्त्र द्वारा युद्ध करना भी अनुचित है ।’ ऐसा मानकर अस्त्र छोड़ दिये । बाद में बल से इंद्र का भी उल्लंघन करनेवाले त्रिपृष्ठ ने कहा ‘हे सिंह ! यहाँ आओ, तुम्हारी युद्ध करनेकी खुजली को मैं ठीक कर दूँ ।’ ऐसा कहकर उसे बुलाया । इस वचनों की पर्वतो में प्रचंड ध्वनि हुई मानो कोप से क्रोधित ऐसा उग्र सिंह उन्हीं वचनों को फिरसे दोहराते हुए कह रहा हो ऐसा प्रतीत हुआ । उस समय युवान केसरी सिंह सोचने लगा कि “अहा ! इस बालक का यह कैसा साहस है ? वह बिना सेना आया है और रथ पर से उतरकर शस्त्रों का त्याग करके और मुझे ऊँचे स्वर से ललकार कर बुला रहा है, लेकिन जिस तरह मेढक ऊँची छलांग लगाकर साँप के सामने आता है वैसे ही यह दुर्मति मेरे पास आ रहा है तो उसकी धिष्टता का फल उसे प्राप्त हो” इस प्रकार से सोचकर अपनी पुछ खड़ी करके उछालते हुए उसने ऐसी छलांग लगाई की क्षणभर में आकाश में से किसी के वाहन में से कूदता हो ऐसा भ्रम हुआ । ऐसी छलांगकर त्रिपृष्ठ पर गिरने जाता है वही त्रिपृष्ठ कुमार ने जिस तरह पकड़से साँपको पकड़ते हैं उस तरह उसके मुख को दोनों हाथों से पकड़कर दोनों हाथों से उसके दोनों होठ अलग-अलग पकड़ के बाद में होठसे खींचकर वस्त्र की तरह चीर डाला ।

उस समय तत्काल सभासद और चारणभाट की तरह लोगोंने अंतरिक्ष और आकाश को भर दे ऐसा जयघोष किया । आकाश में विद्याधर, देवता और सुरअसुर कौतुक से एकत्रित हुए और मलयाचल के वायु की तरह विष्णु पर पुष्प वृष्टि की उस सिंह के शरीर के दो भाग करके उसे पृथ्वी पर डाल दिया । लेकिन उसमें से चेतन न जाने के कारण क्षणभर में छटपटाने लगा । शरीर परतंत्र हो जानेसे महाशोक द्वारा छटपटाता चिंता करने लगा कि “अहो ! कवचधारी और शस्त्रधारी उसी तरह सेकड़ो सेवक रक्षकों से घिरा ऐसा अनेक राजाओं भी वज्र की तरह उपर से गिरते हुए मुझे सहन नहीं कर सकते थे, और इस महाकोमल हाथोवाले बालक ने शस्त्र बिना एकांकी बालक ने मुझे मार डाला । इस बात का मुझे बड़ा खेद होता है, मेरा वध होने से मुझे खेद नहीं होता है ।” ऐसी चिंता से छटपटाता वह सिंह का अभिप्राय जानकर त्रिपृष्ठ वासुदेव के रथ सारथी ने कहा कि “लीलामात्र में से उन्मत्त हाथी को भेदनेवाले और सैकड़ो गुना बड़े सैन्य से परास्त न होनेवाले हे सिंह ! तू अभिमान करके यो खेद क्यों मना रहा है ?” यह तुझे मारनेवाला रक्षकों में श्रेष्ठ ऐसे त्रिपृष्ठकुमार सर्व वासुदेव में प्रथम वासुदेव हैं वे

आयु से बालक है लेकिन तेज और पराक्रम मे बालक नहीं है । सर्व पशुओ मे श्रेष्ठ तु सिंह है उसी तरह सर्वनरो मे वह सिंह है, इसलिए उसके साथ के युद्ध मे पराभव से लज्जित न होते हुए, उल्टे तुम्हे गर्व लेना चाहिए” उसके ऐसे वचनरूपी अमृतवृष्टि से शांत होकर वह केसरीसिंह मृत्यु को प्राप्त हुआ, और नरकगति का आयुष्य एकत्रित करने के कारण वह नरकभूमि मे नारकी हुआ ।

उस समय अश्वघ्नीव की आज्ञा से यह वृतांत जानने के लिये आये हुए विद्याधरो को त्रिपृष्ठ ने उस सिंह का चर्म दिया और कहा कि “इस पशुओं से चकित हुऐ अश्वघ्नीव को उसका वध को सूचित करनेवाले को इस सिंह का चर्म देना और उसे कहना कि स्वादिष्ट भोजन मे लंपट ऐसा तु अब निश्चित हो जा और विश्रब्ध होकर शालि का भोजन करना” ऐसा संदेश कहना कबुल करके वे विद्याधरो के कुमार गये, और त्रिपृष्ठ तथा अचलकुमार अपने नगर मे आये । दोनो भाईयोने पिता को प्रणाम किया और बलभद्र ने वहाँ हुई घटना का वृतांत पिता को सुनाया । राजा प्रजापति अपने दो कुमारो को पुनर्जन्म हुआ हो ऐसा मानने लगा और सत्य प्रतिज्ञावाले त्रिपृष्ठकुमार पर बहुत खुश हुआ ।

उन विद्याधरो के कुमारो ने सब वृतांत अश्वघ्नीव राजा के पास जाकर निवेदन किया जो वृतांत उसे वज्रपात सा लगा ।

इस तरफ वैताढ्यगिरीपर दक्षिण श्रेणी के आभूषण सदृश रथनूपुर चक्रवाल नाम के नगर था । उसमे तेज द्वारा अग्नि जैसा असाधारण समृद्धिवाला ज्वलनजटी नाम का विद्याधरो का राजा था । उसे हंसनी जैसी मंद गतिवाली और प्रीति के परमस्थानरूपी वायुवेगा नाम की पटरानी थी । उस रानी के स्वप्न मे सूर्य के अवलोकन होने से जिसका नाम अर्ककीर्ति रखा हुआ एक पुत्र हुआ था । और बाद मे स्वप्न मे अपनी प्रभा से सर्व दिशाओं को उज्ज्वल करनेवाला चंद्रलेखा के अवलोकन से जिसका नाम स्वयंप्रभा रखी हुई ऐसी पुत्री को जन्म दिया था । कुमार अर्ककीर्ति जब यौवनावस्था मे आया तब बड़ी भुजावाले और कीर्तिरूपी गंगा के हिमाचलरूपी उस पुत्र को राजाने युवराज पद पर आरोपण किया । पुत्री स्वयंप्रभा भी, वनस्थली की तरह अपने सौंदर्य देनेवाली वसंतसंपत्ति को पाती है उस तरह अनुक्रमिक यौवन को प्राप्त हुई । मुखरूपी चंद्र से मानो मूर्तिमान पूर्णिमा का चांद हो और केशपाशरूपी अंधकार से मानो शरीरधारी अमावस्या हो गई ऐसा प्रतित होता था । उसके कान तक लंबे तीक्ष्ण नेत्र मानो कर्ण के आभूषणकमल हो ऐसा जान पडता था, और उसके कानो तक फैलती हुई दृष्टिरूपी दो छोटे तालाब के किनारे हो ऐसा लगता था । पल्लवो की तरह हाथ, पैर और अधर (होठ) रक्त पत्रो से वह लता की तरह शोभा देती थी । लक्ष्मी के मानो दो क्रीडा पर्वत हो ऐसे उभरे स्तनों द्वारा वह सुंदर लग रही थी । उसकी नाभि लावण्यरूपी सरिता की घूमरी जैसी दिखाई देती थी और उसी सरिता (नदि) के मध्य मे मानो कोई अंतरद्वीप हो ऐसा विस्तारवाला नितंब भाग (शोणित) तट जैसा दिखाई पडता था । उसके सभी अंग मिलकर एक सौभाग्य भंडार जैसा उत्तम था कि देवता की स्त्रियों मे असुरो की स्त्रियों मे और विद्याधर की स्त्रियों मे भी उसके समान कोई भी दिखता नहीं था ।

एक बार अभिनंदन और जगनंदन दो चारणामुनि आकाशमार्ग से विहार कर रहे थे उस समय उस नगर के परिसर मे उतरे । उस समय मानो दूसरा स्वरूप लेकर लक्ष्मी आई हो ऐसी ज्वलन जटी

विद्याधर राजा की पुत्री स्वयंप्रभा ऋद्धि सहित वे दोनों मुनिओं को वंदन करने आईं। वंदन करने के बाद बैठकर उन महात्मा की कर्णामृत तुल्य देशना सुनकर वह गदगद हो गई और गुली के रंग जैसा स्थिर समकित प्राप्त हुआ। उन मुनिराज के पास से उसने श्रावकधर्म भी अच्छी तरह से सुना। उत्तम पुरुष जानने के बाद जराभी वियोग (आलस) करते नहीं हैं। उसके बाद वे दोनों मुनि विहार के लिये निकल पड़े। एक बार पर्वणी के दिन स्वयंप्रभाने पौषधव्रत ग्रहण किया, दुसरे दिन पारणा करने की इच्छा से भगवंत जिनेश्वर की पूजा की, और प्रभु का पवित्र जल (शेषा) लेकर आई और वह शेषा उसने अपने पिताजी को दी। हर्ष से पुष्ट हुए विद्याधरराजा ने शेषा मस्तक पर धारण की, और पुत्री को उत्संग में बैठाया। उस समय उत्कृष्ट यौवनवाली स्वयंप्रभा को देखकर राजा कर्ज में डूबे हुए व्यक्ति की भांति मग्न हुए उसके लिये पति की शोध के बारे में सोचने लगे। बाद में प्रसाद सहित पुत्री को विदाय किया, और बाद में सुश्रुत इत्यादि अपने मंत्रियों को बुलाकर राजाने उसके पति के बारे में पूछा। प्रथम सुश्रुत मंत्री ने कहा—“रत्नपुर नगर में राजा मयूरव्रीष और देवी नीलांजना का पुत्र अश्वव्रीव नाम का विद्याधरो का इंद्र है। वह अनेक विद्याओं को साध्य करनेवाला और तीन खंडों भरतक्षेत्र का अधिपति इस पुत्री के योग्य ऐसा नर श्रेष्ठ है।”

बाद में बहुश्रुत नाम का मंत्री ने कहा—“हे देव ! उस राजा का यौवन व्यतीत हो चुका है, इसलिए वह अपनी राजकन्या के योग्य नहीं है। लेकिन उत्तर श्रेणी में रूप, यौवन तथा लावण्य वाले और भुजबल ऐसे कई पराक्रमी अनेक विद्याधर हैं, तो उनमें से कोई एक राजा की योग्यता का विचार करके राजकन्या को दे।” उसके बाद सुमति नाम का मंत्री बोला—“हे प्रभु ! आपके अधिकारी ने कहा है वह योग्य है। इस पर्वत पर उत्तर श्रेणीरूप श्रृंखला में चकदारूप और अनेक अदभूतता के स्थानरूप प्रभंकरा नाम की एक नगरी है। उसमें इंद्र के पराक्रम को धारणकरनेवाला और प्रातःकाल के मेघ जैसा सफल मेघवाहन नाम का राजा था। उसे मालती की पुष्पामाला जैसी शीलरूपी सुगंधद्वारा शोभा देती मेघमालिनी नाम की पटरानी है उस दंपती को सभी राजाओं को झुकानेवाला और कामदेव जैसा अप्रतिम रूपवाला विद्युत्प्रभ नाम का एक पुत्र है, और निःसीम रूप लावण्य संपत्ति द्वारा देवकन्या जैसी ज्योतिर्माला नाम की एक पुत्री है। कांति से दिशाओं के मुख को प्रकाशित करनेवाली यह स्वयंप्रभा राजकुमारी मेघ की बिजली की तरह विद्युत्प्रभ राजकुमार के योग्य है और ज्योतिर्माला नामा की राजकुमारी अपने अर्क कीर्तिकुमार को योग्य है तो परस्पर कन्याओं का विनियोग करने से दोनों महोत्सव हो सकते हैं।” बाद में श्रुतसागर नाम का मंत्री बोला “हे महाराज ! इस रत्न जैसी कन्या को लक्ष्मी की तरह कौन नहीं चाहेगा ? इसलिए अभिलाषा करनेवाले विद्याधरो में निर्विशेष दिखानेवाला स्वयंवर करना युक्त है। कारण कि अगर आप ऐसा नहीं करेंगे और किसी एक को कन्या देंगे तो दुसरे विद्याधरो से बेकार का विरोध हो जायेगा, इसलिये आप ऐसा क्यों कर रहे हो ?

इस तरह सभी मंत्रियों की राय लेकर उन्हें विदा किया। बाद में संभिन्नश्रोत नाम के निमित्तिया (सलाहकार सेवक) को बुलाकर पूछा कि “अश्वव्रीव राजा को अथवा दुसरे किसी विद्याधर को यह कन्या दु या उसका स्वयंवर करू ? नैमित्तिक ने कहा—“पहले मैंने एक मुनिराज से सुना था कि एक

बार भरतचक्री ने भगवान ऋषभदेव को पुछा था तब उन्होंने कहा था कि अवसर्पिणी काल मे मेरे जैसे दुसरे तेईस तीर्थकर होंगे, तुम्हारे जैसे इग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, अर्ध भरतक्षेत्र के स्वामी नौ प्रतिवासुदेव उत्पन्न होंगे, हे राजन् ! उन प्रभु के कहने के अनुसार अभी त्रिपृष्ठ नाम के वासुदेव उत्पन्न हुए है, वे अश्वघ्नीव प्रतिवासुदेव का हनन करके विद्याधरो के नगरो सहित त्रिखंड भरतक्षेत्र की भूमि का भोग लेंगे, और सभी विद्याधरो का अैश्वर्य आपको देंगे । इसलिए यह कन्या उन त्रिपृष्ठ को दे । कारण कि अभी इस समय उसके जैसा पृथ्वीपर कोई भी दूसरा योद्धा दिखवाई नहीं पडता है ।” इस प्रकार के वचन सुनकर राजा हर्षित हुआ, और यथा योग्य स्वागत करके निमित्त्या को बिदा किया । बाद मे प्रजापतिराजा के पास उसने मारिचि नाम के एक दूत को भेजा । उस विद्याधर दूत ने प्रजापति राजा के पास जाकर नमस्कार करके अपनी पहचान देकर विनयपूर्वक इस प्रकार कहा—“उत्तर श्रेणी के विद्याधरो का ज्वलनजटी नाम का राजा है । उसे सर्व स्त्रियों मे रत्नरूप स्वयंप्रभा नाम की एक कन्या है । उस कन्या के लिये योग्य ऐसे वर के बारे मे राजा ज्वलनजटी अरोचक कवि की तरह चिरकाल से चिंता कर रहा था । इस बारे मे उसने अपने मंत्रीयों के साथ विचार विमर्श किया, लेकिन उस कन्या के योग्य कोई वर देखने मे नहीं आया । राजाने संभिन्नश्रोत नाम के निमित्त्या को पुछा, तब उसने कहा कि ‘यह कन्या प्रजापति राजा के कुमार त्रिपृष्ठ के योग्य है । वे त्रिपृष्ठ कुमार प्रथम वासुदेव बनकर अर्धभरत को भोगेंगे, और प्रसन्न होकर वैताढ्य उपर की दो श्रेणि का आधिपत्य आपको देंगे । ऐसी निमित्तिया की वाणी सुनकर प्रसन्न हुए हमारे राजाने मुझे यहाँ भेजा है, इसलिए हे स्वामिन् ! त्रिपृष्ठ कुमार के लिये उस कन्या की स्वीकार करने की अनुमति दे । “प्रजापति राजाने कहा बहुत अच्छा है” ऐसा कहकर उस बात का स्वीकार करके और अति बुद्धिमान उस राजाने यथायोग्य पोशाक देकर उस दूत को भेज दिया ।

बाद मे ज्वलनजटी विद्याधर अश्वघ्नीव की शंका से तुरंत ही कन्या का पाणिग्रहण करवाने कन्या को लेकर प्रजापति राजा के नगर की ओर चल पडा । अपने साथ विद्याधरो, सामंतो और दुसरे सामन्य बलवाहनो को लेकर अनुक्रम से समुद्र की तरह अपनी मर्यादा मे रहता है उसी तरह नगर के समीप आकर पडाव डाला । उसे आया हुआ सुनकर प्रजापति राजा स्वयं प्रधानो के परिवार के साथ उनके सामने उपस्थित हुआ । कारण कि अभ्यागत पुरुष सभी का गुरु है । दोनो के प्रीतियोग से दोनो सैन्य आमने-सामने एकत्रित हुऐ, मानो वे दोनो गंगा यमुना के दो प्रवाह एक हो गये हो ऐसा शोभा देता था । दोनो राज्यवंशी सामान्यता से हाथी पर सवार थे, वे मानो दो सामनिक देवता आमने-सामने आ गये हो ऐसा लगता था । उन दोनो राजाओं का संगम सूर्यचंद्र के संगम की तरह वह (दिन) दिवस पर्व के दिवस जैसा लग रहा था । वहाँ से नगर मे लाकर समुद्र जिस तरह मैनाक पर्वत को निवासभूमि देता है उस तरह प्रजापति राजाने उस विद्याधर राजा को निवासभूमि अर्पण कि । उस भूमि पर देखते ही देखते विद्याधरो ने विद्या के बल से मानो दुसरा पोतनपुर हो ऐसा विचित्र महलों द्वारा सुंदर एक रमणीय नगर की रचना की । उस पोतनपुर के मध्य भाग मे मानो उसका मुगुट हो ऐसा एक दिव्य तोरणवाला प्रासाद बनवाया । उसमे मेरुपर्वत पर सूर्य की तरह ज्वलनजटी राजाने निवास

किया। अन्य सामंत, अमात्य और सेनापति वगैरेह देवताओं जिस तरह विमान में रहते हैं उस तरह सभी अपने-अपने महलो में निवास किया। बाद में विद्याधरो का राजा ज्वलनजटी की आज्ञा लेकर प्रजापति राजा भरती से निवृत्त समुद्र की तरह वापस अपने दरबार में लौट आया। बाद में प्रजापति राजाने उनके लिये उत्तम भोजन, अंगराग, तथा सुंदर पोशाक वगैरेह विद्याधरो के राजा के लिये भेट-उपहार के तौर पर भेज दिया।

बाद में वहाँ दोनों राजाओं ने शुभ आकृतिवाली चमरेंद्र की सभा हो वैसे विवाह मंडप बनवाये। कुलवृद्ध स्त्रियोने रची हुई शिक्षाचार्य की लीला से दोनों घरों में धवल मंगल गान होने लगा। बाद में सुगंधी, चंदन के अंगराग से प्रकाशमान, नीलरत्न की प्रतिमा की तरह गजेन्द्र पर आरुढ़ होकर, और अनुवर हुए समान उम्र के राजकुमारों से सजे हुए त्रिपृष्ठकुमार अपने वासगृह से निकलकर ज्वलनजटी के भुवन समीप आ गये। वहाँ राजगृह के तोरण के नीचे पूर्व दिशा में सूर्य की तरह अर्धमंडल की राह देखते खड़े रहे। अर्ध देने के बाद कुलस्त्रियों से मांगलिक गीत गाते त्रिपृष्ठकुमार नीचे झुककर अग्निमय संपुट तोड़कर सखा के साथ मातृगृह में गये, वहाँ छोर सहित श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नेत्रों को आनंद देनेवाली ऐसी स्वयंप्रभा मानो मूर्तिमान चंद्रप्रभा हो ऐसी दिख रही थी। बाद में वरवधु दोनों (त्रिपृष्ठ और स्वयंप्रभा) चित्रा नक्षत्र के चंद्रमा की तरह एक आसनपर साथ में बैठे। बाद में झालर के नाद से जब लब्ध समय सूचित किया तब पूरोहित ने संपुट की तरह उनके हस्तकमल को जोड़ दिया। उस समय नव पल्लवित प्रेमरूपी वृक्ष का सिंचन करने में जलरूप दोनों की दृष्टि एक हुई, बाद में वहाँ से स्वयंप्रभा और त्रिपृष्ठकुमार दोनों वृक्ष की लता की भांति दोनों मिलकर वेदी के मध्य भाग में आये। वहाँ पिपल वगैरेह वृक्षों की समिध द्वारा हुत द्रव्य की आहुति देकर ब्राह्मणोंने अग्नि जागृत की। बाद में ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का पाठ करने लगे इसलिये वेदी की अग्नि की दक्षिण की आरे से वरवधु ने उसके चारों ओर प्रदक्षिणा की।

इस तरह बलदेव के अनुज (छोटा) बंधु त्रिपृष्ठकुमार स्वयंप्रभादेवी के साथ विवाह करके हाथी पर बैठकर अपने घर की ओर चले। उग्रध्वनिवाले वाद्यों के नाद से सूर्य के अश्वों के कान खड़े हो जाते हैं ऐसी तीव्रता में त्रिपृष्ठ वासुदेव स्त्रि सहित अपने घर में प्रवेश किया। यह वृत्तांत खबरी से सुनकर उसके नेत्रों द्वारा देखकर जानकर अश्वग्रीव राजा जो प्रथम सिंह को मारने की कथा सुनने से क्रोधित था वह अधिक क्रोधित हुआ। उसने सोचा कि मेरे होते हुए ज्वलनजटी स्त्रिरत्न दुसरे को कैसे दे सकता है? क्योंकि 'रत्न तो रत्नाकर में ही होता है।' इसलिये वह देनेवाला कौन और ग्रहण करनेवाले के पास कन्या की याचना के लिये दूत को भेजना, कारण कि नीति में दूत पहले हैं।" इस प्रकार मन में सोचकर विचार करके एकांत में नये दूत को बुलाकर बराबर सीखाकर पोतनपुर की ओर भेज दिया। वह दूत तुरंत वायु की गति से शीघ्र ही ज्वलनजटी पोतनपुर में ही था वह वहाँ पर पहुँच गया, ज्वलनजटी को इस प्रकार कहा-“दक्षिण लोकाद्विके ऊपर सौधर्म इंद्र की तरह दक्षिण भरताद्विक का रक्षण करनेवाला हयग्रीव राजा की आज्ञा से मैं तुम्हें कहने आया हूँ आपके घर स्वयंप्रभा नाम की कन्यारत्न है उसे आप महाराज हयग्रीव के पास जाकर उसे दे, क्योंकि भरत क्षेत्र का रत्न दुसरे के यहाँ कैसे रह

सकता है। वे कटु छायावाले महाराज अश्वघ्नीव आपके भी स्वामी हैं, तो पुत्रीभी उसे ही देनी चाहिये, क्योंकि नेत्र तो मस्तक के साथ शोभा देता है। और आज तक आराधनावाले देव अश्वघ्नीव राजा को पुत्री न देकर आप कोप के पात्र बनकर धुने हुऐ सोने को फूंक मारकर खोने का आप प्रयत्न कर रहे हो, यह आप योग्य नहीं कर रहे हो।”

इस प्रकार दूत के कथन के पश्चात ज्वलनजटी ने कहा-“वह कन्या तो मैंने त्रिपृष्ठकुमार को दे दी है, और कन्यादान एक ही बार होता है, दूसरी बात कोई भी वस्तु एकबार देने के बाद देनेवाले का हक नहीं रहता है। तो फिर इस कुलवान कन्या के बारे में यह कैसे संभव है? यही आप ही जरा सोचिये।” इस प्रकार ज्वलनजटी ने दूत से कहा, वह दूत अंतःकरण से कलुषित होकर वहाँ से निकल गया और त्रिपृष्ठकुमार के पास आया, कारण कि दूत अपने स्वामी का संदेसवाहक होता है उसने त्रिपृष्ठकुमार से कहा-“जगत का जय करनेवाले और इस पृथ्वी के इंद्र अश्वघ्नीव राजाने मेरे साथ मैं आपको कहलवाया है कि जिस तरह मुग्ध राहगीर राजा के उद्यान संबंधित वृक्षों के फल ग्रहण करता है उसी तरह तुमने मेरे योग्य कन्या को तुमने ग्रहण की है। बंधु सहित तुम्हारा मैं नियंता स्वामी हूँ और मैंने बहुत समय तक आपका रक्षण किया है इसलिये वह कन्यारत्न को छोड़ दो। सेवको को स्वामी के शासन की तरह करना योग्य है।

ऐसे दूत के वचन सुनकर विकट भ्रुकुटी पर बल डालकर भाल स्थल को भयंकर करता हुआ और लालनेत्रों से कपालकी शोभा बढ़ाता हुआ त्रिपृष्ठकुमार बोला-“हे दूत! तुम्हारा स्वामी क्या जगत का ऐसा न्याय प्रिय है? अहा! लोगो में अग्रसर माना जानेवाले स्वामी की कैसी कुलिनता है। इस पर से मुझे लगता है कि उसने अपने देश में रह रही अनेक कुलीन स्त्रियों को भ्रष्ट कर दिया होगा। क्योंकि युवान मार्जार के पास दूध का रक्षण कैसे संभव हो सकता है? हमारे पर उनका स्वामित्व हक क्यों है? लेकिन इस प्रकार के बर्तव से थोड़े समय में जहाँ पर भी उसका हक स्वामित्व होगा वह भी समाप्त हो जायेगा। वह शालि का (चावल) भोजन से की तरह यदि जीने से तृप्त हो गया हो तो स्वयंप्रभा लेने के लिये खुशी पधारे, हे दूत! तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ, क्योंकि दूत होने के कारण तुम अवध्य हो। यहाँ पर केवल हम हयघ्नीव का ही हनन करने की इच्छा रखते हैं।”

इस प्रकार कहने पर वह मानो किसीने उसे चाबुक का प्रहार किया हो उस तरह तुरंत जल्दी निकलकर अश्वघ्नीव राजा के पास आकर सारा वृत्तांत सुना दिया। यह वृत्तांत सुनकर हयघ्नीव के नेत्र रक्तरंजित हो गये, दाढ़े और केशराशि में स्फूर्ति होने लगी। दांतों से वह अपने होठों को काटने लगा। शरीर कांपने लगा, भयंकर भ्रुकुटी से उसका ललाट विकट दिखाई देने लगा। ऐसा उग्र स्वरूप धारणकरके उसने अवज्ञा और कोप सहित विद्याधरो के अधिपतियों को इस प्रकार से कहा-अहा! ज्वलनजटी को दैव ने कैसी कुमति दी की जैसे सूर्य का सामना करने के लिये गिरगिट सामने आता है। उसका कुलीनपन देखा कैसा मेरे जैसे योग्य राजा को छोड़कर अपनी पुत्री का विवाह प्रजापति राजा के पुत्र के साथ किया। मूर्खों में श्रेष्ठ ऐसा ज्वलनजटी, दुसरा प्रजापति, तीसरा सौतन बहन का पुत्र त्रिपृष्ठ और चौथा रिश्तेमें गिना जानेवाला अपने पिता का साला अचलकुमार, यह सभी निर्लज्ज

होकर मरनेवाले हैं और इसीलिये सिंह का मुकाबला गीदड (शृगाल) करते हुए मारे जायेंगे । इसलिए विद्याधरों ! पवन जैसे मेघ को, सिंह जैसे हिरन का और केसरी जैसे हाथी का पराभव करता है उस तरह तुम सब जाकर उनकी पराजय करो” ।

जिनके हाथों में युद्ध करने की खुजली खुजला रहे थे वे विद्याधर तृष्णावाले पुरुषों की तरह जल मिलजाने पर वह अपने प्रभु की आज्ञा पाकर हर्षित हुए । वे पराक्रमी वीर अलग-अलग युद्ध की प्रतिज्ञा लेते मानो आकाश तोड़ते हो उस तरह भुजाओं का आस्फोट करने लगे । संग्राम के कुतुहल से मित्रों की तरह अमित्र-शत्रुओं पर उत्कंठा दिखाने लगे । मेरे पहले दुसरा कोई जीते नहीं” ऐसा सोचकर सब जल्दी करने लगे । चाबुक से घोड़ों को, अंकुश से हाथी को, लकड़ी से वृषभों को, लकड़ीओं से ऊँटों पर प्रहार करके जल्दी से दौड़ाने लगे । तीक्ष्ण तलवारों को नचाते स्फूर्त अनेक शस्त्रों का विस्तार, भाथाओं को सज्ज करते हुए, धनुष्य पर प्रत्यंचा चढ़ाते, मुदगल घुमाते हुए, बड़ी गदाओं से चलित करते, त्रिशुल्पी को फोड़ते हुए और परिध (भूगल) को धारण करके वे वीर कोई आकाश मार्ग से, कोई पृथ्वी मार्ग से, युद्ध के कुतुहल के साथ वे सब पोतनपुर आ पहुँचे । उनका दूर से बड़ा कोलाहल सुनकर ‘यह क्या ? प्रजापति राजा को एकाएक भ्रम सा हुआ । उस समय ज्वलनजटी ने कहा-यह अश्वघ्नीव राजा की आज्ञा से उनके सैनिक आ रहे हैं तो भले ही आये, आप मेरा युद्ध कौशल देखे । मेरे पहले त्रिपृष्ठकुमार या अचलकुमार को युद्ध करने की जरूरत नहीं है ।” इस प्रकार उत्सुक होकर ज्वलनजटी परिकर बांधकर युद्ध करने के लिये तैयार हो गया ।

अश्वघ्नीव के सभी सैनिक उसके ऊपर क्रोध से एक साथ प्रहार करने लगे, क्योंकि जब अपने लोग दुसरे के पक्ष में दिखाई देने से क्रोध अधिक बढ़ जाता है । अपवाद रहित ऐसा ज्वलनजटी ‘अपवाद से’ उत्सर्ग की तरह उनके शस्त्रों का अपने शस्त्रों से नाश कर दिया । बाद में उत्पातकाल के मेघ की तरह ओले की बारिश से हाथीओं में उपद्रव पैदा करते हैं उस तरह अपने तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि से उन सभी सैनिकों में उपद्रव करवाया । सहज पल में वादी जिस तरह सर्पों के गर्व का हरण कर लेता है, उस तरह से उनके विद्याबल और भुजबल का ज्वलनजटी ने हरण कर लिया । बाद में उनसे कहा-“अरे विद्याधरो ! चले जाओ, अनाथ और गरीब जैसे लोगों को कोई मारेंगे नहीं । अब तुम्हारे हयघ्नीव का मध्य में स्वामी को लेकर रथावर्त पर्वत पर आये, हम भी थोड़े समय में वहाँ पहुँचते हैं ।”

इस प्रकार की अवज्ञा से कहा, -इसलिए हयघ्नीव के सैनिक भयभीत होकर प्राण बचाकर कौओं की भांति वहाँ से भाग खड़े हुए, मानो कालिख से मुख की पुताई हुई हो ऐसे लज्जित, मुख मलिन हुए हैं ऐसे वे सभी सैनिक मयूरघ्नीव के पुत्र हयघ्नीव के पास आकर उन्हें वृतांत सुनाया, उनकी वाणी ने मानो आहुति द्वारा अग्नि की तरह नीलांजना का पुत्र और अक्षय भुजा पराक्रमी अश्वघ्नीव राजा कोप से लाल नेत्रों से और भयंकर राक्षसों की तरह वह भयंकर रूपधारण करके अपने सामंत, अमात्य और सेनापति वगैरेह का इस प्रकार आज्ञा करने लगा ।—“अरे वीरो ! सभी प्रकार की तैयारी करके तुरंत आ जाओ और उछलते हुए समुद्र की भांति पुरी सेना एक साथ प्रयाण करे वैसे करे, क्योंकि धुआँ जिस तरह मधुमक्खीओं का संहार करता है ठीक उसी तरह त्रिपृष्ठ अचल और

ज्वलनजटी सहित प्रजापति राजा का मैं संग्राम में संहार करूँगा ।” इस प्रकार कोपित और उग्र ऐसा अश्वघ्नीव राजा के बोलने के पश्चात् बुद्धि के गुणग्राम मंदिर ऐसे मुख्य प्रधान ने इस प्रकार से कहा—
 —“आप महाराज ने अपनी लीलामात्र से इस त्रिखंड भरतक्षेत्र को जीत लिया है, वह आपकी कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हुआ था, उसी तरह आप सभी पराक्रमीओं में अग्रसर हैं, तो इस एक सामंतराजा के विजय के लिये आप स्वयं तैयार हुए हैं, तो अब आप इससे क्या कीर्ति और लक्ष्मी प्राप्त करेंगे ? पराक्रमी पुरुषों का हीन पुरुषों की विजय से उनका उत्कर्ष नहीं होता है, क्योंकि ‘हाथी को मारनेवाला केसरीसिंह को एक हिरन मारने से क्या प्रशंसा होगी ? यदि हिन पुरुष का दैवयोग से विजय हो जाता है तो पूर्व में प्राप्त सभी यशो राशि एक साथ (यश) चला जाता है । क्योंकि रण की गति विचित्र है, फिर भी सिंह के वध से और चंडसिंह के घर्षण प्रतीति से निमित्तिता (सेवक सलाहकार) की सत्यवाणी उस तरफ शंका का स्थान है । इसलिये हे प्रभु ! इस समय छै गुणों में से आसन का गुण धारण करना उचित है । बड़ा शक्तिशाली हाथी भी अज्ञात अवस्था में वह किचड में फँस जाता है । यह बालक सामान्य साहस करनेवाला है, यदि कभी अष्टापद की तरह एकदम उछलकर अपना ही भंग करेगा तो आपका हित यहीं बैठे-बैठे सिद्ध हो जायेगा । हे पृथ्वीपति ! यदि आप इस तरह बैठना नहीं चाहते हो तो सहन नहीं कर सकते हो तो आप आपके सैन्य को उसके सामने जाने की आज्ञा करें । क्योंकि आपके सैन्य के पराक्रम को भी कौन सहन कर सकता है ?”

राजाने अभिमान के आवेश में आकर मंत्रीकी सत्य और हितकारी वाणी का अनादर किया । गर्वरूपी मदिरा का कैफवाले पुरुष में चेतना कहाँ होती है । ‘अरे मंत्री ! तुम कायर हो । इस प्रकार कहने के बाद मंत्री का तिरस्कार करके कोपित हुए राजाने सेवक के पास तुरंत ही प्रस्थान का दुंदुभि नाद बजवाया । उस दुंदुभि का नाद से मानो नजदीक ही खड़े हो इस प्रकार दूर से भी सभी सैनिक सभी सामग्री के साथ सभी तत्काल आकर खड़े हो गये । बाद में अश्वघ्नीव स्नानगृह में जाकर गंगाजल के निर्मल और ऊँचे तरंगों द्वारा हंस की तरह फव्वारे के जल से स्नान किया और रेश्मी वस्त्रों से शरीर पोछकर दिव्य धूप द्वारा धूपित हुआ । बाद में नंदनवन में से लाये हुए गोशीर्षचंदन द्वारा उसने शरीर पर विलेपन किया । छोरवाला (रेश्मी) श्वेत वस्त्र धारण किया । तलवार बांधकर, पुरोहित ने जिसे तिलक किया है ऐसा वह राजाओं के तिलक रूप महाराजा चारण और भाटों के द्वारा स्तुति कराता हुआ, उज्ज्वल छत्र और चामर सहित, मद से पृथ्वी का सिंचन करनेवाले ऐसे एक बड़े हाथी पर आरुढ़ हुआ । अनिवार्य शक्तिवाले हाथी, अश्व और रथों से परिवारित होकर अश्वघ्नीव राजा पर्वतों को भी चलायमान करता हुआ वहाँ से चला । मार्ग में चलते पवन के हिचकोले से उसके छत्र का दंड वृक्ष की तरह दंड टूट गया, और वृक्ष पर से पुष्प की तरह आकाश में से ताराओं की तरह अश्वघ्नीव के मस्तक पर से छत्र भूमि पर गिर पड़ा ज्येष्ठ मास में सरोवर की तरह और शरदऋतु में किचड की तरह हाथी का मद सुख गया, मानो काल से भयभीत हुआ हो वैसे वह मूर्ध्नोत्सर्ग करने लगा और विचित्र तरह की गर्जना करके अपना मस्तक नीचे झुकाया, चारों ओर धूल की वृष्टि, रुधिर की वृष्टि, दिन में नक्षत्र का अवलोकन, उल्कापात और बिजलीयों का गिरना इत्यादि उत्पात होने लगे । ऊँचा मुँह करके

कुत्ते दीन स्वर मे रोने लगे, खरगोस बाहर आने लगे, चीले आकाश मे मंडराने लगी, काकोल पक्षी पुकारने लगे, सिर पर गीध पक्षी बढने लगे और कपोत पक्षी ध्वज पर आकर बैठ गये । इस प्रकार के अपशगुन अश्वग्रीव राजा को हुए । ऐसे खराब शगुनो को टालकर वह मानो यमराज से आकर्षित हुआ वह उच्छंखल होकर आगे बढने लगा । उस समय ऐसे अपशगुन से उत्साह रहित हुऐ विद्याधर और रण की उत्कंठा बिगड़ के राजा स्वाधीन फिर भी उन्हे निराशा ने घेरा हो ऐसे अश्वग्रीव को घेरकर संपूर्ण सैन्यवाला वह हयग्रीव अनुक्रम से प्रयाण करता-करता रथावर्त परिस्कार करनेवाला ऐसा रथावर्त पर्वत के नीचे भूमि पर अश्वग्रीव के हुकुम से विद्याधरो के सैन्य ने निवास किया ।

इस ओर पोतनपुर मे विद्याधरो का राजा ज्वलनजटी ने बलभद्र और वासुदेव को कहा—“तुम्हारे मे स्वाभाविक ऐसी शक्ति है जिसके सामने कोई भी टिक नहीं सकता है, फिर भी मैं प्रेमद्वारा भीरु होकर मैं तुमको कहता हूँ, कारण कि प्रेम अस्थान पर भय दर्शाता है । विद्यासे दुर्मद, बलवान, तीव्र अनेक राजाओ की सहायतावाला, निरंतर विजय करनेवाला और ऊँची गर्दनवाला वह अश्वग्रीव किसके लिये वह शंका करने योग्य है ? वह सिर्फ एक विद्या के सिवाय तुम्हारे दोनो मे हयग्रीव में कुछ न्यून नहीं है, विद्या बिना भी तुम उसे मारने मे समर्थ हो फिर भी मैं तुम्हे प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हे विद्यासिद्धि के लिये थोडासा श्रम करना चाहिए, जिससे उसकी विद्या द्वारा किया गया मायावीयुद्ध भी व्यर्थ हो जाय ।” ज्वलनजटी के ऐसे वचनो को स्वीकार करके वे शुद्ध वस्त्र पहनकर विद्या की आराधना करने के लिये तैयार हुए । ज्वलनजटी ने उन्हे विद्या सिखाई, इसलिए वे बीजमंत्र के अक्षरो का स्मरण करते हुऐ दोनो भाईयों ने एकाग्र चित्त से सात रात्रि निर्गमन करके सातवे दिन शेषनाग को भी कंपन हुआ और सभी विद्याएं ध्यानारुढ ऐसे बलभद्र तथा वासुदेवने प्राप्त कि । गारुडी, रोहिणी, भुवनक्षोभणी, कृपाणस्तंभनी, स्थामशुभनी, व्योमचारणी, तमिश्रकारिणी, सिंहत्रासिनी, वेगाभिगामिनी, वैरिमोहिनी, दिव्य कामीनी, रंधवासिनी, कृषानुवर्षिणी, नागवासिनी, वारिशोषणी, धरित्रवारिणी, बंधमोचनी, विभुक्तकुंतला, नानारुपिणि, लोहशृखंला, कालराक्षसी, छत्रदशदिका, क्षणशुलिनी, चंद्रमौलि, रुक्षमालिनी, सिद्धताडनिका, पिंगनेत्रा, वनपेशला, ध्वनिता, अहिफणा, घोषिणी और भीरुभीषणा- इस प्रकार के नामोवाली विद्याओ ने आकर कहा-‘हम आपके वश मे हैं’ विद्या सिद्ध होने से दोनो ध्यान मुक्त हुऐ । महात्माओं के पुन्य के आकर्षण से क्या-क्या प्राप्त नहीं हो सकता है ?

बाद मे त्रिपृष्ठ वासुदेव अपने ज्येष्ठ बंधु अचल बलभद्र के साथ प्रजापति और ज्वलनजटी वगैरेह युक्त ऐसी बडी सेना लेकर शुभ दिन निकल पडे । मानो गरुड हो ऐसे गतिवाले बडे पंचरंगी अश्वो से मानो जयलक्ष्मी के मंदिर हो ऐसे शत्रुओ को आस्कंद करनेवाले रथो से, औरावत हस्ती से उल्लंघन करनेवाले मदोद्धत हाथीओ से, मानो केसरीसिंह हो वैसे तेजी से चलते उत्तम पैदलो से और आकाशचारी तथा भूमिचारी लोगों से आकाश और भूमि को आच्छादित करता स्वजनो की तरह अनुकूल शगुनो से प्रेरित, वाजिंत्रो के नाद से और अश्व तथा गजो के शब्दो से दिशाओं का भेदन करते और बडे सैन्य से पृथ्वी को कंपायमान करते त्रिपृष्ठवासुदेव अपने देश की सीमा पर रहा हुआ मानो शिलास्तंभ हो ऐसा रथावर्त पर्वत के पास आकर पहुँचा, दोनो सेनाओं मे ‘तुम इस युद्धभूमि मे सदस्य बनकर

आये' इस तरह के स्वर द्वारा देवताओं को बुलाते हो वैसे वाजिंत्र बजने लगे । देव और दैत्यो के इंद्रो की तरह रण की उत्कंठावाले त्रिपृष्ठ और अश्वघ्नीव के सैन्य आमने सामने आकर खड़े हो गये । कवच धारणकर सज्ज हुए दोनो ओर की सेना का कोलाहल, अश्वसैन्य से पूर्ण हुई पृथ्वी की धूल की कण सभी दिशाओं में फैल गये हैं । सेना के प्रतिक ध्वजो से जैसे सिंह, अष्टापद, चित्ता, हाथी और वानरो से सारा आकाश मानो पूरा अरण्य के जैसा दिखने लगा । नारद के मानो बंधु हो उस तरह कलहक्रीडा करने में कुतुहलवाला और सैनिको के उत्साह में वृद्धि करनेवाला ऐसा चतुर ऐसे भाटचारण रणभूमि में घूमने लगे ।

उसके बाद दोनो सेनाओं ने युद्ध आरंभ किया । उनके बाणो की वर्षा से मानो आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे दृश्य दिखाई देने लगा । उस अरण्य में वृक्ष की शाखाओं के अग्रभाग के घर्षण से जिस तरह दावानल उत्पन्न होता है उस तरह दोनो सेना के सैनिक युद्ध में परस्पर संघर्ष कर रहे थे । समुद्र में परस्पर टकराने से जैसे जलचरो का नाश होता है उसी तरह शस्त्रो द्वारा युद्ध करनेवाले अमित पराक्रमी अनेक सैनिको की उस रणभूमि में विनाश हुआ है । थोड़े ही समय में समुद्र की बेल की तरह नदी के जल को पराङ्मुख करते हैं उस तरह त्रिपृष्ठ वासुदेव की अग्रसेना ने अश्वघ्नीव की सेना को पराङ्मुख किया । तत्काल अपनी सेना का अग्रभाग का भंग देखकर मानो उंगली के अग्रभाग का भंग हुआ ऐसा मानकर अश्वघ्नीव पक्ष के विद्याधर बहुत कोपायमान हुए । प्रचंड भुजाओवाले वे रणभूमि में इतने उत्कट हुए की मानो यमराज के सचिव की मुद्रा को प्राप्त करके आये पिशाच हो ऐसे वे दिखने लगे । उनमें विकट और उत्कट दांतोवाले, विशाल वृक्षःस्थलवाले उसी तरह श्याम और भयंकर आकृतिवाले राक्षस मानो अंजनाचल पर्वत के शिखर हो ऐसे प्रतिष्ठित हो रहे थे । कुछ विद्याधर अपनी पुष्टरूपी हल से मानो इस पृथ्वी को फाड़ डालते हो और मंडलाग्र की क्रिया करनेवाले नाखूनोवाले केसरीसिंह हों कुछ अपनी सुंड से तिनके की भांति हाथीओं को उछालकर फेंकनेवाले, मानो ऊँचे शिखरोवाले पर्वत हो ऐसे अष्टापद पशु बने, कुछ पुष्ट को पछाड़ते हुए दांत से वृक्षो को मरोड़ डालते सिंह तथा हस्ती की आकृति जैसे लेकिन विकराल ऐसी वराह जाति के पशु हों और दुसरे चित्ता, सिंह, वृषभ, दश और नहार वगैरेह शिकारी प्राणीयों का रूप लेकर तैयार हो गये थे । बाद में मानो यमराज बुलाते हो ऐसे भयंकर शब्द करते हुए वे विद्याधर वेग से त्रिपृष्ठ के सैन्यदल की ओर उपद्रव करने लगे जिससे उनके मुख ग्लानि से भर गये, जिनका उत्साह भंग हो गया है, ऐसे प्रजापति राजा के त्रिपृष्ठ वासुदेव के सैनिक तत्काल विचार करने लगे “अहा ! यह क्या हुआ ? हम गलती से यमराज की नगरी में आये तो नहीं ऐसी भ्रांति होने लगी । अथवा हम राक्षसों के निवास स्थानों पर आ गये क्या ? विंध्यस्थल में आये क्या ? क्या अश्वघ्नीव की आज्ञा यह सभी भूत और कुर प्राणी हमें मार डालने के लिये अपने स्थानों से आये ? एक कन्या के निमित्त यह प्रलयकाल हुआ है । इस समय में यदि त्रिपृष्ठ राजा स्वयं विजय प्राप्त करते हैं तो हमारा पुरुषार्थ रहेगा ऐसा समझेंगे ।”

इस प्रकार की चिंता में मग्न बुद्धिरहित हुए सैनिक जब रणभूमि से वापस लौटने के बारे में सोचने लगे, तब ज्वलनजटी ने आकर त्रिपृष्ठ से कहा—“यह सभी विद्याधरो की माया है, इसमें कुछ

सत्य नहीं है, मैं तो बराबर जानता हूँ, कारण कि सर्पों का प्रवाह सर्प ही जानते हैं, दुसरा न जाने कोई उन मंदबुद्धिवाले विद्याधरो ने अपनी मायावी शक्ति दिखाकर अपनी अशक्ति का परिचय दे दिया है, कारण कि शक्तिवान ऐसे कौन पुरुष हैं जो ऐसी बच्चों जैसी हरकत करके डराने की इच्छा रखते हैं ? इसलिए हे महावीर ! खड़े हो जाओ, रथ पर चढ़ो और शत्रुओं के मानरूपी पर्वत से नीचे उतार दो । किरणों से प्रकाशित सूर्य की तरह आप रथारूढ़ हो जाओगे, तब कौन से पुरुष का तेज आपके बराबर होगा ? इस तरह जब ज्वलनजटी ने कहा, तब महारथीओं में अग्रेसर ऐसे त्रिपृष्ठ वासुदेव सैन्य को आश्वस्त करके बड़े रथ पर चढ़े, और बड़ी भुजाओंवाले अचल बलराम भी संग्राम के रथ चढ़ गये । क्योंकि कभी भी अपने छोटे बंधु को वे अकेला नहीं छोड़ते थे, तो युद्ध के समय में उसे अकेला कैसे छोड़ेंगे ? बाद में सिंह की भांति गिरि के शिखरों पर चढ़ता है उस तरह ज्वलनजटी वगैरह विद्याधर भी रथों पर आरूढ़ हो गये ।

उस समय वासुदेव के पुण्य से आकर्षित देवताओं ने आकर त्रिपृष्ठ वासुदेव को शाङ्ग नाम का दिव्य धनुष्य, कौमुद की नाम की गदा, पांचजन्य नाम का शंख, कौस्तुभ नाम का मणि, नंदक नाम का खड्ग और वनमाला नाम की एक माला अर्पण की उसी तरह बलभद्र को संवर्तक नाम का हल, सौनंद नाम का नुशल (मुशल) और चंद्रिका नाम की गदा दी । उन्हें इस प्रकार के दिव्य शस्त्रों की प्राप्ति देखकर सभी सैनिक मानो यमराज के पुत्र हो उस तरह एकत्रित हो गये । पूर्ण पराक्रम दिखाने के लिये अधिक प्रोत्साहित होकर युद्ध करने लगे । बाद में त्रिपृष्ठ ने युद्धरूपी नाटक में नांदीरूपी और शब्दों से दिशामुखों को भरने के लिये पांचजन्य नाम का शंखरत्न फूँका । संवर्त पुष्करावर्त नाम का प्रलय मेघ की गर्जना जैसा शंखनाद से अश्वघ्नीव के सैनिक क्षीभित होकर उनके हाथों से शस्त्र वृक्ष के पत्तों की भांति गिरने लगे, कुछ तो मानो अपस्मार बिमारी से ग्रसित हो वैसे पृथ्वी पर गिर पड़े । कुछ भेड़िये शृगाल (खरगोश) की तरह डरकर भाग गये, कोई उल्लू पक्षी जैसी अंधेरी गुफा में जाकर छिप गये, कोई जल के बहार रखे शंखों की भांति हलनचलन करने लगे ।

समुद्र के शोषण की तरह जिस तरह पहले कभी भी अपने सैन्य का मनोबल भंग नहीं हुआ था ऐसा सुनकर अश्वघ्नीव ने अपने सैनिकों से कहा-“अरे ! विद्याधरो ! वृषभ के नाद से जैसे वन के मृग भाग खड़े होते हैं उस तरह तुम शंखनाद से त्रस्त होकर क्यों भागते हो ? तुमने उस त्रिपृष्ठ और अचल का क्या पराक्रम देखा जैसा मानो खेतों में रखे हुए वैसे उस पुरुष से पशु पक्षी डर जाते हैं वैसे तुम त्रस्त होकर क्यों भागते हो ? अनेक युद्धों में आपने जो विजय प्राप्त करके यश प्राप्त किया है उसे हारना चाहते हो, क्योंकि धुले हुये सफेद वस्त्र पर काजल का एक साधारण दाग उस वस्त्र की शोभा कम कर देता है । दैवयोग से आप में जो यह स्खलितपन आ गया है उसे निवृत्त करें । आकाशाचारी जैसे आपके सामने ये भूचर मनुष्यों की क्या विसात है ? आप युद्ध करें या अशक्त सभ्य बनकर खड़े रहें, मैं अश्वघ्नीव राजा रणभूमि में किसीसे भी सहाय की विनंती नहीं करता हूँ ।”

इस प्रकार जब अश्वघ्नीव ने कहा, तब लज्जित सिर झुकाये हुए सभी विद्याधर पर्वत से गिरनेवाला और समुद्र की तरह वापस लौटने लगे । बाद में अश्वघ्नीव भी रथ में बैठकर अव्यग्र होकर

कुर ग्रहों की तरह शत्रुओं का ब्रास करने के लिये वह आकाशमार्ग की ओर चला, मानो नवीन अस्त्रों का मेघ हो वैसे बाणों से शस्त्रों से और दुसरे अस्त्रों से उसने त्रिपृष्ठ की सेना पर वृष्टि करने लगा। उन अस्त्रों की वृष्टि से त्रिपृष्ठ की सेना ग्लानि करने लगी। क्योंकि भूमिचर मनुष्य में धीरज हो सकती है फिर भी आकाशमार्गीयों का मुकाबला किस प्रकार करें ? बाद में बलराम, त्रिपृष्ठ और ज्वलनजटी रथ में चढ़कर अपने विद्याधर और सेना के साथ आकाश में उड़े, इस तरह दोनों पक्षों के विद्याधर आकाश में उड़ते हुए मानो अपने गुरु के पास जैसे मानो परीक्षा देते हो उस तरह परस्पर अपनी विद्याशक्ति दिखाते हुए अधिकाधिक युद्ध करने लगे। उस समय दोनों सेना के वीर पृथ्वी पर भी वन के हाथियों की तरह बहुत क्रोधित होकर युद्ध करने लगे। थोड़ी देर में परस्पर प्रहार करते ऐसे विद्याधरों के रुधिर से पूर्व में कभी भी नहीं हुई ऐसी रुधिर वृष्टि होने लगी। आघात के शब्दों से गगन गूंजने लगा और दंडनाद के संगीत जैसा दंडादंडी युद्ध कुछ विद्याधर करने लगे। उदंड भुजाओं से प्रचंड ऐसा किसी डंके से ढोल की तरह खड़गदंड द्वारा शत्रुओं को मारने लगे, युद्ध में दुसरे किसी की विजय सहन न करनेवाले कोई परस्पर मिलने पर कांसे की ताल तरह विशाल स्फूर्त जाति के शस्त्रों की आस्फोटन करने लगे, मेघ जैसे बिजली को फेकता है उस तरह कोई आकाश मार्ग पर अपनी शक्तियों गिराते समय तड़-तड़ करती शक्तियों को फेकने लगे। कोई भयंकर सर्पों की जैसी शल्यों की वर्षा करने लगे, और कोई मानो दुसरे गरुड हो जैसे पत्रों से स्फूर्त होकर पत्नी जाति के शस्त्र बरसाने लगे। इस तरह दोनों सेनाओं में उछलते और गिरते आयुधों से आकाश और पृथ्वी मानो विविध तरह के शस्त्रों से व्याप्त हो गई हो ऐसी दिखाई देने लगी। कोई किसी शत्रु की गर्दन छेद कर मस्तक लेकर मानो उद्भट क्षेत्रपाल हो ऐसा वह रणभूमि में दिखाई देने लगा। हाथी के मुख से गणपति और घोड़े के मुख से जिस तरह किन्नरों की पहचान होती है उसी तरह अेकबंध पर गिरे हुए हाथी और अश्वों के मस्तकों के कारण अनेक सैनिक वैसे दिखाई देते थे। तुरंत कटे हुए शरीर भाग पर गिरे हुए मस्तक के द्वारा नाभि पर मुखवाला भूत हो ऐसे प्रतीत होते थे। कोई वीर पुरुषों के अेकबंध देवी के स्वयंवर से आनंदित होकर नृत्य करने लगे, किसीके मस्तक अलग हो जाने के बाद भी मानो अेकबंध पर चढ़ने के लिये आदर से मंत्र बोलते हो उस तरह हुंकार शब्द करने लगे।

इस प्रकार कल्पांत काल के जैसा भयंकर संग्राम हुआ। उस समय त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अपना रथ अश्वग्रीव के रथ के सामने ले गये। महारथीयों में अग्रणी ऐसे बलराम भी स्नेह के गुण से आकर्षित अपने अनुज (छोटा) त्रिपृष्ठ के रथ के पास ले आये। उस समय अश्वग्रीव अत्यंत क्रोध से लालनेत्रों को फैलाकर उनकी सामने देखता हुआ मानो उन दोनों का पान करने की इच्छा रखता हो वैसे वह बोला—“अरे ! तुम दोनों में से मेरे चंडसिंह दूतपर आक्रमण करनेवाला कौन है ? और पश्चिम दिशा के अंत में रहे हुए सिंह का घात करके दुर्मद कौन है ? वानर सूर्य के सामने छलांग लगाता है उस तरह मेरी ऊपर छलांग लगानेवाला कौन है ? कौन मूढमति मुझे स्वामी नहीं मानता है ? इतनी बार सैन्य का क्षय हो जाने पर भी मेरे सामने क्यों खड़े हो ? तुम दोनों किसके आश्रय से मेरे सामने खड़े हो ? अरे बच्चों ! इसका प्रत्युत्तर दो और बाद में अनुक्रम से या दोनों साथ में, सिंह के साथ हाथी के बच्चों की तरह

मेरे साथ युद्ध करो” इस तरह अश्वघ्नीव के ऐसे वचन सुनकर त्रिपृष्ठ हंसते-हंसते बोला—“अरे ! दुष्ट ! तेरे दूत का घर्षण करनेवाले, पश्चिम के सिंह का शिकार करनेवाले, स्वयंप्रभा से विवाह करनेवाला, तुझे स्वामी की तरह नहीं माननेवाला, अब तक तेरी उपेक्षा करनेवाला भी मैं त्रिपृष्ठ हूँ, और स्वबल से बलवान सैन्य का नाश करनेवाले मेरे ज्येष्ठ (बड़ा) भ्राता बलराम हैं । इन तीनोंलोक मे उसके सामने कोई भी टिकनेवाला नहीं है, तो तुम कौन हो ? हे महाबाहु ! यदि तुम्हें अभिमत है तो सैन्य के क्षय करने की कोई जरूरत नहीं है । तुम स्वयं अस्त्र ग्रहण करो, तुम मेरे रणभूमि के अतिथि हो । अपने दोनों सैन्य के सैनिक प्रेक्षक बनकर देखा करे ।”

अश्वघ्नीव और त्रिपृष्ठ दोनों ने इस बात का स्वीकार करके अपनी-अपनी सेना नायको से कहकर युद्ध को स्थगित किया । बाद में एक हाथ का अंतर बीचमें रखकर दूसरे हाथ से बाण की नोक पर रखकर अश्वघ्नीव ने यमराज की भुकुटी जैसे भयंकर धनुष्य के ऊपर प्रत्यंचा चढ़ाकर बाद में रणलक्ष्मी की क्रीडा के संगीत की मानो वीणा हो ऐसी धनुष्य की प्रत्यंचा मयूरघ्नीव के पुत्र अश्वघ्नीव के हाथी द्वारा बजाई । तुरंत त्रिपृष्ठ वासुदेव निशामत्स्य की तरह शत्रुओं के नाश को सूचित करनेवाला शाडर्ग नाम के धनुष्य की प्रत्यंचा चढ़ाई और वज्र के निर्घोष जैसा भयंकर, मृत्यु को आव्हान करने के मंत्र जैसा और शत्रुओं के बल का हरण करनेवाले धनुष्य का बड़ा घोष किया, उस समय सर्प की पिटारी में से सर्प निकलता है उस तरह तस्करा में से बाण निकालकर कान तक आकर्ष करके अश्वघ्नीव बरसाने लगा । बादमें काल की मानो मजाक कर हो ऐसा और कल्पांत काल की अग्निशिखा हो ऐसा कांति से प्रकाशित एक तीव्र बाण त्रिपृष्ठ पर छोड़ा । उस बाण को आता हुआ देखकर अविच्छेद पराक्रमी त्रिपृष्ठ वासुदेव तत्काल छोड़े हुए बाण से इक्षुलता (गन्ना) की तरह उसे छेद डाला और ऐसी हाथचालाकी से एक दूसरा बाण रखा मानो वह पहले का ही बाण हो उससे अश्वघ्नीव का धनुष्य भी छेद डाला । बाद में अश्वघ्नीव जो जो भी नये धनुष्यों को ग्रहण करता था वे वे धनुष्य उसके मनोरथ के साथ त्रिपृष्ठ वीर बाणों से छेद डालता था । एक बाण से प्रतिवासुदेव की भांति उसका रथ तोड़ डाला ।

इस प्रकार की परिस्थिति होने पर भी अश्वघ्नीव राजा दूसरे रथ में बैठकर मेघ की तरह दूर से बाणों की वृष्टि करता हुआ फिर से वह आगे आया । उस समय उसने बाणों द्वारा दुर्दिन का आडंबर किया की जिससे रथ, सारथी, त्रिपृष्ठ ने बाणों की वृष्टि से दुर्दिनकारक शरवृष्टि का तत्काल नाश कर दिया । बाद में त्रिपृष्ठ के ऐसे पराक्रम से क्रोधित पर्वत जैसा सारवाले और शक्तिशाली में श्रेष्ठ ऐसे अश्वघ्नीव ने बिजली की मानो सहोदर हो, वज्र की मानो वयस्या (सखी) हो, मारी की मानो माता हो और शेषनाग की मानो माता हो और शेषनाग की मानो जिह्वा हो ऐसी एक प्रचंड शक्ति हाथ में लेकर मानो यमराज की नर्तकी हो उस तरह घूंघरोओके शब्द करती वह शक्ति को स्तंभ पर राधाचक्र की तरह उसने अपने मस्तक पर घूमा शुरु किया और अपने विमान के भ्रम शंका से भय भीत विमानवासीयो ने जिसे मार्ग दिया है ऐसी वह शक्ति अश्वघ्नीवने अपना पुरा बल लगाकर त्रिपृष्ठ पर डाली । तत्काल त्रिपृष्ठ ने मानो दो भुजादंड में तीसरा भुजदंड हो, अथवा यमराज का दंड हो ऐसी कौमोदकी गदा अपने रथ में से हाथ में लेकर और हाथी क्रीडा करनेवालों की मध्य भाग से पकड़कर अपने शूडादंड से

विनाश करता है उसी तरह वह आनेवाली शक्तिओं पर प्रहार करने लगा, जिससे उग्र अग्नि के सूक्ष्म कणों से की गई उल्कापात विस्तारित वह शक्ति मिट्टी के ढेले की तरह बिखर गई चुरचुर होकर पृथ्वी पर बिखर गई। बाद में अश्वघ्नीव ने औरावत के निकले हुए दांत हो ऐसा एक बड़ा परिघ ग्रहण करके त्रिपृष्ठ के ऊपर फेंका। गरुड जिस तरह सापको चोंच से टुकड़े करता है उसी तरह उस परिघ के गदा से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बाद में अश्वघ्नीव ने यमराज की मानो दाढ़ हो और तक्षक नाग की जिह्वा मानो बहन हो ऐसी वज्रशीला सत्व से बनी एक गदा त्रिपृष्ठ की ओर फेंकी। बड़ी भुजाओवाले त्रिपृष्ठ ने अपनी कौमोदकी गदा से उस गदा के आकाश में ही बालु के मोदक की तरह उसके टुकड़े-टुकड़े करके बिखेर दिया।

इस तरह सभी शस्त्र जब टूट गये तब अश्वघ्नीव पिडित जनो के पास बंधु वर्ग की तरह तुरंत नम्र हो गया और तुरंत ही उसने नागास्त्र का स्मरण किया। उस नागास्त्र के शीघ्र प्रगट होने पर उसे तुरंत धनुष पर चढ़ाकर जोड़ा, उस समय सापों के बिल में से जैसे सांप निकलते हैं उसी तरह अनेक सर्प उत्पन्न हुए। भूमि आकाश में फूँकार मारकर दौड़ने लगे ऐसे सर्पों से क्षणभर में तिर्यग्लोक को पाताल लोक जैसा बना दिया। लंबे भयंकर और श्याम ऐसे बड़े सर्पों स्फूर्त होकर हजारों केतुओं की शंका करवाने लगे। मृत्यु के मानो अवसर्प हो ऐसे वे सर्प आकाश में भी फैलने लगे, जिससे खेचरों की स्त्रियाँ दूर भागने लगी। उस समय त्रिपृष्ठ के सैनिकों को बड़ी आशंका हो गई, क्योंकि स्वामी का प्रभाव नहीं जाननेवाले उसी तरह भक्तिभाव के लोगों को ऐसा ही होता है। बाद में त्रिपृष्ठ ने धनुष्य पर गरुडास्त्र को चढ़ाकर छोड़ा, उस समय उसमें से कदली पत्र की तरह फैलती पंखों से मानो आकाश में सैकड़ों छत्रों से व्याप्त कर रहे हो ऐसे अनेक गरुड प्रगट हुए। सूर्य के किरणों की तरह अंधकार की तरह उन गरुडों के पंखों के सित्कार से बड़े सर्प चारों ओर भाग गये। नागास्त्र के निष्फल होने पर अश्वघ्नीव ने दुर्धर ऐसा अद्वयास्त्र का चिंतन किया, ज्वालाओं से आकाश में सैकड़ों उल्कापात को दिखानेवाला वह अस्त्र उसने धनुष्य पर साध कर छोड़ा, उस समय त्रिपृष्ठ का सैन्य मानो अग्नि में मग्न हो गया उस तरह वडवानल से भयभीत हुए समुद्र के मत्स्य की तरह व्याकुल हो गया, यह देखकर अश्वघ्नीव के सैनिक खुस होकर हसने लगे नाचने लगे गाने लगे और ताली बजाने लगे बाद में क्रोध से लालनेत्र करके त्रिपृष्ठ ने अवार्य ऐसा वारुणास्त्र को धनुष्य से जोड़कर तुरंत छोड़ा। उस अस्त्र के प्रभाव से त्रिपृष्ठ के मनोरथ की तरह तुरंत आकाश में मेघ उत्पन्न हुआ। और अश्वघ्नीव के मुख की तरह गगनतल श्याम हो गया, तुरंत दावानल का शमन करनेवाली वर्षा ऋतु के मेघ की तरह मानो अविच्छिन्न जलधारा द्वारा बरसकर उस मेघ ने अद्वयास्त्र को शांत कर दिया।

इस प्रकार सभी अस्त्रों को तिनके की तरह से नष्ट होते हुए देखकर उसे अन्त में मारने की इच्छा से अश्वघ्नीव ने अपना अमोघ चक्र का स्मरण करके। सैकड़ों नोकीलो से निकलती सैकड़ों ज्वालाओं द्वारा प्रकाशित और सूर्य के मंडल से खींच कर लाया हो अथवा बलात्कार से हरण करके यमराज का एक कुंडल हो, या कुंडलाकार तक्षक नाग हो ऐसा वह दिखता था। उसी तरह वह घूंघरुओं के आवाज से खेचरों को त्रस्त करनेवाले उस चक्र का स्मरण करते ही प्रगट हुआ। उसे ग्रहण करके

अश्वघ्नीव बोला—“अरे त्रिपृष्ठ ! कंठ मे दूधवाले अभी तुम बालक हो । तुम्हारा वध करने से मुझे बालहत्या लगेगी, इसलिए तुम चले जाओ, अभी भी मुझे तुम पर दया आ रही है । यह मेरा चक्र इंद्र के वज्र की तरह किसी भी स्थान से वह पिछे नहीं लौटता है और निष्फळ भी नहीं होता है, इसलिए जब मैं यह चक्र छोड़ूंगा तब तुम अपने प्राण भी छोड़ देगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं रखना । अब तुम क्षत्रियपन का अभिमान त्याग कर और मेरे शासन को स्वीकार कर, तुम बालक हो, इसलिए मैं तेरे इस प्रथम आचरण को क्षमा करता हूँ । अच्छे नसीब से तुम्हारा यह कार्य बचपन की चपलता द्वारा किया हुआ मानता हूँ इसलिए तुम जिवित जाओ, मुझे तुम्हें मारने की इच्छा नहीं है” ।

ऐसा अश्वघ्नीव का भाषण सुनकर त्रिपृष्ठने हंसते-हंसते कहा—“अरे अश्वघ्नीव ! तुम सही माने तो वृद्ध हो चुके हो, अन्यथा उन्मत्त होकर ऐसे दुर्वचन कैसे बोल सकते हो ? फिर भी विचार कर बालक जैसा केसरीसिंह हाथी को देखकर पलायन हो जायेगा ? गरुड का बालक सर्पों से डरेगा क्या ? बालसूर्य क्या संध्याकालरूपी अंधकाररूपी राक्षस से डरेगा ? मैं बालक हूँ फिर भी क्या तुम्हारे सामने नहीं आया ? हे मिथ्याभिमानि ? पहले फेंके हुए अस्त्रों को तो तुने बल देखा तो अब इस अस्त्र को छोड़कर भी अपना बल देख ले, वह देखे बिना तु क्यो गर्जना कर रहा है ।”

इस प्रकार से त्रिपृष्ठ के वचन सुनकर आकाशरूपी सागर में मानो दावानल प्रगट हुआ हो उस तरह वह उस भयंकर चक्र को अश्वघ्नीव ने अपने सिर पर काफी समय तक घूमाया और फिर उसने सूर्यमंडल जैसी भांति क्षणभर के लिये तैयार करके उसने अपने पूरे बल से त्रिपृष्ठ के ऊपर छोड़ा । त्रिपृष्ठ वासुदेव की पर्वत शिला जैसे विशाल वक्षःस्थल से टकराकर मानो वह चक्र वापस लौटा दिया हो उस तरह वह पतित होकर पिछे हठ गया । उस चक्र के अग्रभाग के आघात से वज्र से ताड़न किया हो उस तरह त्रिपृष्ठ मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़े और आकाश में प्रकाशित होकर वह एक जगह पर स्थिर हो गया । वासुदेव की सेना में उस समय हाहाकार उत्पन्न हुआ । शत्रु के प्रहार से अपने अनुज (छोटा) बंधु को मुर्च्छित देखकर उनके प्रति प्रीति के कारण बलभद्र प्रहार बिना ही मूर्च्छित हो गये । दोनों को मूर्च्छित देखकर अश्वघ्नीव ने सिंह की तरह सिंहनाद किया और उसके सैनिकों ने विजय प्रगट करते हो इस तरह का किलकारीयां मारने लगे ।

थोड़ी देर बाद बलभद्र के होश में आने पर उन्मत्त हर्षनाद सुनकर ‘इस वक्त ऐसा हर्ष कैसे हुआ है ?’ इस तरह अपने सैनिकों से पूछा । उन्होंने कहा—“हे देव ! त्रिपृष्ठ कुमार पर आई हुई विपत्ति से हर्षित हुए अश्वघ्नीव के सैनिकों का उर्जित हर्षध्वनि है । बलराम ने कहा—“अहा ! क्या मेरा अनुज (छोटा भाई) विपत्ति में है ? वह तो जब रण में श्रांत (थका) होता है उस समय क्षणभर रथ में सोता है, उस पर से अपने मन में मेरे बंधु की विपत्ति देखकर ये हर्षित अश्वघ्नीव का और उसकी सेना का हर्ष एक क्षणभर में हरलेता हूँ, अरे दुष्ट अश्वघ्नीव ! रुको, आज तेरे रथ के साथ तुझे और तेरे परिवार को भी कालिख (मच्छर) की तरह इस मेरी गदा से तुम्हें मसल दूंगा चूर्ण कर डालूंगा ।” ऐसा कहकर रथावर्त पर्वत के शिखर जैसी गदा उठा कर बलभद्र दौड़ते उसी समय त्रिपृष्ठकुमार जग जाते हैं और अरे आर्य ! मेरे होते हुए आप क्यो प्रयास कर रहे हो ? ऐसा कहकर मानो निद्रा से जागे हो त्यों त्रिपृष्ठ

खड़े हो गये । त्रिपृष्ठ को खड़े होते हुए देखकर मानो बाहर से आये हो ऐसे उनसे भलभद्र ने दो हाथ फैलाकर उनका आलिंगन किया । तुरंत अपने स्वामी के जाग्रत होने के समाचार मिलते ही शत्रुओं के हृदय में पिडा उत्पन्न हुई और त्रिपृष्ठ के सैनिकों ने हर्षनाद किया । प्रहार से किये हुए पाप का मानो प्रायश्चित्त करने के इच्छुक हो ऐसा अश्वघ्नीव के चक्र को अपने समीप पाया । तब मानो सूर्य का हिस्सेदार हो ऐसे तेज से भयंकर उस चक्र को हाथ में लेकर वासुदेव ने अश्वघ्नीव से कहा—“बड़ी उग्र गर्जना करके तुने यह चक्र मेरे पर फेंका था, पर्वत के साथ हाथी के पराक्रम की तरह इस चक्र का भी पराक्रम देख लिया तो अब हे दुर्मति ! अब तु यहाँ से चला जा ! मार्जर जैसे पापवृत्तिवाले वृद्ध को कौन मारेगा ?” ऐसे वचन सुनकर दांत से अधरों को डसता और कोप से अंगो में कंपनवाला अश्वघ्नीव भुक्कुटी चढ़ाकर बोला—“अरे शिशु ! वृक्ष से गिरे हुए फलों की तरह पंगु इस लोहे के खंड मिलने से उन्मत्त क्यों हो रहा है ? उसको मेरे ऊपर छोड़ दे और मेरा बल देख, उस चक्र को मेरे मुठ्ठी में आते ही चूर्ण कर डालूँगा ।

अश्वघ्नीव के ऐसे वचन सुनकर अकुंठित शक्तिवाले त्रिपृष्ठ वासुदेव कोप करके चक्र को आकाश में घूमाकर अश्वघ्नीव पर छोड़ा । उस चक्र ने तुरंत कदली के तने की तरह अश्वघ्नीव का मस्तक छेद डाला । कारण कि ‘प्रतिवासुदेव अपने चक्र से मारा जाता है’ उस समय खेचरो ने हर्ष से वासुदेव पर पुष्पवृष्टि की और ऊँचे स्वर से जयनाद किया । अश्वघ्नीव की दीनता से भर सैन्य में प्रतिध्वनि से पृथ्वी और अंतरीक्ष को रुदन कराते हुए बड़ा रुदनध्वनि उत्पन्न हुआ । अश्वघ्नीव के सभी स्वजन एकत्रित हुए, पुत्रों के नेत्रों से झरते आसुओं से मानो निपावांजलि देते हो उस तरह अश्रुधारा बरसाते उन्होंने अश्वघ्नीव के अंगों का अग्निसंस्कार किया । अश्वघ्नीव प्रतिवासुदेव मृत्यु प्राप्त करने पर सातवीं नरकभूमि में तैतीस सागरोपम के आयुष्य में नारकी हुआ ।

उस समय आकाश में देवताओं ने ऊँचे स्वर में उद्घोषणा की—“हे राजाओ ! तुम सभी प्रकार के मान छोड़ दो, चिरकाल से आरंभ किये अश्वघ्नीव के पक्षपात को छोड़ दो, और भक्ति से त्रिपृष्ठ वासुदेव कि श्रेष्ठ शरण ग्रहण करें, क्योंकि इस भरतक्षेत्र में यह अपसर्पिणी में यह प्रथम वासुदेव उत्पन्न हुआ है । ये महाभुज राजा इस त्रिलोक भरतक्षेत्र की पृथ्वी का भोक्ता होगा ।” इस प्रकार की अंतरीक्ष से कि गई दिव्यवाणी सुनकर अश्वघ्नीव के पास उसके साथ के सभी राजा आकर त्रिपृष्ठ वासुदेव के सामने आकर झुके और हाथ जोड़कर उन्होंने इस प्रकार कहा—“हे नाथ ! हमने अज्ञानपन से या परतंत्रता में आज तक जो कोई भी हमसे अपराध किया हो उसे आप क्षमा करें । अब से हम सब आपके दास की तरह आप की आज्ञा का पालन करेंगे । हे प्रभु ! हमें आज्ञा करें” त्रिपृष्ठ ने कहा—“इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है । स्वामी को आज्ञा द्वारा युद्ध करना वह क्षत्रिय धर्म है । तुम सब भयमुक्त हो जाओ, अब से मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, तुम सभी अपने-अपने राज्यों में निर्भिक होकर मेरे सेवक बनकर बर्ताव करें ।” इस प्रकार सभी राजाओं को आश्वासन देकर मानो इंद्र हो वैसा त्रिपृष्ठ वासुदेव अपने परिवार को लेकर पोतनपुर गया और वहाँ से चक्र, धनुष्य, गदा, शंख, कौस्तुभमणि, खड्ग और वनमाला इत्यादि सात रत्न सहित त्रिपृष्ठ वासुदेव अपने ज्येष्ठ बंधु बलभद्र को साथ लेकर दिग्विजय

करने के लिये निकल पडा ।

पूर्व मे उस दिशा के मुख के मंडनरूपी मागधपति की दक्षिण मे उस दिशामे मस्तक के मालारूपी वरदामदेव और पश्चिम मे उस दिशा को प्रकाशित करनेवाला प्रभासदेव को अपनी आज्ञा मनवाकर और वैताढ्य पर्वत की दोनो श्रेणि के विद्याधरो का उसने विजय किया । बाद मे दोनो श्रेणि के राज्य ज्वलनजटी को अर्पण किया । महात्माओं की सेवा करने से कल्पवृक्ष का फल मिलता है । उसी तरह से दक्षिण भरतार्द्ध की साधकर त्रिपृष्ठ वासुदेव दिग्यात्रा से निवृत होकर अपने नगर की ओर रवाना हुआ । अर्ध चक्रवर्ती की समृद्धिसे और चक्रवती से भी अर्द्धभुजबल से युक्त ऐसे वे त्रिपृष्ठ कुछ समय प्रयाण करके मगध देश मे आये । वहाँ सभी राजाओं के वे तिलक समान उस वासुदेव ने पृथ्वी मानो तिलक हो ऐसी और कोटि पुरुषों से उठाई जा सकती है ऐसी एक महाशिला दिखाई दि । उस शिला को अपनी वामभुजा द्वारा उठाकर आकाश मे मस्तक पर छत्र की जितनी ऊँची उठाई । उनके ऐसे भुजबल को देखकर विस्मय प्राप्त हुऐ राजाओं ने लोगो ने चारणभाटो की तरह उनकी अत्यंत प्रशंसा की । उस शिला को वापस योग्य स्थानपर स्थापन करके प्रयाण करके कुछ दिनो बाद त्रिपृष्ठ वासुदेव लक्ष्मी के स्थानरूपी पोतनपुर के नजदीक आये ।

बाद मे जिनके पास बडी संपत्ति जमा प्राप्त कि है ऐसे त्रिपृष्ठ वासुदेव ने गजेन्द्र उपर आरुढ होकर लक्ष्मी का मानो नया नगर हो ऐसे पोतनपुर मे प्रवेश किया । उस समय मानो ताराअंगणो से भरा हुआ आकाश हो और उसमे मोतियों के मानो स्वस्तिक चारो ओर जडे लगते थे और घर-घर मे द्वार पर तोरणों की श्रेणी लगी हुई थी, उससे मानो सैंकडो इन्द्रधनुष्य सहित हो ऐसा वह नगर मालुम पडता था । मानो मेघ बरसा हो उस तरह नगर की भूमि पर जल से छिडकाव किया हुआ था । सुंदर पत्रोवाले ऊचे बांधे गये मंचो द्वारा मानो हवाई जहाजवाला हो ऐसा वह नगर दिखाई देता था । घरो मे मंगल गीत गाये जा रहे थे, उससे ऐसा लग रहा था मानो विवाह महोत्सव चल रहा ऐसा लग रहा था और लोगो की ऐसी भीड लगी थी की मानो जनसमूह नगर मे अेकत्र हो गया हो ऐसा दिखाई पडता था ।

नगर मे प्रवेश करने के बाद प्रजापति राजाने, ज्वलनजटी ने, अचल बलदेव और दुसरे राजाओं ने मिलकर त्रिपृष्ठ का अर्द्धचक्री अभिषेक किया । उसके बाद दीक्षा लेकर दो मास छद्मस्थवास मे विहार करते हुऐ श्रेयांस प्रभु अनुक्रम से प्रथम के सहस्राम्र वन मे पधारे । वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे बैठकर कायोत्सर्ग मे रहे और शुक्लध्यान के अंत मे बर्ताव करते ऐसे प्रभु जैसे उष्णता से मोम पिघल जाता है उस तरह, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चारो धात्तीकर्म का विनाश हुआ । जिससे माघ मास की अमावस्या के दिन चंद्रमा श्रवणनक्षत्र मे आने पर छठतप मे बर्ताव करते प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ । देवताओंने सम्यसरण की रचना की, उसमे बैठकर महा अतिशयवाले इग्यारहवे प्रभुने देशना दी । भगवंत की देशना सुनकर कई प्राणी ने प्रतिबोध प्राप्त किया, जिसमे से कुछ लोगोने सर्वविरतिपन स्वीकार किया और कुछ लोगो देशविरति हो गये । प्रभु के गोशुभ वगेरेह छिहत्तर गणधर हुऐ । प्रभु के मुख से त्रिपदी सुनकर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की । उस तीर्थ में तीन नेत्रोवाले,

श्वेत कांति को धारण करनेवाला, वृषभ के वाहनवाला, दो दक्षिण भुजा में बिजोरु और गदा धारण करनेवाला और दो वाम भुजा में नकुल और अक्षसूत्र का धारण करनेवाला ईश्वर (इस यक्ष का नाम मनुज है) नाम का यक्ष प्रभु का शासन देवता हुआ। तथा गौर अंगोवाली, सिंह के वाहन पर आकर सवार, दक्षिण भुजा में क्रमशः वरद और मुदगर को धारण करनेवाली और वाम भुजा में क्रमशः कलश और अंकुश रखनेवाली मानवी नाम की (यह यक्षणी का दुसरा नाम श्रीवत्सा है) प्रभु के पास रहनेवाली शासनदेवी बनी। वे यक्ष और देवी निरंतर जिनके समीप रहे हैं ऐसे श्रेयांसप्रभु विहार करते-करते एकबार सभी नगरो में श्रेष्ठ ऐसे पोतनपुर के उद्यान में पधारे। वहाँ समवसरण के लिये वायुकुमार देवताओं ने एक योजन के प्रमाण में पृथ्वी का मार्जन करके। मेघकुमारो ने उस पर सुगंधित जल की वृष्टि की पुष्पो वृष्टि की। व्यंतरो ने सुवर्ण तथा रत्नमणिओं से उसका तल चारो ओर से बांध दिया, और उसके ऊपर अदांजित जानुप्रमान पंचवर्णी पुष्पों की वृष्टि की। बाद में मानो दिशाओं ने भुकुटी खिंची हो ऐसे सभी दिशाओं में तोरण बांधकर उसके मध्यभाग में ढाई गज (गाअु) ऊँची एक पवित्र मणिमय पीठ व्यंतरो ने तैयार की। उसके नीचे भुवनपतिओं ने मानो पृथ्वी का मुकुट हो ऐसा सुवर्ण के झरोखेवाला रुपा का दुर्ग बनाया। उसके भीतर ज्योतिषी देवताओं ने अपने तेज से मानो रचा हो ऐसा रत्न के झरोखेवाला सुवर्ण का दुर्ग बनाया। उसके भीतर विमानपतिओं ने माणिक्य झरोखेवाला दिव्यरत्नमय तीसरा दुर्ग बनवाया। हरेक दुर्ग पर तोरण के सहित चार-चार द्वार बनवाये। मध्य दुर्ग की इशान दिशा के मध्य भाग में एक देवच्छंद की रचना की। अंतिम दुर्ग की गर्भभूमि में व्यंतर देवताओं ने नौसौ साठ धनुष्य ऊँचा एक चैत्य वृक्ष स्थापित किया। उसके नीचे पूर्वर्चित मणिपीठ के ऊपर उन्होंने एक प्रतिछंद बनाया और उसके मध्य में पूर्वादि चारो दिशाओं में चरणपीठ सहित एक-एक सिंहासन स्थापित कराया। उसके अलावा भी दुसरा जो-जो भी करने योग्य कार्य था वह-वह व्यंतर देवताओं ने पूर्ण किया। कारण कि भक्तिवान पुरुष अप्रमाद द्वारा सेवको से भी ऊँचे होते हैं।

उसके बाद आकाश में रहे हुए तीन छत्रों से सुशोभित, दोनों बगल में दो यक्षों के द्वारा चामर डालते, आगे चलते हुए इंद्रध्वजों से शोभित, बंदीवानों की तरह अपने आप बजती ये दुंदुभि जिनके आगे मंगलिक शब्द उच्चारण कर रही हैं। ऐसे सूर्य के सूर्योदय के तरह भामंडल से प्रकाशित कोटिगम सुर, असुर तथा नरो से परिवारवाले, देवताओं ने आगे संचार किये नौ सुवर्णकमल के ऊपर चरणकमल का आरोपण करते और प्रकाशित धर्मचक्र द्वारा जिनका अग्रदेश अधिष्ठित हैं ऐसे श्रेयांस भगवान ने पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश किया। बाद में भ्रमरों की मधुर ध्वनिगुंजन से स्वागत करते हुए पुछ रहे हो ऐसा चैत्यवृक्ष की प्रभु ने तीन प्रदक्षिणाएँ की और “नमस्तीर्थाय” ऐसा कहकर कमल की कर्णिका के प्रतिछंदरूपी पूर्वाभिमुख सिंहासन को प्रभु ने अलंकृत किया और दुसरी तीन दिशाओं में रत्न के सिंहासन पर प्रभु के प्रतिबिंब व्यंतर देवताओं ने स्थापित किये। बाद में पूर्वद्वार द्वारा प्रवेश करके साधु अग्निकोण में अनुक्रम से बैठे और वैमानिक स्त्रियाँ और साध्वी उनके पिछे खड़े रहें, दक्षिणद्वार से प्रवेश करके अर्हत प्रभु को नमस्कार करके भुवनपति, ज्योतिषी और व्यंतरो की स्त्रियाँ नैऋत्य दिशा में बैठे, पश्चिम द्वार से प्रवेश करके प्रभुको प्रणाम करके भुवनपति, ज्योतिषी और व्यंतरो वायव्य दिशा में बैठे

और उत्तर द्वार से प्रवेश करके भगवंत को झुककर अनुक्रमिक ईशान दिशा में वैमानिक देव, मनुष्य और उनकी स्त्रियाँ बैठी । इस तरह तीसरे दुर्ग में श्रीमान चतुर्विध संघ मध्य दुर्ग में तिर्यच और नीचे के गढ़ में उनके विमान सजाये रख दिये गये ।

उस समय राज पुरुषो ने आकर त्रिपृष्ठ अर्धचक्रवर्ती से हर्ष से कहा—“भगवान श्रेयांस प्रभु उद्यान में पधारे हैं” यह सुनकर सिंहासन से उठकर, पादुकाओं का त्याग करके त्रिपृष्ठ वासुदेव प्रभु के सन्मुख दिशा में खड़े होकर उन्हें वंदन किया । बाद में सिंहासन पर बैठकर प्रभु के आगमन की बधाई देनेवाले पुरुषों को साढ़े बारह कोटि सोने की मोहरे दि । उसके बाद त्रिपृष्ठ वासुदेव बड़ी समृद्धियों से युक्त होकर बलभद्र सहित सर्व प्राणीयों के शरणरूप ऐसे प्रभु के समवसरण समीप आये और उत्तर द्वार से समवसरण में प्रवेश करके विधिपूर्वक प्रभु को वंदना करके बलभद्र के साथ इंद्र के पिछे बैठे । बाद में इंद्र, वासुदेव और बलभद्र फिर से खड़े होकर भगवान को प्रणाम करके भक्तिविभोर होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे—“हे परमेश्वर ! अलौकिक आनंद के झरने को देनेवाले और मोक्ष के कारणभूत ऐसे आपको मोक्षार्थे हमारा नमस्कार है । आपके दर्शन मात्र से प्राणी दुसरे कर्मों को भूलकर आत्मामय बन जाता है, तो आपकी देशना सुनने से क्या नहीं होता है ? इस संसाररूपी मरुदेश में आपके अवतरित होने से मानो क्षीरसागर प्रगट हो गया हो, कल्पवृक्ष पल्लवित हुआ हो या मेघ बरसा हो ऐसा प्रतीत होता है । क्रूरकर्मों से बिगड़े हुए ग्रहों द्वारा पिडित ऐसे इस विश्व के रक्षण के लिये आप इग्यारह वे इंद्र जिनेंद्र ज्योतिषियों के पति (चंद्र) रूपी उदय हुए हो । स्वभाव से निर्मल इक्ष्वाकु राजाओं के कुल के जल द्वारा स्फटिक की तरह आपने विशेष निर्मल किया है । हे प्रभु ! तीनों जगत के सभी प्रकार संताप के हरण करने से आपके चरणकमल जड़ समग्र प्रकार की छाया से भी अधिक प्रभावित होती है । हे जिनेश्वर ! आपके चरणकमल में भ्रमररूपी रहते मुझे इतना अधिक हर्ष प्राप्त होता है कि जिससे मुझे भोग या मोक्ष की स्पृहा चाहना नहीं रहती है । हे जगन्नाथ ! जन्मो जन्म तक आपके चरणों की शरणों में रहूँ ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ । आपकी सेवा से क्या नहीं साध्य प्राप्त किया जा सकता है ?”

इस प्रकार की इंद्र, वासुदेव और बलदेव स्तुति करके विराम प्राप्त कर बाद में श्रेयांस प्रभु ने श्रेय के हेतुरूपी देशना देना आरंभ किया—

“यह अपार संसार स्वयं भुरमन समुद्र जैसा है, इसमें कर्मरूपी उर्मियों से आडा तेडा, ऊपर नीचे अर्थात् उर्ध्व अधो तिरछे लोक में घूमा करता है । पवन से जिसह ओंस के बिन्दु और औषधि से जिस तरह झड़ जाता है उस तरह निर्जरा से आठो कर्म अपने आप झड़ जाते हैं । संसार के बीजों से भरे ऐसे कर्मों की निर्जरणा करने से उसे निर्जरा कहते हैं । वह निर्जरा सकाम और अकाम ऐसे दो प्रकार की हैं । जो यम-नियम का धारण करनेवाले हैं उन्हें सकाम निर्जरा होती है और दुसरे प्राणीयों को अकाम निर्जरा होती है । कर्मों की परिपक्वता फल की तरह प्रयत्न अथवा स्वयमेव ऐसे दो प्रकार से होती है । जैसे सुवर्णदोषी होतो भी उसे अग्नि में प्रदीप्त अग्नि द्वारा शुद्ध होता है । उसी तरह तपरूपी अग्नि में सदोष जीव भी शुद्धि को प्राप्त होता है वह तप बाह्य और अभ्यंतर ऐसे दो प्रकार के हैं । अनशन, उणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायकलेश और संलीनता—यह छै प्रकार के बाह्य तप कहलाते हैं । प्रायश्चित, वैयावृत्य, स्वाध्याय,

विनय, व्युत्सर्ग और शुभध्यान—यह छै प्रकार के अभ्यंतर तप कहलाते हैं। ये बाह्य और अभ्यंतर तपरूपी अग्नि को प्रज्वलित करके नियमधारी पुरुष अपने दुर्जर ऐसे कर्मों को भी जला डालता है। जैसे कोई सरोवर का द्वार सभी ओर से बंद कर दिया जाता है तो बाद में उसमें नवीन जलप्रवाह कभी भी प्रवाहित नहीं किया जा सकता है उसी तरह संवर से आवृत हुआ जीव आस्त्रवरूपी द्वार का अवरोध करने से नये-नये कर्मद्रव्य से पाटा नहीं जा सकता है। बाद में जिस तरह पहले संचित एकत्रित जल का सरोवर सूर्य के प्रचंड किरणों से अविच्छिन्न ताप से सुख जाता है, उसी तरह पूर्वाध में बांधे गये कर्म भी तपश्चर्या के तप से तत्काल उनका क्षय हो जाता है। निर्जरा करने में बाह्य तप से अभ्यंतर तप श्रेष्ठ है और उसमें भी ध्यान का एक छत्र राज रहा हुआ है। ऐसा मुनि कहते हैं। क्योंकि ध्यान धरनेवाले योगी चिरकाल से उपजिन किये हुए और प्रबल कर्म भी तत्काल निर्जरीभूत हो जाते हैं। जिस तरह बड़े हुए शारीरिक दोषों का लंघन करने से सोख लिये जाते हैं उसी तरह तप करने से पूर्वसंचित कर्मों का क्षय हो जाता है, अथवा ज्यो मेघ समूह प्रचंड पवन के घात से इधर-उधर बिखर जाता है, उसी तरह तपश्चर्या से कर्म के समूह का विनाश होता है। जब संवर और निर्जरा प्रतिक्षण समर्थ होकर उत्कर्ष करती है, तब वह जरूर मोक्ष को उत्पन्न करती है। दोनों प्रकार की तपश्चर्या से होती निर्जरा द्वारा कर्मों को जलानेवाला शुद्ध बुद्धिवान पुरुष सभी कर्मों से रहित ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है।

इस प्रकार की प्रभु की देशना सुनकर कई लोगों ने दीक्षा ग्रहण कर ली बलभद्र और वासुदेव ने समकित प्राप्त किया, प्रथम पोरसी पूर्ण होनेपर प्रभु ने देशना समाप्त की। उस समय त्रिपृष्ठ वासुदेव के पुरुष चार प्रस्थ (आठशेर) के प्रमाणवाला बलि लाये। उस बलि को प्रभु के पास उड़ाया, उसमें से आधा भाग निचे गिरने से पहले ही देवताओं ने ले लिया बाकी के आधे भाग के आधा राजाने लिया और अवशिष्ट भाग दूसरों ने ग्रहण किया। बाद में उत्तरद्वार से निकलकर प्रभु मध्य वप्र में रहे देवछंद ऊपर जाकर बैठे, इसलिये छिहत्तर गणधरो में मुख्य अंश गोशुभ गणधर ने प्रभु के चरणपीठ पर बैठकर धर्मदेशना दी। जब दूसरी पोरसी पूर्ण हुई तब उन्होंने धर्मदेशना समाप्त की बाद में इंद्र वासुदेव और बलराम वगैरेह सभी अपने-अपने स्थानों पर चले गये और मानो दूसरा सूर्य हो ऐसे ज्ञानरूप आलोक को विस्तारीत करते हुए प्रभु ने उस स्थानसे दूसरे स्थान की ओर विहार किया।

केवलज्ञान होने के पश्चात् दो मास ऊना (कम) इक्कीस लाख वर्ष तक विहार करते रहे हुए श्रेयांसनाथ प्रभु ने चौयासी हजार महात्मा साधु, एक लाख तीन हजार साध्वी, तेरह सौ चौद पूर्वधारी छ हजार अवधिज्ञानी, छ हजार मनःपर्यवज्ञानी, साठे छ हजार केवलज्ञानी, इग्यारह हजार वैक्रिय लब्धिवाले, पाच हजार वाद लब्धिवाले, दो लाख उन्नीस हजार श्रावक और चार लाख अडतालीस हजार श्राविकाएँ इतना परिवार उनका हुआ। बाद में मोक्षकाल अपना अंत समय नजदीक आनेपर सम्मत्तेश्वर पर्वत पर आकर प्रभु ने एक हजार मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मास के अंत में शैलशी ध्यान में रहकर श्रावणमास की कृष्ण तृतीया के दिन घनिष्ठा नक्षत्र में चंद्र आने पर हजार मुनियों के संग श्री श्रेयांसप्रभु ने अनंत दर्शन, ज्ञान, वीर्य और आनंदमय स्वरूपी परमपद को प्राप्त हुए।

कुमार अवस्था में इक्कीस लाख, राज्य पालन में बियालीस लाख और दीक्षा पालन में इक्कीस

लाख—इस तरह सब मिलकर चौयांसी लाख वर्ष का प्रभु ने आयुष्य था । श्री शीतलनाथ प्रभु के मोक्षकाल के बाद छसठ लाख छत्रीस हजार वर्ष तथा सोसागरोपम उणी एक कोटि सागरोपम गये तब श्री श्रेयांसप्रभु का निर्वाणकाल महोत्सव हुआ । उस निर्वाणकल्याणक का महोत्सव देवता और इंद्रोने मिलकर किया । “महत्पुरुषो का अंतकाल भी पहले के ही पर्वके जैसा ही होता है, शोकरूप में नहीं होता है ।

अब त्रिपृष्ठ वासुदेव बत्तीस हजार अंतःपुर की स्त्रियों के साथ सुख विलास करते हुए अपना कुछ समय तक आयुष्य व्यतीत किया । अनुक्रम से स्वयंप्रभा राणी से ज्येष्ठ श्रीविजय और कनिष्ठ (छोटा) विजय नाम के दो पुत्र हुए । एकबार रतिसागर मे मग्न होकर त्रिपृष्ठ के पास मधुरगान करनेवाले असे संगीतकार आये अुनोने विविध रागोसे मधुर गान करके सर्व कलानिधि ऐसे त्रिपृष्ठ वासुदेव का हृदय हर लिया । उनके गायन के गुणो से खुश त्रिपृष्ठ ने उनको अपने पास रखे, कारण कि दूसरे सामान्यजन भी गायन से खुश होते हैं, तो संगीत को जानने मे अब्रणीय ऐसे त्रिपृष्ठ वासुदेव कैसे खुश नहीं होंगे ? एकबार इंद्र के पास गंधर्वोंकी तरह रात्रि मे शय्या मे सोये हुऐ त्रिपृष्ठ वासुदेवके पास वे तारस्वर से गाने लगे । हस्ती की तरह उनके गान से जिनका हृदय आक्षिप्त हुआ है ऐसे त्रिपृष्ठ वासुदेव ने बारी से आये एक अपने शय्या पालक को आज्ञा दि कि “जब मुझे निद्रा आ जाये तब गायकों से गान बंद करवा के उन्हे विदा कर देना, क्योकि जब स्वामी अवधान मे हो तब सब प्रयास व्यर्थ है ।” स्वामी की ऐसी आज्ञा का शय्या का पालक ने संगीत सुननके लोभ से उन गायकों के गान से बंद नहीं करवाया और विदा भी नहीं किया क्योकि जिनका मन विषयों से व्याप्त है उनके मन मे से स्वामी की आज्ञा गल जाती है महत्व नहीं रखती है ।

इसी तरह गायन मे ही रात्रि का चोथा प्रहर बित गया । पिछली रात्रि मे त्रिपृष्ठ वासुदेव जागृत हुऐ । उस समय गायको के अक्षीण स्वर उन्हे सुनाई दिये । तुरंत उन्होंने शय्यापालक से पुछा—“इन बिचारे कष्टकारी गायको को तुमने अब तक क्यो नहि विदा किया ? शय्यापालक ने कहा—“हे प्रभु ! उनके गान से मेरा हृदय आक्षिप्त हो गया, जिससे मैं उन्हें विदाय न कर सका और आपके शासन (आज्ञा) को भूल गया ।” यह सुनकर वासुदेव कोतुरंत उग्र कोप उत्पन्न हुआ । लेकिन उस समय उसे दबा कर रख दिया । बाद में प्रातःकाल मे पूर्व दिशा के सूर्य की तरह सभा मे सिंहासन पर आरुढ हुआ, उस समय उसे रात्रि वृतांत ध्यान मे आया, उस शय्यापालक को बुलाकर वासुदेव ने सेवक पुरुषो को आज्ञा दि कि “इस गायन प्रेमी प्रीतिवाले पुरुष के कान मे गर्म ताजा और तांबे की धातु पिघलाकर इसके कान मे डाले, क्योकि दोष इसके कान का है ।” उन्होंने शय्यापालक को एक ओर ले जाकर उस प्रकार से किया । क्योकि उग्र शासनवाले राजाओं की आज्ञा दुर्लध्य होती है । उस वेदना से शय्यापालक मृत्यु को प्राप्त हुआ और वासुदेव ने बडे बुरे कर्मोवाले असहनीय वेदना कर्म बांध लिया । नित्य विषय मे आसक्त, राज्यमूर्छा मे परायण, भुजबल के गर्व से जगत को तिनके समान माननेवाले, प्राणातिपात (जीवहिंसा) मे निशंक, महारंभ परिग्रहवाले और क्रुर अध्यवसाय से समकितरुपी आभूषणो का नाश करनेवाला ऐसा त्रिपृष्ठ वासुदेव नारकी आयुष्य बांधकर चौयांसी लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके सातवी नरकभूमि मे गये । वहाँ प्रतिष्ठान नाम की नरकवास मे रहकर पांचसौ धनुष्य उन्नत शरीरवाले उन्होंने तैतीस सागरोपम तक

महाविलष्ट कर्मों का अनुभव किया। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने कुमारावस्था में पचीस हजार मांडलिकपन में पचीस सहस्र, दिग्विजय में एक सहस्र और राज्य पालन में त्रियांसी लाख उन्नपचास हजार वर्ष—सब मिलकर चौयासी लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया।

अपने छोटे भाई के पंचत्व से उत्पन्न हुए दुःख शोक द्वारा राहु सूर्य की तरह अचल बलदेव पराभव को प्राप्त हुए। स्वयं विवेकी थे, फिर भी भातृस्नेह के वश से मानो वे अविवेकी हो गये हो ऐसे करुण स्वर से रुदन करने लगे। वे विलाप करते हुए बोले—“हे बंधु ! आप खड़े हो जाइये, ऐसे शयनकर्म का आग्रह क्या कर रहे हो ? पुरुषसिंह ऐसे आपको हाल ऐसा अपूर्व आलस्य कहाँ से प्राप्त हुआ है ? हे भाई ! हमारे घर के द्वार पर सभी राजागण आपके दर्शन के लिये उत्सुक आकर खड़े हैं, उन दीन राजाओं पर आपकी कृपा दृष्टि करना उपयुक्त है। हे बांधव ! क्रीडा के समय में ऐसा मौन योग्य नहीं है, क्योंकि आपकी वाणीरूपी अमृत बिना मेरा हृदय भंग हो रहा है, हे प्रिय भाई ! बड़े उत्साहवाले और बड़ों की भक्तिवाले ऐसे आप इस तरह निद्रा और अवज्ञा करके सर्वथा संभव नहीं हैं। अरे ! मैं उग्र विधि से हत हो गया हूँ। मेरे पर यह कैसा दुःख आ पड़ा” इस प्रकार विलाप करते हुए बलदेव मुर्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। क्षणभर बाद होश आने पर हे भ्राता, हे भ्राता ! इस तरह ऊँचे स्वर से आक्रंद करने लगे। वासुदेव को अपने उत्संग में लिया। जब वृद्धो ने अच्छी तरह से समझाया तब क्षणभर धैर्य का अवलंबन करके उन्होंने छोटे भाई का अग्निसंस्कारादि कार्य किया। उत्तर क्रिया के पश्चात् अपने अनुज बंधु को याद करके बारंबार श्रावणमास की वर्षा की तरह आंखों से अश्रुबिंदु प्रवाहित किये। उसके बाद उद्यान में अरण्य की तरह, घर में स्मशान की तरह, क्रीडा सरोवर या नदी में घर की नाली की तरह और बंधुसमाज में शत्रुओं के समाज की तरह बलदेव ने अल्पजल में रही हुई मछली की तरह उन्हें जरा भी प्रीति उत्पन्न नहीं हुई।

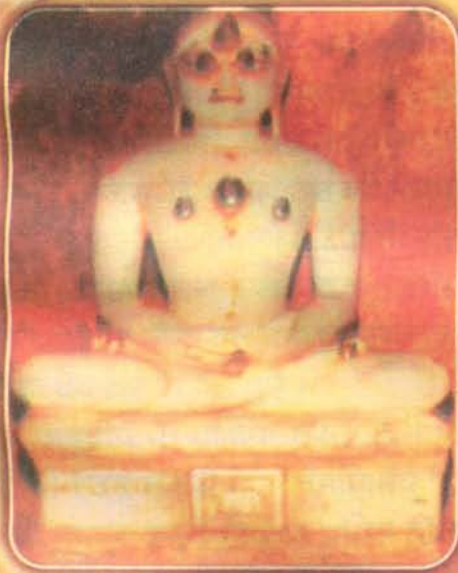
अनुक्रमिक श्रेयांस प्रभु की श्रेयकारी वाणी के स्मरण से संसार के सार से चिंतित वे विषय वासना से विमुख हो गये। स्वजनों के आग्रह से कुछ दिन तक घर में रहें। एकबार धर्मघोष नाम के आचार्य वहाँ पधारे। बलदेव उनके चरणों में जाकर और अर्हंत वाणी का अनुवाद करके उनकी देशना सुनी और संसारपर से विशेष निर्वेद प्राप्त हुआ। तुरंत शुद्ध बुद्धिवाले उन्होंने उन आचार्य के पास से दीक्षा ग्रहण की। क्योंकि महाशय जान लेने के बाद तुरंत आचरण में प्रवृत्त हो जाते हैं। सद्गुणी बलदेव मुनिने मूल तथा उत्तरगुणों का सम्यक् प्रकार से पालन करते, सर्वत्र समता को धारण करते, परिषद् को सहन करते हुए, वायु की तरह प्रतिबंध रहित रहते और सर्प की तरह अेक दृष्टि से अवलोकन करते ग्राम, नगर तथा पुरादिक में कितने ही समय विहार किया। स्वभाव से ही जिनकी चित्त वृत्ति निर्मल है ऐसे अचल बलभद्र पंचाशी लाख वर्षों तक निर्गमन करके अंत में सभी कर्मों का घात कर मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थ पर्वणि

श्री श्रेयांसत्रिपृष्ठाचलाश्वग्रीववर्णनो नाम प्रथमः सर्ग ॥१॥



श्री वासुपूज्यस्वामि भगवान
आगलोड तीर्थ, गुजरात



श्री वासुपूज्यस्वामि भगवान
चपापुरी तीर्थ, गुजरात



श्री वासुपूज्यस्वामि भगवान
हस्तिनापुर तीर्थ, गुजरात

--: सौजन्य दाता :-

दिवालीबाग नानपुरा सुरत जैन श्वे. मू. संघ
गाम : सुरत, गुजरात

द्वितीय सर्ग

श्री वासुपूज्य प्रभु, विजय बलभद्र तारक प्रतिवासुदेव और द्विपृष्ठ वासुदेव चरित्र

इंद्र और उपेंद्रो के मुकुट के अग्रभाग से जिनके नाखून के अग्रभाग की पंक्ति घिसगई है ऐसे विश्व के पूजनीय और विश्व के रक्षणहार श्री वासुपूज्य भगवान को नमस्कार करके रूपस्थ ध्यान मे रहा हुआ मैं अर्हत की तरह विश्व को पवित्र करनेवाले और चंद्र से भी अति निर्मल ऐसे प्रभु के चरित्र के बारे मे मैं कहूँगा ।

पुष्करवर द्वीपार्द्ध मे पूर्व विदेहक्षेत्र के आभूषणरूपी मंगलावती नाम के विजय मे रत्नसंचया नाम की एक नगरी है । उस नगरी मे सभी लक्ष्मीओं से अधिक और चन्द्रमा की तरह सभी जन वल्लभ पद्मोत्तर नाम का राजा था । दुसरे राजा उसके शासन को भक्ति से मस्तक को लगाते थे । उसी तरह उस जिनेश्वर के उज्जवल शासन को हमेशा हृदय मे धारण करते थे । गुण के मंदिररूपी वह राजा को लक्ष्मी और कीर्ति दोनो मानो जुड़वा जन्मी हो उस तरह वह दोनो साथ मे बढ़ने लगी । राजाओं मे शिरोमणिरूपी पद्मोत्तर राजा ने समुद्ररूपी वस्त्रवाली घूमती पृथ्वी पर घूमती खाई के किलमेखलवाली अेक नगरी की तरह, उत्तम राज्य का संचालन कर रहा था ।

लक्ष्मी विद्युतकी तरह चपल है शरीर वय की तरह वह नाशवंत है, लावण्य कमल के पत्ते पर रहा हुआ जलबिंदु जैसा अस्थिर है और बंधु गण राह के राहगीर की तरह सभी अलग-अलग मार्ग पर चले जायेंगे—इस तरह हृदय मे भावना उत्पन्न होने से उस राजा का मन इस संसार से वैराग्य की दिशा मे मुड़ गया, जिससे एकबार उस बड़े मनवाले राजाने वज्रनाभ गुरु के चरणकमलो मे जाकर मुक्तिरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करानेवाली दीक्षा को ग्रहण किया । बाद मे अर्हत प्रभु की भक्ति वगेरेह कुछ उज्जवल स्थानको का आराधन करके सद्बुद्धिवाले उस राजा ने तीर्थकरनाम कर्म उपार्जन किया । खड्ग की तेज तीक्ष्ण धार जैसा व्रत बहुत समय तक पालन किया, काल करके प्राणत नाम के दसवे देवलोक मे महर्द्धिक देवरूप उत्पन्न हुऐ ।

जंबूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में पृथ्वी के चंपक पुष्पमय शिरोभूषण जैसी चंपा नाम की एक नगरी थी । उस नगरी मे रत्नमणिमय दिवारोंवाले चैत्यों के भीतर प्रतिबिंबित हुए लोग मानो वैक्रिय रूप को धारण करते हो ऐसा प्रतित होता है । रात्रि मे जिससे से जल के झरने बहते है, ऐसे चंद्रकांत मणि की सिढियोवाली और स्वयंमेव जलोत्पत्तिवाली क्रीडावापीकाएँ इत्यादि हरेक मंदिर में शोभा देती है । सुगंधित धूप के धुएँ की शिखाएँ अनेक वासगरो से सर्प की भाँति पातलभवन की तरह शोभा देती थी । जिसमे नगर की स्त्रियां निरंतर क्रीडा करती है, ऐसे क्रीडासरोवर क्षीरसागर मे से निकलती हुई अप्सराओं के विलास धारण करते है । लीला से षड्जस्वरवाली षड्जकौशिकी नाम की गीति का गायन करनेवाली वहाँ के धनवान लोगो मे तांबूल बिडी को धारण करनेवाली स्त्रियाँ पढाने के लिये

हाथ में तोता रखकर घूमती है ऐसा प्रतीत होता है। उस नगरी में पराक्रम से मानो इंद्र हो और कांति मानो सूर्य हो ऐसे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए वसुपूज्य नाम का राजा था। मेघ गर्जना करके बरसाता है और पृथ्वी को तृप्त करता है उस तरह राजा याचको को बुलाने के लिये ढिंढोरा पिटवाकर बाद में धन द्वारा सभी को तृप्त करता था। अपने प्रताप मात्र से शत्रुओं को दबाने वाले उस राजा के अनेक सैनिक दिग्विजय के लिये नहीं सिर्फ क्रीड़ा करने के लिये पृथ्वी पर घूमते थे। आज्ञारूपी सारवाला वह राजा दुष्टों को सख्त शिक्षा करता था। जिससे 'चोर' यह शब्द नाम सिर्फ शब्दकोष में ही दिखाई देता था, लोगों में नहीं दिखाई देता था। धर्म प्रेमी पुरुषों में प्रीति वाले वह राजा ने श्रीवत्स के चिन्ह की तरह पवित्र शासन के हृदय में धारण किया हुआ था।

अपने कुलरूपी सरोवर में हंसनी जैसी, रूप से रति को भी जीतने वाली और प्रीति के पात्र ऐसी जया नाम की उनकी एक पटरानी थी। वक्र और मंद गति से गमन करने वाली रमणी, गंगा अस्त होने के समय जिस तरह समुद्र में प्रवेश करती है उस तरह वह वसुपूज्य राजा के मन में प्रवेश करती थी और शुद्ध स्फटिक मणि के जैसी निर्मल उस रानी के चित्त में सद्भक्ति से परमात्मा की तरह वासुपूज्य राजा प्रवेश कर गये थे। रूप लावण्य और निर्मल गुणों से सट्टा ऐसे वे राज दंपति विलास करते-करते अद्वैत सुखमय सर्वकाल निर्गमन होता था। इस ओर प्राणत देवलोक में पद्मोत्तर राजा के जीव ने उत्कृष्ट सुख में मग्न होकर अपना आयुष्य पूर्ण किया। बाद में ज्येष्ठ मास की शुक्ल नवमी को शतभिषा नक्षत्र में चंद्र योग होने पर वहाँ से च्यवनकर के उस जयादेवी की कुक्षि में अवतरित हुआ उस समय सुखसे सोये हुए जयादेवी ने तीर्थंकर के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे। अभ्र की रेखा चंद्र ओर पर्वत की गुफा सिंह को जिस तरह धारण करती है उस तरह जयादेवी ने अत्युत्तम गर्भ को धारण किया। अनुक्रम में फाल्गुन मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र में लाल वर्णवाला और महिष (भैसा) के लांछनवाले एक पुत्र को जन्म दिया। आसन के कंपन से छप्पन दिक्कुमारीयों ने प्रभु के जन्म को जाना, प्रभु और उनकी माता का यथोचित सूतिकाकर्म किया। उसके बाद पालक विमान पर आरुढ़ होकर शक्रेंद्र अपने परिवार के साथ वहाँ पर आये, तत्काल प्रभु की तरह प्रभु के सूतिकागृह की प्रदक्षिणा की। उसमें प्रवेश करके जयादेवी को अवस्थापिनी निद्रा देकर, उनकी बगल में प्रभु के प्रतिबिंब स्थापित करके, स्वयं पांच रूप किये - ओक रूप ने प्रभु को ग्रहण किया, दूसरे रूप से छत्र धारण किया, दो रूप में दोनों ओर चामर डालने लगे, ओक रूप में वे वज्र लेकर आगे चलने लगे। वहाँ से सुमेरु पर्वत पर जाकर अतिपांडुकबला नाम की शिला पर रहे हुए सिंहासन पर प्रभु को उत्संग में लेकर शक्रेंद्र बैठे। उस अवसर अच्युतेंद्र वगैरेह तिरसठ इंद्रोंने तीर्थ के जलो से भरे कुंभों द्वारा अभिषेक किया। बाद में ईशानकल्प के अधिपति के उत्संग में शक्रेंद्र अपने चित्त की तरह प्रभु को स्थापित किया और भक्ति में चतुर ऐसे उन्होंने प्रभु के आसपास की चारों दिशाओं में स्फटिकमणि के चार वृषभ स्थापित किये। स्नानविधि की विलक्षणता में चतुर ऐसे शक्रेंद्र ने वृषभ के शृंग में से निकलते हुए जलद्वारा प्रभु को स्नान करवाया। बाद में उन चार वृषभों को अंतर्हित कर प्रभु के शरीर को पोछ गोशीर्षचंदन से विलेपन किया और दिव्य वस्त्र, आभूषण और पुष्पों से प्रभु का अर्चन करके आरती

उतारकर इस प्रकार से स्तुति करने लगे—

हे नाथ ! चक्रवर्तीओं के चक्र से, वासुदेव के चक्र से, ईशानेन्द्र के त्रिशूल से, मेरे वज्र से और दुसरे इंद्रों के अस्त्रों से भी जिन कर्मों का छेदन नहीं हो सकता है वे कर्म आपके दर्शन मात्र से उनका छेदन हो जाता है । क्षीरसमुद्र की लहरों से, चंद्रादिक की कांति से, मेघ की धाराओं से गोशीर्षचंदन के लेप से और कदली फल के घने उद्यानों से जिन दुःखों का परिताप कम नहीं होता है वह आपके दर्शनमात्र से तत्काल शांति मिल जाती है । अनेक प्रकार के कवाथों (आयुर्वेदिक) से तरह-तरह के चूर्णों से अनेक प्रकार लेप से, अनेक प्रकार की शस्त्रक्रिया से कई मंत्र प्रयोगों से जिन रोग का छेदन नहीं होता है उन रोगों का मात्र आपके एक दर्शनमात्र से तुरंत प्रलय प्राप्त हो जाता है । हे प्रभु ! अधिक क्या कहूँ ? संक्षिप्त में इतना ही कहना है कि जो इस जगत में असाध्य है वह आपके दर्शन मात्र से साध्य हो जाता है । इसलिए हे जगत्पति ! आपके दर्शन के फल की इच्छा मैं यही करना चाहता हूँ कि मुझे बारंबार आपके दर्शन का लाभ मुझे मिले”

इस तरह प्रभु की स्तुति करने पर उनको लेकर जयादेवी के बगल में रखकर प्रभु को नमस्कार करके । उसके बाद देवी की अवस्वापिनी निद्रा हरके उनकी बगल से प्रभु के प्रतिबिंब लेकर, शक्रेंद्र स्वर्ग में गये और दुसरे इंद्र मेरुपर्वत से सीधे स्वस्थान पर गये ।

उसके पश्चात् प्रातःकाल की तरह कमल का विकास करनेवाले सूर्योदय की तरह जगत के चित्तों का विकास करनेवाले वसुपूज्य राजाने जन्मोत्सव मनाया और वसुपूज्य तथा जयादेवी ने शुभदिन प्रभु का वासुपूज्य ऐसा यथार्थ नाम नामकरण किया । शक्रेंद्र ने अंगूठे में संक्रमाये हुये अमृतपान से वृद्धि प्राप्त करने लगे, क्योंकि अर्हत भगवान के दुसरे कार्य धात्रीमाताओं से ही करवाते हैं, स्तनपान करवाने से वह धात्री नहीं गिनी जाती है । इंद्र की आज्ञा से पांच देवांगनाएँ धात्री की तरह छाया की तरह प्रभु के साथ रहती थी और उनसे लालन-पालन हुये प्रभु हमेशा वृद्धि प्राप्त कर रहे थे । समान आयु के होकर आये हुए देवकुमारों के साथ कभी सुवर्णरत्नमय दिव्य गेंदों से, कभी हिरेरत्नजडित शंकुला (सरोता) से, कभी भ्रमर की तरह घूमने की क्रीड़ा से, कभी अंदर ही अंदर दाव करके इमली के पेड़ पर चढ़ने की क्रिया से, कभी तेज दौड़ने की क्रीड़ा से, कभी छलांग लगाने की क्रीड़ा से, कभी कूदने फांदने की क्रीड़ा से, कभी पानी में तैरने की क्रीड़ा से, कभी सिंहनाद की क्रीड़ा से, कभी मुष्टियुद्ध से या बाहुयुद्ध से क्रीड़ा करते ऐसे प्रभु ने बाल्यपन योग्य ऐसी शिशु अवस्था में व्यतीत किया । अनुक्रम में सत्तर धनुष्य ऊँचे सर्व लक्षणों से युक्त ऐसे प्रभु मृगाक्षीओं के मन को हरनेवाला यौवनवय पाया । एक दिन संसारसुख से विमुख ऐसे वासुपूज्य प्रभु के उनके मातापिता ने पुत्र के वात्सल्यभाव से इस प्रकार कहने लगे—“हे कुमार ! तुम्हारे जैसे पुत्र के जन्म मात्र से जगत के सभी के मनोरथ पूर्ण हो गये, है तो भी तुम्हें कुछ कहना है, कारण अमृत से कोई तृप्त होता है ? मध्य देश में, वत्स देश में, गौड देश में, मगध देश में, कौशल देश में, तीसल देश में, प्रागज्योतिष में, नेपाल देश में, विदेह देश में, कलिंग देश में, उत्कल देश में, पुंड्र देश में, ताम्रलिप्त देश में, मूल देश में, मलय देश में, मुदगर देश में, मल्लवर्त देश में, ब्रह्मोत्तर देश में और दुसरे भी पूर्व दिशा के आभूषणरूप सभी देशों में, कुंतल देश में, महाराष्ट्र देश में,

आंध्र देश मे, मुरल देश मे, कथकैशिक देश मे, सुपर्पर देश मे, केरल देश मे, तमिल देश मे, पांड्य देश मे, दंडक देश मे, चौड देश मे, नाशिक्य देश मे, कोंकण देश मे, कौरव देश मे, वानवास देश मे, कोल्लाद्रि मे, सिंहल देश मे और दुसरे दक्षिण दिशा के देश सौराष्ट्र देश मे, त्रिवेण देश मे, दशोरक देश मे, अर्बुद देश मे, कच्छ देश मे, आवर्तक देश मे, ब्राह्मणवाह मे, यवनदेश मे, सिंधु देश मे और भी दुसरे पश्चिम देशो के देश मे तथा शक देशो मे, केकय (काबुल) देश मे, वोक्काण देश मे, हुण देश मे, जांगल देश मे, वानयुज देश मे, पांचाल देश मे, कुलूत देश मे, काश्मीर देश मे, कंबोज देश मे, वल्हिक देश मे, कुरु देश मे और दुसरे उत्तर दिशा के देशो मे तथा दक्षिण भरतार्द्ध क्षेत्र की सीमा के जैसे वैताढ्य पर्वत की दोनो श्रेणीयों मे और दुसरे भी अलग-अलग अनेक प्रसिद्ध, निष्कलंक, सत्य प्रतिज्ञावाले और धर्म के अनुरागी जो राजाओ और स्वेचरेश्वर रहे हुए है उन सभीने बडे, बडे उपहार के साथ अपनी कन्याएँ तुम्हे देने के लिये आश्वासन मे बारंबार प्रार्थना कर रहे है । इसलिए तुम उनकी कन्याओं के साथ तुम्हारा विवाहोत्सव के दर्शन देकर उनके तथा हमारे मनोरथ पूर्ण करो और कुलक्रम से चलते आये हुए राज्यभार ग्रहण करो, क्योकि अब हमे वृद्धावस्था मे हमे व्रत धारण करना ही उचित है ।

मातापिता के ऐसे वचन सुनकर वासुपूज्य भगवान हास्य करते हुऐ बोले-“हे मातापिता ! सुतप्रेम के योग्य ऐसे आपके वचन युक्त है, लेकिन इस संसाररूपी अरण्य मे सार्थवाह के वृषभ की तरह घूम-घूमकर मुझे बहुत खेद हो गया है । कौन-कौन से देश, कौन-कौन से नगर, कौन-कौन से गाव, कौन-कौन सी खदानो मे कौन-कौन अटवी मे, कौन-कौन से पर्वत मे, कौन-कौनसी नदी मे, कौन-कौन से द्रहो मे, कौन-कौन टापू मे, कौन-कौन से समुद्र मे, अलग-अलग तरह के रूप परिवर्तन करके मैं अनंतकाल नहीं घूमा हूँ ? अब तो अलग प्रकार की योनियो मे भ्रमण करने के स्थानरूपी इस संसार का मुझे छेदन करना है, इसलिए संसाररूपी वृक्ष की दोहदरूपी कन्याओ के साथ विवाह करने और राज्यभार ग्रहण करने की मुझे कोई भी जरूर नहीं है । यदि आपको मेरा उत्सव ही देखना हो तो दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण समय के महोत्सव जन्मसमय की तरह आपको और जगत को देखना ही यथा योग्य होगा ।”

उपरोक्त पुत्र के वचन सुनकर वसुपूज्य राजाने अश्रुयुक्त लोचन द्वारा कहा-“अरे पुत्र ! तुम इस संसार तैरने मे उत्सुक हो यह मैं जानता हूँ । तीर्थकर के जन्म को सूचित चौदह महास्वप्नो से आपका यह जन्म संसारसमुद्र को पार लगानेवाला है, ऐसा हमारे जानने मे आया है । मैं निःसंशय कहता हूँ कि आप यह भवसागर तैर गये हो और दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण संबंधी महोत्सव भी अवश्य ही होंगे, तथापि उन उत्सवो के अंतर्गत तुम्हारा विवाहोत्सव भी करने की इच्छा है । क्योकि मोक्ष की इच्छा रखनेवाले अपने पूर्वजो ने भी विवाहोत्सव रचा था । देखो ! अपने इक्ष्वाकुवंश के आदि पुरुष भगवान ऋषभदेवजी अपने पिता नाभीराजा की आज्ञा से सुमंगला और सुनंदा नाम की दो कन्याओं से विवाह किया था और तत्पश्चात् पिता की आज्ञा अनुसार सृष्टिव्यवहार दिखाकर राज्य को पाला, भोग भोगकर जब समय आया तब दीक्षा लि और उसी तरह ग्रहण की हुई दीक्षा से समय आने पर मोक्ष को प्राप्त हुऐ, क्योकि तुम्हारे जैसे पुरुषोको तो वह गाव जैसा मोक्ष नजदीक होनेसे

प्राप्त करना सरल है। दूसरे भी अजितनाथ से लेकर श्रेयांसनाथ तक के सभी तीर्थकरो ने पिता के वचन मानकर विवाह करके और इस पृथ्वी पर राज्य करके मोक्ष साध्य किया है। उसी तरह पूर्वजों का अनुकरण करे।”

इस प्रकार के पिता के वचनों को सुनकर वासुपूज्य कुमार ने नम्रता से कहा—हे पिताजी ! वे सभी पूर्वजों के चरित्रोंको मैं जानता हूँ, लेकिन इस संसार के मार्ग में, अपने कुल या दूसरे के कुल में एक दूसरे सट्टापन किसीसे भी परिवर्तन द्वारा नहीं करा सकते हैं। जिन तीर्थकरो ने विवाहादिक किया है उन्होंने भोग फलवाले सविशेष कर्म थे। जिससे तीनज्ञान को धारण करनेवाले वे महात्माओं ने भोग भोगकर उनके कर्मों को समाप्त किये थे। लेकिन मेरा तो भोगफल कर्म कुछ भी अवशेष नहीं है जिससे मेरे मोक्ष में विघ्नरूप बने, इसलिए आप मुझे तो दीक्षा लेने की आज्ञा देने योग्य हैं। और भी मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ ये तीनों भावी तीर्थकर भी विवाह तथा राज्यभार का अंगीकार किये बिना ही मुक्ति के लिये दीक्षा ग्रहण करेंगे। चरम तीर्थकर श्री वीरभगवान अपने भोग्य कर्म का भाग शेष होने से वे विवाह करेंगे, लेकिन वे भी राज्य किये बिना ही दीक्षा लेकर सिद्धि को प्राप्त करेंगे। इसलिए कर्म की विचित्रता के कारण तीर्थकरो को भी एक ही मार्ग नहीं है, इस प्रकार विचार करके मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे और प्रेम के कारण कायर न बने।”

इस तरह अपने मातापिता को समझाकर, जन्म के बाद में अठ्ठाहर लाख वर्ष बाद दीक्षा लेने के लिये उत्सुक हुए। तत्काल आसन कंपन से प्रभु के दीक्षा अवसर का समय जानकर लोकांतिक देवता ब्रह्मदेवलोक में से आये। उन्होंने प्रभु को प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करके ‘हे स्वामी ! तीर्थ को प्रवृत्त करे’ ऐसा कहकर। वे अपने देवलोक में गये। बाद में अनुग्रह करने में तत्पर ऐसे प्रभु ने वार्षिकदान दिया। वह दान देने के बाद वर्षाऋतु के अंत में प्रजा जिस तरह इंद्रोत्सव करती है उस तरह इंद्रो ने आकर प्रभु का दीक्षाभिषेक का महोत्सव किया। बाद में सुर-असुरों ने रची हुई और सिंहासन से सुशोभित ऐसी पृथ्वी नाम की शिबिका पर प्रभु बैठे। उसमें रहे हुए पादपीठ पर अपने चरणों को रखकर मणिमय सिंहासन पर रहे हुए प्रभु सुवर्ण कमल पर राजहंस की तरह शोभा देने लगे। कुछ लोग आगे अपने शस्त्रों को उछालते, कुछ दिव्य छत्र हाथ में रखकर, कुछ चामर धारण करके, कुछ पंखों को अपने पास रखकर, कुछ सुगंध के पात्र लेकर, कुछ पुष्पों की मालाएँ अपने पास रखते हुए ऐसे अनेक इंद्रो से प्रवृत्त तथा देव असुर और मनुष्यों के साथ जगत्पति विहारग्रह नाम के उपवन में आये।

उस उपवन में आम्र अंकुरों के स्वाद द्वारा हर्षित मधुर शब्दोंवाली कोकिला भक्ति के उत्कर्ष से मानो प्रभु की स्तुति करती हो, पवन के झोंकों से गिर पड़े पुष्पों के गुच्छों के बहानों से नवीन अशोकवृक्षों ने मानो प्रभु के आगमन में अर्घ्य देते हो ऐसा लग रहा था, चमेली और आसोपालव के पुष्पों से झरते ऐसे मकरंदरस के मिष (बहाने) से देवताओं मानो प्रभु के चरणों को धोने के लिये पाद्यजल देते हो, चारोली के पुष्पों में से निकलते मधुर रस के पान से उन्मत्त बने भ्रमरीयों का समूह मानो प्रभु के पास मांगलिक गान करते हो, प्रफुल्लित पुष्पों के अत्यंत भार से जिनके मस्तक झुके हैं ऐसे कर्णिकर के वृक्ष मानो अधिक झुककर नमस्कार करते हो और पुष्पों के आभूषणों से रमणीक उसी तरह पल्लवरूपी

हाथों को हिलाती वासंती लताएँ प्रभु के सामने मानो नृत्य का आरंभ किया हो उसी तरह वृक्षों ने तथा लताएँ विशेष शोभा बढ़ाते वासुपूज्य भगवान मानो दुसरे वसंतराज हो उस तरह वे उस उद्यान में प्रवेश किया। बाद में प्रभु शिबिका ऊपर से नीचे उतरकर फाल्गुन मास में वृक्षों जिस तरह अपने पत्तों को त्याग देते हैं उस तरह पुष्पमाला तथा आभूषणों का त्याग कर दिया। बाद में इंद्र ने कंधे पर रखे हुए देवदुष्य वस्त्रों को धारण किया ऐसे वह प्रभु ने चतुर्थ तप करके पंचमुष्टि से लोचपूर्वक फाल्गुन मास की अमावस्या के दिन वरुण (शतभिषा) नक्षत्र के दिन अपराह्न काल में छ सौ राजाओं के साथ दीक्षा ली। बाद में सुर-असुर और मनुष्यों के अधिपति जगत के गुरु ऐसे प्रभु को नमस्कार करके, सायंकाल में याचक अपने-अपने स्थान पर वापस लौटते हैं उसी प्रकार अपने-अपने स्थानों पर गये। दूसरे दिन महापुर नगर में सुनंद राजा के घर प्रभु ने परम अन्न से पारणा किया। उस समय देवताओं ने वसुधारादिक पांच दिव्य प्रगट किये। और सुनंद ने प्रभु के चरणों की जगह पर एक रत्नमय पीठ बनवाई। वहाँ से प्रभु अनेक गाव, आकर और नगर वगैरेह स्थानों में पवन की तरह अप्रतिबद्ध विहार करने में प्रवृत्त हुए।

द्विपुष्ट वासुदेव का दृष्टांत

अब पृथ्वीपुर नगर में राजाओं का शिरोमणि पवनवेग नाम का राजा राज्य करता था। उसने पृथ्वी पर बहुत वर्षों तक निर्विघ्न राज्य किया। योग्य अवसर पर वह राजा श्रवणसिंह नाम के मुनि के पास व्रत लेकर कठिन तपश्चर्या करके मृत्यु प्राप्त करके अनुत्तर विमान में देव हुआ।

इस जंबूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में सर्व संपत्तियों से अवंध्य ऐसा विंध्यपुर नाम का नगर था। उसमें विंध्याद्रि जैसा बलवान, शत्रुरुपी तिनके को उड़ाने में महावायु जैसा और सभी राजाओं में केशरीसिंह समान विंध्यशक्ति नाम का राजा था। क्रूर ग्रहों की तरह उस राजा के दो भुजदंड जब आपस में टकराते थे तब अन्य राजा क्षोभ कर लेते थे। भुकुटी भंग से भयंकर और अत्यंत लालनेत्रों से मानो निगल जायेगा ऐसे उस राजा को शत्रु सिर्फ पलायन होते ही दिखते थे। अपने को जीने की इच्छा से शत्रु भी उसका आश्रय लेते थे। 'धन देकर भी प्राण बचाते' इस नीति से उसको बड़ा दंड देते थे। एक समय शक्रेंद्र जिस तरह धर्म सभा में बैठते हैं उसी तरह सभी सामंत तथा अमात्य वगैरेह परिवार से भरे हुए राजा सभा में बैठा था उसी क्षण द्वारपाल ने एक पुरुष के साथ सभा में आगमन किया। राजा को नमस्कार करके बैठकर वह धीरे-धीरे कहने लगा—

“हे देव ! आप जानते ही होंगे कि इस दक्षिण भरतार्द्ध में लक्ष्मी के भंडारतुल्य साकेत नाम का एक बड़ा नगर है। वहाँ सैन्यसमृद्धि से मानो चक्रवर्ती सेनापति हो ऐसा पर्वत नाम का एक बड़ी भुजाओवाला राजा है। उसके पास अपने स्वरूप से उर्वशी और रंभा का पराभव करनेवाली और कामदेव के धनरूपी गुणमंजरी नाम की वेश्या है। उस सुंदरी के मुख रचना करते हुए शेष रहे परमाणुओं से ही विधाता ने पूर्णिमा का चांद बनाया होगा ऐसा आपने कभी सुना है ?” इस तरह पुछने के लिये ही मानो उसके नेत्र कान तक चौड़े हो गये हो ! ऐसा जान पड़ता है, अर्थात् उनकी नेत्र कानतक लंबे हैं उसके सीने पर ऐसे विशाल और मनोहर स्तनों को रचा गया है जिसकी उपमा वे स्वयं ही हैं, दूसरी कोई उपमा देना योग्य नहीं है। उसका मध्यभाग ऐसा नरम हो गया है किय मानो नित्य सहवास से

उत्पन्न हुऐ स्नेह से स्तनरूपी कुंभ अपनी विशालता दिखाते हो ऐसा जान पड़ता है । उसके हाथ पैर कमल के जैसे कोमल हैं, और उसमें रही हुई राग की संपत्ति से वह कंकेलि वृक्ष के पल्लवों का अनुकरण करती है । वह सुंदर रमणी गान में कोकिल जैसी है, नृत्य में उर्वशी तुल्य है और मधुरवीणा बजाने में तुंबरु गंधर्व की मानो सहोदर हो ऐसी है । हे महाराज ! नारीयों में रत्नरूप वह वारांगना तो आप महाराज के पास होनी चाहिए, इसलिए सुवर्ण और मणि जैसे आप दोनों का उचित योग बनता है । जैसे बिना नमक का भोजन, नेत्र बिना का मुख और चंद्र बिना की रात्रि इस तरह वह सुंदर वेश्या के बिना आपका सुना राज्य है” ऐसे उस सेवक के वचन सुनकर विंध्यशक्ति राजा ने गुणमंजरी वेश्या की याचना करने के लिये पर्वत राजा के पास दूतरूप में अपने एक मंत्री को भेजा ।

मानो वेगगति से आकाश में तैरता हो ऐसा गतिवाहनों से वह मंत्री स्वल्प काल में साकेतपुर नगर जा पहुँचा और पर्वत राजा की सभा में जाकर कहने लगा—“राजा विंध्यशक्ति आप से अलग नहीं है और आप उनसे अलग नहीं है । समुद्र और तरंगित जल की तरह आप दोनों राजाओं में कोई भेद नहीं है । आप दोनों की आत्मा एक है, सिर्फ शरीर अलग है, जो उनका है वह आपका है और जो आपका है वह उनका है । आपके पास गुणमंजरी नाम की सुंदर वेश्या है ऐसा सुनने में आया है, उसे हमारे राजा विंध्यशक्ति कौतुक के लिये अपने पास मंगवा रहे हैं । जिससे तुम्हारे बंधु और तुम्हारे जैसे राजा की मांग करने से वह वेश्या दे, क्योंकि वेश्यास्त्रियों को देने में और ग्रहण करने में कोई निंदनीय कार्य नहीं है” इस प्रकार से मंत्री के वचन सुनकर यष्टि द्वारा स्पर्श किये सर्प की तरह क्रोध से अपने होठ कंपन करते हुऐ पर्वतराजा बोला—“अरे सेवक ! वह दुष्ट हृदयवाला विंध्यशक्ति राजा मेरा बंधु है यह तुम कैसे कह सकते हो ? क्योंकि मेरे प्राणों से भी प्यारी ऐसी गुणमंजरी की मेरे पास याचना करता है । जिसके बिना मैं एक मुर्त मात्र भी रहने के लिये असमर्थ हूँ उसे वह ग्रहण करने की इच्छा करनेवाला तेरे राजाने मेरे प्राण लेने की इच्छा की है । एक दासी को भी मैं नहीं देनेवाला उसे गुणमंजरी किस तरह से दूंगा ? इसलिए विंध्यशक्ति राजा अपनी शक्ति से मेरा मित्र होता हो या शत्रु हो । अरे मंत्री ! तुम उठकर जल्दी चले जाओ । तुम्हारे राजा से इस प्रकार का यथार्थ कथन कहना, क्योंकि दूत यथार्थ कहनेवाले होते हैं ।

पर्वतराजा के ऐसे वचन सुनते ही तिरछे नेत्र करता हुआ मंत्री उठ खड़ा हो गया और वाहन से तुरंत विंध्यशक्ति राजा के पास पहुँचकर उसने पूरा वृत्तांत सुनाया । ये सुनकर आहुति के होम में जिस तरह अग्नि प्रदीप्त होती है उस तरह वह क्रोध से प्रज्वलित हुआ । उसके बाद समुद्र की तरह मर्यादा छोड़कर लंबे समय की मित्रता छोड़कर गर्व के पर्वत जैसा विंध्यशक्ति राजा पर्वत राजा के ऊपर सैन्य लेकर चला । यह समाचार सुनकर पर्वतराज भी सैन्य वाहन साथ सन्मुख आया । शूरवीर पुरुष मित्र के और शत्रु के दोनों के सामने आते हैं । लंबे समय से प्रचंड भुजाओं पर आ रही खुजली मिटाने के लिये औषधरूपी जैसा महायुद्ध अग्र सैनिकों के बीच में हुआ । सामने-सामने लड़ाई करते हाथियों की तरह दोनों सैन्य के सैनिक परस्पर सामने आ रहे थे और पीछे हट रहे थे । भाले की नोक से बिंध जाता था लेकिन फिर भी वह हुंकार करता हुआ कोई भी वीर पुरुष धागे में मणि की तरह पिरोया हुआ शोभा

देता शत्रु के सामने आ जाता था। कुशल धनुषधारीयों ने घाटिले बाणों के मार द्वारा सैनिक बिना की हुई युद्धभूमि, मानो धान की कटाई के बाद अरण्य जैसी भूमि लग रही थी। सर्पों की तरह मानो दुसरो के प्राण को हर लेनेवाले परिघ, शल्य, गदा और मुदगल वगैरेह पडने से सभी दिशाएँ व्याप रही थी और शुक्ल और कृष्णपक्ष के चंद्रिका के तेज की तरह दोनो सैन्य का क्षण-क्षण मे बराबर जय पराजय हो रहा था।

तत्पश्चात पर्वतराजा पूर्ण बल से हाथ मे धनुष्य लेकर, रथ पर चढकर युद्ध के लिये रणभूमि मे आया। उस समय सैन्य ने उखाड डाली हुई पृथ्वी के रजकण धूल से मानो पूरा अंतरीक्ष ढक जायेगा उस तरह से एक साथ बाणवृष्टि से उसने शत्रु के सैन्य को पूरा ढक दिया, थोडी देर मे जिसका वेग रोक नहीं सकते ऐसे पर्वतराजा ने बलवान पवन की तरह वृक्षो का भंग करता है उस तरह विंध्यशक्ति के सैन्य को नष्ट कर दिया। अपने सैन्य का भंग देखकर क्रोधित महाभुज विंध्यशक्ति राजा मानो कालरात्रि का अनुज (छोटा) बंधु हो उस तरह शत्रुओं का संहार करने के लिये तैयार हुआ। उसे आते हुए देखकर मृग जिस तरह सिंह को, सर्प जिस तरह गरुड को, सहन नहीं कर सकते है उस तरह पर्वत राजा के सैनिक उसे सहन नहीं कर सके। बाद मे धनुष्य और प्रचंड भुजा के बल से गर्वित विंध्यशक्ति राजा ने जिसकी सेना का पराभव हुआ है ऐसे पर्वतराजा को अपने सामने रणभूमि मे बुलाया बाद मे नाराच और अर्द्धचंद्र बाणों से परस्पर वध करने की इच्छा करनेवाले दोनो राजाओ के बीच बडा युद्ध हुआ। रथ पर चढे हुए वे दोनो राजाओ ने एक दूसरे के रथ, रथ के घोडे और सारथि का मेघ की तरह मन्थन कर डाला। बाद मे दुसरे रथो पर बैठकर कल्पांत काल मे पर्वतो की तरह उन्होंने फिर से युद्ध करना शुरु किया। थोडी देर में विंध्यशक्ति ने अपनी शक्ति से पर्वतराजा को विष रहीत सर्प की तरह करके उसे अस्त्र और वीर्यहीन कर दिया। बडे हाथी से छोटे हाथी के बच्चों की तरह विंध्यशक्ति राजा परास्त पर्वतराजा पिछे देखे बिना ही वह वहाँ से भाग खडा हुआ। विंध्यशक्ति ने पर्वत के नगर मे प्रवेश करके गुणमंजरी वेश्या और दूसरे हाथी वगैरेह सर्वस्व ले लिया। कहा गया है कि जिसका पराक्रम उसकी लक्ष्मी है। बाद मे पूर्ण हुऐ मेघ की तरह रणसागर मे से निवृत्त होकर कृतार्थ हुआ विंध्यशक्ति राजा अपने विंध्यपुर मे आया। लंबी छलांग से भूले सिंहकी तरह और उछलकूद से भूले वानर की तरह रण से भागा और टूटा हुआ पर्वतराजा उस समय से काफी कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा था। अंत मे उसके पराभव से लज्जित उसने संभवाचार्य के पास से दीक्षा ली। दुःख से तप्त ऐसे महातप करते हुए उन्होंने ऐसा सोचकर संकल्प किया की “ आनेवाले भव मे मैं विंध्यशक्ति का वध करनेवाला हो जाऊँ” जिस तरह छिलके लेकर माणिक्य जैसा रत्न बेचता है उसी तरह उसने बडे तप करके ऐसा संकल्प करके अगले जन्म के लिये ऐसा संकल्प निश्चय बेच दिया। अंत मे अनशन करके मृत्यु को प्राप्त होकर वह प्राणत देवलोक मे देव हुआ। राजा विंध्यशक्ति भी चिरकाल भव में भ्रमण करके एक भव म जिनलिंग को (दीक्षा को) धारण कर मृत्यु को प्राप्त करके देवलोक मे गये।

वहाँ से च्यवनकर विंध्यशक्ति का जीव विजयपुर मे श्रीधर राजा की श्रीमती नाम की रानी के कोख से तारक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह सत्तर धनुष्य की कायावाला काजल जैसा श्याम वर्णवाला,

बहत्तर लाख वर्ष की आयुष्यवाला और भुजबलवाला हुआ। अंत में उसने चक्र प्राप्त करके भरतार्द्ध को साध्य कर लिया। क्योंकि प्रतिवासुदेव भरतार्द्ध के स्वामी बन जाते हैं।

इस तरफ सौराष्ट्र देश का मुखमंडन द्वारका नाम की नगरी थी। उसका सुंदर एक दुर्ग की पश्चिमी समुद्र की लहरों से निरंतर उसकी धुलाई होती थी। उस नगर में सर्व जगत के उल्टे कर्मों का निवारण करनेवाला और बड़ा पराक्रमी माने वासुदेव से स्पर्धा करता हो ऐसा ब्रह्म नाम का एक राजा था। लवणसमुद्र में जैसे गंगा, सिंधु उसी तरह उसके अंतःपुर में प्रधान ऐसी सुभद्रा और उमा नाम की दो रानीयां थीं। कामदेव जिस तरह रति और प्रीति के साथ विषयसुख भोगते हैं उसी तरह वह दोनों रानीयों के साथ ब्रह्मराजा चिरकाल तक विषयसुख भोग रहा था।

ऐसे समय में पवन वेग का जीव की तेजगति से जीव अनुत्तर विमान से च्यवनकर, महादेवी सुभद्रा की कोख में अवतरित हुआ। सुख से सो रहे सुभद्रादेवी ने बलदेव जन्म के सूचक चार महास्वप्न देखे। समय आने पर कमल की तरह गंगा और चंद्र की तरह पूर्व दिशा में प्रकाश फैलता है वैसे स्फटिकमणि के जैसा निर्मल कुमार को उन्होंने जन्म दिया। बंदीवानों को कारागृह से मुक्त करने के सुकृत्यों से जगत का परम हर्ष देनेवाले ऐसे ब्रह्मराजा ने पुत्र का विजय ऐसा नाम रखा। अलग-अलग कार्यों के लिये नियुक्त पांच धात्रीमाताओं से लालन-पालन किये हुए वे कुमार शरीर की शोभा के साथ वयोवृद्धि को प्राप्त हुआ। कान में सुवर्ण के चपल कुंडल, कंठ में नाभि तक लंबा रत्नो का हार, कटिभाग पर सुवर्ण की कटारी और कनक की कटिमेखला, पैरों में बजनेवाली घूंघरु की माला, मस्तक पर कानशीआ को धारण करता हुआ वह कुमार सभी को हर्षित कर रहा था।

अब प्राणत देवलोक से च्यवनकर पर्वतराजा का जीव, सरसी (छोटा तालाब) में हंसनी की तरह उमादेवी की कुक्षी में अवतरित हुआ। सुख से सो रहे उमादेवी ने वासुदेव के जन्म के सूचक सात महास्वप्न मुख में प्रवेश करते हुए देखा। अनुक्रम में नौ माँस और साढ़े सात दिन की गर्भस्थिति पूर्ण होने पर, वर्षा ऋतु जिस तरह पूर्ण मेघ को जन्म देती है वैसे उसने श्यामवर्णवाले कुमार को जन्म दिया। कुमार के जन्म से मानो परब्रह्म में निमग्न हो गये हो ऐसे ब्रह्मराजा ने याचकों को प्रसन्न करने लायक जन्मोत्सव मनाया। शुभ ग्रह, नक्षत्र, तिथि, वार के दिन कुमार का द्विपृष्ठ ऐसा यथार्थ नाम रखा। तापसों की स्त्रियां अपने आंगन में उगे हुए कंकोलि के वृक्ष का जैसे लालन-पालन करती हैं उस तरह पांच धात्रीयों ने अलग-अलग कार्योंद्वारा उनका पालन करने लगी। स्वेच्छा से उछलते और दौड़ते उस चंचल बालक को, पारे की तरह हाथ से पकड़ कर नहीं रख सकती थी। पिता, माता और ज्येष्ठ बंधु जिन्हें हर्ष से अपना अंतर स्नेह दिखाते थे ऐसे वे दूसरे वासुदेव प्रतिदिन बढ़ने लगे। मानो छहवीं धात्रीमाता हो वैसे विजयकुमार उस कुमार को अत्यंत स्नेह से कमर पर, हृदय पर, पृष्ठभाग पर, स्कंधपर, बारंबार बैठाते थे। द्विपृष्ठकुमार भी स्नेहरूपी कामण से विजय कुमार का अनुकरण से खड़े रहते, चलते, सोते, बैठते, भोजन और पानी भी पीते थे। जब समय आया तो पिताके अलंघ्य शासन से उन्होंने केवल विद्यागुरु के निमित्तरूप करके लीलामात्र से सभी कलाएँ सीख लीं। जिनका मध्य (हृदय का आशय) जानने में नहीं आता है ऐसे उज्ज्वल और श्याम वर्णवाले वे दोनों सहोदर माने

मूर्तिमान क्षीरसागर और लावण्यसागर हो ऐसे प्रतित हो रहे थे । नीले और पीले वस्त्रों को धारण करनेवाले ताड और गरुड के चिन्हवाले वे दोनो बालक थे फिर भी तारक प्रतिवासुदेव की आज्ञा को वे तनिक भी नहीं मानते थे ।

उनकी आज्ञा का अतिक्रम, भुजवीर्य और अधृष्यपन वगैरेह देखकर उनके बातमीदारो ने जाकर तारक को इस प्रकार कहा—“हे देव ! द्वारकामे ब्रह्मराजा के घर साथ मे मिले वायु और अग्नि के जैसे दो अतिदुर्मद कुमार उत्पन्न हुऐ है । वे आपकी आज्ञा को नहीं मानते है, सर्व शास्त्रों मे कुशलता और विद्याकी सिद्धियो ने भी उनके भुजदंडो के बलवान बनाया है जिनका उन्हे अहंकार हो गया है । जिससे हे देव ! आपके संबंध मे यह शुभ नहीं हो रहा है ऐसा दिखवाई दे रहा है, इसलिए आपको जैसे योग्य लगे वैसा करे, “हम तो आपके सेवक है” ऐसे वचनो को सुनकर तारकराजा नेत्रकोप से चपल होकर नेत्र फडफडाने लगे । तुरंत ही बडे पराक्रमी अपने सेनापति को बुलाकर उन्होंने आज्ञा दि की—“अरे सेनापति ! इसी पल सभी तरह सज्ज हो जाइये और सामंत राजाओं को बुलाने के लिये दूतिकारुप भंभा को बजाइये । क्योंकि वक्र बुद्धिवाले उस ब्रह्मराजा को उसके पुत्रो सहित उसका वध करना है, उपेक्षा किया हुआ शत्रु व्याधि की (दुःख की) तरह परिणाम मे वह विषरुप हो जाता है ।”

राजा की आज्ञा सुनकर मंत्री ने कहा—“हे महाराज ! इस बारे मे अच्छी तरह से आप विचार करे, आज तक ब्रह्मराजा तुम्हारे एक पतिरुप सामंत राजा बनकर रहा है बर्ताव किया है, कोई भी उचित कारण बिना उस पर चढाई करना यह योग्य नहीं है । क्योंकि ऐसा करने से दुसरे अमात्यो को भी शंका उत्पन्न होगी । जब शंका हुई तो ऐसे शंकशील लोगो का विश्वास नहीं रख सकते है । विश्वास बिना उसके विचार या हुकुम क्या काम के ? और जब विचार और हुकुम व्यर्थ हो जाते है तो फिर स्वामीपन भी क्या काम का है ? इससे कुछ भी करके उससे गलत करवा के अपराध का उस पर आरोप करे । इस अपने दो कुमारो के बल से गर्वित उस राजा पर अपराध लगाना आसान होगा, इसलिए एक संदेशा लेकर जानेवाले सेवक को भेजकर उसके प्राणों से भी प्यारे हाथी घोडे और रत्नो इत्यादि कि मांग करे । जो यदि आपको नहीं देता है तो उस पर यह आरोप लगाकर अपराधी का वध कर डाले, क्योंकि अपराधी के ऊपर निग्रह करनेवाले पर लोकोपवाद नहीं आता है । यदि कभी अपनी मांगो के अनुसार उसने यदि दे दिया तो दुसरे छल के बारे मे सोचेंगे, जब छल दूंदते है तो सभी अपराधी नजर आते है ।”

इस प्रकार के मंत्री का विचार सुनकर राजा ने उसे शाबाशी दि और बाद मे एक सेवक को एकांत मे बुलाकर और समझाकर ब्रह्मराजा के पास भेजा, तत्काल वह दूत द्वारकानगरी मे विजय और द्विपृष्ठकुमार के साथ सभा मे बैठे ब्रह्मराजा के पास पहुँचा । राजाने उसे मान से बैठाया, चिरकाल तक प्रेमसहित बुलाकर आने का काश्फा पुछा । दूतने कहा—हे द्वारकापति ! शत्रुओं के बाहुगर्व का हरण करनेवाले अपने स्वामि तारकराजा आपको आज्ञा कर रहा है कि तुम्हारे राज्य के उत्तम हाथी, घोडे और रत्न जो कुछ हो उसे हमारे यहाँ भेज दीजिये क्योंकि इस दक्षिण भरतार्द्ध मे जो कुछ उत्तम वस्तु हो वह भरतार्द्ध के अधिपति ऐसा मे मेरे भोग्य है, दुसरे के लिये नहीं” ऐसे दूत के वचन से केशरीसिंह

की तरह क्रोधित द्विपृष्ठकुमार, मानो नेत्रों से उसका हनन करने की इच्छा करता हो उस तरह उसे ललकार ने लगा—“अरे दूत ! तुम्हारा स्वामी तारक राजा क्या हमारे वंश का बुजुर्ग नहीं है । उसी तरह हमारा रक्षक या दाता नहीं है इसलिए अपना राज्य करनेवाला वह हमारा स्वामी कैसे हो सकता है ? जिस तरह वह भुजा के पराक्रम से वह हमारे पाससे घोड़े वगैरेह मांग रहा है उसी तरह हमभी अपने भुजा के पराक्रम से वह हमारे पास से घोड़े वगैरेह मांग रहे हैं, इसलिए हे दूत ! तुम चले जाओ और तुम्हारे स्वामी के मस्तक के साथ हाथी घोड़े लेने के लिये हम अभी वही आ रहे हैं ऐसा समजना” द्विपृष्ठकुमार की ऐसी उत्कृष्टवाणी और कटु वाणी सुनकर मन मे अत्यंत रोष भरा वह दूत तुरंत जाकर तारकराजा को पूरा वृत्तांत सुना दिया । मदवाले हाथी की तरह गंध से दुसरे मदगंधी राजा की तरह दूत की वाणी सुनकर तत्काल सेना, सेनापति, सामंत, मंत्री, मुकुटधारी राजा, महारथी सैनिक और जिनके भुजदंड पर वीर्य की खुजली आ रही है ऐसे तथा लंबे समय से युद्ध करने के लिये उत्सुक हुए और मानो यमराज के बंधुगण हो ऐसे वीर पुरुष राजा के नजदीक आकर खड़े हो गये । उस समय धरती कंपन, विद्युतपात और कौओं के कोलाहल से अशुभ परिणाम सूचक चिन्ह दिखाई देने लगे, फिर भी राजाने प्रयाण किया । क्रोध से धमधम प्रतिवासुदेव ने अविच्छिन्न प्रयाणों से दीर्घ मार्ग का आधा भाग लांघ गया ।

इस और ब्रह्मराजा, विजयकुमार और सेना साथ मे लेकर युद्ध करने के लिये उत्कंठित द्विपृष्ठकुमार केशरीसिंह की तरह वह पहले से ही आगे आया । अंग के उच्छ्वास से जिनके बख्तरोकी जालीयां टूट जाती हैं । ऐसी दोनों सेना के सैनिक जैसे-तैसे बख्तर पहने हैं । बाद मे बड़े संहार के कारण स्वरूप उन दोनों सेना मे ऐसा घमसान युद्ध चला जिससे रणभूमि मृत्यु के भोजन की भोजनशाला जैसी दिखाई देने लगी । दोनों ओर लाखो मुकुट और छत्र गिरे पड़े थे । जिससे गिरे हुए योद्धाओं की गिनती असम्भव सी लग रही थी । छत्रो से श्वेत कमलवाली और रक्त से रंजित जल से भरी रणभूमि यमराज की मानो क्रीडा वापिका जैसी दिखाई देने लगी । बाद मे द्विपृष्ठकुमार और विजय रथ पर बैठकर, जिसकी ध्वनि युद्ध मे विजय को बुलाने के लिये मंत्रतुल्य था ऐसा पांचजन्य नाम का शंख फूँका । सिंहनाद से मृगों की तरह और मेघनाद से राजहंसो की तरह पांचजन्य नाद से तारक के सैनिक त्रस्त हो गये । अपने सैनिकों को त्रस्त देखकर तारकराजा उन्हें लज्जित करके, भय से निवृत्त करके, स्वयं रथ पर चढ़कर द्विपृष्ठकुमार के सामने आया । उसे आता हुआ देखकर हल के आयुध को धारण करनेवाला विजयकुमार अपना हल सज्ज करके इंद्र ऋजुरोहित नाम का धनुष्य चढाता है उसी तरह द्विपृष्ठने शार्ङ्ग धनुष्य चढाया उसके बाद तारक ने भी धनुष्य पर प्रत्यंचा चढाकर मृत्यु की खडी हुई तर्जनी उंगली हो ऐसे एक बाण को तरक्व मे से खींचकर उसके साथ जोडा और वासुदेव के ऊपर छोडा तब वासुदेव ने उसे आता देखकर उसके बाण को छेद डाला । इस प्रकार से कई बार दोनों ओर से बाणो का मोक्ष और छेद हुआ । उसके बाद गदा, मुद्गल, दंड इत्यादि दुसरे आयुधो से तारक राजा ने भेजे वे सभी वासुदेव ने प्रति अस्त्रों से उन्हें भंग कर दिया । उसके बाद संग्रामरुपी समुद्र के क्रूर जुड (हथियार) जैसे तारक राजाने हाथ मे ग्रहण किया और कोप तथा हास्य से होठ कंपित करके

द्विपृष्ठकुमार के प्रति वह बोला—“अरे बालक ! तुम दुर्विनीत हो तथा मेरे लंबेकाल तक के सेवक के पुत्र हो और बाल्यावस्थावाला है, इससे अनुकंपा द्वारा मैं तुम्हारा हनन नहीं करना चाहता हूँ।” यह सुनकर विजयकुमार के अनुज (छोटा) बंधु द्विपृष्ठकुमारने हास्य के साथ कहा—“अरे मुख जिसके हाथ में शार्ङ्ग धनुष्य है उसके ऊपर ऐसी अनुकंपा करते लज्जित क्यों नहीं होता है ? देखो तुम मेरे शत्रु हो तथापि तुम्हारे पर क्षमा करता हूँ कारण जो जरावस्था में जिसका मृत्यु नजदीक हो ऐसे तुम्हारे पर मरे हुए को मारने जैसा कौन करेगा ? तुम गर्व से मुक्त हो जाओ ?” ऐसे द्विपृष्ठके वचन से जल द्वारा गरम हुवा तेल में से अग्नि ज्यो प्रदिप्त हुआ, (असता रहे) जाज्वल्यमान चक्र को आकाश में घूमाकर द्विपृष्ठके ऊपर छोड़ दिया। उस चक्र के अग्रभाग के प्रहार से वासुदेवके हृदय साथ टकराया, उस समय वह चक्र रूपांतर हुऐ कौस्तुभ मणिकी शोभा को धारण किया। उसके प्रहार से क्षणभर के लिये मुर्छित होकर द्विपृष्ठकुमार रथ पर से गिर गये। उस समय पास में खड़े विजयकुमार ने अपने वस्त्र के छोर से पंखा झुलने लगे। क्षणभर में होश में आनेपर वासुदेव के पास पड़े शत्रुके चक्र को, छिने हुऐ मंत्री की तरह, ग्रहण करके तारक को इस प्रकार से कहा—“हे तारक ! यह चक्र तुम्हारे सर्व अस्त्रों का एक सर्वस्व था। उसकी शक्ति तुमने देख ली, तो अब तुम जान लेकर यहाँ से चले जाओ, क्योंकि जिंदा नर फिर से चीज प्राप्त कर लेता है।” तारकने कहा-वह चक्र मैंने छोड़ दिया है तो उस जैसे मिट्टी के ढेले को हाथ में लेकर तु क्या भौंक रहा है ? उसे मेरे पर छोड़ दे, मैं उसके कच्ची मिट्टी के ढेले की तरह मुष्टि से तोड़कर उसे चूरचूर कर दूंगा।” वासुदेव उसके ऐसे गर्वित वचन सुनकर घूमते हुऐ सूर्य के भ्रमसा दिखनेवाला और खेचरों को तस्त्र करनेवाला उसको घूमाकर प्रतिवासुदेव के ऊपर छोड़ा। उसने कमल के डंठल की भांति लीलामात्र से तारकराजा का मस्तक छेद डाला, वापस वह वासुदेव के हाथ में आकर स्थिर हो गया। उस समय द्विपृष्ठ के ऊपर आकाश में से पुष्पवृष्टि हुई और तारकराजा के अंतःपुर में स्त्रियों के नेत्रों से अश्रुजल की वृष्टि हुई।

तारक पक्ष के जो राजा थे उन्होंने वेतस नाम के वृक्ष की भांति जैसी वृत्ति धारण करके द्विपृष्ठ के पास आकर अपना आत्मरक्षण किया, क्योंकि शक्तिवान केपास यही उपाय योग्य है। इस चढाई के आरंभ से उत्तम शस्त्र साधनों को साथ लेकर उसने सर्व दक्षिण भरतार्द्ध को साध लिया। मागध, वरदाम और प्रभासतीर्थ के अधिपति देवताओं को उसने एक सामंत राजाओं की तरह लीलामात्र से जीत लिया। दिगयात्रा करके लौटते समय वे मगध देश में आये, वहाँ क्रोड पुरुष उठा सकते हैं ऐसी बड़ी शिला उनके देखने में आई। शत्रुओं के विपरीत ऐसे वासुदेव ने गजेन्द्र जैसे कमल को उठाता है उसी तरह लीलामात्र से शिला को वामभुजा द्वारा ललाट तक ऊपर उठा लिया। सर्व भुजाधारीओं में अग्रसर ऐसे विष्णु वापस आये। वहाँ ब्रह्मराजा और विजयकुमार ने और सभी राजाओं ने मिलकर द्विपृष्ठको सिंहासन पर बैठाकर अर्द्धचक्री का अभिषेक किया। उस समय में एक मास छद्मस्थ (गुप्तवास) में विहार करके तीनों लोक के नाथ पति वासुपूज्य प्रभु विहारगृह नाम के उद्यान में-जहाँ दीक्षा लिंथी उसी उद्यान में-आये। वहाँ पाटल (गुलाक्र) के वृक्ष नीचे रहे हुऐ प्रभु ने, शुक्लध्यान के दूसरे पाये पर बर्ताव करते हुऐ, प्रातःकाल में अंधकार का नाश होता है उसी तरह उनके घातीकर्म नाश हो गये,

इसलिए माघ मास की शुक्ल द्वितीया के दिन शतभिषा नक्षत्र में आने पर चतुर्थ तपवाले प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वहाँ देवोंने समवसरण रचा। उस दिव्य समवसरण में बैठकर प्रभुने देशना दि भगवंत के सुक्ष्म वगेरेह छासठ गणधर हुए। दूसरी पोरसी मुख्य गणधर ने पादपीठ पर बैठकर दूसरी देशना दि। उनके तीर्थ में हंस के वाहनवाला श्वेतवर्णी, दो दक्षिण भुजाओं में बिजोरु और बाण धारण करनेवाला वाम भुजा में नकुल और धनुष को धारण करनेवाला कुमार नाम का यक्ष वासुपूज्य प्रभु के शासन का अधिष्ठायक देव हुआ। उसी तरह श्यामवर्णी, अश्व के वाहनवाली, दो दक्षिण भुजा में वरद और शक्ति को धारण करनेवाली तथा दो वामभुजा में पुष्प और गदा को रखनेवाली चंद्रा नाम की निरंतर प्रभु के पास रहनेवाली शासन देवी बनी।

उन दोनों शासनदेवताओं से युक्त ऐसे वासुपूज्य भगवान विहार करते करते एकबार द्वारका के समीप की भूमि पर आकर रहें। वहाँ इंद्रादिक देवोंने आठसौ चालीस धनुष्य ऊँचे अशोक वृक्ष हैं ऐसा समवसरण रचा उसमें प्रवेश करके अशोक वृक्ष की प्रदक्षिणा करके “तीर्थाय नमः” ऐसा बोलते प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासनपर आरुढ़ हुए। प्रभु के प्रभाव से दूसरी तीन दिशाओं में प्रभु के जैसे ही उनके प्रतिबिंब देवताओं ने स्थापित किये। बाद में चतुर्विध संघ प्रथम गढ़ में योग्य स्थान पर बैठा, मध्य में तिर्यच बैठे, नीचे में सभी के वाहन रहे उस समय वहाँ उपस्थित राजपुरुषों ने प्रफुल्लित नेत्रों से जल्द वासुदेव के समीप जाकर प्रभु के समवसरण का समाचार दिया। द्विपृष्ठ ने बधाई देनेवाले पुरुषों को साठे बारा करोड़ सुवर्ण दिया। बाद में विजयकुमार के साथ स्वयं समवसरण में आये। वहाँ प्रभु की प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करके विजय बलभद्र के साथ इंद्र के पिछे बैठे। बाद में जगत्पति को बारंबार झुककर इंद्र, द्विपृष्ठ और विजयकुमार ने स्तुति आरंभ की—

“हे प्रभु ! इस संसार रूपी अति भयंकर सागर में एक तरफ़ी मोहरूपी दुर्दिन फैलता है। एक ओर आशारूपी नई-नई बेलाएँ (भरती) क्षणक्षण में हुआ करती हैं, एक तरफ़ बड़े मगरमच्छ जैसे दुर्चार कामदेव हैं, एक ओर प्रचंड और प्रतिकूल पवन के जैसे पापरूपी विषय प्रवृत्त हैं, एक ओर बड़े-बड़े आवर्त (भमरी) की तरह क्रोधादिक उग्र कसाय हुए हैं। एक ओर बड़ी चट्टानों की तरह जैसे उत्कृष्ट रागद्वेष रहे हैं, एक ओर बड़ी उर्मियों की जैसी विविध दुःखों की परंपराएँ हैं, एक ओर वडवानल की तरह आर्त तथा रौद्रका ध्यान हुआ करता है, एक ओर वैत्रवल्ली की जैसी स्खलन करनेवाली ममता रही हुई है, और एक ओर उद्धत नक्रों के समूह की तरह बहुतसी बिमारीयों आया करती हैं। इसलिए हे प्रभु ! ऐसे इस दारुण संसाररूपी सागर में भीतर गिरे हुए प्राणीयों का अब आप उद्धार करें। हे जगत्पति ! आपका केवलज्ञान और केवलदर्शन वृक्ष के पुष्प और फल की तरह दूसरों के उपकार के लिये ही है। आज मेरा जन्मवैभव कृतार्थ हुआ है, क्योंकि आपकी पूजा के महोत्सव करने का लाभ मुझे प्राप्त हुआ है।”

इस प्रकार से स्तुति करके इंद्र, वासुदेव और बलभद्र ने विराम लिया। उसके बाद श्री वासुपूज्य भगवान निम्नलिखित देशना देना आरंभ किया—

“इस संसाररूपी समुद्र में शमिला युग के संयोग की तरह जैसे तैसे मनुष्यरूप प्राप्त करके

जीवो को धर्मपरायण होना चाहिए। वह धर्म सभी उत्तम जिनेश्वरो ने कहा है कि जिस धर्म का अवलंबन करनेवाला प्राणी इस संसारसागर में डूबता नहीं है। वह धर्म संयम, सत्यवाणी, शौच (पवित्रता) ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रहता, तप, क्षमा, मृदुता, सरलता और निर्लोभता-ये दस प्रकार कहलाते हैं। कल्पवृक्ष वगैरेह पदार्थ भी धर्म के प्रभाव से ऐसी इच्छित वस्तु को देते हैं, जो अधर्मी की दृष्टि में आती नहीं है। हमेशा पास में रहनेवाले और अतिवात्सल्य को धारण करनेवाला ऐक धर्मरूपी बंधु अपार दुःख के सागर में गिरते हुए प्राणीयों को बचाता है। समुद्र पृथ्वी को डूबोता नहीं है और बरसात पृथ्वी को आश्वासन देता है, वह केवल धर्म का प्रभाव है, अग्नि गलत ढंग से जलाती नहीं है और पवन उल्टी गति में बहता नहीं है, वह भी धर्म का ही अचिंत्य महिमा है। आलंबन और आधार बिना की पृथ्वी जिन सबको आधार दे रही है उसमें धर्म के सिवा दुसरा कोई भी कारण नहीं है। धर्म के शासन से विश्व के उपकार के लिये सूर्य-चंद्र का इस जगत में उदय होता है, यह विश्वत्सल धर्म बंधु बिना का बंधु है, मित्र रहित पुरुषो का मित्र है, अनाथ पुरुषो का नाथ है, धर्म अधोलोक में रहनेवाले नर्क में गिरते प्राणीयों की रक्षा करता है और अंत में अनुपम सर्वज्ञ वैभव को भी धर्म ही देता है।

यह दस प्रकार का धर्म मिथ्यादृष्टि से तात्त्विक बिल्कुल देखा जाना नहीं और कभी किसीने कही भी कहा होगा तो वह केवलवाणी का नृत्य होगा। प्रायः सभी की वाणी में तत्त्वार्थ होता है और किसीके मन में तत्त्वार्थ होता है, लेकिन जिनमत को स्पर्श करनेवाले पुरुषो की वाणी में, मन में और क्रिया में सभी जगह तत्त्वार्थ होता है, वेदशास्त्र के पराधीन बुद्धिवाला और कंठ में सूत्र (जनोई) पहननेवाले ब्राह्मण तत्त्व से धर्मरत्न को लेशमात्र भी नहीं जानते हैं। गोमेघ, नरमेघ और अश्वमेघादिक यज्ञ करनेवाले प्राणीघातक याज्ञिक ब्राह्मणों को किस तरह से धर्म प्राप्त होता है ? जिसमें श्रद्धा न हो ऐसी अच्छी, परस्पर विरोधी ऐसी कल्पित वस्तु को कहनेवाले पुराणकर्ताओं में भी कहाँ धर्म होता है ? जूठी-जूठी व्यवस्थाओं द्वारा पर द्रव्य को ग्रहण करने के इच्छुक ऐसे स्मार्तादिक पुरुषो में मात्र मिट्टी और पानी द्वारा किस तरह से शौच (शुद्धि) होती है ? ऋतुकाल का व्यतीक्रम होने से स्त्रिसेवन नहीं करती है तो गर्भहत्या का पाप लगता है ऐसा कहनेवाले और ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले पुरुषो में धर्म किस प्रकार से संभव है ? यजमान के पाससे सर्वस्व लेने के इच्छुक और द्रव्य के लिये प्राणों का भी त्याग करनेवाले ब्राह्मणों में अकिंचन (निष्परिग्रह) कहाँ से होगा ? अल्पमात्र अपराध होने से क्षणमात्र में शाप देनेवाले ऐसे लौकिक ऋषियों में क्षमा लेशमात्र भी दिखाई नहीं देती है। जाति वगैरेह के मद से दुराचारण जिनके चित्त में नाचते रहते हैं ऐसे चौथे आश्रम में रहनेवाले (संन्यास) ब्राह्मणों में कोमलता (निराभिमानपन) कहाँ दिखाई देती है ? अंदर दंभ रखनेवाले और बाहर बगलाभक्त बनकर रहनेवाले पाखंडी व्रतवाले द्विजों में सरलता का एक लेश मात्र नहीं है, स्त्रि, गृह और पुत्रादिक के परिग्रहवाले और लोभ के कुलग्रहरूपी ब्राह्मणों की किस तरह मुक्ति होगी ? अथवा उसमें निर्लोभता धर्म कैसे संभव है ? इसलिये राग द्वेष और मोह से वर्जित तथा केवलज्ञान से शोभायमान अर्हत भगवंतो की उनके उज्ज्वल धर्म से निर्दोषता सिद्ध होती है। राग, द्वेष और मोह से मनुष्य में असत्यवादीपन आ जाता है, तो वह दोष अर्हत भगवंत में लेशमात्र भी नहीं है। तो किस तरह से उनमें असत्यवादीपन आ

सकता है ? जिनके चित्त रागादिक दोषों से कलुषित हुए हैं, उनके मुख से कभी भी सत्यवाणी निकल ही नहीं सकती है । जो याग होम वगैरेह इष्ट कर्म करते हैं, वापी, कूप और तालाब वगैरेह में नहाने से पुण्य समजते हैं, पशु की बलि देकर स्वर्ग का सुख दूँढते हैं, ब्राह्मणों को भोजन करवाके पितृओं को तृप्त करने की इच्छा रखते हैं, धृतयोनि वगैरेह का प्रायश्चित्त करता है, पांच प्रकार की आपत्तियों के आनेपर स्त्रियों को पुनर्लब्ध कराते हैं, यदि स्त्रि में पुत्र होने के संभावना हो तो उसमें क्षेत्रज्ञ पुत्र की उत्पत्ति करनी चाहिए ऐसा कहा गया है, दोषित स्त्रियां रज (अंतराय) आने पर शुद्ध होती हैं ऐसा मानते हैं, कल्याण की बुद्धि से यज्ञ में बकरे को मार कर उसके शिश्न से (लिंग से) आजिविका करते हैं, सौत्रामणि और सप्ततु यज्ञ में मदिरा पान करते हैं, विष्टा खानेवाली गायों का स्पर्श करके पवित्र हुए मानते हैं, जलादिक में मात्र स्नान करने से पाप की शुद्धि हो जाती है ऐसा कहा जाता है, बरगद, पीपल और इमली के पेड़ की पूजा करते हैं, अग्नि में होम के हव्य से देव तृप्त हुए ऐसा मानते हैं, पृथ्वी पर गाय के दोहन से रिष्ट की शांति होती है, ऐसा कहते हैं, स्त्रियों को मात्र विडंबना करे ऐसे धर्मव्रत का उपदेश करते हैं, बड़ी बड़ी जटाएँ, भस्म द्वारा अंगराग और लंगोट धारण करते हैं, आकड़ा, घंतूरा और मालूर के पुष्पों से देव को पूजते हैं, गीत, नृत्य करते हुए अपशब्द बोलते हैं । मुख बजाकर गीतनाद का आचरण करते हैं, असभ्य भाषापूर्वक देव, मुनि और लोगो का हनन करते हैं, व्रत का भंग करके दासी दासपन करने की इच्छा रखते हैं, अनंतकाय ऐसे कंदादि तथा फल, मूल और पत्तो का सेवन करते हैं, स्त्रि और पुत्रसहित जाकर वन में बसते हैं, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय और गम्य-अगम्य में समान रूप से बर्ताव करते हैं, योगी ऐसे नामों से प्रसिद्ध होते हैं और कुछ कौलाचार्य के शिष्य होते हैं, उन्हें और उसके अलावा दुसरो को भी जिनके चित्त में जैनशासन स्पर्श भी नहीं हुआ उन्हें धर्म क्या है ? उसका फल क्या है ? और उनके धर्म के प्रमाण भी क्या है ? श्री जिनेंद्रभाषित धर्म की आराधना से इस लोक में और परलोक में सुखकारी होती है वह तो उसका आनुषंगिक (अवतार) फल है, लेकिन उसका मुख्य फल तो मोक्ष ही है, जिस तरह कृषि करने का मुख्य हेतू धान की प्राप्ति है, उसमें घास वगैरेह जो होता है वह आनुषंगिक फल है” ।

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर काफी लोगो ने दीक्षा ग्रहण करली । द्विपृष्ठकुमार को समकित प्राप्त हुआ और बलभद्र ने श्रावकधर्म ग्रहण किया । प्रथम पोरसी पूर्ण होने पर प्रभु ने देशना समाप्त की, उसके बाद सुक्ष्म नाम के गणधर ने दुसरी पोरसी तक देशना दी, बादमें प्रभु उस स्थान से अन्यत्र विहार किया और इन्द्र, उपेन्द्र (वासुदेव) तथा बलभद्र वगैरेह अपने-अपने स्थानों पर लौट गये ।

बहत्तर हजार महात्मा साधु, संयम की शोभा धारण करनेवाली एक लाख साध्वी, एक हजार दो सौ चौदह पूर्वधारी, पांच हजार चारसौ अवधिज्ञानी, छ हजार एक सौ मनःपर्यवज्ञानी, छे हजार केवलज्ञानी, दश हजार वैक्रीय लब्धिवाले, चार हजार सातसो वादलब्धिवाले, दो लाख पंदरह हजार श्रावक और चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ—एक मास उना (कम) चौपन लाख वर्षों तक केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात विहार करते हुए वासुपूज्य प्रभु का परिवार हुआ ।

बाद मे मोक्षकाल नजदीक आया हुआ जानकर प्रभु चंपानगरी मे पधारे वहाँ पर छ सौ मुनियों के साथ प्रभुने अनशन अंगीकार किया । एक मास के अंत मे अषाढमास की शुक्ला चतुर्दशी के दिन चंद्र उतराभाद्रपद मे आने पर छै सौ मुनियों के साथ प्रभु मोक्ष मे गये ।

कुमारावस्था मे अठारह लाख वर्ष और व्रत मे चौपन लाख वर्ष इस तरह बहत्तर लाख वर्ष का श्रीवासुपूज्य प्रभु ने आयुष्य पूर्ण किया । श्रेयांस प्रभु के निर्वाण बाद चौपन सागरोपम जाने पर वासुपूज्य भगवान निर्वाण को प्राप्त हुऐ । उस समय देवताओं के साथ इंद्रोने प्रभु का और उनके शिष्यों का यथाविधि निर्वाण महोत्सव किया ।

बडे आरंभ और परिग्रहवाले द्विपृष्ठवासुदेव, केसरीसिंह की तरह निःशंक और देव की तरह सुख मे निमग्न होकर, यथेच्छ भोग भोगकर, अपना आयुष्य पूर्ण करके समय पर मृत्यु प्राप्त करके तमः प्रभा नाम की छहवीं नरक भूमि मे गये । द्विपृष्ठवासुदेव कुमारावस्थामे पचहत्तर हजार वर्ष उतने ही मांडलिक मे, दिग्विजय मे एकसौ वर्ष और राज्य मे बहत्तर लाख उनपचास हजार और नौ सौ वर्ष—इस तरह कुल चौहत्तर लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण हुआ था । द्विपृष्ठके कालधर्म पश्चात्, बंधु स्नेह से मोहित होकर पचहत्तर लाख वर्ष के आयुष्यवाले विजय बलभद्र जैसे-तैसे एकांकीपन मे रहे । बाद मे वासुपूज्य भगवान के वचनो का स्मरण करने से तथा अपने बंधु के मरण से संसार पर से गाढ़ विरक्त होकर श्री विजयसूरि के चरणकमलों में व्रत ग्रहण किया और सम्यक् प्रकार से चरित्र पालन करके विजय बलभद्र कालधर्म प्राप्त करके मोक्ष मे गये ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थ पर्वणि

श्री वासुपूज्यद्विपृष्ठविजयतारकचरित्रवर्णनो नाम द्वितीयः सर्ग ॥२॥



श्री विमलनाथ भगवान

बलशाणा तीर्थ, महाराष्ट्र



श्री विमलनाथ भगवान

कंपिलपुर तीर्थ, उत्तरप्रदेश



श्री विमलनाथ भगवान

वसंतपुर (वासा) तीर्थ, डी. शिरोही, राजस्थान

-: सौजन्य दाता :-

वासा - वसंतपुर जैन श्वे. मू. संघ

गाम : वासा - वसंतपुर, जी. शिरोही, राजस्थान

तृतीय सर्ग

श्री विमलनाथ प्रभु, मेरक प्रतिवासुदेव

स्वयंभू वासुदेव, भद्र बलदेव चरित्र

निष्कर्म निर्मल स्वरूपवाले और उज्ज्वल धर्मव्याख्यारूपी गंगानदी के उत्पत्ति स्थान हिमाचलपर्वतरूपी श्री विमलनाथ भगवान को हमारा नमस्कार । निर्मल तीर्थजल की तरह जगत को पवित्र करनेवाले तेरहवे तीर्थकर श्री विमलप्रभु का चरित्र अब कह रहे हैं ।

धातकी खंड द्विप मे प्राग्विदेह क्षेत्र के बारे मे भरतनाम के विजय मे महापुरी नाम की एक रत्न के समान नगरी थी । उसमे समुद्र की तरह उपनी कल्पना से बाहर की ऐसी जिसे हम सोच भी नहीं सकते हैं ऐसे गुणो द्वारा जिनके पास जाने लायक लक्ष्मी के स्थानरूप पद्मसेन नाम का राजा था । बलवान और विवेकी जनो मे अग्रसर ऐसा उस राजा ने पृथ्वी मे अपने शासन की तरह अपने चित्त मे जैन शासन को अखंड फैलाया था । बुरे घर मे रहनेवाला खेदयुक्त रहता है उसी तरह इस संसार मे खेदयुक्त निवास करता हुआ राजा अधिकाधिक वैराग्य धारण करता था । परिणाम पाकर रास्ते का राहगीर खेदपाकर राह के पास के वृक्ष के पास जाता है उसी तरह संसार में अत्यंत निर्वेद पाकर वह सर्वगुप्त नाम के आचार्य के पास जाकर, उनके पास से दीक्षा ग्रहण कर ली । तत्पश्चात् निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके और अपुत्रीयो जिस तरह पुत्र प्राप्ति के बाद उसका सम्यक् प्रकार से रक्षण और पालन करते हैं उस प्रकार से उसने सम्यक् प्रकार से चरित्र का प्रतिपालन किया । अनुक्रम मे विधिपूर्वक अर्हद्भक्ति वगैरेह स्थानको का सेवन से उन्होंने आत्मपराक्रम द्वारा तीर्थकरनामकर्म उपार्जन किया । उसके बाद चिरकाल तक तप मे लीन अंत मे अपना आयुष्य पूर्ण करके सहस्रार देवलोक मे महर्द्धिक देव हुए ।

इस जंबुद्विप मे भरतक्षेत्र के आभूषणरूप और मानो स्वर्ग का खंड ऊपर से गिरा हो ऐसा कांपित्यपुर नाम का नगर था । वहाँ के सुंदर चैत्य रात्रि मे चंद्रकांतमणि की पुतलियों मे से बहते जल द्वारा यंत्रमय धारागृहो की शोभा धारण कर रहे थे । वहाँ की हवेलियों के ऊपरी सतह पर रखे हुए सुवर्ण क्लश लक्ष्मी को सदा निवास करने के लिये मानो सुवर्ण कमल रखे हो ऐसी शोभा दे रहे थे । विचित्र हवेलियों और प्रासादी की श्रेणियां जिन मे आती हैं ऐसे उस नगर के विधाता ने स्वर्गपुरी रचना के पूर्व प्रतिकरूप आलेख किया था ऐसा दिखाई दे रहा था । दैव के पराभव से शरण मे आये हुये पुरुषों का वज्रमय बख्तर हो ऐसा कृतवर्मा नाम का एक राजा वहाँ राज्य कर रहा था । गंगाजल और उस राजा का यश दोनो परस्पर स्पर्धा करते हुये पृथ्वी को प्रसन्न करते समुद्र पर्यंत पहुँच गये थे । याचको की तरह वह शत्रुओं से कभी भी पराङ्मुख नहीं होता था, लेकिन परनिंदा जैसी परस्त्रि से वह निरंतर पराङ्मुख रहता था । पृथ्वी पर सूर्यरूपी ऐसे उस राजा के शत्रु रणभूमि मे उसके तेज को सहन नहीं कर पाते थे । बड़े बरगद के वृक्ष की छाया की तरह उसके चरणों की छाया मे अनेक राजा नीचे

झुककर प्रणाम करते थे। चंद्र की रोहिणी की तरह सर्व अंतःपुर के आभूषण जैसी श्यामा नाम का एक पटरानी थी। मूर्तिमती कुललक्ष्मी है और साक्षात् मानो सतीव्रत हो ऐसी वह रानी रूप, लावण्य और लक्ष्मी की प्रत्यक्ष अधिदेवता जैसी प्रतिष्ठित हो रही थी। निरंतर पति के ध्यान में व्याकुल चित्तवाली हो उस तरह वह रानी हंसनी की तरह मंद-मंद संचार कर रही थी। पृथ्वी में श्रेष्ठी ऐसी स्त्रियों में भी वह असाधारण स्त्री थी जिसकी सरवी के लायक लक्ष्मीदेवी या इंद्राणी ही थी। वह देवी पृथ्वी पर जहाँ भी विचरण करती थी वहाँ-वहाँ लक्ष्मी उसकी पहरेदार की तरह रातदिन उसके साथ रहती थी।

अब सहस्रार देवलोक में पद्मसेन राजा का जीव अपना उत्कृष्ट स्थितिवाला आयुष्य पूर्ण किया। बैशाख मास की शुक्ल द्वादशी के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में वहाँ से च्यवनकर वह जीव श्यामादेवी के कोख में आकर अवतरित हुआ। श्यामादेवी ने तीर्थंकर के जनम की सूचना देनेवाले चौदह महास्वप्न मुख में प्रवेश करते देखा। पूर्ण समय पर माघ मास की शुक्ल तृतीया की मध्यरात्रि में उत्तराभाद्रपद का चंद्र होने पर दुसरे सभी ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान पर आते सुअर के चिन्हवाले, गर्म सुवर्ण के जैसी कांतिवाले, तीन ज्ञानको धारण करने वाले एक पुत्र को श्यामादेवी ने सुख से जन्म दिया। इस समाचार को अपने ज्ञान से जानकर छप्पन दिक्कुमारीओं ने वहाँ आकर और उन्होंने प्रभु तथा उनकी माता का सूतिका कर्म दासी की तरह किया। बाद में शक्रेंद्र वहाँ आकर प्रभु को मेरुपर्वत पर ले जाकर अतिपांडुकबला नाम की शिला पर के सिंहासन पर प्रभु को गोद में बैठा कर। इस तरह अच्युत इत्यादि तिरसठ इंद्रो ने तीर्थजल द्वारा तीर्थंकर को अनुक्रम से स्नात्र करवाया बाद में प्रभु को ईशान इंद्र के उत्संग में बैठाकर शक्रेंद्र, पर्वत के शिखरों में से निकले निझरणों जैसे वैसे वृषभ के सिंगों में से निकलते हुए जल के प्रवाह से स्नान करवाया। तत्पश्चात् इंद्र ने माणिक्य का मार्जन करते हैं उस तरह स्नात्र जल द्वारा प्रभु के आर्द्र अंगों का देवदुष्य वस्त्र द्वारा मार्जन किया। बाद में नंदनवन में से लाये हुए गोशीर्षचंदन द्वारा श्यामादेवी के कुमार के शरीर पर देवदूष्य वस्त्र अलंकार से प्रभु का अर्चन करके अंत में आरती उतार के शक्रेंद्र ने इस प्रकार से स्तुति की-

“हे जगत्पति ! चोगरदम (चारों ओर) फैलते हुए इस मोहरूपी अंधकार से, अति क्रोध करनेवाले जटाधारी तापसरूपी निशाचरों से, बुद्धिरूप सर्वस्व हरण करनेवाले चार्वाकरूपी तस्करो (चोरों) से मायाकण्ठ में बहुत निपुण ऐसे ब्राह्मणरूपी भेड़ियों की मंडली बनकर घूमते कौलाचार्यरूपी नहारों से अनेक प्रकार की चेष्टा अद्भुत पदार्थ के सर्वप्रकार के अज्ञान से इस समय बहुत काल से रात्रि जैसे इस भरतक्षेत्र में प्रवृत्त था। उसमें आप जैसे स्वामीरूप सूर्य के उदय होते ही प्रभातकाल हुआ है। नीचे स्थान में जानेवाली यह संसाररूपी नदी जो अब तक नीच जनो द्वारा लांघ नहीं सके हैं वह आपके चरणों के सेतुरूप से प्राप्त कर उल्लघन कर सकेंगे। मैं मानता हूँ कि जो भव्यजन आपके शासनरूपी सिड़ी पर चढ़े चुके हैं। ग्रीष्मऋतु में धूप की गर्मी से तप्त राहगीर को वर्षा का सहारा मिलता है उस तरह स्वामी बिगर (बिना) के हमारे जैसे लोगों को एक लंबे समय बाद आप एक उत्तम स्वामी सहायक प्राप्त हुए हो।

इस प्रकार से तेरहवें तीर्थंकर की स्तुति करके इंद्र जैसे आये थे वैसे ही वापस श्यामादेवी के

पास गये और प्रभु को माता की गोद में रखकर बाद में शक्रेंद्र प्रभु के वासगृह से और दूसरे इंद्र मेरुपर्वत से कल्याणक यात्रा करके नाविको की तरह अपने-अपने गंतव्य स्थानों पर लौट गये। प्रातःकाल में पुत्र जन्म की खबर सुनकर कृतवर्मा राजाने अति हर्षित होते हुए बड़ी समृद्धि से सज्ज ऐसा विश्व को सुख देनेवाला ऐसा उसका जन्ममहोत्सव मनाया। प्रभु जब गर्भ में थे तब उनकी माता विमल (निर्मल) हो गई थी। इसलिए उनके पिता ने उनका विमल नाम रखा। देवांगनाओं ने धात्री बनकर पालन किया और देवों के समान आयु के मित्र बनकर खिलाने प्रभु अनुक्रम में वृद्धि करने लगे। साठ धनुष्य ऊँचे और एक हजार आठ लक्षणों से युक्त प्रभु यौवनावस्था को प्राप्त हुए। प्रभु को संसारपर वैराग्यभाव था फिर भी मातापिता के आग्रह से भोग्यकर्मरूप रोग की औषधरूपी ऐसी राजपुत्रियों के साथ उन्होंने विवाह किया। कुमारावस्था में पंद्रह लाख वर्ष का उल्लंघन करने के बाद पिता के वचन से पृथ्वी पर राज्य चलाने लगे, क्योंकि तीर्थंकरों को भी पिता की आज्ञा मान्य है।

पृथ्वी पालन करते हुए तीस लाख वर्ष बित जाने पर प्रभु ने संसाररूपी इस सागर को तैरने के लिये नाविका(नौका)रूपी दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया। उस समय सारस्वत वगैरेह लोकांतिक देवताओं ने आकर हे स्वामी! तीर्थ प्रवर्तवि ऐसा जगद्गुरु को कहा। बाद में जृम्भक देवताओं ने लाये हुए द्रव्य द्वारा पृथ्वीपर रहे कल्पवृक्ष की तरह प्रभु ने याचकों की इच्छानुसार वार्षिक दान किया। दान के अन्त में सर्व इंद्रोंने अपने हृदय जैसा निर्मल जल द्वारा विमल प्रभु का दीक्षाभिषेक किया। बाद में दिव्य वस्त्र, अलंकार तथा विलेपन द्वारा युक्त होकर प्रभु देवदत्ता नाम की शिबिका पर बैठ गये। सुर, असुर और मनुष्यों के अधीशियों के साथ परिवरेले प्रभु उस शिबिका द्वारा सहस्राग्रवन में पधारे। उस उद्यान में शीत से भयभीत ऐसी उद्यानपालों की बालाएँ उसमें रहती लताकुंज की श्रेणी को मंदिर की प्रीति से सेवन करती थी। जिनका भविष्य में अद्भुत शोभा होनेवाली है ऐसे आम्र और बोरसली वगैरेह वृक्ष मानो तपस्या करते हो उस तरह अति शीतकारक बरफ को सहन कर रहे थे। नये कुंअे जल से और बरगद की घनी छाया से क्रीडा करने की इच्छुक नगर दंपतियों की शीत व्यथा बंद हो गई थी। ठंड से पीड़ित वानर चणोठी के ढेर करते थे, जिससे हास्य करती नगर की स्त्रियों की स्मित कांति की उर्मियां उस उद्यान को तरंगित कर रहा था और प्रफुल्लित चारोली और डोलर की कलियां मानो हास्य करती हो ऐसा दिखाई दे रहा था। ऐसे उद्यान में विमलप्रभु ने प्रवेश किया।

बाद में शिबिका पर से उतरकर आभूषण इत्यादि का त्याग करके, इंद्रने कंधे पर डाले हुए देवदूष्य वस्त्र को कंधे पर धारण करके, प्रभु ने माघ मास की शुक्ला चतुर्थी के दिन जन्म नक्षत्र में पिछले प्रहर में एक सहस्र राजाओं के साथ छह तप करके दीक्षा ग्रहण की। तीसरे दिन धान्यकूट नगर में जयराजा के घर पर प्रभु ने परमान्न से पारणा किया। देवताओं ने वसुधारादिक पांच दिव्य प्रगट किये और प्रभु के आहार स्थान पर जयराजा ने एक रत्नपीठ बनवाई। बाद में उस स्थान से दूसरे गांव आकर तथा पुर वगैरेह में प्रभु ने छद्मस्थ विहार किया। इस जंबूद्वीप में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के बारे में आनंदकरी नाम की नगरी में नंदीसुमित्र नाम का एक राजा राज्य कर रहा था। वह चर्मचक्षुवाला फिर भी विवेकरूपी चक्षु से अलंकृत था। उसके पास अनेक सैनिक थे, तथापि वह सही

तो अपने खड़ग द्वारा सहायवान था। जन्म से संसार के सर्व पदार्थों से अनित्य, अस्थिर जानने से उसका संसारपरसे उद्वेग हो गया था, फिर भी क्रम पालन में उसने अपने बुजुर्गों का राज्य धारण किया था। एक बार मन से तो प्रथम से ही त्याग किया हुआ, अपना राज्य शरीर से भी छोड़कर उसने सुव्रताचार्य से व्रत ग्रहण किया। बाद में विविध अभिग्रह धारण करके, दुश्चर तप का आचरण करके अंतसमय में अनशन करके अनुत्तर विमान में देवता बने।

इस जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र के आभूषणरूपी श्रावस्ती नाम की नगरी में धनमित्र नाम का एक राजा था। उस धनमित्र राजा के स्नेह से बलि नाम का एक दुसरा राजा उसके अतिथि (महेमान) में उसी नगरी में आकर बसा था। एक बार राजा धनमित्र बलिराजा के साथ पासा द्वारा धुतक्रीडा करने लगा। धनमित्र बुद्धिवैभव में गम और चर में अक्षीण था। स्त्रियों की तरह पायदो को मारने में परस्पर प्रवृत्त ऐसे दोनों राजमित्र संब्राम की तरह उत्कृष्ट द्युत का विस्तार करने लगे। परस्पर सभी प्रकार से विजय प्राप्त करने की इच्छा करनेवाले वे दोनों राजाने अंत में अपने राज्य भी दांवपर रखकर खेलने लगे। कहा गया है कि द्युतांध को बुद्धि कहाँ होती है? ऐसे खेल-खेल में धनमित्र राजा अपना राज्य हार गया और क्षणभर में रंक के पुत्र की तरह लक्ष्मी रहित और अकेला होकर निस्तेज पन से जिर्ण कपड़े पहनकर मानो भूत लग गया हो वैसे वह सभी जगहों पर अपमानित होने लगा।

एक समय इधर-उधर भटकते हुए धनमित्र को सुदर्शन नाम के एक मुनि मिले। उन्हें नमस्कार करके लांघन करता हुआ रोगी जिस तरह औषधि का पान करता है, वैसे ही उसने मुनिके पास से देशनारूपी अमृत का पान किया। उस देशना से प्रतिबोध पाकर उसने मुनिराज से दीक्षा ग्रहण करके बहुत समय तक पालन किया लेकिन वह अपना अपमान भूला नहीं। अंत में उसने संकल्प किया कि 'मेरे तपचारित्र के प्रभाव से अगले भव में बलिराजा का वध करनेवाला बनूँ' ऐसा संकल्प निश्चित करके अनशन कर्म से मृत्यु को प्राप्त होकर वह बारहवें अच्युत कल्प में अत्युत्कृष्ट आयुष्यवाला देवता हुआ।

बलिराजा भी यतिलिंग धारण करके कुछ समय पश्चात् वह मृत्यु को प्राप्त हुआ और देवलोक में महर्द्धिक देवता हुआ। वहाँ से च्यवनकर उस भरतक्षेत्र में नंदनपुर नाम के नगर में समरकेशरी राजा की सुंदरी नाम की रानी की कुक्षि में पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। स्निग्ध अंजन जैसी कांतिवाला, साठ धनुष्य ऊंचे शरीरवाला और साठ लाख वर्ष की आयुष्यवाला वह अद्भूत पराक्रमी हुआ। वह प्रतापी कुमार ने वैताढ्य पर्वत तक भरतार्द्ध तक का राज्य विस्तार किया और अर्द्धचक्रधारी मेरुक नाम का प्रतिवासुदेव हुआ। वायु के सामने दुसरा वेगवान न हो, सूर्य के सामने दुसरा कोई तेजस्वी न हो, उस तरह उसके सामने दुसरा कोई राजा स्पर्धा करनेवाला प्रतिमल्ल जैसा नहीं था। दैव की तरह सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे। कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता था। मात्र रक्षा के शिखा बंधन की तरह उसकी आज्ञा सभी मस्तक पर धारण कर लेते थे।

इस भरतक्षेत्र में द्वारका नगरी के बाहर में समुद्र जैसा गंभीर रुद्र नाम का राजा था। उसे मानो पृथ्वी और लक्ष्मी हो वैसे सुप्रभा और पृथ्वी नाम की रूप और गुणों की शोभा से मनोहर ऐसी दो कांताये (पत्नी) थी। उसमें से सुप्रभादेवी के उदर में नंदीसुमित्र का जीव अनुत्तर विमान से च्यवनकर

अवतरित हुआ। सोये हुए सुप्रभादेवीने बलभद्र के जन्म को सूचित करनेवाले चार महास्वप्न रात्रि के शेष भाग में देखे। अनुक्रम में नौ मास और साढ़े सात दिनबाद सुप्रभादेवी ने कान्तिसे चंद्र जैसे एक पुत्र को जन्म दिया। रुद्र राजा ने उसका भद्र ऐसा नाम रखा और कुल की भद्रलक्ष्मी सहित वह अनुक्रमसे वृद्धि प्राप्त करने लगा।

धनमित्र का जीव भी अच्युत कल्प में से च्यवनकर सरोवर में कमल की तरह पृथ्वी देवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। सुखसे सो रहे देवीने रात्रि के शेषभाग में वासुदेव के जन्म को सूचित करनेवाले सात महास्वप्न मुख में प्रवेश होते हुए उन्होंने देखे। पूर्ण समय होनेपर विदुर पर्वत की भूमिकी तरह वैदूर्यमणि को फैलाता है उस तरह श्याम अंगवाला अतिप्रकाशमान पुत्र को देवी ने जन्म दिया। रुद्रराजा ने हर्ष पाकर बड़े उत्सव द्वारा उस पुत्र का नाम स्वयंभू ऐसा रखा। पांच समिति द्वाराजिस तरह मुनिका निर्दोष तप बढ़ता है उस तरह पांच धात्रीयों के लालन-पालन से कुमार नित्य बढ़ने लगे। श्वेत और श्याम वर्णवाले भद्र और स्वयंभू ये दोनों कुमार श्वेत, श्याम, गंगा-यमुना के प्रवाह की तरह हमेशा प्रीति के साथ रहने लगे। उनके साथ खेलने वाले अन्य राजकुमार इनके चरणों का जरा सा प्रहार भी सह नहीं सकते थे, क्योंकि उनके चरण के घात से पर्वत भी गिर जाते थे। श्याम और पीतवस्त्र धारण करनेवाले तथा ताल और गरुड के चिन्हवाले वे दोनों भाई जब खेलते हुए चलते थे उस समय पृथ्वी चलित हो जाती थी। विशेष शोभा देनेवाला भुजवीर्य और बुद्धि का मानो तारुण्य हो उस तरह सर्व शास्त्र में और शस्त्र के उनके अभ्यास में प्रवृत्त होने लगे।

एक बार नगरी के बाहर खेल खेल रहे थे उसी समय कहीं हाथी, घोड़े और द्रव्य समूहवाली तथा कई रक्षकों सहित एक छावनी का पडाव उन्होंने देखा। बलभद्र ने प्रधानपुत्र से पूछा “यह सेना किसकी है? किसी मित्र की है या शत्रु ने भेजी है?” सचिव पुत्र ने कहा-“शशिसौम्य नाम का राजा जिवित की इच्छा से मेरक नाम के प्रतिवासुदेव को अपने दंड के बदले में यह सब उपहार के तौर पर भेज रहा है।” ऐसे वचन सुनकर क्रोध से क्रोधित होकर वासुदेव ने कहा-“क्या हमारी नजरों के सामने उसे दंड भेजा जा सकता है? हम यहाँ विद्यमान हैं फिर भी वराक (गरीब) मेरक मात्र कौन है जो इस पार्थिवों को दंड दे रहा है? हमें उसका पराक्रम अवश्य देखना चाहिए” इस प्रकार कहकर वासुदेव ने हाथ उपर करके अपने सैनिकों को कहा-‘इस छावनी में जो कुछ द्रव्यादि हैं वह सब बलात्कार करके छिन लो’ ऐसी आज्ञा होनेपर उनके सैनिकों ने गदा, मुद्गल और दंडाधिक द्वारा शशिसौम्य राजा के सैनिकों को पके हुए फलों की तरह गिराने लगे। जिस तरह अनजान पकड़ने वाले आते हैं उस तरह वे सैनिक अचानक आकर उन पर हमला करने से वे उसे सहन नहीं कर पाने से शशिसौम्य राजा के सैनिक कौओं की तरह जान लेकर भाग खड़े हुए। बाद में हाथी, घोड़े और द्रव्यादि वगैरेह सर्व वासुदेव ने ले लिया बलात्कार करके पराई लक्ष्मी का हरण करना यह क्षत्रिय स्वभाव ही है।

अब शशिसौम्य राजा के लोग चिल्लाते, पुकारते-पुकारते मेरक राजा के पास आये और हस्ती, अश्व वगैरेह का हरण किया यह वृत्तांत उन्हें सुनाया। यह सुनकर यमराज की तरह अमर्याद क्रोध करता हुआ मेरक भयंकर भूकुटी तानकर सभा के बीच बोला-“पिंड खाकर उन्मत्त हुआ गधा जिस

तरह हाथी को ठोकर मारता है, कौटुंबिक स्त्रि को कामकरनेवाला मारने दौड़ता है और मेढक जैसे सर्प को चपत लगाता है, मारता है उस तरह अपने स्वरूप को नहीं जानने वाले यह रुद्रराजा के कुमारोने अपनी मृत्यु को आमंत्रित करते हुए यह कार्य किया है। जिस तरह चिट्ठियों के पंख निकल आते ही उसकी मृत्यु का कारण बनती है। उस तरह जब पुरुषो को देव पराडमुख होते हैं तभी दुर्बुद्धि आती है। चोरों की तरह मेरे उपहारो का हरण करने वाले यह नये भतीजों को पिता भ्राता सहित उन्हे मार डालूंगा।” मेरक ने इस प्रकार कहा तत्पश्चात एक सचीव ने कहा- “हे स्वामी ! वे बच्चे बालक हैं, इसलिए उन्होने ऐसा किया है, लेकिन रुद्र राजा आपकी चिरकाल से सेवा कर रहा है, इसलिए उस पर कोप करना उचित नहीं है। मे मानता हूँ कि इस कार्य मे रुद्र राजा कि सहमति नहीं होगी, क्योंकि आपकी ओर उसे आराधना करने के ही हमेशा इच्छा रही है स्वामी के होते हुए और नदी की बाढ़ मे बीच कौन पड़ेगा ? ऐसी शंका से रुद्र राजा इस संबंध मे विलंब कर रहे होंगे ऐसा ही जान पड़ता है इसलिए हे देव ! प्रसन्न हो ! मुझे आज्ञा दे और उसे अभय दे। मैं जाकर उसने लूटि हुई है उससे जादा विशेष भेट, उपहार लेके आऊंगा।”

मेरक प्रतिवासुदेव ने उस तरह कबूल किया, इसलिए वह मंत्री जल्द द्वारका मे पहुँचा और वहाँ पर भद्र और स्वयंभूकुमार के साथ राज्यसभा मे बैठे रुद्रराजा के समीप आकर उसने कहा- “हे नृपति ! आपके पुत्रो ने अज्ञानवश यह क्या कर दिया ? स्वामी के मुख की लज्जा से उसके श्वान को भी नहीं मारा जाता है, इसलिए वे सारी भेट उपहार आप वापस लौटा दो, जिससे आपके सिर पर दोष नहीं रहेगा। आपके पुत्र का दोष उनकी अज्ञानता उसे ढक देगी” मंत्री के ऐसे वचन सुनकर स्वयंभूकुमार ने कहा “हे मंत्री ! स्वामीभक्ति से और मेरे पिता के पूज्यभाव से जो कुछ आपने कहा है वह सत्य और उचित है, लेकिन यदि आप बुद्धि से निरिक्षण करेंगे आपको दिखाई देगा कि यह हमने छिन लिया है, उसमे उस मेरक राजा का कितना हमने ले लिया है ? अब हम पूरी पृथ्वी छिन लेंगे, क्योंकि यह भूमि वीर पुरुषो को भोगने योग्य है और यमराज की तरह क्रोधित हुए आर्य बलभद्र की और मेरी भुजाओं का बल सहन करने के लिये रणभूमि मे कौन समर्थ है ? इसलिए आपके उस राजा को मारकर मैं अर्ध भरत का भोग भोगुंगा। कीडें की तरह तुच्छ छोटे राजाओं को कुटने से क्या लाभ ? उस मेरक ने यह भरताई अपनी भुजाओं के बल से प्राप्त किया है यह कोई उनके पिताकानहीं था उसी तरह न्याय से अब बलवान मे भी बलवान मेरे अधिकार मे रहेंगे।” इस प्रकार का निवेदन सुनकर विस्मय तथा भयभीत वह सचिव तत्काल वहाँसे निकलकर मेरक के पास आकर यथार्थ उस वृतांत को सुनाया उसकी दुःश्रव वाणी सुनकर उन्मत हाथी की तरह क्रोधित मेरक राजा ने सेना के भार से पृथ्वी को कंपन करते हुए प्रयाण किया। इस ओर स्वयंभू वासुदेव भी रुद्रराजा और भद्रकुमार सहित गुफा मे से केसरीसिंह निकलता है उसी तरह द्वारका मे से निकलकर प्रयाण किया। लोगो मे क्षोभ उत्पन्न करते ऐसे भयंकर स्वयंभू और मेरक, राहु और विष्णु की तरह अनुक्रम मे आकर एक जगह पर दोनो इकट्ठे हो गये। शस्त्रों के प्रहार से उठी अग्नि द्वारा दिगंतर को विकराल करता हुआ महाभयंकर युद्ध उन दोनो के बीच मे हुआ। स्वयंभू ने सर्व शत्रुओं को उच्चाटन करने के ध्वनिमंत्र जैसा जिसका महास्वर है

ऐसा पांचजन्य नाम का शंख फूँका । उस पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनने से मेरक के सैनिक तस्त्र हो गये । क्योंकि केसरीसिंह का नाद सुनकर हाथी भी टिक नहीं सकते हैं । बाद में अपनी सेना सैनिकों को एक ओर रखकर मेरकराजा स्वयं रथ पर चढ़कर मुर्गे की तरह अकेला स्वयंभूकुमार के सामने युद्ध करने आया 'हमें वृथा सैनिकों का संहार क्यों करना चाहिए ? इस प्रकार कहता हुआ । महाधनुर्धारी वे दोनों एक दूसरे की ओर के धनुष्य का आस्फालन करने लगे । सूर्यमंडल को आच्छादित करे ऐसे बाणसमूह से बादल स्थापित करके उसमें से बाणरूपी जल की वर्षा करते वे मानो जयलक्ष्मी के विवाहमंडप की रचना करते हो ऐसा प्रतीत होने लगे जिस तरह विष से विष और अग्नि से अग्नि का पराभव किया जाता है उसी तरह परस्पर बाणवृष्टि द्वारा बाणवृष्टि का निवारण करने लगे । उस समय फैलते हुए ऐसे हजारों बाणरूपी किरणों से मानो भयंकर दो सूर्यों का उदय हुआ हो ऐसा प्रतीत हो रहा था । भाथा और धनुष्य के बीच अलक्ष्य गमनागमन करता उनके हाथ सिर्फ रत्नजडित उर्मिका (वींटी) के तेज से लक्ष में आ रहा था । क्षण में भाथा में क्षण में धनुष्य की प्रत्यंचा पर आ जाता था वे अति चालाक वीर पुरुषों के हाथ मानो दो रूप धारण करते हो उस तरह शोभा दे रहे थे ।

इस प्रकार से युद्ध करते बाण युद्ध में स्वयं को अजय मानकर मेरकराजा ने कल्पांत काल का पवन जिस तरह पर्वतों के शिखरों की वृष्टि करता है, उसी तरह गदादिक अस्त्रों से उसके ऊपर वृष्टि करने लगा । दृष्टिविष सर्प की विकराल दृष्टि ज्वालाओं से जिस तरह वस्तुमात्र भस्म हो जाती है उसी तरह स्वयंभू ने उसके सामने प्रतिअस्त्रों को डालकर उन अस्त्रों को भस्मप्राय निःसार कर दिया । रणसमुद्र की गहराई की इच्छावाले मेरकने अंत में चक्र का स्मरण किया, उसी समय शिकारी के हाथ में जिस तरह पक्षी आता है वैसे ही चक्र उसके हाथ में आकर स्थिर हो गया । उसे आया हुआ देखकर मेरक ने गर्वसे स्वयंभू को कहा—“अरे भद्र ! इतनी देर सिर्फ क्रीडामात्र से युद्ध करके तुझे सैनिक बनाया है, लेकिन अब तु चला जा, नहीं तो यह चक्र तुम्हारा मस्तक छेद डालेगा और चोर को और कौंए को भागने में लज्जा कैसी ? स्वयंभू ने कहा—“अरे मूढ़ ! यदि ऐसा तुम्हारा क्रीडायुद्ध है तो कोपयुद्ध कैसा होगा यही देखने मैं यहाँ आया हूँ । वह मुझे दिखाओ । शत्रुओं की लक्ष्मी को छिननेवाले वीर पुरुष जो चोर कहलाते हैं तो पहले तुम ही तस्कर हो, क्योंकि तुम्हें यह राजलक्ष्मी किसने दी ? यदि तुम्हें यह चक्र छोड़कर भी अभी भागना हो तो भाग जाओ, क्योंकि तुम्हारे जैसा तस्कर और कौओं को भागने में लज्जा कैसी ? अथवा तुरंत इस चक्र को मेरे पर छोड़कर दे, इसका बल भी देख ले, अन्यथा मरण के पश्चात तुझे पश्चाताप न हो”

स्वयंभू के ऐसे वचन सुनकर क्रोधित मेरक मानो दुसरा मंगलग्रह हो ऐसा ज्वाला समूह से विकराल ऐसा चक्र आकाश में ऊपर उठाकर उसे गतिशील करके उसके ऊपर छोड़ा । जिस तरह कांसे के ताल से टकराते हैं वैसे वह चक्र आकर वासुदेव के सीने में आकर जोर से टकराया, जिससे चक्र के अग्रभाग के आघात द्वारा चपलनेत्र वाले स्वयंभूकुमार मदिरामत्त पुरुष की तरह रथ में मुर्छित होकर गिर पड़े । 'वत्स ! जागो, जागो' इस तरह बोलते हुए बंधुप्रिय बलभद्र ने नेत्रों में आंसू ला कर उन्हें अपनी गोद में लिया । अपने प्रियबंधु के अश्रुसिंचन से स्वयंभू वासुदेव तुरंत जाग कर 'खड़े रहो,

खड़े रहो ऐसा शत्रु के बार में बोलते हुए उठ खड़े हुए, प्रफुल्लित नेत्रोंद्वारा अपने सैनिकों की ओर देखकर स्वयंभूकुमार ने मानो शत्रुओं का कालचक्र हो ऐसा वह चक्र हाथ में लेकर “अरे मेरक ! अब इन अस्त्रों का सर्वस्वरूप यह चक्र और यह तेरा जीवन, सर्पके माथे (मस्तक) पर मणि की तरह निकल गया है यह देखकर भी तू किसके आधार पर खड़ा है ? इसलिए तुरंत यहाँ से चला जा, रणभूमि से भागते हुए शत्रु पर स्वयंभू हनन नहीं करता है ।” मेरकने कहा—“तुम भी एक चक्र छोड़कर उसका बल देख लो, जो स्त्रि अपने पति की नहीं हुई है वह स्त्रि उपपति (जार) की किस तरह होगी ?” इस प्रकार मेरक को कहने के बाद वासुदेव ने वह चक्र आकाश में घूमाकर उस पर छोड़ा, उसने तत्काल मेरक के मस्तक को लीलामात्र से छेद डाला । उस समय स्वयंभू के ऊपर आकाश में से पुष्पवृष्टि की गई और मेरक का शव पृथ्वी पर गिरा पड़ा । मेरक के आश्रय में रहनेवाले राजा तत्काल स्वयंभू के पास आकर उनका आश्रय लिया । वह युद्ध यात्रा एक वरदानरूप बन गई बाद में दिशाओं के चक्र को विजय करनेवाला एक चक्र दक्षिण भुजा में धारण करके स्वयंभू वासुदेव ने दक्षिण भरतार्द्ध को जित लिया । जयलक्ष्मी के स्थानरूपी बनकर वे दिग्यात्रा में से वापस लौटें । नव दम्पति की तरह भरतार्द्ध की लक्ष्मी के साथ स्वेच्छा क्रीड़ा करते हुए स्वयंभूकुमारने मार्ग में मगध देश में एक बड़ी शिला देखी, वह शिला कोटि पुरुषों के उठाने योग्य और पृथ्वी की मानो कपालपुट हो ऐसी दिखाई दे रही थी । सर्पराज जिस तरह पृथ्वी को उठाते हैं वैसे ही वासुदेव ने वामभुजा से उसे सीने (छाती) तक ऊपर उठाकर और पराक्रमी पुरुषों को आश्चर्य में डाल दे बाद में वापस शिला जहाँ भी वहाँ रख दी । वहाँ से कुछ समय बाद वे द्वारका में आये । वहाँ रुद्रराजा ने भद्र बलदेव और दूसरे राजाओं ने मिलकर उत्सव सहित स्वयंभूकुमार का अर्द्धचक्री अभिषेक किया ।

अब वे दो वर्ष बाद छद्मस्थ में विहार करके विमलनाथ प्रभु सहस्रनाम्रवन नाम के दीक्षा उद्यान में फिर से आये । वहाँ जंबूवृक्ष के नीचे अपूर्वकरण के क्रम से क्षपक श्रेणि में आरुढ़ हुए प्रभु के घातीकर्म नाश हुए, जिससे पोष मास की शुक्ल षष्ठी के दिन उतराभाद्रपद नक्षत्र में छठ तप युक्त प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । वहाँ देवताओं ने रचे हुए समवसरण में बैठकर प्रभु ने देशना देना आरम्भ किया । उनके मंदिर वगैरेह सतावन गणधर हुए । उनके तीर्थ में मयूर के वाहनवाला उज्ज्वल वर्णवाला दक्षिण तरफ की छ भुजाओं में फल, चक्र, ईषु, खड्ग, पाश और अक्षसूत्र ओरवाम बाजू की छ भुजाओं में नकुल, चक्र, धनुष, फलक, वस्त्र और अभय को धारण करनेवाला षण्मुख नाम का यक्ष शासन देवता हुआ, तथा हरिताल के जैसी वर्णवाली पद्म पर बैठी दक्षिण भुजा में बाण और पाश को धारण करनेवाली ओर वाम भुजा में को दंड तथा नाग को रखनेवाली विदिता नाम की यक्षिणी श्री विमलनाथ प्रभु की शासनदेवी बनी ।

वे यक्ष और यक्षिणी निरंतर जिनके समीप रहे हुए हैं ऐसे जगद्गुरु विहार करते करते अेक बार द्वारका नगरी परिसर भाग में पधारे । इंद्रादिकदेवों ने वहाँ सातसौ बीस धनुष्य ऊँचा अशोकवृक्ष युक्त समवसरण रचा । प्रभु ने पूर्वद्वार द्वारा उसमें प्रवेश करके आर्हती स्थिती कापालन करते हुए चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके, तेराहत्वे धर्मचक्री विमलनाथ “तीर्थाय नमः” ऐसा कहकर पूर्व दिशाके

सन्मुख के सिंहासन को अलंकृत किया। बाद में साधु, साध्वी, देवता, देवी, नर और नारीयां यथायोग्य अंदर आकर अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठे। उस समय राजपुरुषो ने सत्वर द्वारका में जाकर प्रभु के समवसरण का वृतांत सुनाया। हर्षित स्वयंभूराजा ने प्रभु के आगमन की बधाई देनेवाले पुरुषो को पारितोषिक में साढ़े बारा करोड़ सोनैया दी। स्वयंभूवासुदेव भद्र बलदेव के साथ भद्र के एक कारणरूप समवसरण के पास आकर उसमें प्रवेश किया। वहाँ भगवन्त की प्रदक्षिणा देकर प्रणाम करके भद्र बलदेव सहित इंद्र पिछे की ओर बैठे। बाद में इंद्र वासुदेव और बलदेव फिर से प्रणाम करके अंजली जोड़कर इस प्रकार की स्तुति करने लगे—

“हे देव ! वर्षाकाल के जल से पृथ्वी के किचड़ की तरह आपके दर्शन से जगत मात्र के प्राणीयों के सांसारिक दुःख का नाश हुआ है। हे स्वामिन ! आपके दर्शन के फलस्वरूप आज का दिन बहुत पवित्र है जिसमें दुष्कर्म से मलिन हम निर्मल हो जायेंगे। हमारी दृष्टियों ने (आंखों ने) शरीर के सभी अंगों में शिथिलता आ गई थी, वह आज आपके दर्शन प्राप्त करके वापस अपनी बराबर शुद्धि करली है। आपके चरणधूल से यह भरतक्षेत्र की भूमि पवित्र हो गई है। तो आपके दर्शन वहाँ के मनुष्यों के पापों का नाश करेंगे इसमें तिल मात्र भी शंका है क्या ? हे प्रभु ! उल्लू पक्षी की तरह मिथ्यादृष्टि पुरुषों को आपके दर्शन केवलज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश के अभाव का ही कारण बनेंगे। आपके दर्शनरूपी अमृतपान द्वारा जिनके शरीर के उच्छ्वास पाते हैं ऐसे प्राणीयों के कर्मबंधन आज अवश्य टूट जायेंगे। विवेकरूपी दर्पण को साफ करने में तत्पर और कल्याण वृक्ष के बीज जैसे आपके चरण के रजकण हमें पवित्र करें। हे स्वामिन ! अमृत के गुच्छ जैसे आपकी देशना के वचन संसाररूपी मरुदेश में मग्न हुए हमें स्वस्थवर्धक बने।

इस प्रकार की स्तुति करके उन्हें विश्राम किया, तत्पश्चात् विमलनाथ प्रभु ने निर्मल धर्म देशना देना आरंभ किया—

“अकाम निर्जरारूपी पुण्य से प्राणी को स्थावरपना से त्रस या तिर्यच पंचेंद्रियपन जैसे तैसे प्राप्त होता है। उसमें भी जब कर्म कम होते हैं तब मनुष्यजन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, सभी इंद्रियो (की पूर्णता) का समतल और दीर्घायुष्य किंचित प्राप्त होता है। उससे भी अधिक विशेष पुण्य हो तो धर्मकथक गुरु की व्यवस्था और शास्त्र का श्रवण तथा उसमें श्रद्धा इतनी बाते प्राप्त होती हैं। लेकिन उसमें तत्त्व निश्चयरूप बोधिरत्न प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है। जिन प्रवचन में जैसा बोधिरत्न अंत्यत दुर्लभ कहा गया है। उसी प्रकार से राजा, चक्रवर्ती या इंद्रपन प्राप्त करना दुर्लभ नहीं कहा गया है। सभी जीवोंने इसके पहले कईबार सर्व भाव प्राप्त किये होंगे, लेकिन जहाँ तक इस संसार में उन जीवों का परिभ्रमण देखने में आता है वहाँ तक उन्होंने कभी भी बोधिरत्न की प्राप्त की नहीं है ऐसा जान पड़ता है। सर्व प्राणीयों को इस संसार का परिभ्रमण करते अनंत पुद्गल परावर्तन हो गया है, फिर भी जब अंतिम अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन संसार अवशेष रहेगा तब सभी कर्मोंकी स्थिती एक कोटाकोटि सागरोपम से कम यथा प्रवृत्तिकरण द्वारा करके कोई प्राणी ग्रंथिभेद होने से उत्तम बोधि को प्राप्त करता है। कुछ जीव यथाप्रवृत्तिकरण करने से ग्रंथि की सीमा के ऊपर तक प्राप्त करके वहाँ जाकर वापस लौट आते

है और संसार मे भटकते हैं। कुशास्त्र का श्रवण, मिथ्यादृष्टि का समागम, बुरी वासनाएँ और प्रमाद करने की आदत से समकित प्राप्ति के सामने आनेवाले शत्रु हैं। फिर भी चारित्र प्राप्ति भी दुर्लभ है लेकिन यदि बोधि की प्राप्ति हुई हो तो वह सफल है अन्यथा निष्फल है। अभव्य प्राणी भी चारित्र ग्रहण करके नौवे ग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं, लेकिन बोधि बिना वे मोक्षपद को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। चक्रवर्ती भी बोधिरत्न की प्राप्ति बिना रंक जैसा है और बोधिरत्न प्राप्त करनेवाला रंक होने पर भी उससे अधिक है। जिन्हें बोधिरत्न की प्राप्ति हो गई है वे कभी भी इस संसार मे राग नहीं करते हैं, लेकिन वे ममता रहित मुक्त होकर मुक्तिमार्ग को ही भजते हैं।”

प्रभु की ऐसी देशना सुनकर कई लोगो ने दीक्षा ले ली, स्वयंभू वासुदेव समकित को प्राप्त हुआ और बलभद्र ने श्रावकपन स्वीकार किया। जब प्रथम पोरसी पूर्ण होने पर प्रभु ने देशना से विश्राम लिया। बाद मे मंदर गणधर ने उसी तरह की देशना दी। दुसरी पोरसी पूर्ण होने पर इंद्र, वासुदेव तथा बलभद्र वगैरेह अपने अपने स्थानो पर गये। लोगो पर अनुग्रह करने की इच्छा से विमलप्रभु ने पुर, ग्राम, खदान और द्रोणमुख इत्यादि मे विहार किया। अडसठ हजार महात्मा साधु, एक लाख आठसौ साधवी, इग्यारह सौ चौदह पूर्वधारी, चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, पांच हजार पांच सौ मनःपर्यवज्ञानी उतने ही केवलज्ञानी नौ हजार वैक्रियलब्धिवाले, दो लाख आठ हजार श्रावक और चार लाख चौत्तीस हजार श्राविकाएँ इतना बड़ा परिवार केवलज्ञान के दो वर्ष बाद उना (कम) पंदरह लाख वर्ष तक पृथ्वी पर विहार करते हुऐ विमलनाथ प्रभु ने समय व्यतीत किया।

अपना निर्वाण समय नजदीक आया जानकर प्रभु समेतशिवर पर्वत पर पधारे, वहाँ छ हजार साधुओं के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मास का अनशन पालन करने के बाद अषाढ मास की कृष्ण सप्तमी के दिन चंद्र पुष्य नक्षत्र मे आने पर वे सभी मुनियों के साथ प्रभु अव्ययपद को प्राप्त हुऐ बाद मे इंद्रादिक देवताओं ने वहाँ आकर प्रभु का और अन्य मुनियों के निर्वाण का महिमा किया। पंदरह लाख वर्ष कुमारवस्था मे, तीस लाख वर्ष पृथ्वी के रक्षण करने मे और पंदरह लाख वर्ष व्रत मे इस तरह कुल मिलाकर साठ लाख वर्ष के आयुष्य को पूर्ण किया था। श्री वासुपूज्य प्रभु के निर्वाण बाद तीस सागरोपम गये तब श्री विमलनाथ प्रभु का मोक्षगमन हुआ स्वयंभू वासुदेव आश्चर्यकारी अश्वर्य के मद से अविवेकी अनेक क्रूर कर्मों किये, जिससे वह अपने साठ लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके उस उस प्रकार के खराब कर्मों के फलस्वरूप छठवी नरक भूमि मे गये। बारह हजार वर्ष कुमारपन मे, उतने ही मांडलिकपन मे, नब्बे वर्ष दिग्विजय मे और उन्नसठ लाख पचहत्तर हजार नौसो दस वर्ष राज्य मे, कुल मिलाकर साठ लाख वर्ष का उनका आयुष्य पूर्ण हुआ।

अपने बंधु के मृत्यु संबंधी विपत्ति के शोक से विरक्त हुऐ भद्र बलदेव मुनिचंद्र मुनि के पास से व्रत का ग्रहण करके, पैसठ लाख वर्ष का अपना आयुष्य पूर्ण करके, कालधर्म प्राप्त कर परमपद को प्राप्त हो गये।

इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रसूरिविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थे पर्वणि

श्रीविमलनाथस्वयंभूभद्रमेरकचरित्रवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥



श्री अनंतनाथ भगवान

भात बजार तीर्थ, मुंबई, महाराष्ट्र

--: सौजन्य दाता :-

विशा ओशवाल जैन श्वे. मू. संघ

गाम : खंभात, जी. आणंद, गुजरात

चतुर्थ सर्ग

श्री अनंतनाथ प्रभु, पुरुषोत्तम वासुदेव,
सुप्रभ बलदेव, मधु प्रतिवासुदेव चरित्र

इस संसार मे भी मोक्ष की तरह प्राणीयों की अनंत सुख देनेवाले उसी तरह जिन्होंने अनंत चतुष्टय को सिद्ध किया है ऐसे श्री अनंतनाथ भगवान आपकी रक्षा करें। अपार संसाररूपी सागर को तैरने मे नाव जैसा श्री अनंतनाथ भगवन्त का चरित्र अब कहना आरंभ कर रहे हैं।

धातकीखंड द्वीप मे प्राग्विदेह क्षेत्र के औरवत नाम के विजय के बारे मे अरिष्टा नाम की एक नगरी थी। उसमे शत्रुओं के रथवाले सेना का रथव्यूह स्खलन करने मे गिरि समान पद्मरथ नाम का महारथी राजा राज्य करता था। उन्होंने सभी शत्रुओं का विजय करके सब ऋद्धि एकत्रित कर ली थी। तथापि मोक्षलक्ष्मी साध्य करने मे उत्सुक होने से वह सभी को तिनके के समान गिनने लगा। वे उद्यानमे विहारलीला, वापीओ मे जलक्रीडा, गंधर्व के संगीत का अवलोकन, हाथी, घोड़े वगैरेह वाहनो की विचित्र गति का दर्शन, वसंत के कौमुदी के महोत्सव जैसा क्रीडा उत्सव का निरीक्षण, नाटकादिक दस रूपक का अभिनय का उत्सव, स्वर्ग के विमान जैसे महलो मे निवास और विचित्र वस्त्रों के वेष, अंगराग और आभूषण का धारण- ये सब मात्र लोकरति का अनुकरण अनुभव था। लेकिन उन्हे रागपूर्वक किसी भी प्रकार की अनुभूति नहीं थी। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत करने के बाद विवेकी राजा ने चित्तरक्ष नाम के गुरु के चरणो मे जाकर दीक्षा ग्रहण की। बाद मे अर्हत की भक्ति वगैरेह आराधना द्वारा तीर्थकरनामकर्म बांधकर मृत्यु को प्राप्त करके प्राणत देवलोक मे पुष्पोत्तर विमान मे देवता हुए।

इस जंबूद्विप मे दक्षिण भरतार्द्ध के बारे मे इक्ष्वाकुवंशरूपी पर्वत की भूमि मे अयोध्या नाम की एक उत्तम नगरी थी। उसके आसपास चारों ओर निर्मल जल की एक खाई बनाई गई, वह मानो रति के समय मे जिसकी केशराशि खूली लंबी रमणी के केश जैसी वह नगरी शोभा दे रही थी। उसमे अच्छे निष्क्रम और प्रवेशवाले, उत्तम संधिवाले, अर्थवाले और अच्छी भूमिकावाले श्रीमंतो के देवालय नाटक की तरह शोभा दे रहे थे। उन गृहकी उपरी सतह पर लगाई हुई सोने की जालीयाँ मानो प्रत्येक गृहलक्ष्मी के मुकुट हो वैसी प्रकाशित हो रही थी। उसमे जैन देवालय अर्हत प्रभू के पूजा के पुष्पो की सुगंध को बहाकर ले जानेवाला पवन, अमृत पान की तरह मानों लोगो की उष्णता हर लेता था।

उस अयोध्या नगरी मे अधिक पराक्रमों द्वारा सिंह जैसा और नरसिंहो मे अग्रसर है ऐसा सिंहसेन नाम का राजा राज्य करता था। अपना कल्याण करने की इच्छा से जिस तरह स्वयं को देव के समीप रख देते है ठीक उसी तरह बहुत से राजा भक्ति द्वारा उसे उत्तम भेट उपहार देते थे। किरणों से चंद्र की तरह गुणीजनो मे अग्रणीय वह राजा अपने उज्ज्वल गुणों से जगत को प्रसन्न कर रहा था। योग्यता मे विचक्षण ऐसा वह राजा, सेवा करने आनेवाले राजपुत्रो की तरह धर्म, अर्थ और काम को सभी लोगो

की योग्यतानुसार धारण करता था। उसे धर्म की निवासभूमि और शील तथा यश के द्वारा शोभा देती ऐसी सुयशा नाम की एक रानी थी। तीनों जगत को पवित्र करनेवाली गंगा की तरह माता के, पिता के और श्वसुर कुल को वह पवित्र कर रही थी। उसके मुख का प्रतिनिधित्व चंद्र कर रहा था, कमल उसके नेत्रों का अनुज (छोटा) बंधु था, शंख उसके कण्ठ का चित्र था, कमलनाल (दंड) उसकी दो भुजाएँ उसकी सहेलियाँ जैसी थी, कलश उसके स्तनों का कुटुंबी थी, विदर (अुदर) उसके नाभि का पुत्र था, उसके नितंब का प्रतिबिंब नदी के तट की भूमि थी, कदली उसके ऊर की वह छोटी बहन थी और कमल उसके अनुचर जैसा था। सभी अंगों में रमणीयता उस सुंदरी में थी उसमें क्या नहीं था ? इस ओर प्राणत देवलोक में पद्मरथ राजा जीव ने सुखमग्न होकर अपना उत्कृष्ट स्थितिवाला पूर्ण आयुष्य निर्गमन किया। वहाँ से श्रावणमास की कृष्ण सप्तमी के दिन रेवती नक्षत्र में आने पर च्यवन करके उस सुयशा रानी के उदर में अवतरित हुआ। उस समय सुख से सोये हुए देवीने रात्रि अवशेष काल में अर्हत जन्म को सूचित करनेवाले हाथी वगैरेह चौदह महास्वप्न देखे। बाद में अनुक्रम में वैशाख मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन पुश्य नक्षत्र में सुयशा देवीने सींचाणा (बाज) पक्षी के चिन्हवाले सुवर्णवर्णी कुमार को जन्म दिया। ऊर्ध्वलोक में से, अधोलोक में से और रुचक द्वीप से छप्पन दिक्कुमारीयोंने आकर प्रभु का सूतिकर्म किया, तुरंत सौधर्म कल्प के इंद्र वहाँ आये और प्रभु को प्रणाम करके हाथ में लेकर आकाशमार्ग से मेरुपर्वत के शिखर पर गये। वहाँ अतिपांडुकबला नाम की शिला पर उत्संग में प्रभु को रखकर सिंहासन पर वे बैठे। बाद में अच्युत इत्यादि तिरसठ इंद्र वहाँ पर आये और उन्होंने तीर्थजल मंगवाया अनुक्रम में प्रभु को स्नान करवाया। बाद में मानो प्रभु को उठाने का श्रम लगा हो उस मरह शक्र इंद्र ने बड़े सारवाले उन प्रभु को ईशान इंद्र के उत्संग में बैठाया और स्वयं स्फटिक के चार वृषभ स्थापित किये उनके शृंग में से जल द्वारा प्रभु के स्नान कराया और देव दुष्यवस्त्र से प्रभु के अंगों को पोछा, चंदनादिक विलेपन अर्चन करके, आरात्रिक उतार कर सौधर्मपतिने निम्नलिखित स्तुति की-

“हे नाथ ! वे लोक जो आपके सामने पृथ्वी पर लौटते हुए धूल के रज कणों से लिप्त हो जाते हैं उन्हें गोशीर्ष चंदन का अनुराग दुर्लभ नहीं है। जो भक्ति द्वारा एक पुष्प आपके मस्तक पर चढ़ाते हैं वे मस्तक पर छत्र धारण करके घूमते हैं। आपके अंगों पर एकबार भी अंगराग किया हो तो वह देवदूष्य वस्त्र को धारण करनेवाला बन जाता है इसमें कोई शंका को स्थान नहीं है। जो आपके गले में एकबार भी पुष्पों की माला चढ़ाता है वह उनके अपने कण्ठ पर देवताओं की स्त्रियों की भुजलताएँ लिपट जाती हैं। जो आपके निर्मल गुणों का वर्णन एकबार भी करता है वे इस लोक में देवताओं की स्त्रियों से गान किये जाते हैं। जो चारु चतुराई से आपके आगे नृत्यादिक चेष्टा करते हैं वे औरावत हाथी के ऊपर आसन बैठने के लिये दुर्लभ नहीं हैं। हे देव ! जो लोग लगातार दिनरात आपके परमात्मस्वरूप का ध्यान करते हैं वे हमेशा इस लोक में सभी के ध्यान में लेने योग्य बन जाते हैं सम्मानित हो जाते हैं। हे प्रभु ! आपके स्नात्र, अंगराग, नेपथ्य और आभूषण वगैरेह धारण करवाने में आपके प्रसाद से हमेशा मेरा अधिकार रहें”।

इस प्रकार से स्तुति करके प्रभु को लेकर सुयशा देवी के पास आकर उनके बगल में जैसे थे वैसे

इंद्र ने रखा। बाद में नंदीश्वर द्विप में जाकर शाश्वत अर्हत की प्रतिमा का अठाई उत्सव किया, शत्रु तथा दूसरे इंद्र अपने-अपने स्थानों पर चले गये। जब प्रभु गर्भ में थे उस समय पिता सिंहसेन ने शत्रुओं के अनंत बल को जीता था। इसलिए प्रभु का अनंतजित ऐसा नाम पड़ा। योगी की तरह ध्यानामृत का पान करते हैं उसी तरह स्तनपान नहीं करनेवाले प्रभु अपने अंगूठे से अमृतपान करते हुए बड़े होने लगे। अनुक्रम में चंद्र की तरह बाल्यावस्था उल्लंघन करके पचास धनुष्य ऊँचे राहगीर की तरह त्यागबुद्धि स्वीकार करते हैं उसी तरह त्यागपन का निश्चय करके अनंतनाथ ने पिताजी की आज्ञा से स्त्रि का परिग्रह (पाणिग्रहण) स्वीकार किया, बाद में पंद्रह लाख वर्ष तक पृथ्वी का पालन करने के बाद सिंहसेन के कुमार अनंतनाथ को दीक्षा लेने का विचार उत्पन्न हुआ। तत्काल सारस्वतादिक लोकांतिक देवताओं ने ब्रह्मदेवलोक में से आकर 'हे देव ! तीर्थ प्रवृत्त करें ऐसा कहा बाद में इंद्र की आज्ञा से कुबेर के प्रेरक जृम्भक देवताओं के द्वारा धन द्वारा प्रभु ने वार्षिक दान दिया। उस दान के अंत में संसार का अंत करने के इच्छुक प्रभु का सुरअसुर और राजाओं ने आकर अभिषेक किया। बाद में (विचित्र) वेष, वस्त्र तथा माला को धारण करके जगत्पति सागरदत्ता नाम की उत्तम शिबिका पर बैठे। शक्रादिक इंद्रोंने जिनके उपर छत्र चामर और पंखे धारण किये हैं। ऐसे प्रभु शिबिका से उठकर सहस्राग्रवन नाम के उद्यान में आये।

वह उद्यान मानो आने जानेवाली खेचर स्त्रियां हो ऐसी झुला झुलने के लिये आसक्त हुई नगर की चतुर स्त्रियां आकुल व्याकुल हो रही थी। उसमें नवीन पल्लवों से लाल हुए और भ्रमररूपी केश को उछालते अशोकवृक्ष मानो मधुपान द्वारा मत्त होकर घूमते हो ऐसा दिखाई दे रहे थे। क्रीडा से श्रान्त बनी नगर स्त्रियों के सभी श्रम को हरण करनेवाले और ऊँचे पल्लवों को घूमाते आम्रवृक्ष मानो पंखा लेकर झुलाते हो ऐसे दिखाई देते थे। मानो वसंतलक्ष्मी की कर्णिकाएँ हो ऐसे कर्णिकर के पुष्पों से मानो सुवर्ण के तिलक हो ऐसे कांचनवर्णी तिलक वृक्ष द्वारा तह उद्यान बहुत सुंदर दिखाई देता था। कोयल का आवाज मानो प्रभु का स्वागत कर रहा है ऐसे उस उद्यान में उत्सुक होकर मानो जगत के मन में प्रवेश करते हो वैसे जगत्पति प्रभु ने प्रवेश किया। बाद में इंद्र के हाथ के सहारे सागरदत्ता नाम की शिबिका में से उतरकर प्रभु ने अलंकार वगैरेह का त्याग किया और वैशाख मास की कृष्ण चतुर्दशी के रेवती नक्षत्र में अपराह्न काल में छह का तप करके एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली। बाद में इंद्रादिक देवता प्रभु को वंदन करके कृतकृत्य होकर अपने-अपने स्थानों पर गये। दूसरे दिन वर्द्धमान नगर में विजयराम के मंदिर के बारे में चौदहवें अर्हत ने परम अन्न (क्षीर) द्वारा पारणा किया। वहाँ देवताओं ने वसुधारादिक पांच दिव्य किये और प्रभु के चरणन्यास की जगह विजयराम ने एक रत्नमयपीठ बनवाई। बाद में कपट रहित ऐसे छद्मस्थ में प्रभु उस स्थान से निकलकर परिषह सहन करते-करते विहार करने के लिये प्रवृत्त हुए।

इस जंबूद्विप में पूर्वविदेह के बार में परमानंद की जन्मभूमिरूपी नंदपुरी नाम की एक सुंदर पुरी थी। उसमें शत्रुओं की स्त्रियों को शोक देनेवाला और अशोकवृक्ष की तरह अपने कुलरूपी उद्यान में आभूषणरूपी महाबल नाम का एक राजा था। नगर का चतुर मनुष्य जैसे गांव बसाने के बाद विरक्त

हो जाता है उस तरह बड़े मनवाला वह राजा अनुक्रमे संसारवास से विरक्त हुआ। उससे उस राजाने ऋषभमुनि के चरणकमल में जाकर पांच मुष्टि से केश लोचन किया और चारित्र अंगीकार किया। उद्यान की तरह बड़े फल को देनेवाले चारित्रधर्म का पालन करते हुए वह मृत्यु को प्राप्त होकर वह राजा सहस्रार देवलोक में देवता हुआ था।

उससमय में जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशांबी नाम की एक इंद्रपुरी जैसी एक नगरी थी। उस नगरी में शत्रुओं के तेज को मुद्रांकित करनेवाला और समुद्र जैसा गंभीर समुद्रदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उस रूप द्वारा सुरसुंदरियों के रूप संबंधी अहंकार का हरण करनेवाली और नयनों को आनंद देने के लिये चंद्रिकारूपी नंदा नाम की राणी थी। एकबार वसंत को मलयाचल पवन की तरह वह समुद्रदत्त का मित्र मलयभूमि का राजा चंडशासन वहाँ पर आ पहुँचा। उसे आया हुआ देखकर समुद्रदत्त ने सगे भाई की तरह उसके परिवार सहित उसे भोजन करवाया। उस समय समुद्र को गंगा की तरह उस समुद्रदत्त की पत्नि नंदा, जो नेत्रों को आनंद देनेवाली थी वह मलयपति की आंखों में आ गई। उसे देखकर तुरंत मानो कामदेव के दुःसह अश्रु ने उसे किल से जड़ दिया हो ऐसा वह स्तब्ध बन गया और विप्रलंभ शृंगाररूपी के अग्नि का तीव्र धाम बन गया हो ऐसे पूरे शरीर में पसीना हो गया। मानो प्रेम अंकुरित हुआ हो और सभी अंग पुलकित (रोमांच) हो गया, उसके शरीर के गुणों से मानो आवाज स्वर बदल गया, उसे आलिंगन करने के लिये उत्सुक हो गया हो उस तरह वह कामांध हो गया और अश्रुद्वारा नेत्रों में धुंधलापन आ गया, उसकी प्राप्ति के बिना मानो मृत्यु लाने के लिये इच्छुक बन गया हो ऐसा उसके स्वर लय में दिखने लगा। इस प्रकार सर्व अंगउपांगों में सुंदर ऐसी नंदारानी के अवलोकन से चंडाशासन कुछ-कुछ क्या कामावस्था का अनुभव नहीं किया? जिसकी बुद्धि अस्त हो गई है ऐसा वह कामपीडित राजा समुद्रदत्त के मंदिर में सोया, लेकिन रोगग्रस्त की तरह उसे निद्रा आई नहीं। हमेशा नंदा को प्राप्त करने के उपायों में चिंतीत चंडशासन मित्र के यहाँ कुछ समय तक शत्रु बन के रहा।

इस तरह काफी समय रहने द्वारा समुद्रदत्त का विश्वास संपादन करके एक दिन उस पक्षी की तरह जो द्वार निगल जाता है उसतरह वह चंडशासन नंदा का हरण कर गया। राक्षस की तरह बल और छल धारण करनेवाले उस दुष्ट ने हरण की हुई रानी को वापस लाने में असमर्थ ऐसे समुद्रदत्त के मन में संसार की ओर से वैराग्य उत्पन्न हुआ। हृदय में रहे हुए शूल की तरह बड़े अपमान से पीडित राजा ने श्रेयांस मुनि के पास से दीक्षा ली। मुनिसमय में बड़ी तपस्या की, उसके फलस्वरूप अपनी रानी नंदा का हरण करनेवाला चंडशासन का वध करनेवाला मैं बनूँ ऐसा संकल्प किया। इस प्रकार का संकल्प करके अपरिमित फलवाले तप को परिमित फलवाला करके वह कालयोग में मृत्यु प्राप्त करके सहस्रार देवलोक में देवता हुआ।

काल के कर्म से चंडशासन भी मृत्यु को प्राप्त करके संसार सागर के जलचक्र की भांति अनेक योनियों में भटका। बाद में भरतक्षेत्र में आये पृथ्वीपुर नाम के नगर में विलास राजा की गुणवती रानी के उदर से मधु नाम का पुत्र हुआ। अनुक्रम में वृद्धि होते हुए वह तीस लाख वर्ष के आयुष्यवाला, तमाल

पुष्प की तरह कांतिवाला और पचास धनुष्य ऊँचा मानो जंगम पर्वत हो ऐसा दिखाई देने लगा । बड़ी भुजाओं से मानो दो हाथी की सुंदवाला दिग्वज हो और विशाल वृक्षःस्थल की शोभा से मानो जंगम गिरिराज हो ऐसा दिखाई देता था । लीला द्वारा पृथ्वी पर घूमता हुआ वह मधु के भार को सहन न करनेवाली पृथ्वी पर घूमता हुआ वह मधु के भार को सहन न करनेवाली पृथ्वी घास से भरे गट्टे की तरह झुक जाती थी । पूर्व राजाओं के शस्त्राशस्त्र युद्ध की कथा सुनकर, अपने योग्य समान स्तर का युद्ध करनेवाला को मिलने पर अपनी भुजाओं का पराक्रम के लिये वह शोक कर रहा था । बाद में तीन खंडरूपी अर्धभरतक्षेत्र को एक गाव की तरह जीत कर पराक्रमी उसने अपना नाम चंद्र के ऊपर लिखा, अर्थात् अपनी कीर्ति चंद्रमंडल तक पहुँचाई । चक्र से शत्रुओं केचक्र (समूह) को दबानेवाला इंद्र जैसा पराक्रमी और मनुष्यों में मधु चौथा प्रतिवासुदेव हुआ । उस मधुराजा का उत्कृष्ट भुजारूपी शिखरी द्वारा उग्र शत्रुओं को कुटनेवाला और शत्रुओं की लक्ष्मी को खोखले धातुवाद्य को तोड़नेवाला वह कैटभ नाम का एक भाई था ।

अब उसी समय में द्वारकानगरी में गुणोद्गारा चंद्र जैसा सोम नाम का एक राजा था । उसे मनोहर दर्शना सुदर्शना और चंद्र के समान मुखवाली सीता नाम की दो पत्नियाँ थी । अब महाबल राजा का जीव जो सहस्रार देवलोक में देवता हुआ था वह वहाँ से च्यवन करके सुदर्शना देवी के उदर में अवतरित हुआ, उस समय देवी सुदर्शना ने रात्रि के शेष भाग में बलभद्र के जन्म को सूचित करनेवाले चार महास्वप्न देखे । अनुक्रम में नौ मास साढ़े सात दिनों के पश्चात् सुदर्शना देवी ने चंद्र समान कांतिवाले एक पुत्र को जन्म दिया । उसकी बधाई सुनकर बड़े उत्सव द्वारा याचक वर्ग को कृतार्थ करते हुए सोमराजा ने उसका सुप्रभ ऐसा नाम रखा । समुद्रदत्त का जीव जो देवगति में था वह भी आयुष्य पूर्ण होने पर कालक्रम में सहस्रार देवलोक में से च्यवन करके सीता रानी की कुक्षि में अवतरित हुआ । उस समय सुख से सोयी हुई सीतादेवी ने रात्रि के शेषभाग में वासुदेव जन्म को सूचित करनेवाले सात स्वप्नों को मुख में प्रवेश करते हुए देखा । पूर्ण समय होने पर नीलमणि की कांतिवाला और सर्व लक्षणयुक्त पुत्र को उसने जन्म दिया । उनके पिता सोमराजा ने शुभ दिन चौथे वासुदेव को पुरुषोत्तम ऐसा यथार्थ नाम रखा ।

नीले और पीत वस्त्र को धारण करनेवाले और भुजाओं में ताड़ और धनुष्य रखनेवाले दोनों भाई मानो जुड़वा हुए हो वैसे प्रीति के साथ-साथ घूमते थे । आचार्य को केवल निमित्त मात्र बनाकर उन्होंने सभी कलाएँ सिख ली । वैसे महात्माओं के पूर्व जन्म के पुण्यों का ही प्रभाव होता है । बड़े लडाकू भी क्रीडा में उनके आघात को वे सहन नहीं कर सकते हैं । क्योंकि हाथी को मात्र स्पर्श करते-करते और साप को सुघंते-सुघंते अन्यो का हनन कर देते हैं । बलद्वारा वे पवन जैसे वे दोनों भाई अनुक्रम में देहलक्ष्मी का मानो लीलावन हो ऐसे अंगों को शोभायमान यौवन प्राप्त की देवताओं ने दोनों नररत्नों में बड़े भाई (बलभद्रको) हल वगैरेह और छोटे भाई (वासुदेवको) शाङ्ग धनुष्य वगैरेह विजयायुध अर्पण किया । कलह करवाने में निपुण ऐसे नारदजी महाबलवान ऐसे वे बलभद्र और वासुदेव को देखकर प्रतिवासुदेव मधु के मंदिर में आये । कार्य को जाननेवाले मधु ने नारद को अर्ध

देकर प्रणाम करके कहा—“हे महामुनि ! आपका स्वागत है ! सद्भाग्य योग से आज आप हमारे दृष्टिमार्ग में आये हैं । इस भरतार्द्ध के सभी राजा और मागध, वरदाम और प्रभास के अधिप देवता भी मेरे सेवक हैं, इसलिए हे नारद ! जिस वस्तु से या देश से आपका प्रयोजन हो वह निःशंक होकर कहें, मैं आपको दूँगा ।” नारद ने कहा—“मुझे किसी वस्तु का प्रयोजन नहीं है, उसी तरह कोई भी देश लेने की मेरी इच्छा नहीं है” मैं केवल क्रीडा करता हुआ इस ओर आ गया हूँ । लेकिन अरे मधुराजा ! ‘मैं अर्द्ध भरत का स्वामी हूँ’ ऐसी बड़ी शोखीमार रहे हो, क्योंकि बंदीजनो का सभी अर्थवाद कुछ भी यथार्थ नहीं होता है । बंदीजन धन के लोभ से जिसकी स्तुति करते हैं वे मनुष्य यदि बुद्धिमान हो तो उसे शरमाना चाहिए, लेकिन उसमें प्रतीति रखनी नहीं चाहिए, क्योंकि इस जगत में बलवान सभी बलवान और बड़ों से बड़े भी दिखाई देते हैं, क्योंकि बहुरत्ना वसुन्धरा है ।”

नारद के ऐसे वचन सुनकर शमीवृक्ष में अग्नि उत्पन्न होता है उसी तरह मधुराजा के हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ, इसलिए अधरो को दंश करता हुआ उसने तत्काल नारद से कहा—“हे नारद ! इस भरतार्द्ध में गंगा से बड़ी नदी कौनसी है ? और वैताढ्य पर्वत से बड़ा पर्वत कौनसा है ? उसी तरह मुझ से अधिक बलवान भी कौन है ? हे नारद ! जिसे आप मुझसे अधिक बलवान समजते हो तो उसका तत्काल नाम बतलाईये कौन है ? जिससे हाथी के बच्चे को अष्टापद पराक्रम दिखाते हैं वैसे मैं भी उसे अपना पराक्रम दिखाऊँ अरे द्विज ! क्या कोई मदोन्मत ने अथवा प्रमादि ने आपकी अवज्ञा की है कि जिससे उसकी स्तुति करने के विचार से आप अपना वध करवाना चाहते हो ?” नारद ने कहा—“मैं कोई मदमत या प्रमादी पुरुष के पास नहीं जाता हूँ, तो उससे मेरी क्या अवज्ञा हो सकती है ? लेकिन आपने आपकी सभा में कहा ‘मैं अर्द्ध भरत का स्वामी हूँ’ ऐसा आज आप बोले हैं फिर दुबारा कभी बोलना नहीं, क्योंकि उससे आप हास्यास्पद बनेंगे । हाल ही में द्वारका नगरी में सोमराजा के घर सुप्रभ पुरुषोत्तम नाम के दो पुत्र हुए हैं, उसे क्या आपने कानों से सुना नहीं है ? बड़े बलवान ओर परस्पर प्रीतिवाले वे दोनों महाबाहु मानो मूर्तिमान पवन और अग्नि जैसे दुःसह्य हैं, कुतुहल से शक्र और इशान इंद्र ने मानो स्वर्ग में से उतरकर अवतरित हुए हो वैसे वे मात्र एक भुजा द्वारा समुद्र सहित पृथ्वी का उद्धार कर सकते हैं वैसे हैं । महावन में सिंह की भांति जहाँ तक वे इस भरतक्षेत्र में रहे हुए हैं, वहाँ तक मदांध हाथी की तरह आप अज्ञान से बेकार की गर्जना क्यों कर रहे हो ?”

ऐसे नारद के वचन सुनकर क्रोधित लाल नेत्रों से और दांतों द्वारा दांतों को घिसता हुआ मधुराजा मानो द्वंदयुद्ध करने के इच्छुक बोला—“आप कहते हैं वह सत्य है तो आज आपको युद्ध देखने के लिये और यमराज की स्वेच्छा क्रीडा करवाने का मैं आपको आमंत्रित करता हूँ और सोम, सुप्रभ तथा पुरुषोत्तम बिना का द्वारका राज्य करता हूँ, तो आप उस युद्ध को तटस्थ रहकर अवलोकन करें” इस प्रकार कहकर नारदमुनि का विसर्जन करके । बाद में उसने अपने एक दूत को एकांत में बुलवाकर समजाकर सोमराजा और उसके पुत्रों की ओर बिदा किया, वह वेगवान दूत द्वारका पहुँचकर पुत्रों सहित सभी में बैठे सोमराजा के पास आकर और वह पराक्रमी कहने लगा ‘दूत कभी पराक्रम रहित भी होता है फिर भी वह अपने स्वामी के पराक्रम से पराक्रमी कहलाता है ।’ दूतने कहा—गर्विष्ठो का गर्व हरण

करनेवाला, विनीत पर वात्सल्य रखनेवाला, प्रचंड भुजबल से सभी का विजय करनेवाला, क्षत्रियव्रतरूप महाधनवान, दक्षिण भरतावर्द्ध में रहे हुए कुलीन राजाओरुपी राजहंस जिसके चरणरूप कमल के दास की तरह सेवा करते हैं, वैताळ्य गिरि की दक्षिण श्रेणी पर रहनेवाले विद्याधरो के राजा जिसे दंड देते हैं और मानो दुसरे इंद्र हो उस तरह जो प्रचंड आज्ञा को प्रवृत्त कर रहे हो ऐसे अर्द्ध भरतक्षेत्ररुपी उद्यान में मधु (वसंत) समान अर्द्धचक्री मधुनाम का राजा है उसने तुम्हें शिक्षा देने के लिये मुझे भेजा है, वह आप सावधान होकर सुने। उन्होंने कहा है कि 'आप पहले हमारी अत्यंत भक्ति करनेवाले थे, वह हम जानते हैं, लेकिन अब पुत्रों के पराक्रम से आप में परिवर्तन आ गया है, ऐसा लोगों के मुख से हमने सुना है, यदि आप पहले जैसे ही हैं तो और आपकी भक्ति में कोई बदलाव नहीं आया है तो कुंची (चाबी) की मर्यादा करके आपके पास जो-जो अच्छा हो वह स्वामी को दंड के तौर पर लौटा दें। क्योंकि स्वामी के प्रसाद से आपको और दुसरा अधिक भी मिल जायेगा। देखिये सूर्य जितना जल लेता है उससे कई अधिक वापस देता है और स्वामी की अवकृपा हुई तो आपका सर्वस्व विनाश हो जायेगा, क्योंकि जब स्वामी रोष धारण करते हैं तो मानो भयभीत होकर लक्ष्मी भी वहाँ से चली जाती है। यदि आप अपने स्वामी के साथ विरोध करेंगे तो आप संपत्ति से दूर हो जायेंगे साथ ही साथ स्त्रि, पुत्र, मित्रों से भी दूर रहकर जिवित भी नहीं रहेंगे इसलिये हे राजन् ! स्वामी की आज्ञा का पालन करते हुए मर्यादा पालन करें और श्वान जैसे तुम्हारे चुगलखोर लोगो की वाणी निष्फल बने'

ऐसे दूत के वचन सुनकर पुरुषोत्तम कुमार गुप्ते भरे कठोर वचन से बोले—“हे दूत ! तुम दूत हो इसलिए अवध्य हो, इसलिए ऐसे कटु वचन बोल रहे हो, लेकिन ऐसे वचन बोलनेवाले तुम और तुमसे ऐसे वचन बुलवानेवाले तुम्हारे स्वामी क्या उन्मत्त हो गये हो ? मत बन गये हो ? प्रमत्त हैं ? या पिशाच ग्रहोसे ग्रसित हैं। जैसे बच्चे खेल में राजा बनकर खेलते हैं, उसी तरह तुम्हारा मूढ स्वामी सभी का स्वामी बनना चाहता है। लेकिन उस दुर्मद राजा को हमने कभी भी स्वामी के तौर पर स्वीकार नहीं किया है। इसके बाद भी वह अपनी इच्छा से, वचनानुसार होता है तो अपने आप इंद्र क्यों नहीं बन जाता है ? अपने बड़े राज्य के बल से यदि वह हमारे पर चढ़ाई करके आयेगा तो उसे समुद्र की लहरों की भांति किनारे पर रही हुई मच्छलीयों की तरह वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। हे दूत ! जाओ, दंड की इच्छावाले तुम्हारे स्वामी को युद्ध करने के लिये भेजो, जिससे उसके प्राणों के साथ-साथ उसकी दासी जैसी लक्ष्मी का भी मैं बलात्कार करके ग्रहण कर शकु।”

इस प्रकार पुरुषोत्तम वासुदेव के वचन सुनकर गुप्ते से क्रोधित हुआ तुरंत वहाँ से निकलकर अपने स्वामी के पास आकर दुःख से कहने योग्य वे सभी वचन आकर राजा से कहे— वासुदेव के ऐसे वचन सुनकर मेघ गर्जना से अष्टापद को क्रोध चढता है उस तरह मधुराजा को गुस्सा आया। तत्काल जिसके नाद से भयभीत खेचर स्त्रियाँ ने कर्णद्वार ढक दिये हैं ऐसी भयंकर ध्वनिवाली रणयात्रा दुंदुभि बजाकर और तुरंत ही मुगुटबद्ध राजा, महापराक्रमी लडाकू, सेनापति, अमात्य, दूसरे सामंत और मानो उसकी दुसरी मूर्ति हो ऐसे रणपंडित सैनिकों को साथ लेकर मायास्वरुपी देवकी तरह मधुराजाने वहाँ से प्रस्थान किया। उस समय दुर्निमित्तसूचक अपशुकन होने लगे, तथापि वह दुर्मद राजा उनकी

अवगणना करता हुआ मानो कालपाश से आकर्षित ऐसा तत्काल देश की सीमा पर आ पहुँचा। उसे वहाँ आया देखकर उत्तम पारावत पक्षी की तरह वेग से पुरुषोत्तम, वासुदेव सोम, सुप्रभ, सेनापति और सेना परिवार लेकर सामने आ गया। तत्काल दोनों ओर के कुछ सैनिक ऊटों पर बैठ कवच और धनुष्य ग्रहण किये। बाद में प्रलयकाल करनेवाले और रुधिर पान करने के लिए उत्सुक ऐसे बाण राक्षसों की तरह उड़-उड़ कर ऊपर से गिरने लगे। महावतो के प्रेरक ऐसे चार दांतवाले गजेंद्र, सामने आते थे और वापस लौटते समय अपने दांतों द्वारा युद्ध करने लगे। एक ओर भाले, दुसरी ओर मुदगर और हाथ में खड्ग धारण करके घुड़स्वार अपने अश्वों को जल्दी युद्ध करवाने लगे। अति घोर ध्वनि से जगत को सुना कर देनेवाले रथ, भेद पाते ही सिंधु के किनारे की तरह परस्पर टकराने लगे और ढाल को धारण करनेवाले पादचारी (पैदल) वीर लडाकू परस्पर ढाल टकराकर आमने-सामने खड्ग लेकर खड़े रहने लगे। थोड़ी देर में प्रचंड उत्पातो के पवन की तरह बड़े वन को उखाड़ फेकते हैं तोड़ डालते हैं उस तरह मधुराजा की सेना ने वासुदेव की सेना तोड़ डाली। उस समय जिसके पिछे के रथ में बैठे बलभद्र बैठे हैं ऐसे वासुदेव ने शत्रुओं के मृत्यु को सूचित करनेवाला पांचजन्य नाम का शंख फूँका। उसके नाद से मधुराजा के सैनिक त्रस्त हो गये, कुछ मुर्छित हो गये, कुछ पृथ्वी पर गिर गये।

इस तरह अपनी सेना की तितर-बितर व्याकुल होते देखकर मधु ने हाथ में धनुष्य लेकर वासुदेव को स्पर्धक की तरह ललकारा तत्काल वासुदेव अपना शाङ्ग धनुष्य का नाद करके उसके प्रतिध्वनि से आकाशभूमि गूँज कर दि। जिस तरह वादि (गारुडी) लोग परस्पर मारने के लिये पिटारे में से निकलकर सर्प छोड़ते हैं उस प्रकार दोनों वीर भाथे में से खींच-खींचकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। छेदनकला में निपुण ऐसे वे जयलक्ष्मी के मानो प्राण हो वैसे एक दुसरे के बाणों को छेदने लगे। इस तरह काफी समय तक उनके अस्त्र, एक दुसरे के अस्त्रों से एक रस्सी को काटते हो ऐसे काटने लगे। समान पराक्रमी योद्धाओं का युद्ध इसी तरह का होता है। इस तरहके युद्ध में परस्पर समानता होने से मधुराजा अधिक क्रोधित हुआ, इससे कुछ अलग करने के हेतु से उसने चक्र का स्मरण किया उसी समय उसके हाथ में चक्र आकर खड़ा रहा। उसके द्वारा वह पुरुषोत्तम को मारने की इच्छा थी। तथापि अधर फड़फड़ाकर बोला—“अरे बालक ! यहाँ से तु चला जा, बाल्यावस्था में सिंहनी के दांत देखने की इच्छा क्यों रखता है ? तुम्हारे जैसे बालक के वध से मेरे बल का उत्कर्ष नहीं होनेवाला है। क्योंकि कदली के वृक्ष को उखाड़ने से गजेन्द्र के बल का उत्कर्ष नहीं होता है। यह तुम्हारा बड़ा भाई बलभद्र अपने लडाकूओं के साथ मेरे सामने खड़ा है, लेकिन हाथी यदि बड़ा दिखता है तो भी वह पर्वत के सामने छोटा ही है।”

ऐसे मधुराजा के वचन सुनकर पुरुषोत्तम ने हस्ते हुये कहा—“अरे मुखर्व ! सूर्य छोटा होने पर भी वह बड़े अंधकार को मिटा देता है, अग्नि का छोटासा एक तिनका घास के समूह को जलाकर खाक कर देता है, इससे वीर पुरुषों का प्रमाण तेज में है, तेजस्वी की कोई आयु सीमा नहीं होती है इसलिए निःशंक होकर चक्र को छोड़ दो, विलंब मत कर, क्योंकि सर्प भी अपना जहर उगले बिना शांत नहीं होता है।” वासुदेव के वचनों को सुनकर बच्चों की तरह गोंफ को घूमाते हैं उस तरह उंगली में मुद्रिका

की भांति मधुने लीला से उस चक्र को घूमाना शुरू किया और छोड़ा वह चक्र घूमता हुआ अपने उग्र तेज को दर्शाता हुआ आया और अपने चक्रके अग्रभाग से वासुदेव के वक्षःस्थल से टकराकर उन पर प्रहार किया। उस प्रहार से वासुदेव मुर्छित होकर रथ में गिर पड़े उन्हें देखकर बलभद्र छलांग लगाकर उनके रथ में आकर अपनी गोद में लिया। अमृत स्नान जैसे अपने भाई के अंग की सुगंध से वासुदेव तुरंत शुद्धि में आ गये, बाद में मधु के प्राण की तरह उस चक्र को हाथ में ग्रहण किया और मधु के बारे में कहने लगे—“अरे मधु ! अब तुम भी मेरी तरह यहाँ न रहते हुए चले जाओ, तुरंत चले जाओ, क्योंकि कुत्ते के साथ सिंह की स्पर्धा शोभा नहीं दे ती है।” मधु ने कहा—“अरे वासुदेव ! तुम भी चक्र छोड़ो। शरदऋतु के बादलो की तरह सिर्फ गर्जन करके अपनी बढाई क्यों हांक रहे हो ?” इस प्रकार के वचन सुनने के तत्पश्चात् वासुदेव ने चक्र छोड़कर उसका मस्तक ताड़ के फल की भांति पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय देवताओं ने पुरुषोत्तम पर पुण्यवृष्टि की और साधु-साधु शब्दों द्वारा उनकी स्तुति की। उसके साथ ही नाथ ! कहाँ गये ? ऐसे वचनों से मधुराजा के स्वजनो ने शोक किया। मधु का भाई महासुभट कैटभ को भी हरकर सेनापति ने मार डाला। इसलिए शेष सभी राजा तुरंत मधुराजा के पक्ष से वासुदेव के आश्रय में आ गये।

वहाँ से चलकर वासुदेव मागध, वरदाम और प्रभास के अधिपति देव का संपर्क करके दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की समृद्धि को सम्पन्न करके वापस लौटते समय मगध देश में कोटि मनुष्यों से उठाई जानेवाली एक बड़ी शिला दिखाई दी। उसे लीला से उठाकर उसे वासुदेव ने आनंद से टुकन की तरह वापस रख दी। समुद्र के तरंगरूपी हाथों द्वारा जिन्हे अर्घ्य दिया है ऐसे पुरुषोत्तम वासुदेव वहाँ से अपनी द्वारावती नगरी में आये। वहाँ सोमराजा, बलभद्र और दुसरे सभी राजाओं ने मिलकर हर्ष से वासुदेव का अर्द्धचक्रीपन का राज्याभिषेक किया।

अब तीन वर्ष तक छद्मस्थ विहार करके अनंतनाथ प्रभु सहस्राम्रवन नाम के उपवन में फिरसे आये। वहाँ के अशोकवृक्ष के नीचे रहकर ध्यान करनेवाले ऐसे भगवंत के, संसार का मानो मर्म हो ऐसे घातीकर्मों का नाश हुआ, इसलिए बैशाख मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन चंद्र रेवती नक्षत्र में आने पर छठ तप करके प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। बाद में दिव्य समवसरण में बैठकर प्रभु ने देशना दि और यज्ञ वगैरेह पचास गणधरो की स्थापना की। उनके तीर्थ में तीन मुखवाला मगर के वाहनवाला, लाल वर्णवाला, तीन दक्षिण भुजाओं में पद्म, खड्ग और पाश और तीन वाम भुजाओं में नकुल, फलक और अक्षसूत्र धारण करनेवाला पाताल नाम का यक्ष तथा गौरवर्णवाली पद्मपर बैठनेवाली, दो दक्षिण भुजा में खड्ग और पाश और दो वाम भुजा में फलक और अंकुश धारण करनेवाली अंकुशा नाम की देवी—ये दोनों शासन देवता हुए। ये दोनों देवता जिनके पास रहकर उपासना करते हैं ऐसे और मोक्ष की अग्रभूमि में जाननेवाले प्रभु पृथ्वी पर विहार करते करते द्वारकापुरी में आये वहाँ शक्रैन्द्रादिक देवताओं ने छै सौ धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष द्वारा शोभित समवसरण किया। उसमें पूर्व द्वार से प्रवेश करके अनंत प्रभु ने चैत्यवृक्ष की तीन प्रदक्षिणा करके और तीर्थको नमस्कार करके पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठे। बाद में सभी संघ अपनी योग्यता अनुसार आसन ग्रहण करके बैठे। व्यंतर देवताओं ने प्रभु के

तीन प्रतिबिंब तीन दिशाओ मे रत्नमय सिंहासन पर स्थापित किये ।

उद्यान के रक्षको ने चौदहवे तीर्थकर श्री अनंतनाथ प्रभु समवसर्या के खबर पुरुषोत्तम वासुदेव को निवेदन किया । उन्हे साढे बारह कोटि की सोना मोहरे देकर वासुदेव बलभद्र को साथ मे लेकर समवसरण मे आये । वहाँ प्रदक्षिणा पूर्वक प्रभु को प्रणाम करके अग्रज बंधु सहित इंद्र के पिछे बैठे । बाद मे वासुदेव इंद्र और बलभद्र ने खडे होकर फिर से नमस्कार करके भक्ति से गद्गद वाणी से इस प्रकार से स्तुति करने लगे —

“हे प्रभु ! जहाँ तक आप अधीश्वर बने नहीं है, वहाँ तक प्राणीयों के मनरूपी धन को विषयरूपी तस्कर चोरी कर सकते है । लोगोंकी दृष्टि को अंधा करनेवाला और विस्तार पानेवाला क्रोधरूपी अंधकार आपके दर्शनरूप अमृतांजन से दूर भाग जाते है । जब तक अज्ञ प्राणी आपके वचनरूपी मंत्र को सुनते नहीं है तब तक उन्हे मानरूपी भूत लगा रहता है । आपके प्रसाद से मायारूपी, बेडीयों के बंधन तोडकर सरलतारूपी वाहन मे बैठनेवाले प्राणीयों की मुक्ति कुछ भी दूर नहीं है । जैसे-जैसे प्राणी निःस्पृहता से आपकी उपासना करता है, उस-उस तरह आप उसे उत्कृष्ट फल देते है यह बडा आश्चर्य है । इस संसाररूपी सरिता के दो प्रवाह है राग और द्वेष, उसके मध्य मे द्वीप की तरह मध्यस्थभाव मे आपके शासन मे रह सकते है । मोक्षद्वार मे प्रवेश इच्छुक उत्सुक मनवाले प्राणी मोहरूपी अंधकार मे जो दीपकपन धारण करते हो ऐसा दुसरा कोई धारण नहीं करता है, इसलिए हे परमेश्वर ! हमारे पर प्रसन्न रहें जिससे हम विषय-वासना, राग-द्वेष और मोहादिक से अजित बने ।”

इस प्रकार से स्तुति करके इंद्र, वासुदेव और बलभद्र जब विराम करने लगे तब अनंतनाथ प्रभु ने देशना देना आरंभ किया—

“अहो भव्यजीवो ! तत्वों को नहीं जाननेवाले प्राणीयों, मार्ग से अनजान राहगीर की तरह दुस्तर संसाररूपी अरण्य मे भटक रहे है । जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये सात तत्व विद्वान कहते है ।

इसमे प्रथम तत्व जो जीव है वह मुक्त और संसारी इस प्रकार दो प्रकार है वे सभी अनादि (जिसका अंत नहीं है) निधन और ज्ञान दर्शन लक्षणवाले है । उसमें जो मुक्त जीव है वह एक स्वभावी, जन्मादि कलेश से वर्जित और अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य, अनंत आनंद से व्याप्त है संसारी जीव स्थावर और त्रस ऐसे दो प्रकार के है । इन दोनो मे पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद है उसमे पर्याप्तपन के कारणरूपी पर्याप्तियां छै है । उसके आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ऐसे नाम है । वह पर्याप्ति अेकेंद्रिय के चार विकलेंद्रिय के पांच और पंचेन्द्रिय के छ-इस प्रकार के अनुक्रम है । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पांच अेकेंद्रिय स्थावर जीव कहलाते है । पांच मे जो वनस्पतिकाय है वह प्रत्येक और साधारण ऐसे दो प्रकार के है । उसमे प्रत्येक बादर एक ही है और साधारण सुक्ष्म और बादर ऐसे दो प्रकार है ।

त्रस जीव दो इंद्रिय, त्रिइंद्रिय, चतुरइंद्रिय और पंचेन्द्रिय इस तरह चार प्रकार है । उसमे पंचेन्द्रिय संझी और असंझी ऐसे दो प्रकार है जो शिक्षा, उपदेश और आलाप के मानो और मनप्राण को प्रवृत्त करे

वह संज्ञी कहें जाते हैं। और उस विपरीत मन बिना के असंज्ञी कहलाते हैं। स्पर्श, रस, नासिका, नेत्र और श्रवण ये पांच उसके अनुक्रम में विषय हैं। कृमि, शंख, गंडुपद, जलो, कोडी और छीप वगैरेह विविध जीव द्विद्रिय हैं। जू, खटमल, मकोडा और लीख वगैरेह त्रिद्रिय जीव हैं और पतंग, मक्खी, भ्रमर और मच्छर इत्यादि चतुरिन्द्रिय जीव हैं। पंचेद्रिय जीवों में जल, स्थल और आकाशचारी ऐसे तीन प्रकार के तिर्यच जीव, नारकी, मनुष्य और देवता को गिना है। मनोबल, भाषाबल और कायाबल ये तीन बल पांच इन्द्रिय और श्वासोच्छवास तथा आयु ये दस प्राण कहलाते हैं। कायाबल, आयुष्य उच्छवास और स्पर्शेन्द्रिय ये चार प्राण सर्व जीवों में हैं, विकलेन्द्रिय में भाषा और अके अके इन्द्रिय बढ़ने से छ, सात, आठ प्राण होते हैं, असंज्ञी को अके इन्द्रिय बढ़ने से नौ प्राण होते हैं और पूर्ण संज्ञी को मन सहित दस प्राण होते हैं। देवता और नारकी उपपात से उत्पन्न होते हैं, मनुष्य गर्भ से उत्पन्न होते हैं और तिर्यचो जरायु और अंडे से उत्पन्न होते हैं। शेष संमूर्छिम, पंचेद्रिय, विकलेन्द्रिय तथा अकेन्द्रिय संमूर्छिम तरीके से उत्पन्न होते हैं। सर्व संमूर्छिम जीव और नारकी के पापी जीव मात्र नपुंसकवेदी ही होते हैं, देवता स्त्रि और पुरुष ऐसे दो वेदवाले होते हैं और बाकी के गर्भज तिर्यच और मनुष्य स्त्रि पुरुष और नपुंसकवेदी होते हैं।

सर्व जीव व्यवहारी और अव्यवहारी ऐसे दो प्रकार के होते हैं। जो अनादि सूक्ष्म निगोद के जीव हैं वह अव्यवहारी हैं, बाकी के सब व्यवहारी हैं। १ सचित, २ अचित, ३ सचित्ताचित, ४ संवृत, ५ असंवृत, ६ संपृतासंवृत, ७ शीत, ८ उष्ण और शीतोष्ण ऐसे जीव को उपजानेवाली योनियों के नौ प्रकार हैं।

पृथ्वी, अप्, अग्नि और वायुकाय की-प्रत्येक की सात-सात लाख योनि, प्रत्येक वनस्पति की और अनंतकाय की अनुक्रम में दस और चौदह मिलकर चौबीस लाख योनि, विकलेन्द्रिय की छै लाख योनि मनुष्य की चौदह लाख योनि और नारकी, देव तथा तिर्यच पंचेद्रिय की चार-चार लाख योनि इस तरह सब मिलकर चौर्यासी लाख योनिया सभी जीवों के अंदर हैं। वह केवलज्ञानी ने ज्ञान द्वारा देखी हुई है।

अकेन्द्रिय सूक्ष्म और बादर, पंचेद्रिय सत्री और असत्री तथा दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय और चौरेंद्रिय से सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त मिलकर जीवों के मूल चौदा भेद जिनेश्वर ने कहे हैं और उसकी मार्गणा भी १ गति, २ इन्द्रिय, ३ काय, ४ योग, ५ वेद, ६ ज्ञान, ७ कषाय, ८ संयम, ९ आहार, १० दृष्टि, ११ लेख्या, १२ भव्य, १३ सम्यक्त्व, १४ संज्ञी-ऐसी चौदा कही गई हैं। उस तहर सर्व जीवों के गुणस्थान १ मिथ्यादृष्टि, २ सास्वादन सम्यग्दृष्टि, ३ मिश्र दर्शन, गुणस्थान, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५ विरताविरत (देशविरत), ६ प्रमत, ७ अप्रमत, ८ निवृत्तिबादर, ९ अनिवृत्तिबादर, १० सूक्ष्म संपराय, ११ उपज्ञांत मोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगी और १४ अयोगी ऐसे चौदा कहे गये हैं।

१ मिथ्यादर्शन का उदयसे स्वयं मिथ्यादृष्टि होता है, परंतु भद्रकपनादिक की अपेक्षा से वह मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहलाता है। २ मिथ्यात्व का अनुदय भाव में प्रवृत्त जीव के अनंतानुबंधी का

उदय होने से सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक होती है। उसका उत्कृष्ट छै आवली का काल है। ३ समकित और मिथ्यात्व के संयोग से अंतर्मुहूर्त की स्थितिवाला मिश्रदर्शन नाम का गुणस्थानक होता है। ४ अप्रत्याख्यानि के कषायो के उदय से, परंतु अनंतानुबंधी कषायो के क्षय, उपशम के क्षयोपशम से अविरत सम्यग् दृष्टिनामका गुणस्थानक होता है। ५ प्रत्याख्यानी कषायो के उदय से विरताविरत (देशविरति) नाम का गुणस्थानक होता है। ६-७ संयम (सर्वविरति) को प्राप्त करने के बाद भी उसमे जो प्रमाद करते हैं वह प्रमत्तसंयत नाम का छठे गुणस्थानक पर है और जो प्रमाद करते नहीं हैं वे अप्रमत्तसंयत नाम के सातवे गुणस्थान पर है। ये दोनो गुणस्थान परस्पर परावृत्ति करके अंतर्मुहूर्त की स्थितिवाले हैं। ८ जो गुणस्थान की प्राप्ति होनेसे कर्मों की स्थितिघात वगैरेह अपूर्व तरीके से होता है वह अपूर्वकरण आठवा गुणस्थानक है, उसमे प्राप्त हुऐ मुनि उपशमश्रेणी पर अथवा क्षपक श्रेणी पर आरुढ होते हैं, इसी तरह ये गुणठाने मे प्रवेश हुऐ मुनियों के परस्पर बादर कषायो के परिणाम निवृत्ति प्राप्त होते हैं, इसलिए उसका निवृत्तिबादर ऐसा नाम है। ९ जिन गुणस्थान पर एक समय मे साथ मे चढे हुऐ मुनियों के परस्पर बादर कषायो के बिना वर्ते हुए परिणामो मे फेर बदल नहीं होता है सभी के एक समान परिणाम जहाँ दिखाई देते हैं वह अनिवृत्तिबादर नामका नौवा गुणस्थानक है। उसकी प्राप्तिवाले मुनि उपशम श्रेणी के क्षपकश्रेणी पर आरुढ होते हैं। १० पहले नौहवे गुणठाने मे लोभ नाम का कषाय सूक्ष्म कीटिरूप किया हुआ है उसे वेदता सूक्ष्मसंपराय नामका दसवा गुणस्थानक होता है, उसमे प्राप्त हुऐ मुनि भी उपशम श्रेणी के क्षपक श्रेणी पर आरुढ होते हैं। ११ मोह का उपशम होने से उपशांतमोह गुणस्थानक प्राप्त होता है और १२ मोह का क्षय करने से क्षीणमोह गुण स्थानक प्राप्त होता है। १३ घातीकर्म के क्षय होने से केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है वह सयोगी केवली नाम का तेरहवा गुणस्थानक है, १४ मन वचन, काया के योग का क्षय होने से अयोगी केवली नाम का चौदहवा गुणस्थानक प्राप्त होता है। इस प्रकार जीवतत्व का स्वरूप जानना चाहिए।

अब अजीव तत्व का स्वरूप कहते हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और पुद्गलास्तिकाय ये पांच अजिव द्रव्य जीव द्रव्य सहित करने से षडद्रव्य होते हैं उन षडद्रव्यो मे काल बिना पांचद्रव्यो का प्रदेश समूह है। जीव बिना द्रव्य अचेतन और अकर्ता है। काल बिना बाकी के द्रव्य अस्तिकाय है और पुद्गल बिना शेष द्रव्य अरुपी है। छै द्रव्य उत्पादव्यय और ध्रौव्य स्वरुपी है। पुद्गल स्पर्श, रस, गंध और वर्ण रूप है। उसके अणु स्कंध ऐसे दो प्रकार है अणु अबद्ध है और स्कंध बद्ध है वह वर्ण, रस, शब्द, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, स्पर्श, अंधकार, आतप, उद्योत, प्रभा और छायारुपी परिणाम होता है और वे ज्ञानावरणीयादि कर्म पांच प्रकार के शरीर मन, भाषा, गमनादि चेष्टा और श्वासोच्छवास के दायक है, वैसे ही सुख, दुख, जिवित और मृत्युरुपी उपग्रह के करनेवाले हैं। इस लोक मे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ये तीनो प्रत्येक मे एक एक मे द्रव्य है और वे सर्वदा अमूर्त, निष्क्रिय और स्थिर है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय एक जीवन प्रदेश

जितने असंख्य प्रदेशवाले और सकल लोकव्यापी हैं उसमें अपनी हलन चलन में प्रवृत्त जीवों तथा पुद्गलों को सभी प्रकार की गमन क्रिया मत्स्यादिक गति को जल की तरह धर्मास्तिकाय सहायकारी होते हैं और जीव तथा पुद्गल अपनी तरह से स्थिर होते हैं तब राहगीर के छाया की तरह अधर्मास्तिकाय सहायकारी होते हैं। सर्वव्यापी, निज स्वरूपाधार रहे हुए, सर्व वस्तुओं को आधार देनेवाले, लोकांलोकव्यापी, अनंत प्रदेशी आकाशास्तिकाय हैं। लोकाकाशके प्रदेश में अभिन्नपन में रहे हुए काल के अणु (समय) हैं उन भावों का परिवर्तन करता है उससे मुख्य काल वह कहलाता है और ज्योतिषशास्त्र में समयादिक से जिसका मान किया जाता है उसे कालवेत्ता व्यवहारिक काल कहते हैं। इस जगत् में सभी पदार्थ नवीन और जीर्णरूप से परावर्तन पाते हैं वह काल का ही चेष्टा है। कालक्रीड़ा की विडंबना से सर्व पदार्थ वर्तमान में भूतकाल की स्थिति प्राप्त करते हैं और भविष्य के वर्तमान की स्थिति पाते हैं। इस तरह से इस अजीवतत्त्व का स्वरूप समझे।

मन, वचन और काया का वर्तन वह आश्रय है। उसमें शुभ वर्तन वह पुण्यबंधन का हेतु है और अशुभ वर्तन वह पाप का बंधन का हेतु है। वह तीसरा आश्रयतत्त्व समझे। सर्व आश्रयों के शेष करने का कारण वह संवर कहलाता है और संसार हेतुभूत जो कर्म उसकी जरूरत (विनाश) उसे निर्जरा कहते हैं। इस प्रकार से चौथी और पांचवीं संवर और निर्जरातत्त्व हैं।

सकषायी जीव कर्मयोग पुद्गलों को ग्रहण करता है उसे वह बंधन कहलाता है। वह बंधन जीव के परतंत्रता का कारण बनता है। प्रकृति स्थिति, अनुभव और प्रदेश ये चार उसके भेद हैं। उसमें प्रकृति वह स्वभाव कहलाती है। वे ज्ञानावरणीयादिक भेदों से आठ प्रकार की हैं ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय—ये आठ मूल प्रकृतियां कहलाती हैं। जघन्य को उत्कृष्ट भेदों के काल का जो नियम वह स्थिति कहलाती है। कर्म का जो विपाक (परिणाम) वह अनुभव है और उसके अंश की कल्पना वह प्रदेश है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच बंधन हेतु हैं। इस तरह बंधनतत्त्व का स्वरूप समझे। उपर कहे हुए बंधन हेतु के अभाव में, धातीकर्म का क्षय होता है, इसलिए जीव को केवलज्ञानी की उपज होती है, बाद में देवताओं, राजाओं के जो सुख तीन लोक में हैं वह सुख मोक्ष सुख की संपत्ति के अनंत भाग में भी नहीं है इति मोक्षतत्त्व।

“इस नौ प्रकार के तत्वों को जाननेवाला मनुष्य समुद्र तैराकीओं की तरह वह कभी भी इस संसाररूपी समुद्र में डूबता नहीं है।”

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर कई लोगो ने दीक्षा ली, पुरुषोत्तम वासुदेव समकित पाये और सुप्रभ बलराम ने श्रावकत्व स्वीकार किया। प्रथम पौरुषी पूर्ण होने पर प्रभु ने देशना से विराम पाया। बाद में यज्ञ नामक गणधर ने उनके चरणपीठ पर बैठकर देशना दी। दूसरी पौरुषी पूर्ण होने पर वे भी देशना से विराम लिया, इसलिए इंद्र, वासुदेव और बलभद्रादिक प्रभु को झुककर अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

वहाँ से अनंतनाथ स्वामी गांव, नगर वगैरेह में घूमकर भव्य जंतुओं को बोध कराते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे। छःसठ हजार महात्मा साधु, नौ सौ चौदा पूर्वधारी, चार हजार तीन सौ अवधिज्ञानी, चार हजार पांच सौ मनःपर्यवज्ञानी, पांच हजार केवलज्ञानी, आठ हजार वैक्रियलब्धिवाले, तीन हजार दो सौ वादलब्धिवाले, बासठ हजार तपस्वी साध्वी, दो लाख छ हजार श्रावक और चार लाख चौदा हजार श्राविकाएँ-इसी तरह केवलज्ञान होने पर तीनवर्ष ऊँचा साढ़े सात लाख वर्ष तक पृथ्वी पर विहार करते हुए प्रभु का यह परिवार बना। बादमें मोक्ष काल नजदीक आने पर प्रभु समेत शिखर गिरिपर पधारे वहाँ एक हजार साधुओं के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मास के अंत में चैत्र शुक्लपंचमी के दिन चंद्र पुश्यनक्षत्र में आने पर अनंत प्रभु उन मुनियों के साथ मोक्ष गये। तुरंत इंद्रोने देवताओं के साथ वहाँ आकर प्रभु का और उनके शिष्यों का निर्वाण महोत्सव किया। कुमारवस्था साढ़े सात लाख वर्ष, राज्यपालन में पंदरह लाख वर्ष और दीक्षा में साढ़े सात लाख वर्ष मिलकर तीस लाख वर्ष का अनंत प्रभु आयुष्य पूर्ण हुआ। विमलस्वामी के निर्वाण से नौ सागरोपम अतिक्रमण होने के बाद अनंतस्वामी का निर्वाण हुआ।

पुरुषोत्तम वासुदेव तीस लाख वर्ष का आयुष्य भोग कर, उग्र पापकर्म करने के कारण तमःप्रभा नामक छठवीं नरकभूमि में गये। कुमारवस्था में सात सौ वर्ष, मंडलीकपन में तेरा सौ वर्ष दिग्विजय में अस्सी वर्ष और राज्य में उन्नतीस लाख सत्तान्बे हजार नौसौ बीस वर्ष इस तरह तीस लाख वर्ष का वासुदेव आयुष्य पूर्ण हुआ था। पचपन लाख वर्ष के आयुष्यवाले सुप्रभ बलराम, अपने अनुज भाई के अवसान पश्चात् बहुत दुःखी जीवन व्यतीत करते रहे बाद में अपने लघुबंधु की विपत्ति (मृत्यु) देखकर विरक्त हुए सुप्रभ बलभद्र मृगांकुश मुनि के पास से व्रत ग्रहण करके केवलज्ञान पाकर, अनंत चतुष्टय प्राप्त करके अपुनर्भवस्थान (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थ-पर्वणि

अनंतस्वामीपुरुषोत्तमसुप्रभमधुचरितवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥



श्री धर्मनाथस्वामि भगवान्
हठीभाईनी वाडी तीर्थ, अहमदाबाद, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

रमेश हरिलाल गांधी, बीपीन हरिलाल गांधी, थराद
गाम : पार्ल, मुंबई, महाराष्ट्र

पंचम सर्ग

श्री धर्मनाथ स्वामी, निशुंभ प्रतिवासुदेव,
पुरुषसिंह वासुदेव, सुदर्शन बलदेव चरित्र

धर्मरूपी गंगा का उत्पत्ति हिमालय और कुतीर्थरूपी अंधकार को दूर करने में सूर्यसमान ऐसे श्रीमान् धर्मनाथ के चरणों की शरण में ग्रहण करता हूँ। संसार सागर तैरने में सेतुबंध रूपी तीर्थनाथ के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

घातकीखंड द्वीप के पूर्व महाविदेह में भरतनाम के विजय के बारे में भद्रिल नाम का एक विशाल नगर है। उसमें दृढरथ नाम का राजा था। वह दो दांतोंवाले हस्ती की तरह दृढ भुजाओंवाला वह शोभा दे रहा था। ज्योतिश्वक्र में सूर्य की तरह सभी राजाओं के तेज का हरण कर लिया था और सरिताओं का पात्र जिस तरह समुद्र है उस तरह सभी राजाओं के दंड देने के पात्र था। (अर्थात् सभी राजाओं को दंड दे सकता था) इतना बड़ा साम्राज्य होने पर भी वह विवेकी राजा इंद्र की संपत्ति की आकड़े के तूल की तरह चपल जानकर उसका जरा भी गर्व नहीं करता था। विषय संबंधी सुखों को भोग लिया था। तथापि अतिथि की तरह वह संसारवास में जरा भी आस्था नहीं थी। भोग के बारे में अत्यंत वैराग्यवान और अपने शरीर पर भी निःस्पृह ऐसा दृढरथ राजाने अंत में शरीर के मूल की तरह राज्य को छोड़ दिया और संसारिक महादुःख, रोगों के वैद्यरूपी विमलवाहन नाम के गुरु के पास गये उनके पास से वह रत्नशिरोमणि राजा ने रुचिररूपी मूल्य देकर दुर्लभ ऐसा निर्मल चरित्ररत्न ग्रहण किया। योग की माता तुल्य समता को धारण करते हुए और परीषह को सहन करते हुए उस राजमुनि में बहुत दुस्तप आचरण किया। तीर्थोदक जैसे पवित्र शास्त्ररूप गंडूष (कुल्ले) का आचमन करके विषयरूपी मलेच्छों से दुषित ऐसी अपनी आत्मा को पवित्र किया। अनुक्रम में अर्हत् भक्ति वगेरेह स्थानको की आराधना करके सद्बुद्धिवाले वे मुनिराज ने तीर्थकरनामकर्म प्राप्त कर समाधी से मृत्यु प्राप्त करके वे मुनि वैजयंत विमान में महर्द्धिक देवता हुए।

इस जंबूद्वीप में भारतवर्ष में रत्नाकर जैसा रत्नपुर नाम का एक नगर था। उसमें दोनों तरफ रत्नमय किरणों के जाल के बीच सेतु (पाज) बांधी हो वैसी उपवन की वापिकाएँ शोभा दे रही थी। जगह-जगह अर्हत् के सुवर्णमय चैत्य और दर्पणवाले गृह 'यहाँ हमेशा तीनों पुरुषार्थ उदय पाये हुए हैं' ऐसा सूचित करते थे। रात्रि में जिस नक्षत्रों के प्रतिबिंब गिरते हैं ऐसी मरकत मणिबद्ध मार्गभूमि मानो मोतीयों के स्वस्तिकवाली हो ऐसी दिखाई दे रही थी। वहाँ के बड़े मंदिरों में खूटी के कण्ठ पर वधुजनों ने लटकाने हार कण्ठाभरण का पूर्ण रूप पा रहे थे। उद्यानवापिकाओं से हेमंत, हवेलियों के तीनों ऋतु काल एक साथ वहाँ प्रवृत्त हो रहा था।

उस नगर में तेज द्वारा सूर्य समान, शत्रुरूपी तृणपुंज में अग्नि समान और निर्मल गुणों से निरंतर प्रकाशित भानु नाम का राजा था। समुद्र की तरंगों की तरह गुणों का प्रमाण करने में बृहस्पति भी

समर्थ नहीं थे। उस राजाने अपना एक हाथ (कर) ग्रहण किया है ऐसी कुलवंती और शीलवंती ललना की तरह दुसरे पति को प्राप्त ही नहीं होती थी। उस राजा ने स्वभाव से चंचल ऐसी लक्ष्मी को अपने दृढ़ गुणों (पक्ष की ओर) से बांध कर हथनी की तरह अपने भुजस्तंभो में स्थिर करके रखी थी। सूर्य की तरह प्रौढ़ पराक्रमी उस राजाने दीपक जैसे शत्रु राजाओं के तेज का हरण कर लिया था। अन्य राजाओं को विजयी करने के लिये उसे ललाट पर बल भी नहीं डालना पड़ता था तो फिर धनुष्यपर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रश्न नहीं उठता है।

उस राजा के चरणकमलो की उपासना करने में भ्रमर जैसी और लोकोत्तर में पतिव्रत पालनवाली ऐसी सुव्रता नाम की एक रानी थी। उसके पास कोकिल मधुर आलाप, हंसनी गतिचातुर्य और मृगनी दृष्टिविलास सिखी थी। लज्जा उसकी सहचरी थी। शीललक्ष्मी उस शोभा दे रही थी। कुलीनता उसकी काचली थी। इस तरह यह इसका स्वाभाविक परिवार था। पतिभक्तिरूपी उसका अलंकार था। इसके अलावा हार इत्यादि दुसरे अलंकार उससे अधिक अलंकृत थे। अर्थात् उसके अंगसंग द्वारा अधिक शोभा देते थे। अब वैजयंत नाम के दुसरे अनुतर विमान में रहे हुए दृढरथ राजा का जीव परमसुख में मग्न होकर अपना आयुष्य पूर्ण किया। बाद में वहाँ से च्यवन करके बैशाख मास की शुक्लासप्तमी के दिन पुष्य नक्षत्र में चंद्र आने पर वह जीव सुव्रता रानी के उदर में अवतरित हुआ। उस समय सुव्रता ने तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदा महास्वप्न देखे। अनुक्रम में पूर्ण समय होने पर माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन पुष्य नक्षत्र में वज्र का लांछन (चिन्ह) वाला सुवर्णवर्णी पुत्र को सुव्रता देवी ने जन्म दिया। तुरंत ही भोगंकरा वगेरेह छप्पन दिक्कुमारीयों ने आकर प्रभु और उनकी माता का सुतिका कर्म किया। उसी समय सौधर्मेन्द्र भी पालक विमान में बैठकर वहाँ आये, प्रभु को लेकर मेरुपर्वत पर गये। वहाँ अतिपांडुकबला नाम की शिला के उपर रत्नमय सिंहासन में प्रभु को अपने उत्संग में लेकर इंद्र बैठे। अच्युत वगेरेह तिरसठ इंद्रों ने पवित्र तीर्थजल से विधिपूर्वक प्रभु को स्नात्र करवाया। बाद में इंद्र की गोद में बैठकर सौधर्मेन्द्र ने स्नान करवाया और विलेपन वगेरेह से पूजा करके नीचे की तरह स्तुति करने लगे —

“परम ध्यान करने योग्य स्वरूपवाले और परम ध्यान करनेवाले ऐसे पंदरहवे तीर्थंकर को मेरा नमस्कार है। हे प्रभु! देव और दानव से मैं मनुष्य की बड़ी महता मानता हूँ, क्योंकि तीन लोक को वंदन करने योग्य ऐसे आप मनुष्यपन में प्रगट हुए हो। हे नाथ! मोक्षरूपी साधन को साधने के लिये आपका शिष्यपन ग्रहण करने की इच्छावाले ऐसे मुझे अभी इस दक्षिण भारतवर्ष में मनुष्यपन प्राप्त हो। जिन प्रमादीयों को आपके चरणों के दर्शन नहीं होते हैं ऐसे स्वर्ग सुखी होकर भी उनमें और नारकी जीवों में कोई फरक नहीं है। हे प्रभु! जहाँ तक सूर्य की तरह आपका उदय नहीं हुआ था। वहाँ तक उल्लू पक्षी की तरह कुतीर्थी बोल सकते थे। अब बरसात से सरोवर की तरह आपकी धर्मदिशनारूपी जलद्वारा भरतार्द्ध थोड़े समय में पूर्ण भर जायेगा। बड़ा राजा जिस तरह शत्रु के देश को मुक्त करके राज्य उसे वापस लौटा देता है उस तरह आप अनंतप्राणीयों को मुक्त करके अचल सुख देंगे। हे भगवान! देवलोक में भी भ्रमर की तरह आपके चरणकमल में लीन हुए चित्तद्वारा मेरे दिवस व्यतीत हो ऐसी

कृपा हम पर बनी रहे ।”

शक्रेंद्र ने इस प्रकार स्तुति करके ईशानेंद्र के पास से प्रभु को लेकर सुव्रतादेवी के पास से जैसे लिया था उसी तरह वापस रख दिया । जब प्रभु माता के गर्भ में थे उस समय उन्हें धर्म करने के दोहद हुआ था, इसलिए भानु राजा ने उनका धर्म ऐसा नाम रखा । देवकुमारों के साथ क्रीडा करते प्रभु ने शिशु अवस्था में निर्गमन करके और पैंतालीस धनुष्य उची कायावाले प्रभु यौवन अवस्था में आये । तत्पश्चात् चिरकाल से मातापिता के कौतक को पूर्ण करने के लिये उसी तरह भोग्यकर्मको भोगने के लिये पाणिग्रहण किया । जन्म से ढाई लाख वर्ष जाने के बाद पिता के आग्रह से प्रभु ने राज्य भार ग्रहण किया । पांच लाख वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करके बाद में अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा जानकर प्रभु ने दीक्षा लेने का निर्णय किया । उसी समय ‘हे स्वामी ! तीर्थ प्रवर्तावो’ इस तरह लोकांतिक देवताओं ने आकर प्रार्थना की, इसलिए प्रभुने दीक्षारूपी नांदी के मुखरूप वार्षिक दान देना आरंभ किया । साल के अंत में देवताओं ने अभिषेक किया हुआ **नागदत्ता** नाम की शिबिका पर बैठकर **वप्रकांचन** नाम के रमणीय उद्यान में पधारे ।

उस उद्यान में प्रियंगुलता की मंजरी में भ्रमर गुंजन कर रहे थे । उद्यानपालिकाएँ नागकेशर पुष्पों के आभूषण गूथन में व्यग्र थी । रोहडा के पराग से नगरस्त्रियों के मुख व्याप्त रहते थे । मानो कामदेव के आयुधगृह हो ऐसे डोलर पुष्पों से सुशोभित था । उद्यानपाल के बच्चे लवली (चारोली) लता के पुष्पों को छोटन में व्यग्र हो गये थे । मचकुंद के मकरंदबिंदु द्वारा उसका भूमितल आर्द्र हो रहा था । फुले हुए मरुचक के वृक्षों से मानो मरकत मणि से पृथ्वी बांध दि गई हो ऐसा दिखाई देता था । ऐसे शिशिर ऋतु संबंधी लक्ष्मीमय सुंदर उद्यान में प्रभु ने प्रवेश किया । बाद में माघ मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र में पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ छठ तप करके प्रभुने दीक्षा ली । तीसरे दिन **सोमनपुर** में **धर्मसिंह** राजा के सुंदर गृह में प्रभु ने परमान्न से पारणा किया । वहाँ वसुधारा वगैरेह पांच दिव्य प्रगट हुए और धर्मसिंह राजा ने प्रभु के चरणों की जगह रत्नमय पीठ बनवाई । शरीर में भी अपेक्षा रहित ऐसे जगत्पति पवन की तरह अस्खलितपन से वहाँ से पृथ्वी पर विहार करने के लिये प्रवृत्त हुए ।

जंबूद्वीप के अपर (पश्चिम) विदेहक्षेत्र के बारे में **अशोकानगरी** में **पुरुषवृषभ** नाम का राजा था । वह तत्त्वज्ञानी और सात्विक राजा ने संसार से विरक्त होकर **प्रजापालक** मुनि के पास से दीक्षा ली । दुस्तव तप में सहन करते राजमुनि आयुष्य पूर्ण होने पर कालधर्म प्राप्त होते ही मृत्यु प्राप्त कर, सहस्रार देवलोक में अट्टारह सागरोपम के आयुष्यवाले देवता हुए ।

उस देव के आयुष्य के सोलह सागरोपम जाने के बाद **पोतनपुर** नाम का नगर में **विकट** नाम का एक राजा था । हाथी हाथी को जीत लेते हैं, उस तहर कोई राजसिंह नाम के राजा ने अपने पराक्रम द्वारा उसने रणभूमि में जीत लिया । उस पराजय से लज्जित हुआ विकटराजा ने अपने पुत्र को राज्य सौंप कर **अतिभूति** नाम के मुनि के चरणों में जाकर व्रत लिया । बाद में तीव्र तपस्या करके अंत में उसने ऐसा संकल्प किया कि ‘इस तप के बल से दुसरे भव में राजसिंह का उच्छेद करनेवाला बनू’ इस

प्रकार का संकल्प करके कालयोग में मृत्यु प्राप्त कर वह दूसरे देवलोक में दो सागरोपम का आयुवाला देवता हुआ राजा राजसिंह चिरकाल तक संसार में भटक कर इस भरतक्षेत्र में हरिपुर नाम के नगर में निशुंभ नाम का राजा हुआ। पैंतालीस धनुष्य उंचाई की कायावाला, दस लाख वर्ष का आयुष्यवाला और उग्रशासन प्रवृत्त कृष्णवर्णी वह एक लीलामात्र में दक्षिण भरतार्द्ध को साध कर पांचवा अर्द्धचक्री (प्रतिवासुदेव) कहलाया।

उस अवसर पर भरतखंड के अश्वपुर नाम के नगर में कल्याण के एक स्थानरूपी शिव नाम का एक राजा था। उसे विजया और अंमका नाम की, मानो मूर्तिमान कीर्ति और लक्ष्मी हो ऐसी, दो प्रिय पत्नियां थी। उसमें से एक विजया रानी की कुक्षी में पुरुषवृषभ का जीव सहस्रार देवलोक में से च्यवन करके चार स्वप्नोद्गारा बलभद्र के जन्म को सूचित करता हुआ जीव आकर उत्पन्न हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर विजयादेवी ने मानो शरीरधारी अपने पति का उज्ज्वल यशसमूह हो ऐसे पुत्र को जन्म दिया। शिवराजा ने शुभ दिन पर बड़े उत्सव द्वारा अच्छे दर्शन के कारण पुत्र का सुदर्शन ऐसा नाम रखा।

विकट का जीव दूसरे लोक में से च्यवन करके सात स्वप्नोद्गारा वासुदेव के जन्म को सूचित अंमकारानी के उदर में उत्पन्न हुआ। गर्भसमय पूर्ण होने पर सरिता जिस तरह नीलकमल का जन्म देती है, उसी तरह इंद्रनीलमणि जैसा नीलवर्णी पूर्ण लक्षणा पुत्र को जन्म दिया। यह कुमार अधिक पराक्रमी पुरुषों में सिंहरूप होगा ऐसा मानकर राजाने उसका पुरुषसिंह नाम रखा। धात्रीजनों ने लालन पालन किया ताड़ और गरुड के चिन्हवाले वे दोनों राजकुमार क्रीड़ा करते और नीले तथा पीले वस्त्र धारण करते बढ़ने लगे। जिस तरह अपने द्वारा गढ़े में छिपाये धन द्वारा जब चाहे उसकी प्राप्त कर सकते हैं, उसी तरह वे गुरु को केवल साक्षी रखकर सभी कलाएँ सावधानी से प्राप्त कर ली। अनुक्रम में वे मानो स्वर्ग और भूमि के प्रतिमल्ल हो ऐसे वे दोनों भाई कवच धारण करके शोभा देने लगे और सीधे-सीधे स्नेहधारी वे अश्विनीकुमार की तरह सहोदर रह कर पिता प्रति की अति भक्ति से पदाति की तरह बर्तव्य करने लगे।

एकबार कोई गर्विष्ठ ऐसा सीमा पर के राजा को साधने केलिये शिवराजा ने दिव्य अस्त्र की भांति सुदर्शन और बलभद्र को भेजा। स्नेह के कारण उनके बंधु पुरुषसिंह वासुदेव भी उनके पिछे गये। प्रेम का बंध वज्रलेपन का कार्य करता है। लेकिन बलभद्र ने बड़े प्रयत्नों से वासुदेव को साथ आने से रोका, इसलिये यूथ में से भष्ट हुए हस्ती की तरह वे रास्ते में ही रह गये। विविध विनोद से भ्राता के वियोग का दुःख सहन करते वासुदेव वहाँ रुके हुए थे, उसी समय पिता की ओर से एक पुरुष वहाँ आया और उसने पिता का लेख उनको दिया, इसलिए वासुदेव ने वह लेख मस्तक पर धारण करके वांचन किया। उसमें 'हे वत्स! जल्द यहाँ आ जाओ' ऐसे अक्षरों को देखा, तुरंत संभ्रम में लेख लानेवाले पुरुष से पुछा—हे दूत! हमारे माता पिताश्री सहकुशल तो हैं ना? मुझे जल्द बुलाने का कारण क्या है? दूत ने कहा—'आपके पिताश्री के शरीर में बड़ा दाहज्वर उत्पन्न हुआ है, इसलिये आपको जल्द बुला रहे हैं' पिता के दाहज्वर की खबर सुनकर मानो सात टूकड़े हो गये हो ऐसा घाव लगा हो उस तरह वे

विधुर बन गये और वहाँ से चल दिये, सत्पुरुषों को स्वजनो की पीडा से अधिक दुसरा कोई दुःख नहीं होता है ।

दुसरे दिन वासुदेव अपनी नगरी मे आ गये । जातिवंत को ऐसा दुःख मार्ग मे दावानल जैसा दिखाई देता है । वासुदेव ने जब जवरग्रस्त पिता के घर मे प्रवेश किया । उस समय वहाँ योजित कुटते, उबालते और औषधियो की खोज मे लगे दासजनो को व्यग्र देखा । रसवीर्य के विपाक के जानकार और औषधियों का बलाबल जाननेवाले विचारवान चतुर वैद्य पिता के आस पास बैठे थे, अंगरक्षके हाथकी संज्ञा से कोलाहल शांत करवा रहे थे और द्वारपाल भुकुटी की संज्ञा से वैद्योयो को दूर बैठने की सूचना दे रहे थे । ऐसे गृह मे प्रवेश करके पिता के दुःख मानो ले रहे हो उस तरह वासुदेव उनके दुःख से दुःखी हो गये । बाद मे दोनो हाथों द्वारा चरणस्पर्श करके पिताश्री को प्रणाम किया और नेत्रो मे अश्रुओ के आजाने से पिताश्री को स्नान करवाते हो ऐसे दिखलाई पडने लगे, पुत्र के करस्पर्श से शिवराजा को थोडासा आश्वासन मिला, इष्ट के दर्शन से सुख मिलता है, तो स्पर्श से सुख मिल जाता है तो इसमे कैसा आश्चर्य ! बाद मे शिवराजा बारंबार कर द्वारा पुत्र का स्पर्श करने लगे और उससे मानो शीतलता हुई हो वैसे वे अधिक रोमांचित हुऐ ।

थोडी देर बाद राजाने पुछा—‘हे वत्स ! दावानल के वृक्ष की भांति तुम्हारा उदर दुर्बल कैसे हो गया है और अधर पल्लव (होठ) फिक्के कैसे पड गये है ?’ उस समय वासुदेव का अनुचर बोला—“हे देव ! आपकी ऐसी दारुण दशा सुनकर पूरे वेग से आपको देखने चले है और हस्ती जैसे विंध्याचल का स्मरण करता हुआ तेजी से चलता है उस तरह आपका स्मरण करते हुऐ भक्ति द्वारा भोजन और जल का त्याग करके केवल दो दिन मे मे यहाँ आये है” यह सुनकर द्विगुण दुःखी होकर राजा बोले — “वत्स ! जरख्म पर जरख्म की तरह तुम ऐसा दुसरा अनर्थ क्यो किया ? इसलिए जल्द परिवार सहित भोजन का अवसर संभाले । सभी अर्थ को साधनेवाली काया भोजनद्वारा ही चलती है ।” पिताश्री की बारंबार ऐसी आग्रहभरी आज्ञा होने से मदवाले दंती की तरह उसने दुःख सहित कुछ भोजन किया, परंतु श्रीखंड लिये बिना और वस्त्र पहने बिना दुःख द्वारा तप्त स्थल मे रहे नकुल (नेवले) के जैसी स्थिति को भोगते हुए मात्र भोजन करके दीन हुए सभी परिवार को साथ लेकर अपने वासगृह से पैदल चलकर पिता के वासगृह के पास आये । जब वे पितृगृह मे प्रवेश करनेवाले थे, उसी समय माता के द्वारपालो ने आगे आकर रोते रोते करुणस्वर से वृतांत कहा कि हे कुमार ! रक्षण करे, रक्षण करे अभी महाराजा जिवित है फिर भी देवी अनुचित व्यवसाय कर रही है’ यह सुनकर वासुदेव भ्रमित होकर मातृगृह मे आये । वहाँ माताश्री को निम्नवचन बोलते देखा—

“पति के प्रसाद से बडी रत्नराशि, अनंत सुवर्णरुपा का संचय, मोती, हिरो से जातिवान रत्नो से जडित ऐसे हजारो पोशाक और इसके अलावा जो भी खजाना प्राप्त किया है, वह सभी सात क्षेत्रो मे अर्पण कर दे, कारण कि महामार्ग पर प्रयाण करनेवाले के ये मुख्य पाथेय है । पति के मरण पश्चात् मै क्षणभर भी वैधव्य को सहन नहीं कर सकूंगी, इसलिए हे सेवक ! तुम जल्दी से अग्नि चित्ता सज्ज करो” इस प्रकार के महादुःख उत्पन्न करनेवाले शब्द माताश्री बोल रही थी, उनके पास जाकर

वासुदेव गदगद स्वर से कहा—“अरे ! माता ! माता ! क्या आप भी इस मंद भाग्यवान पुत्र को छोड़ देंगी ? अहा ! मेरा भाग्य कैसा विपरित है कि माता भी ऐसा करने लगी ? इसलिए अंमकमाता बोली—“अरे पुत्र ! तुम्हारे पिता के रोग की मैंने बराबर परीक्षा की है । वह रोग अवश्य तुम्हारे पिता के प्राण लेने ही आया है और ‘विधवा’ ऐसा शब्द सुनने के लिये मैं क्षणभर भी समर्थ नहीं हूँ, इसलिये तुम्हारे पिता के पहले शादी के सुहागन का जोड़ा ओढ़कर चली जाऊँगी और महाराजा शिवराजा की पत्नि होकर तुम्हारे जैसे पांचवे वासुदेवरूप पुत्र को जन्म देकर मेरा जन्म कृतार्थ हुआ है । उसी तरह जब पति की मृत्यु होगी, तब मेरे प्राण भी अपने-आप चले जायेंगे, इसलिए मैं वैसा न हो इससे पहले ही अग्नि में प्रवेश करके उसका त्याग करती हूँ, जिससे मेरे सत्व की हीनता न कहलाये । इसलिए हे वत्स ! क्षत्रिय जाति के कुलाचार की तरह आचरण करती हुई मुझे मेरे इस कार्य में वात्सल्यता से तु इसमें बाधा मत बन । हे पुत्र ! मेरी अग्निमार्ग से पति के आगे जाऊँगी, इसलिए मैं तुम्हें एक अंतिम प्रार्थना करती हूँ कि इस विधि में निषेध करनेवाला ऐसा कुछ भी नहीं कहोगे ।” इस प्रकार कहकर स्वामी के मृत्यु समाचार सुनने कि कायर ऐसी वासुदेव की माता अंमकादेवी परलोकरूपी नगर के द्वाररूप अग्नि में प्रवेश करने के लिये वहाँ से गये !

लगातार दुःखों द्वारा जिनका शरीर शिथिल हो गया है ऐसे वासुदेव वहाँ समतल धरा पर भी असंतुलित पिता के पास आये । अपनी माता का स्मरण करते और पिता को आतुर देखते वासुदेव दुःख को सहन न कर पाने से वे अपनी आत्मा का नपुंसक जैसा मानकर पृथ्वी पर ढल गये । पुत्र की ऐसी स्थिति देखकर शिवराजा दाहज्वर से पीड़ित था तो भी धैर्य धारण करके बोले—हे वत्स ! अपने कुल के अनुचित ऐसी कायरता को क्यों धारण करते हो ? हे वत्स ! यह पृथ्वी तुम्हारी भुजाओं के आधारित है, तो उस पर धैर्य छोड़कर गिरने में लज्जा क्यों नहीं आती है ? हे पुत्र ! तुम जब धैर्य छोड़ दोगे तब तुम्हारा ‘पुरुष सिंह’ ऐसा नाम रखनेवाला मैं अज्ञानी कहलाऊँगा” इस तरह आश्वासन देकर पवित्र हृदयवाले शिवराज ने कालधर्म पाया । काल को जीतने में कौन समर्थ है ? पिता के मृत्यु के समाचार सुनकर, वायु से वृक्ष की भांति और वायुरोगी की तरह उसके शोकद्वारा वासुदेव फिर से ढल गये । थोड़ी देर बाद जलकुंभ द्वारा जल छिड़कने पर संज्ञा प्राप्त की । हे तात ! हे तात ! इस तरह का आक्रंद करते हुए खड़े हुए और बोलने लगे—हे पिता ! आपका यह शरीर आज उष्ण मालुम नहीं पड़ रहा है वह किस औषधि का गुण है ? आपको कौन से वैद्य की प्रतीति हुई ? या आज आप सुख से निद्रा कर रहे हो ? वह मुझे बतलाइये” इस तरह स्नेह में मोहित कह-कहकर वासुदेव विलाप करने लगे । बाद में गोत्रवृद्ध पुरुषों के समजाने पर धैर्य धारणकर वासुदेव अगारु चंदन के काष्ठ द्वारा पिता का अंग का अग्निसंस्कार किया । बाद में जलां जली देने की उत्तरक्रिया करके सभा में आकर बलभद्र दुःखी होकर तुरंत चलकर निकला । अपने नगर में आने पर दोनों भाई आपस में गले मिलकर मुक्त रुदन करते हुए सभी सभासदों को भी रुला दिया । बाद में आप्तजनों के बोध से वे धैर्य धारण करके शांत हुए, धीरे-धीरे पिता के स्नेह को भूलने लगे । फिर भी खड़े रहते, बोलने चालने में और मौन धारण में वे अपनी दृष्टि के आगे ध्येय वस्तु की तरह वे पिता को ही देखते थे ।

इस प्रकार वे पिता के शोक से आकुल व्याकुल रहते थे। वहाँ निशुंभ प्रतिवासुदेव का दूत आया। द्वारपाल ने पहले सूचना दी और आज्ञा प्राप्त करके प्रवेश करवाया। वह दूत नमस्कार करके बलदेव और वासुदेव को कहने लगा—शिवराजा के स्वर्गवास की खबर लोगो से सुनकर हमारे स्वामी निशुंभ को बहुत दुःख हुआ है। इसलिए आपके पिता की भक्ति का स्मरण करके उस कृतज्ञ शिरोमणि महाराजा ने इस तरह का संदेशा कहने के लिये आपके पास भेजा है। कि अभी तुम दोनो बालक हो, शत्रु के पराभव का स्थान हो और मैंने अर्पण किया तुम्हारे पिता का पद बड़ा है, इसलिए तुम मेरे पास आकर निरुपद्रव रहे, क्योंकि नदी में रहे हुए का दावानल क्या कर सकता है? फिर भी बहुत लंबे समय तक तुम्हारे पिता की भक्ति से ऋणमुक्त होने के इच्छुक ऐसे मुझे तुम्हें छोटे हो फिर भी तुम्हें बड़ा बनाना है।” ऐसा दूत का संदेशा सुनकर वे दोनो क्रोधित हो गये और शोक निवृत्त हो गया क्योंकि बलवान रस भी दुसरे रस से बाध्य हो जाता है। बाद में भुक्कूटी चढाकर, ललाटपर बल डालकर, सिंह जैसा पुरुषसिंह ने क्रोध लाकर कहा—“इक्ष्वाकु वंश में चंद्र समान और सर्व विश्व के उपकारी ऐसे हमारे पिता की मृत्यु से कोई शोक स्थान नहीं हुआ है? दुसरे राजाओने शोक किया है, निशुंभ ने भी शोक किया है लेकिन वह निशुंभ ऐसा संदेशा न भेजे इससे घृणा उत्पन्न होती है। सिंह के बच्चों को कौन देश देता है? कौन उसका पालन करता है? और उनका पराभव किससे होता है? अभी हमारे सामने इस तरह से बोलते हुए उसे लज्जा क्यों नहीं आती है? आपजन के आश्रय से वह सही तौर पर हमारा अपमान करके शत्रु बन गया है। कभी तुम्हारा स्वामी हमारा मित्र रहा होगा, या अमित्र हो या भले उदासी हो उसमें हम निरपेक्ष हैं, क्योंकि भुजपराक्रमी वीरों को अपनी भुजाओं की ही अपेक्षा होती है।”

कुमार के ऐसे वचनों को सुनकर दूत बोला—“उन पिता समान हमारे स्वामी को शत्रुरूपी माननेवाले आप अपने कल्याण में अकल्याण की इच्छा करके आपका बालकपन स्पष्ट कर दिया है। अरे कुमार! अभी तुम राजनिति जानते नहीं हो। क्यों तुम पेट मसलकर दुःख मोल ले रहे हो? मैं तुम्हारे इन वचनों को मैं स्वामी से नहीं कहूँगा। अभी भी मेरे वचन को मानो और उसके फलस्वरूप बंधु सहित आपका क्षेमकुशल लंबे समय तक हो, नहीं तो वह थोड़े समय में आपका शत्रु बन जायेगा और यमराज की तरह वह शेष करेगा तब तुम्हें जिवित रहने की शंका होने लगेगी।” दूत के ऐसे वचनों से वासुदेव को विशेष क्रोध उत्पन्न हुआ और कहा—“अरे दूत! तुम अपने जीवन अन्य दूतों से अलग सही दूत हो। वाणी के प्रपंच में चतुर तुम्हारे जैसे दूत वाणी मात्र से माथापचि करनेवाले निर्विष सर्प की तरह डरपोक राजाओं को डराते हैं। अरे दूत! जाओ, मेरे कहे हुए वचनों को न छिपाते हुए सभी वचन तुम्हारे स्वामी को कहना, वह अगर हमारा शत्रु बन भी गया तो उसे हम वध्यकोटि में परिपूर्ण तरीके से गिन लिया है।”

वासुदेव के ऐसे वचन सुनकर दूत उठ खड़ा हुआ, वेग से निशुंभ के पास आकर वह सभी यथार्थ कहा। वह सुनकर शत्रु का विनाश करनेवाले निशुंभ को बहुत क्रोध हुआ। तत्काल सेनाद्वारा पृथ्वीका आच्छेदन करने के लिये अश्वपुर चढाई की। निशुंभ के आगमन के समाचार सुनकर विजय करनेवाला वासुदेव अपने ज्येष्ठ (बड़ा) बंधु के साथ लेकर सज्ज सेना के साथ सहित सामने आये। परस्पर मंथन

करने के उद्यत हुए निशुंभ और पुरुषसिंह हाथीयों के तरह बीच मार्ग में इकट्ठे हो गये। दोनों के सैनिक भूमि और आकाश का क्षोभ करते हुए, सिंहनाद, धनुष्य की टंकार तथा हाथों का आस्फालन करते परस्पर युद्ध करने लगे। अपने शरीर की रक्षा करने में अपेक्षा रहित ऐसी दोनों अक्षौहिणी सेना का क्षय प्रलयकाल की तरह क्षणभर में हो गया, बाद में बलभद्र जिसके पिछे हैं ऐसे वासुदेव को रथ में बिठाकर पवन द्वारा अग्नि की तरह पांचजन्य नाम का शंख फूँका। गिरते हुए वज्रनाद की तरह उस शंख के नाद से शत्रु की सेना स्तब्ध हो गई। उस समय 'अरे ! अपनी आत्मा को लडाकू माननेवाले वासुदेव ! खड़े रहो' इस प्रकार कहता हुआ वह महारथी प्रतिवासुदेव वासुदेव के साथ युद्ध करने सामने आया। दोनों वीर अपनी भुक्कटीयाँ चढाकर भय से भयभीत करते अपने अपने धनुष्य का आस्फालन करने लगे। बाद में मेघ की तरह जलाधार वृष्टि करता है उस तरह दोनों वीर बाणों की वर्षा करके, सिंहनाद द्वारा हिरणी त्रस्त होती है उसी तरह खेचर स्त्रियो की तकलीफ देने लगे। आंतरा रहित गिरते ऐसे बाणों के समूह से रणभूमि बरु के वृक्षों से छाये हुए, समुद्र के विलास को धारण करने लगी। युद्धरूपी सागर में तिमिंगलरूपी वे वीर करमुक्त, यंत्रमुक्त और मुक्तामुक्त ऐसे आयुधों द्वारा युद्ध करने लगे। उस समय निशुंभ ने जाज्वल्यमान, ज्वालारूप जिह्वावाला और तीक्ष्ण धार द्वारा विकराल ऐसा अपना चक्र, इंद्र जैसे वज्र को संभालता है उस तरह उसने संभाला। स्मरण करते ही प्राप्त हुआ चक्र को अंगूलों से आकाश में घूमाकर निशुंभ क्षोभ जैसे वचन गर्व से बोला - "अरे कुमारो ! तुम अनुकंपा करने योग्य हो और बालक हो, इसलिये यहाँ से भाग जाने में लज्जा कैसी ? इसलिये तुम चले जाओ, या मेरी सेवा कर। क्या तुम्हें एक श्वान भी अच्छे विचार देनेवाला नहीं है ? इस चक्र को छोड़कर मैं पर्वतों को भी फाड़ डालता हूँ, तो नये कुष्माण्ड जैसे कोमल शरीरवाले तुम्हारी क्या बात है ?" ऐसे वचनों को सुनकर पुरुषसिंह कुमार ने कहा - "हे गर्विष्ठ तुम और तुम्हारे चक्र का वीर्य देखना शेष है। दुसरे अस्त्रों से तुने क्या किया ? अब मेघ जिस तरह इन्द्रधनुष्य को धारण करता है उस तरह तुमने यह चक्र धारण कर रखा है, फिर भी हे मूढ़ ! वह मुझे क्या मारेगा ? उसे छोड़, मैं उसका भी अमोघपन देख लूँ" ऐसे वासुदेव के कठोर वचन सुनकर निशुंभ ने उसे मारने की इच्छा से सर्व बलद्वारा चक्र छोड़ा। वह चक्र अपने अग्रभाग द्वारा वासुदेव के हृदय में वेग से टकराकर विंध्याद्रि के तट में बड़े हाथी की तरह निष्फल बन गया। उसके आघात से वासुदेव आंखें मुंद कर मुर्छित होकर गिर पड़े। बलभद्र ने गोशीर्ष चंदन से सिंचन किया, इसलिए थोड़ी देर में वापस उठ खड़े हुए, संज्ञा प्राप्त करके हाथ द्वारा वही चक्र लेकर 'अरे ! खड़े मत रहना, चले जाओ, चले जाओ,' इस तरह निशुंभ को कहने लगे। लेकिन सामने से 'छोड़, छोड़ दे' ऐसे वचन सुनने पर वासुदेव ने चक्र छोड़ दिया और प्रतिवासुदेव निशुंभ का मस्तक छेद डाला। तुरंत पराक्रमीओं में मुगटसमान उस पांचवे वासुदेव के उपर जयलक्ष्मी के हास्य जैसी आकाशमार्ग से पुष्पवृष्टि हुई। बाद में पुनः वासुदेव ने भरतार्द्ध साध लिया। महात्माओं का व्यवसाय सहसा ही फलता है। दिग्यात्रा करके वापस घूमकर वासुदेव मगधदेश में आये। वहाँ एक लीलामात्र से मृतिका के पात्र की तरह कोटीशिला को धारण करके। वहाँ से अश्वसैन्य द्वारा पृथ्वी को आच्छादित करते हुए अश्वपुर में आये और स्थान-स्थान पर नगर स्त्रियों से पूजाते वासुदेव ने पुर में प्रवेश किया।

तब बलभद्र और दुसरे भक्तिभाववाले राजाओने वासुदेव का अर्द्धचक्री अभिषेक किया ।

उस समय मे धर्मनाथ प्रभु दो साल तक छद्मस्थ मे रहकर विहार करके घूमते-घूमते जहाँ दीक्षा ली थी उसी प्रकांचन नाम के उपवन मे आये । वहाँ दधिपर्ण वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करते हुये प्रभु को पोष मास की पूर्णिमा के दिन पुष्यनक्षत्र मे चंद्र आने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तुरंत वे स्थानक देवताओं द्वारा रचे हुये समवसरण मे प्रभुने देशना दि, अरिष्ट वगेरेह तियांलीस गणधर किये । उनके शासन मे तीन मुखवाला, कछुएँ का वाहनवाला, दक्षिण भुजाओं मे बिजोरु, गदा और अभय को धारण करनेवाला तथा वाम भुजाओं मे नकुल, पद्म और अक्षमाला को धारण करनेवाला रक्तवर्णी और तेजस्वी किन्नर नाम का यक्ष शासनदेवता हुआ और गौर अंगवाली, मत्स्य के वाहनवाली दो दक्षिण भुजा मे उत्पल और अंकुश तथा दो वाम भुजाओ मे पद्म और अभय को धारण करनेवाली कंदर्पा नाम की यक्षणी शासन देवी हुई । वे निरंतर प्रभु के पास रहने लगे । इन दोनो शासन देवता की सेवा सह धर्मनाथ प्रभु पृथ्वीपर विहार करते हुये अनुक्रम मे अश्वपुर आ गये । तत्काल इंद्रादिक देवताओने जिसमे पांचसौ चालीस धनुष्य ऊंचे अशोक वृक्ष है ऐसा समवसरण की रचना करके, प्रभु ने उसमे प्रवेश करके चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके और तीर्थ को नमन करके पूर्व दिशा मे सिंहासन पर बैठे अन्य शेष तीन दिशाओं मे व्यंतर देवताओ ने प्रभु जैसे तीन प्रतिबिंब रत्नसिंहासन पर स्थापित किये प्रभु की पर्षदा मे चतुर्विद्य संघ पहले वप्र मे योग्य स्थान पर बैठे, दुसरे वप्र मे तिर्यचो रहे और तीसरे वप्र मे वाहन सजाये ।

तत्काल सेवकपुरुषों ने आकर प्रफुल्लित नेत्रों से प्रभुसमवसर्या के समाचार पुरुषसिंह वासुदेव को कहा । उन्होंने साढे बारह करोड द्रव्य इनाम मे देकर पुरुषसिंह वासुदेव, सुदर्शन बलदेव सहित समवसरण मे आये । वहाँ प्रभु की भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कार करके वासुदेव ज्येष्ठ बंधु के साथ इंद्र के पिछे बैठे । बाद मे इंद्र, वासुदेव और सुदर्शन फिर से स्वामी को झुककर प्रभु की भक्ति से असंतुष्ट हो ऐसे हर्ष से स्तुति करने लगे ।

“जगत के नेत्ररूपी, चातक पक्षी को आनंद देनेवाले चंद्ररूप और मिथ्यात्वरूपी अंधकार को दूर करने मे सूर्यरूप ऐसे हे जगत्पति धर्मनाथ प्रभु ! आपकी विजय हो नाथ ! आप छद्मस्थ चिरकाल तक रहे हो फिर भी छद्म (कपट) रहित है और अनंत दर्शन के अलावा अनेक दर्शन बाध करनेवाले हो । आपकी देशनारूपी जल की बाढ से जिनकी आत्मा पल्वित हुई है उन प्राणीयों के कर्म की मलिनता की तत्काल धुलाई हो जायगी जिस तरह आपकी चरण मूल की छाया से प्राणीयों की चिंता संताप थम जाते है शांत हो जाते है, उसी तरह मेघ और वृक्ष की छाया से भी संताप शांत नहीं होता है । हे प्रभु ! आपके दर्शन करने से हुये निःस्पंद शरीरवाले प्राणीयो मानो पत्थर की मूर्तिओं की तरह हो ऐसे दिखाई देते है । हे जगदबंधु ! इस तीन जगत के रचनाभावादि मे कुछ विरोधाभास से अलग-अलग है, फिर भी आज आपके प्रभाव से एकत्रित मिलकर बंधुरूप हो गया है । इस त्रिखंड भरतक्षेत्र के मूल स्थान के देवतारूपी हे प्रभु ! जिन्हें आपके सिवाय कही शरण नहीं है ऐसे हमारी आप रक्षा करे । हे जगत्पति ! हम तुम्हे बारंबार प्रार्थना करते है कि हमेशा आपके चरणकमल मे हमारा मन भ्रमर

की भांति चेष्टा करता रहे ।”

इस तरह स्तुति करके इंद्र, वासुदेव और बलभद्र ने विराम लिया, बाद में भगवान् धर्मनाथ प्रभु ने इस प्रकार से देशना दी ।—

“धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चतुर्वर्ग में मोक्षवर्ग अग्रणी है । उसका योग करानेवाला कारणज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ये तीन रत्न हैं । तत्त्व का अनुकरण करनेवाली मति वह ज्ञान, सम्यक् प्रकार की श्रद्धा वह दर्शन और सर्व सावद्य योग का त्याग वह चारित्र्य कहलाता है । प्राणी की आत्मा ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यरूपी है, अथवा तादात्म्य वह शरीर में रहे हुए है । मोह का त्याग से जो अपनी आत्माद्वारा आत्मा को आत्मा के बारे में जानता है वही उसके ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य है । आत्मा को अज्ञान से उत्पन्न हुए दुःख आत्मज्ञान द्वारा ही हनन किया जाता है । जो आत्मज्ञान से रहित है वह तप द्वारा भी अज्ञानजनित दुःखको भेद नहीं सकता । यह आत्मा चैतन्य (ज्ञान) रूपी है, फिर भी कर्म के योग से शरीरधारी होता है और जब ध्यानरूपी अग्नि से कर्म मात्र दग्ध हो जाते हैं । तब वे निरंजन सिद्धात्मा बनती हैं । कषाय और इंद्रियों से जिती हुई आत्मा ही संसार है—ऐसा विद्वान् कहते हैं । वे कषाय क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार प्रकार के हैं और उनमें प्रत्येक का संज्वलन वगैरह चार-चार भेद हैं । उसमें संज्वलन अेक पक्ष तक, प्रत्याख्यान की चार मास तक, अप्रत्याख्यान की साल तक और अनंतानुबंधी पूरे जन्म तक स्थित रहती हैं । वह अनुक्रम में वीतरागपन, मुनिपन, श्रावकपन और सम्यग्दृष्टिपन का हनन करती हैं ।— रोक कर रखती हैं और देवपन, मनुष्यपन, तिर्यचपन और नारकीपन देती हैं ।

उसमें क्रोध नाम का कषाय उपताप करनेवाला, बैर का कारण, दुर्गति को देनेवाला और समता सुख का रोकनेवाला भोगल (अर्गला) रूप है । वह उत्पन्न होते ही अग्नि की तरह प्रथम अपने आश्रय को जलाती है बाद में दुसरे को भी जलाती है या नहीं भी जलाती है । आठ साल बाद उन पूर्वकोटी सालों तक चारित्र्य और तप किया हो तो उसे भी क्रोधरूपी अग्नि क्षणभर में दहन कर डालती है । पूर्व के पुण्यसंभार से संचय किया शमतारूप पय क्रोधरूप विषयके संपर्क से तत्काल असेव्य हो जाता है । विचित्रगुण को धारण करनेवाली, चरित्ररूपी चित्र की रचना (चित्रशाली) को क्रोधरूपी धुआँ फैलाकर अत्यंत मलिन कर डालता है । वैराग्यरूपी शमीपत्र के द्रोण में शमता का रस मिलाया हो तो शाकपत्र के द्रोण में ऐसे क्रोध द्वारा रस क्यों नहीं गिर जाता है ? वृद्धि पाया हुआ क्रोध क्या क्या अकार्य नहीं करता है ? आगामी काल में द्वैपायन के क्रोधरूपी अग्नि में बड़ी द्वारकानगरी समिधरूप हो जायगी । क्रोध करनेवाले को क्रोध करने से कार्य सिद्धि होती हुई दिखाई देती है, परंतु वह क्रोध के साथ संबंध नहीं रखती है, अर्थात् उस क्रोध के फलस्वरूप नहीं है फिर भी जन्मांतर में प्राप्त किये उसके अच्छे कर्मों का फल है । जो प्राणी इस लोक या परलोक तथा स्वार्थ के और परार्थ के नाश करनेवाले क्रोध को अपने शरीर में धारण करते हैं उसे बारंबार धिक्कार है । क्रोधांध पुरुष पिता को, माता को, गुरु को, सुहृद (मित्र) को, सहोदर स्त्रि को उसी तरह अपनी आत्मा को भी निर्दय बनकर हनन कर देते हैं । ऐसे क्रोधरूपी अग्नि को तुरंत बुझाने के लिये उत्तम पुरुषों ने संयमरूपी आराम के

बारे में नीकरूप एक क्षमा का ही आश्रय करना है, अपकार करनेवाले पुरुष पर आया हुआ क्रोध दूसरी तरह वह रोक नहीं सकता है, लेकिन सत्व के माहात्म्य द्वारा रोक जा सकता है अथवा ऐसी भावना रखकर उसे रोक जा सकता है। जो स्वयं पाप का अंगीकार करके अपने आपको बाध्य करने की इच्छा करता है वह अपने कर्मों से परास्त हो गया है तो उसके ऊपर कौनसा मूर्खजन भी कोप करेगा ? यदि तुम्हारा ऐसा आशय है कि 'जो मेरा अपकारी है उसके ऊपर मैं कोप करूँगा' तो तुझे निरंतर दुःख देने में सहीरूप से जो कारणभूत तुम्हारे कर्मों पर क्यों नहीं कोप करते हो ? क्योंकि श्वान ढेला मारनेवाले को छोड़कर मिट्टी के ढेले को ही काटता है, लेकिन केसरीसिंह बाण को कुछ भी नहीं करता है लेकिन बाण मारनेवाले को मारता है। इसलिये क्रोध करनेवाले को विचार करना चाहिए कि जो मेरे क्रूर कर्मों से प्रेरित शत्रु मेरे ऊपर कोप कर रहे हैं उन कर्मों की उपेक्षा करके मैं दूसरे पर क्रोध करता हूँ। भविष्यकाल में उत्पन्न होनेवाले श्री महावीर भगवान अपने को उपसर्गादि करनेवाले पापीयों पर भी क्षमा करेंगे। क्योंकि बिना प्रयास के स्वयंमेव प्राप्त हुई क्षमा को वहन करने के लिये कौन इच्छुक होगा ? जो तीन लोक को प्रलय में से भी रक्षण करने में समर्थ है ऐसा पुरुष भी क्षमा करता है, तो कदली के जैसा अल्प सत्ववाला तु उसे क्षमा क्यों नहीं करता है ? और भी तुने पूर्व जन्म में ऐसा पुण्य क्यों नहीं किया कि जिससे तुझे कोई पीडा दे ही नहीं ? इसलिए अब अपने प्रमाद का ही शोक करके क्षमा को अंगीकार करे। क्रोधांध मुनि और चांडाल के बीच में कोई भी अंतर नहीं है, इसलिए क्रोध का त्याग करके उज्ज्वल बुद्धि का ग्रहण करे। अक महर्षि को छोड़कर कुरगडु की स्तुति की। कभी यदि कोई हमें कटु मर्मपीडक वचन कहता है तो हमें विचार करना चाहिए कि यदि वह उन्मत्त होकर बोलता है उसका विचार ही क्यों करे ? यदि कोई हमें मारने आता है तो मन में विस्मय होकर हमसे 'कि मेरा वध यह तो मेरे कर्म का साध्य है, यह पुरुष बेकार का नाच रहा है' यदि कोई वास्तव में मारने के लिये आता है तो सोचना चाहिए कि 'मेरा आयुष्य का क्षय प्राप्त हो रहा है, तो यह दुष्ट निर्भय होकर पाप बांध रहा है और मरे हुए को मार रहा है।' जो सभी पुरुषार्थ की चोरी करनेवाले क्रोध पर तुझे क्रोध उत्पन्न नहीं होता है तो फिर अल्प अपराध करनेवाला, दूसरे पर कोप करनेवाले तुझे धिक्कार है। इसलिए अच्छी बुद्धिवाले पुरुष सभी इंद्रियों को ग्लानि करनेवाला और चारों ओर फैलता हुआ कोपरूपी सर्प को क्षमारूपी जांगुली विद्याद्वारा जीत लेना चाहिए।

विनय, श्रुत, शील तथा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और मोक्ष) का घात करनेवाला मन प्राणीके विवेकरूपी लोचन का लोप करके उसे अंध बना देता है। जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप और श्रुत का मद करनेवाला पुरुष उन-उन वस्तुओं में हिनता प्राप्त करता है। उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे जाति भेद देखकर कौनसा विद्वान जातिमद करने के लिये प्रेरित होगा ? हीन या उत्तम जाति कर्म से प्राप्त होती है, तो ऐसी अशाश्वत जाति प्राप्त करके किसे मद होगा ? अंतराय कर्म का क्षय होने से लाभ होता है, उसके अलावा नहीं होता है, जिससे वस्तुतत्त्व को जाननेवाला पुरुष कभी भी लाभमद करता नहीं है। दूसरों की प्रसन्नता और शक्ति वगैरह बड़ा लाभ प्राप्त होने पर भी महात्मा कभी भी लाभमद नहीं करते हैं। कुलवान नहीं फिर भी बुद्धि, लक्ष्मी और शील से शोभा देते ऐसे अनेक पुरुषों को देखकर

महाकुलीन पुरुषो को भी कुलमद नहीं करना चाहिए । अच्छे कुल में उत्पन्न होनेपर भी कुशील हो तो कुल का क्या ? और स्वयं सुशील हैं तो उसे कुल की क्या अपेक्षा है ? ऐसा सोचकर विचक्षण पुरुष कुलमद करते नहीं हैं । वज्रधारी इंद्र के घर त्रिभुवन की ऐश्वर्य की संपत्ति को सुनकर नगर, ग्राम और धन वगैरेह का ऐश्वर्य का मद क्यों ? संपत्ति कुलटा स्त्रि की तरह गुणी पुरुष के पास से भी समय पर चली जाती है और दोषवाले पुरुष का आश्रय कर लेती है, इसलिए विवेकी पुरुषो को ऐश्वर्य प्राप्ति से उसका मद होता ही नहीं है । बड़ा बलवान हो तो भी रोगादिक उसे क्षणभर में निर्बल बना देते हैं, इसलिए ऐसे अनित्य बल की प्राप्ति का पुरुषो को मद करना युक्त नहीं है । जो बलवान होते हैं तो भी जरा के पास, मृत्यु के पास और कर्मफल भोगने में निर्बल हैं इसमें उसका कुछ भी बल काम नहीं आता है । इसलिए उन्हें बल का मद नहीं करना चाहिए । यह सात धातुमय देह में हानिवृद्धि के रूप में धर्म रहा हुआ है और जरा तथा रोग का पराभव भी रहा हुआ है इस लिए अशाश्वत ऐसे रूप के मद को कौन वहन करेगा ? भविष्यकाल में होनेवाले सनत्कुमार चक्री का रूप और उसका क्षय सुनकर कौनसा विद्वान पुरुष स्वप्न में भी रूप का मद कौन करेगा ? श्री ऋषभदेव ने की हुई और श्री वीरप्रभु अब इसके बाद जो करेंगे वह तपस्या सुनकर अपने स्वल्प तप का मद किसे हो सकता है क्या ? जिस तप के करने से तत्काल कर्म का संचय टूट जाता है तो उस तप का मद करने से उसके विरुद्ध में कर्म का संचय बढ़ता है । पहले महापुरुषो ने जिनशास्त्रों की रचना अपनी बुद्धि से की है उन्हें मात्र लीलाद्वारा सूंघ कर 'मैं सर्वज्ञ हूँ', ऐसा जो मद करते हैं वे अपने ही अंगो को खा जाते हैं । श्री गणधरेंद्रो का निर्माण और धारण करने की शक्ति सुनकर कौन सा कर्ण और हृदयवाला पुरुष शास्त्रमद का आश्रय करेगा ? दोषरूपी शाखा का विस्तार करते हुए और गुणरूपी जड़ो को नीचे ले जाते हुए मानरूपी वृक्ष को मृदुतारूपी नदी के बहाव से उखाड़ डालना, उद्धतपन का निषेध ये मृदुता अथवा मार्दव का स्वरूप है और उद्धतपन ये मान का निरुपाधिक स्वरूप है ।

जिस समय जाति इत्यादि का उद्धतपन अंतर को स्पर्श करने लगे, उस समय उसके प्रतिकार के लिये मृदुता का आश्रय ले । सभी जगह मृदुता रखे, उसमें भी पूज्यवर्ग में विशेष रखे, क्योंकि पूज्य कि पूजा से पाप से मुक्ति मिलती है । बाहुबलि मान द्वारा लता की तरह पाप से बंधे थे और मृदुता द्वारा तत्काल उससे मुक्त होकर केवलज्ञान पाये थे । चक्रवर्ती भी चारित्र लेकर संगरहित होकर शत्रुओं के घर में भी भिक्षा मांगने जाते हैं । अहा ! वह मान के छेदन के लिये कैसी कठोर मृदुता ! चक्रवर्ती जैसा महाराजा भी तत्काल दीक्षा लिये हुए एक रंक साधु को भी मान छोड़कर झुकता है और चिरकाल तक उसकी सेवा करता है इस प्रकार सभी मान को विषय को जानकर बुद्धिमान पुरुष ने उसका विकास करने के लिये हमेशा मृदुता धारण करनी चाहिए ।

अब माया का स्वरूप कहेंगे । असत्य की माता, शीलरूपी वृक्ष को काटने की कुल्हाड़ी और अविद्या की जन्मभूमि में जो माया है वह दुर्गति का कारण है । कुटिलपन में चतुर और माया द्वारा बगुले के जैसी वृतिवाले पापी पुरुष जगत को लुटते हैं सही तौर पर अपनी आत्मा को लुटते हैं । राजा झूठे षड्गुण के योग से छल और विश्वासघात द्वारा अर्थलाभ के लिये सभी जगत को छलते हैं । ब्राह्मण

तिलक, मुद्रा, मंत्र और दीनत्व दिखाकर अंतर में शून्य और बाहर सारवाले बनकर लोगो को ठगते हैं। माया के भाजन वणिक लोग जूठे तौल माप और मानवमाप से तथा दानचोरी वगैरेह से भोले लोगो को लुटते हैं पारखंडी और नास्तिक जटा, मुंज, शिखा, भस्म, वल्कल और अग्नि वगैरेह धारण करके श्रद्धावाले मुग्धजनो को ठगते हैं। वैश्याएँ अरागी होने पर भी हावभाव, लीला, गति और कटाक्ष द्वारा कामुक लोगो का मनोरंजन करती हुई जग को ठगती हैं। ढोंगी और दुःख से पेट भरनेमें तत्पर लोग जूठे सोंगंध से और जूठे धन से धनवानो को लुटते हैं। स्त्रिपुरुष, पितापुत्र, सहोदर, सहृदयजन, स्वामी सेवक और दुसरे सभी एक दुसरे को माया द्वारा ठगनेवाले होते हैं। बंदीलोग और चोर लोग अर्थ में लिप्त होकर निर्दय बनकर अहर्निश जागरूक रहकर प्रमादी जन को छलते हैं कारीगर, अंत्यज और किसी भी प्रकार का काम करके आजिविका निर्वाह करनेवाले पुरुष माया से जूठे सोंगंध खाकर साधुजनो को लुटते हैं। व्यंतरादिक की खराब योनि में रहे हुए क्रूर देवता बहुत प्रकार के छल करके प्रायः प्रमादी मनुष्य तथा पशुओं को पीडा देते हैं। मत्स्यादिक जलचर छल करके अपने बच्चो का भक्षण कर लेते हैं और उनको भी छीपर (धीमर) लोग माया द्वारा जाल में बांधते हैं और मारते हैं। विविध प्रकार के उपाय करके लुट में प्रवीण ऐसे शीकारी भी कपट से ही स्थलचारी प्राणीयों को बांधते हैं और मारते हैं। मांस के ग्रास लेने के इच्छुक पापी प्राणी लावक वगैरेह अनेक जाति के बेचारे आकाशचारी प्राणीयों को अनेक माया द्वारा बांध लेते हैं।

इस तरह सभी लोक में दुसरो को लुटने में तत्पर ऐसे प्राणी अपनी आत्मा को छलकर लुटकर स्वधर्म और सद्गति का नाश करता है। इसलिए तिर्यच जाति में उत्पन्न होने का उत्कृष्ट बीज मोक्षपुरी के द्वारा की भोगल और विश्वासरूपी वृक्ष को दावानल जैसी माया का विद्वानो ने त्याग करने के लिये योग्य है। श्री मल्लिनाथ तीर्थकर पूर्वभव में सूक्ष्म माया करेंगे और वे मायाशल्य को निकालेंगे नहीं इसलिए वे स्त्रीभाव को प्राप्त करेंगे, इसलिए जगत का द्रोह करनेवाली मायारूपी सर्पिणी को जगत को आनंद का कारण ऐसी सरलतारूपी औषधि द्वारा जीत ले। सरलता यह अवार्थ विस्तारवाला मुक्तिपुरी का मार्ग कहा है और तप दान वगैरेह लक्षणवाला जो मार्ग है तो वह अवशेष मार्ग है। जो सरलता का सेवन करते हैं वे इस लोक में प्रीति के पात्र बनते हैं सर्प की तरह कुटिल पुरुष से सभी उद्वेग पाते हैं। जिनकी मनोवृत्ति सरल है वे भववास में रहे हुए हैं तथापि उन महात्माओ को अपने से ही जो अनुभव होता है वैसा अकृत्रिम मुक्ति सुख मिलता है। जिनके मन में कुटिल्यतारूपी शकु (कील) कलेश किया करता है और जो दुसरो को हानि करने में तत्पर है वैसे लुटेरे पुरुषों को सुख कहाँ से प्राप्त होगा ? सभी विद्याओ में विद्वता प्राप्त करने के बाद और सभी प्रकार की कलाओं को प्राप्त करने के बाद भी धन्य पुरुषो में ही बालक जैसी सरलता सभी ने प्रीति की है उपज करती है इसमें क्या कहना ? सरलता स्वाभाविक है और कुटिलता कृत्रिम है, तो स्वाभाविक धर्म को छोड़कर कृत्रिम धर्म का आश्रय कौन लेगा ? प्रायः सभी जन छल, पिशुनता, वक्रोक्ति और परवंचना में तत्पर हैं तो उसमें रहने पर भी सुवर्णप्रतिमा की तरह निर्विकारी रहनेवाला कोई धन्य पुरुष ही होता है। सर्व गणधर या तो श्रुतसमुद्र के पार को प्राप्त कर लेते हैं, तथापि शिक्षा लेने के योग्य है ऐसा मानकर वे तीर्थकर वाणी

को सरलता से सुनते हैं। जो सरलपन की आलोचना करता है, वह भी दुष्कर्म करता है और जो कुटिलता से आलोचना करता है, वह थोड़े दुष्कर्म है तो उसमें और बढ़ोतरी करता है। जो मन, वचन और काया से समस्त प्रकार से कुटिल है उनका मोक्ष नहीं होता है, फिर भी जो मन, वचन और काया से सभी जगह सरल है उनका मोक्ष होता है। इस तरह कुटिल पुरुषों की अति उग्र ऐसे कर्मों की भी कुटिलता सोचकर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष ने मोक्ष की इच्छा से सरलता काही आश्रय करना चाहिए।

सर्व दोषों की खदान, गुणों का ग्रास करनेवाला राक्षस, व्यसनरूपी लता की जड़ और सभी अर्थ को बाध्य करनेवाला लोभ है। निर्धन को सौ का, सौ वाला हजारवाले को, हजारवाला लाखोपति को, लक्षपति करोड़पति, करोड़पति राजा को, राजा चक्रवर्ती को चक्रवर्ती देव को, देव इंद्रत्व को चाहते हैं। इंद्रपन प्राप्त होने पर भी इच्छा निवृत्ति पाती नहीं है, उसके मूल में लघुपन रहा हुआ लोभ कुंभार के पहिये पर रहे हुए शरावल (रामपात्र) की तरह बढ़ता ही रहता है। सर्व पाप में हिंसा, सर्व कर्म में जिस तरह मिथ्यात्व और सर्व रोगों में जिस तरह राज्यक्षमा (क्षयरोग) है उस तरह सभी कषायों में लोभ बड़ा है। अहा ! इस पृथ्वी पर लोभ का एकछत्र साम्राज्य है जिससे वृक्ष भी अपने नीचे द्रव्य रखते हैं। द्रव्य के लोभ से दो इंद्रियां, तीन इंद्रिया, चतुरइंद्रिय प्राणी भी मूर्खद्वारा अपने पहले के पानी को अथवा रखे हुए निधान पर आकर बैठते हैं। सर्प और गृहगोधा (छीपकली) जैसे पंचेन्द्रिय प्राणी भी धन के लोभ से स्वयं अथवा दूसरे का गढ़ा हुआ या रखे हुए निधानस्थान से भूमि पर आकर लीन हो जाते हैं। पिशाच, मुदगल, प्रेत भूत और यक्ष वगैरेह देवजाति लोभ अपने अथवा पराये निधि पर अधिष्ठायकपन से स्थान करते हैं। आभूषण, उद्यान और वापिका वगैरेह में मूर्खवाले देवता भी वहाँ से च्यवन करके उसी जगह पृथ्वीकाय वगैरेह में उत्पन्न होता है। मुनिजन भी क्रोधादिक का विजय करके उपशांतमोह नाम के इग्याहर वे गुणठाणे को प्राप्त होकर भी एक लोभ के अंशमात्र से पतित हो जाते हैं। लेश धनलोभ से सहोदर भाई भी एक मांस के निवाले (टुकड़े) के लिये कुत्तों की तरह लंडते हैं युद्ध करते हैं। ग्राम्यजन, अधिकारी और राजा परस्पर बैर बांध लेते हैं। लोभी जन स्वयं हास्य, शोक, द्वेष और हर्ष का कारण न होने पर भी स्वामी के सामने नट की तरह कृत्रिमपन से वे दिखाते हैं। लोभरूपी गढ़ा ज्यो-ज्यो हम भरते हैं वह त्यो-त्यो वह बढ़ता जाता है यह एक बड़ा आश्चर्य है। कभी जल से समुद्र भरा जा सकता है फिर भी तीनों लोकों का राज्य मिलने पर भी लोभरूपी गढ़ा कभी भी भरता नहीं है। भोजन, वस्त्र, विषय और द्रव्यों का संचय कई बार इकट्ठा करके भोगने के बाद उसका एक अंशमात्र भी भरा नहीं जाता है। यदि लोभ का त्याग करते हो तो निष्फल तप की कोई जरूरत नहीं है और यदि लोभ का त्याग नहीं करते हो तो भी निष्फल तप करने की जरूरत नहीं है। सभी शास्त्र के सर्वस्व को सोचविचार करके ईतना ध्यान में रखे की मोटी बुद्धिवाले पुरुष अेक लोभ का त्याग करें उसके लिये ही प्रयत्न करें। सद्बुद्धिवाले पुरुष ने लोभ के फैलते हुआ ऐसा उद्वेल सागर को संतोष के बांध से रोकना चाहिए।

ज्यो मनुष्यों में चक्रवर्ती, देवताओं में इंद्र हैं उसी तरह सभी गुणों में संतोष श्रेष्ठ है। संतोषी मुनि और असंतोषी चक्रवर्ती की जब तुलना की जाती है तब सुख दुःखका उत्कर्ष समान होता है। इसलिए

जितने स्तर पर संतोषी मुनि सुखी हैं उतने ही स्तर पर असंतोषी चक्रवर्ती दुःखी हैं। इसलिए चक्रवर्ती राजा अपना स्वाधीन राज्य पाट सब कुछ छोड़कर संतोषरूपी अमृत की इच्छा प्राप्ति के लिये तुरंत निःसंगपन का स्वीकार कर लेते हैं। जब धन से इच्छा निवृत्ति करते हैं तो संपत्ति बगल में आकर खड़ी रहती है। क्योंकि कान को आगे से ढकते हैं तो भीतर शब्दाद्वैत बढ़ता है। ज्यो नेत्र ढकने से सभी चराचर विश्व ढक जाता है उसी तरह संतोष धारण करने से प्रत्येक वस्तु में विरक्ति आती है। इंद्रियों का दमन और काया को पीड़ा देने का क्या प्रयोजन है ? मात्र संतोष रखने से ही मोक्षलक्ष्मी सामने देखती है। जो मुक्ति जैसा सुख भोगते हैं वे जिवित होते हैं। राग द्वेष से संयुक्त और विषय से उत्पन्न हुआ सुखकिस काम का है ? क्योंकि संतोष से उत्पन्न हुआ सुख ही मोक्षप्राप्ति योग्य कर्म से न्यूनतावाला नहीं है। दूसरे को तृप्त करनेवाले शास्त्रों के सुभाषित किस काम के हैं ? लेकिन जिनकी इंद्रिया मलिन हैं उन्हें संतोष के सुख का स्वाद को दूँदना चाहिये। अरे प्राणी ! यदि तु कारण के अनुसार ही कार्य है ऐसा तु मानता है तो संतोष के आनंद से ही मोक्ष का अपार आनंद की प्रतीति करके देख। सुखार्थी पुरुषों को कृषि, सेवा, पशुपालनवृत्ति और व्यापार करने की क्या जरूरत है ? कारण कि संतोष का पान करने से क्या उसकी आत्मा निवृत्तिसुख नहीं पाता है ? घास की शय्यापर सोनेवाले संतोषीयों को भी सुख का अनुभव होता है वह सुख रुई की गद्दी शय्या पर सोनेवाले को संतोष सा अनुभव नहीं होता है। असंतोषी धनवान पुरुषों, समर्थ पुरुषों के पास तृण के समान लगते हैं और संतोषी पुरुषों के पास समर्थ पुरुष भी तिनके के समान लगते हैं। चक्रवर्ती और इंद्रादिक संपत्ति प्रयासजन्य और नश्वर हैं, परंतु संतोष से हुआ सुख आयास रहित और नित्य है। इसलिए अच्छी बुद्धिवाले पुरुष ने सभी दोष के स्थानरूप लोभ को दूर करने के लिये अद्वैत सुख के गृहरूप संतोष का आश्रय लेवे।

इस तरह कषाय को जीतनेवाला प्राणी इस भव में भी शिवसुख को भजनेवाला होता है और परलोक में अवश्य शाश्वत शिवसुख को प्राप्त करता है।”

इस तरह की प्रभु से देशना सुनकर कई लोगो ने दीक्षा ली वासुदेव ने समकित स्वीकार किया, बलभद्र ने श्रावपकपन अंगीकार किया। प्रथम पौरुषी पूर्ण होने पर प्रभु ने देशना से विश्राम पाया, बाद में प्रभु की पादपीठ पर बैठकर अरिष्ट गणधर ने देशना देना आरंभ किया। दूसरी पौरुषी पूर्ण होने पर गणधर ने भी देशना समाप्त की। बाद में इंद्र, वासुदेव और बलभद्र वगैरे श्री अर्हत प्रभु को नमस्कार करके वहाँ से अपने अपने स्थानों पर लौट गये और सर्व अतिशय से शोभायमान श्री धर्मनाथ भगवान ने भी वहाँ से अन्यत्र विहार किया।

केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् दो वर्ष उना ढाई लाख वर्ष तक विहार करते प्रभु ने चौसठ हजार महात्मा साधु, बासठ हजार चारसौ साध्वी, नौसौ चौदह पूर्वधारी, तीन हजार छ सौ अविधज्ञानी, चार हजार पांच सौ मनःपर्यवधारी, उतने ही केवलज्ञानी, सात हजार वैक्रियलब्धिवाले, दो हजार आठसौ वादलब्धिवाले, दो लाख चालीस हजार श्रावको और चार लाख तेरह हजार श्राविकाएँ—इस तरह का परिवार हुआ।

अपना मोक्ष समय नजदीक आयाजानकर प्रभु समेत शिखर गिरि पर पधारे। वहाँ एक सौ

आठ मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण करके । एक मास के अंत में ज्येष्ठ मास की शुक्ल पंचमी के पुष्य नक्षत्र में चंद्र के आने पर उन मुनियों के साथ प्रभु ने मोक्षपद को प्राप्त किया । तुरंत ही इंद्रादिकदेवों ने आकर श्री धर्मनाथ स्वामी का और साधुओं का निर्वाण महिमा उत्सव किया । अनंतनाथ स्वामी के निर्वाण पश्चात् चार सागरोपम गये तब धर्मनाथ स्वामी का निर्वाण हुआ । कुमार अवस्था में ढाई लाख वर्ष, राज्य में पांच लाख वर्ष और व्रत में ढाई लाख वर्ष—इस तरह कुल दस लाख वर्ष का आयुष्य श्री धर्मनाथ स्वामी का निर्गमन हुआ ।

पुरुषसिंह वासुदेव सिंह के जैसे अपने हिस्त्रकर्म से आयुष्य पूर्ण करके मृत्यु प्राप्त करके छठवीं नरकभूमि में गये । कौमार आयु में तीन सौ वर्ष मांडलिकपन में साठे बारहसौ वर्ष, दिग्विजय में सत्तर वर्ष और राज्य में नौ लाख अष्टानवे हजार तीन सौ अस्सी वर्ष—इस तरह पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण हुआ था । सत्तरह लाख वर्ष का आयुष्यवाले सुदर्शन बलभद्र ने अपने अनुज बंधु वासुदेव के विरह से भ्रातृस्नेह के वश होकर महाकष्ट से जिवित को धारण किया । सुदर्शन बलभद्र ने प्रांते कीर्तिधर नाम के साधु से दीक्षा ग्रहण की और आयुष्य पूर्ण करके मोक्षपद को प्राप्त किया ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थे पर्वणि

धर्मनाथपुरुषसिंहसुदर्शननिशुंभचरितवर्णनो नाम पंचमः सर्गः ॥५॥

षष्ठ सर्ग

श्री मधवा चक्रवर्ती चरित्र

इस भरतक्षेत्र मे महीमंडल नाम के नगर मे श्री वासुपूज्य स्वामी के तीर्थ के विषय में नरपति नाम का राजा था । वह उत्तमराजा अनाथ को नाथ था और चरित्र मे साधु की तरह निरंतर सावधान रहता था । वह कभी भी पुष्प के डंठल से भी किसी को मारता नहीं था, केवलनवीन पुष्प की तरह यत्नपूर्वक सभी का पालन करता था । वह विवेकी राजा पैरों के आभूषणों की तरह अर्थ तथा काम को मुगुट की तरह धर्म को अधरोत्तरपन (नीच-ऊच) धारण करता था । अनुत्तर सुख को देनेवाले अरिहंत देव, साधु, गुरु और दयामयी धर्म का मंत्राक्षर की तरह ध्यान धारण करता था । एकबार बुद्धिमान और बड़े आशयवाले उस राजा ने राज्य को रोग की तरह त्याग करके विश्व को अभय देनेवाली दीक्षा ग्रहण की । पांच समिति द्वारा विजय प्राप्त करके तथा तीन गुप्ति का रक्षण करने मे तत्पर होकर वह राजमुनि ने राज्य की तरह लंबे समय तक विधियुक्त दीक्षा का प्रतिपालन किया । दिव्य रत्नालंकार तरह निर्दोष मूलगुण और उत्तर गुणद्वारा वह अधिक शोभायमान दिखने लगा । चिरकाल तक व्रत पालन करके प्रांते कालधर्म पाकर वे महात्मा मध्यम ग्रैवेयक मे अहमिंद्र देवता हुआ ।

यहाँ जंबूद्विप मे भरतक्षेत्र के विषय सर्व नगरीयों मे श्रेष्ठ श्रावस्ती नाम की नगरी थी । असंख्य गुणरूपी रत्नोद्वारा मूर्तिमान समुद्र की तरह समुद्रविजय नाम का वहाँ विजयी राजा राज्य करता था । हमेशा आनंददायकपन से मित्र और अमित्र के हृदय से कभी भी दूर नहीं रहता था । संग्राम के बारे मे खिंचे हुए खड्गरूपी दर्पण मे प्रतिबिंबित हुआ वह बलवान राजा की आत्मा हमेशा सन्मुख ही रहता था । बलात्कार से सर्व दिशाओं को वश वे करके बाद मे उन्हें कायमी वश रखने के लिये उसने अपना यशरूपी अलंकार दिया था । गाय का रक्षण ग्वाला करता है उस तरह से यथाविधि पृथ्वी का पालन करके योग्य समय पर दूध की तरह किसी भी प्रकार से पीडा रहित कर लेता था । पवित्र लावण्य से भद्र अंगोवाली और सर्व भद्र के स्थानरूप भद्रा नाम की उसकी धर्मचारिणी स्त्रि थी । धर्म की अबाधा ने उसके साथ विषयसुख भोगते हुए समुद्रविजय राजाने कुछ कालतक निर्गमन किया । अनुक्रम ग्रैवेयक देवलोक मे जो नरपति राजा का जीव था, वह वहाँ का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके भद्रादेवी के कुक्षि मे अवतरित हुआ सुख सो रहे भद्रादेवी ने चक्रवर्ती के जन्म की पूर्ण सूचना देनेवाले चौदा स्वप्न मुख मे प्रवेश करते देखा । गर्भ समय पूर्ण होने पर उत्तम लक्षणा सुवर्ण जैसा वर्ण से सुशोभित और साढे बयालिस धनुष्य के शरीरवाले पुत्र को जन्म दिया । यह पुत्र पृथ्वीपर मधवा (इंद्र) जैसा होगा ऐसा अनुमान लगाकर समुद्रविजय ने उसका मधवा ऐसा नाम रखा ।

सूर्य के पिछे चंद्र जिस तरह आकाश को अलंकृत करता है उस तरह समुद्रविजय के पिछे उसने पृथ्वी को अलंकृत करना आरंभ किया । एकबार मेघ को ज्योति की तरह शस्त्रागार में तेज से देदीप्यमान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । अनुक्रम में पुरोहित वगैरेह दुसरे सभी रत्न अपने-अपने योग्य स्थान पर उत्पन्न हुऐ और क्रमानुसार आकर उनसे मिले । बाद में रत्नचक्र चला इसलिए उसके पीछे दिग्विजय करने की इच्छा से मधवाचक्री प्रथम पूर्वसमुद्र के आभूषणरूप मागधतीर्थ में गये । मानो दूत आया हो उस तरह उनके नाम से अंकित ऐसा बाण देखकर मागधपति ने वहाँ आकर उनकी सेवा का आश्रय किया । बाद में मागधपति की तरह दक्षिण में वरदामदेव को और पश्चिम में प्रभासपति को जीत लिया । वहाँ से समुद्र के दक्षिण तट पर जाकर सिंधुदेवी को साध कर । वहाँ से वैताढ्य पर्वत पर आकर वैताढ्यकुमार देव को स्वाधीन करके, उसकी भेंट स्वीकार करके तमिस्रागुफा के पास आकर उस गुफा में द्वारपाल की तरह कृतमाल नाम के देव को विधिपूर्वक साध लिया । वहाँ से चक्रवर्ती की आज्ञा से सेनापति चर्म रत्नद्वारा सिंधु में से उतरकर वह पश्चिम में निष्कुट में गया और वह भाग जीत कर वापस आया । बाद में सेनापति ने दंडरत्न द्वारा उस गुफा के द्वार खोले, तब चक्रवर्ती ने गजरत्न पर बैठकर सेना सहित उसमें प्रवेश किया । काकिणी रत्नद्वारा अंदर प्रकाश देनेवाले मंडलो करके गजरत्न के कुंभस्थल पर मणिरत्न रखकर, उसकी कांति के प्रसार द्वारा अंदर चले । गुफा के मध्य में वर्द्धकिरत्ने रचे हुऐ सेतूबांध द्वारा अत्यंत दुस्तर ऐसी उन्मग्ना और निमग्ना नदी पार करके अपने आप जिसके द्वार खुल गये हैं ऐसे उत्तर द्वार के मार्ग से चक्रवर्ती सेना सहित बाहर निकले वहाँ आपात नाम के अति दुर्जय किरातो को, असुरो को इंद्र ने जीता उस तरह मधवा चक्रवर्ती ने उनको जीत लिया । बाद में वहाँ से सेनापति ने जाकर हिमालयकुमार को साध लिया और वहाँ से ऋषभकूट में जाकर चक्रवर्ती ने काकणी रत्नद्वारा 'मधवा चक्रवर्ती' ऐसा अपना नाम लिखा । वहाँ से वापस लौटते समय सेनापति के पास गंगानदी का पूर्व निष्कुट सधवाया और स्वयं गंगादेवी को साध्य किया । बाद में उस तीसरे चक्रवर्ती मधवाने वैताढ्य पर्वत की दोनों श्रेणी के विद्याधरो को लीलामात्र से साध लिया । विधि जानने में चतुर ऐसा चक्रवर्ती ने खंडप्रपाता गुफा के द्वार में रहे हुऐ नाट्यमाल देव को यथाविधि वश किया और सेनापति के पास जिसके दरवाजे खुलवाये हैं ऐसी खंडप्रपाता गुफा से होकर मधवा चक्रवर्ती समुद्रजल में से जहाज की तरह वैताढ्य में से बाहर निकले वहाँ गंगा के मुख में निवास कर रहे नैसर्प वगैरेह नवनिधियां उसके वश में हो गई । बाद में सेनापति के पास गंगा का पश्चिमनिष्कुट साध्य किया । इस तरह मधवाचक्री ने षट्खंड भरतक्षेत्र को वश में किया । आगे चलते अनुक्रम में चक्रवर्तीपन की समग्र सामग्री से प्रकाश मान हुऐ मधवाचक्री अमरावती में इंद्र आते हैं उस तरह अपनी श्रावस्ती नाम की नगरी में आये । वहाँ देवताओं और राजाओं ने एकत्रित होकर पूर्ण संपत्तिवाले मधवाचक्री का विधिवत चक्रवर्ती का अभिषेक किया ।

चक्रवर्ती का अभिषेक हो जाने पर वे महाराजा बत्तीस हजार मुगुटधारी राजाओं से निरंतर सेवा में थे सोलह हजार देवताओं से, आश्रित थे, नवनिधियों से उनके मनोरथ सिद्ध होते थे और चौसठ हजार अंतःपुर में स्त्रियों की नयनकमल की मालाओं से नित्य पूजे जाते थे। इसके अलावा दूसरे भी प्रमाद के स्थान उनके लिये उपलब्ध थे, तथापि वे अपने पितृपरंपरा से चले आ रहे श्रावकधर्म में कभी भी प्रमादी नहीं होते थे। उन्होंने सुवर्ण और रत्नों से देवताओं के विमान जैसे विविध प्रकार के चैत्यों जिनबिंब सहित बनवाये। जिस तरह वे पृथ्वी के एक पति हैं, इस तरह मनमें अर्हत्देव, साधु गुरु और दयामय धर्म ही स्वामीरूप थे। इंद्रियों को नियम में रखनेवाले वे चक्रवर्ती की तरह सभी राजा उसकी पूजा को छोड़ते नहीं थे उसी तरह वे भी चैत्यपूजा को छोड़ते नहीं थे। इस तरह देशविरति श्रावकपन से अपने आयुष्य को निर्गमन करके मधवाचक्री ने अंतकाल में विधिवत दीक्षा ग्रहण करके पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्था में, पचीस हजार मांडलिक में, दस हजार दिग्विजय में, तीन लाख नब्बे हजार चक्रवर्तीपन में और पचास हजार व्रताराधन में-इस तरह कुल पांच लाख वर्ष का आयुष्य निर्गमन करके, इंद्र के जैसे वैभववाले मधवा चक्रवर्ती निर्मल आत्मावाले पंच परमेष्ठी का स्मरण करते करते पंचत्व प्राप्त कर सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देवता हुए।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थ पर्वणि

मधवाचक्रवर्तीचरितवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तम सर्ग

श्री सनत्कुमार चक्रवर्ती चरित्र

नागलोक की नगरी भोगावती, देवनगरी अमरावती और राक्षसपुरी लंका से अधिक और कांचन की शोभा को धारण करनेवाली कांचनपुरी नाम की नगरी है। वहाँ शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रुजल के प्रवाह में मेघज्योति समान विक्रमयशा नाम का पराक्रमी राजा था। यूथपति गजेन्द्र की हथनीयों की तरह उसके अंतःपुर में पाचसौ प्रेमपात्र रमणीयां थीं। उस नगरी में मानो संपत्ति का हो ऐसा नागदत्त नाम का बहुत समृद्धशाली सार्थवाह रहता था। सौभाग्यकारी, लावण्यवाली और अतिशय रूप से शोभायमान, विष्णु की लक्ष्मी की तरह उसे विष्णु की लक्ष्मी की तरह उसे विष्णुश्री नाम की स्त्री थी। कालिमा और केश की तरह परस्पर प्रेम धारण करती वह दंपतिसारस पक्षी की तरह स्मरक्रीड़ा में रसिक होकर विहार करते थे।

एक बार वह सुंदर स्त्री काकतालीय न्याय से विक्रमयशा राजा की दृष्टि उस पर पड़ी। उसे देखते ही चोर की तरह कामदेव ने जिसका विवेकीरूपी धन हर लिया है ऐसा वह राजा विचार करने लगा कि अहो ! इस स्त्री के मृग जैसे लोचन, मयूर की कला जैसा सुंदर केशपास, पके हुए बिंबफल के दो भागों जैसे कोमल और अरुण होठ, मानो कामदेव के क्रीड़ा करने के लिये दो पर्वत हो ऐसे तीखे नोकीले और उन्नत स्तन, नयी लताओं जैसी कोमल भुजाएँ, वज्र के मध्यभाग जैसा कृश और मुष्टिग्राह्य मध्य भाग, हरीकाई की जैसी स्निग्ध रोमवाली, आवर्त जैसी नाभि, लावण्यरूप सरिता के तट जैसे नितंब, कदली के स्तंभ ऊरु और कमल जैसे कोमल चरण ऐसे सभी अवयव सुंदर हैं और अधिक क्या रहे ? उस स्त्री के सभी अंग संपूर्ण मनोहर हैं ऐसी सुंदर स्त्री को जरावस्था से विकल चितवाले विधाताने योग्यता देखे बिना ही स्मशान में इंद्रस्तंभ की तरह किसी गलत जगह अपाय में स्थापित की है, इसलिए उसका हरण करके मेरे अंतःपुर में स्थापन करके विधाता के अनुचित दोष को मैं टाल दूँ।” इस तरह मन में सोचकर कामदेव से विधुर बने विक्रमयशा ने उसका हरण किया और अपने यश को मलिन किया। बाद में उसे अंतःपुर में ले जाकर उसके साथ विचित्र प्रकार की कामदेव की लीला द्वारा एकता और क्रीड़ा करने लगा।

उस स्त्री के वियोग से सार्थवाह को मानो भूतबाधा लग गई हो, धतुरा खाया हो, अपस्मार की व्याधि हो गई हो, मदिरा का पान किया हो, सर्प ने दंश दिया हो अथवा सन्निपात हो गया हो ऐसा वह हो गया। इस तरह उससे वियोग प्राप्त सार्थवाह का कुछ समय दुःख में तथा उसके संयोग प्राप्त राजा का कुछ काल सुख में निर्गमन हुआ। राजा विक्रमयशा को उस विष्णुश्री के साथ ही निरंतर खेलते हुए देखकर, उसके अंतःपुर की दुसरी स्त्रियों ने ईर्ष्या से कामण किया। उस कामण द्वारा क्षण-क्षण क्षीण होती हुई सार्थवाह की स्त्री, जूड़ों के क्षय से लता की तरह अंत में जिवित मुक्त हो गई। उसकी मृत्यु से राजा भी जीवनमृत जैसा होकर नागदत्त की तरह प्रलाप और विलाप करने लगा। ‘यह मेरी प्रिया

प्रणय से रुठकर चुप हो गई हैं' इस तरह बोलते हुये राजाने उस मृत्यु प्राप्त स्त्रि को अग्नि मे डालने की ना कही, परंतु मंत्रीयोने सोचकर, राजा से छिपाकर उस विष्णुश्री के कलेवर को अरण्य मे डाल दिया ।

‘हे प्रिये ! तुम अभी थी । अब तुम मेरे सामने क्यों नहीं देखती हो ? छुप जाने की क्रीडा रहने दो । वियोगाग्नि मर्म को पीडा देनेवाली होती है मजाक मे भी ऐसा कहना उचित नहीं है । क्या कुतुहल से क्रीडा सरिता मे अकेली तो नहीं हो गई हो ? अथवा क्रीडागिरि या उद्यान मे तो नहीं गई हो ? लेकिन तुम मेरे बिना क्रीडा कैसे करोगी ? यह मैं तुम्हारे पीछे आ रहा हूँ’ इस तरह बोलते-बोलते राजा उस उस प्रदेश मे उन्नमत की तरह घूमने लगा । ऐसे भटकते-भटकते तीन दिन तक राजा ने अन्नपान ग्रहण किया नहीं । वह देख मंत्रीयो ने उसके मृत्यु की आशंका से भयभीत होकर उसे स्त्रि के शरीर को अरण्य मे ले जाकर राजा को दिखाया । उस समय उस नरककाल के सभी केश बिखरकर भालू की तरह हो गये थे, खरगोश की तरह जंगल के बगुले पक्षियो ने उसकी आँखे खींच ली थी । मांस के लोलुपी गिध पक्षियों ने उसके स्तनो को चर्वित कर दिया था । मधुमक्खी के छत्ते की तरह उसे मक्खियो के समूह से आच्छादित हो गया था, गिरे हुए पक्षी के अंडे की तरह उसके चारो-ओर चिट्टियां लग गई थी और उसमे से दुर्गंध बदबू निकल रही थी । ऐसा विष्णुश्री का शरीर देखकर राजा विक्रमयशा विरक्त होकर इस प्रकार सोचने लगा ।—

“अहो ! इस आसार संसार मे कुछ भी सार वस्तु नहीं है । ऐसे आसार स्त्रिदेह मे सारबुद्धिद्वारा चिरकाल मे मोह पाये हुये को मुझे धिक्कार है । हल्दी के रंग जैसी आहार्य गुणवाली स्त्रियो से परमाथवित्ता पुरुष का मन हरण नहीं होता है, शेष सभी पुरुषों का मन हरण होता है । विष्टा, मूत्र, मल, श्वेश्म, मांस, मज्जा और अस्थियों से पूर्ण उसी तरह नसो से गूथा हुआ ऐसी स्त्रियां चर्मद्वारा सजाई हुई होने से बाहर से रमणीय लगती है लेकिन स्त्रि के शरीर का भीतरी और बाहरी विपर्यास हो जाता है, अर्थात् भीतर है वह बाहर आ जाये और बाहर का भीतर जाय तो वह गीध और लोमडीयो के लिये प्रियपात्र बन जाता है कामदेव यदि स्त्रीरूप के शस्त्र से इस जगत को जीतते है तो बादमे तुच्छ पंखो के शस्त्र ग्रहण करता है उसे मूढ बुद्धिवाला समझना चाहिए । संकल्प मे से उत्पन्न होनेवाले वे कामदेव ने अहा ! इस पूरे विश्व को परेशान कर डाला है, इससे उसका मूल जो संकल्प है उसका ही मैं त्याग कर देता हूँ”

इस तरह सोच विचार करके संसार से विरक्त हुआ दृढ मनवाला विक्रमयशा राजाने सुव्रताचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की । बाद मे अपने देह पर भी निःस्पृह होकर, अक दो और मास उपवास वगेरेह तपस्या करके, सूर्य जिस तरह किरणो से जल शोषित करता है उसी तरह उसने अपने शरीर को शोख डाला । इस तरह दुस्तप तप आचरण कर कालयोग मे मृत्यु पाकर वे सनत्कुमार देवलोक मे श्रेष्ठ आयुष्यवाले देवता हुये । देवसंबंधी आयुष्यपूर्ण होनेपर वहाँ च्यवन करके रतनपुर नाम के नगर मे जिनधर्म नाम का श्रेष्ठीपुत्र हुये, आठ प्रकार की पूजा द्वारा तीर्थकरो की आराधना करता था, अेषणीय वगेरेह दान से मुनिराज को प्रतिलाभ करता था और असाधारण वात्सल्यभाव से साधर्मिक जनो को दानद्वारा प्रसन्न करता हुआ इस तरह उसने कुछ समय काल निर्गमन किया ।

इस ओर नागदत्त प्रिया के विरह से दुःखी होकर, आर्त्तध्यान द्वारा मृत्यु प्राप्त कर तिर्यचयोनि मे परिभ्रमण करने लगा । अनुक्रम मे चिरकाल संसार मे भटककर सिंहपुर नाम के नगर मे अग्निशर्मा नाम का ब्राह्मणपुत्र था । कुछ समय बाद उसने त्रिदंडीपन ग्रहण करके अज्ञान तप मे तत्पर होकर घूमते-घूमते वह रतनपुर नगर मे आया । उस नगर मे हरिवाहन नाम का अन्यधर्मी राजा था । उसने उस त्रिदंडी परिव्राजक को नगर मे आया सुनकर पारणा के दिन अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया वहाँ आये हुऐ अग्निशर्मा सन्यासी ने दैवयोग से राजद्वार मे आये हुऐ उस जिनधर्म वणिक को कुमार ने देखा । उसे देखते ही पूर्व जन्म के बैर से अग्निशर्मा ऋषि के नेत्र रोष से लाल हो गये । तत्काल अंजली जोडकर पास खडे हुऐ हरिवाहन राजा से बोले-“हे राजा ! इस श्रेष्ठी के पृष्ठभाग पर अति उष्ण स्वीर पात्र रखकर आप भोजन करवायेगे तो ही मैं भोजन करूँगा, अन्यथा मैं भोजन नहीं करूँगा” राजा ने कहा-“दुसरे पुरुष के पृष्ठभाग पर थाल रखकर मैं आपको भोजन करवाऊँगा” ऐसे राजा के वचन सुनकर वह त्रिदंडी क्रोध करके फिर से बोले-“इसी पुरुष की पीठ पर उष्ण स्वीर का पात्र रखकर मैं भोजन करूँगा, नहीं तो अकृतार्थ होकर वापस लौट जाऊँगा ।” राजा उसका परम भक्त था इसलिए उसने उस तरह से करवाने के लिये कबूल हुआ । जिनशासन के बाह्य ऐसे पुरुषोमे विवेक कहाँ से होगा ।

बाद मे राजा की आज्ञा होने से उसने अपना पृष्ठभाग सामने रखा । उसके उपर उष्ण भोजन रखकर त्रिदंडी भोजन करने लगा । दावानल को हाथी सहन करता है उस तरह उस जिनकुमार ने पात्र के ताप को सहन किया और ‘मेरे पूर्व जन्म के कर्म का फल है वह कर्म इस मित्र के योग से टूट जाये’ इस तरह चिरकाल सोचता हुआ स्थिर रहा । जब वह दंडी खाना समाप्त करने के अंत मे उस समय उसकी उष्णता से उछला हुआ रुधिर, मांस और चरबी रस से वह पात्र किचड पर से फिसल कर गिर पडता है उस तरह उस कुमार के पृष्ठभाग से गिर पडा । वहाँ से अपने घर आकर अपने संबंधीयो को बुलाकर जिनधर्म मे विलक्षण ऐसे जिनधर्मकुमार ने अपना सब दुष्कृत्य याद किया । फिर चैत्यपूजा करके मुनि के पास आकर उसने यथाविधि दीक्षा ग्रहण करके । नगर मे से निकलकर पर्वत के शिखर पर चढकर पूर्व दिशा मे अपना पृष्ठभाग खुला रखकर उसने कायोत्सर्ग किया । उस समय रुधिमय उसके पृष्ठभाग को गीध और अन्य पक्षीयोने चोंचसे नोचते थे, तथापि उसने दुसरी दिशाओ मे भी कायोत्सर्ग धारण किया इस तरह वह नवकारमंत्र के ध्यान मे तत्पर रहकर ऐसी पीडा सम्यक् प्रकार से सहन करता हुआ जिनधर्मकुमार मृत्यु प्राप्त करके सौधर्मकल्प के विषय में इंद्र हुआ । वह त्रिदंडी मृत्यु पाकर आभियोगिक कर्म द्वारा इंद्र का औरावत हाथी बना । बाद मे आयुष्य पूर्ण करके वहाँ से च्यवन करके उस त्रिदंडी का जीव कुछ भवो मे भ्रमण करके असित नाम का यक्ष राजा हुआ ।

इस जंबूद्विप मे कुरुजांगल देश के विषे हस्तिनापुर नाम का नगर था । उस नगर मे अश्वो की सेना से पृथ्वीमंडल को आच्छादन करनेवाला और मंगल द्वारा शत्रुओं के मंडल को जीतनेवाला अश्वसेन नाम का राजा था । गुणरूप रत्नो का रोहणाचलरूपी वह राजा, दूध मे पुरा की तरह दोष का एक भी कण नहीं था । ‘मुझे यह तिनके के समान गिनती करता है’ ऐसा मानकर सौभाग्य प्राप्त करने की

इच्छा से लक्ष्मी असिधारा व्रत करने के लिये उसके पास स्थिर हो रही थी। याचको को आते हुऐ देखकर उसे अधिक हर्ष होता था और अपनी देने की इच्छा के अनुमान से कोई कम याचना करता है तो उसके मन मे खेद होता था। उसे सहदेवी नाम की महारानी थी। वह रूप से पृथ्वी पर मानो कोई देवी आई है ऐसी जान पडती थी। अब उस देवलोक मे इंद्र संबंधी लक्ष्मी को भोगकर जिनधर्मकुमार का जीव उस सहदेवी के उदर मे अवतरित हुआ। उस समय सहदेवी ने हस्ती वगैरेह चौदाह स्वप्न मुख मे प्रवेश करते हुऐ देखा। अनुक्रम मे प्रसव समय आने पर अद्वितीयरूप वैभववाले, जातिवंत सुवर्ण के जैसी कांतिवाले और सर्वलक्षणा परिपूर्ण एक कुमार को जन्म दिया। अश्वसेन राजाने जगतको आनंद देनेवाले बडे उत्सव से उनका सनत्कुमार ऐसा नाम रखा स्वर्ण जैसे गौर अंगोवाला वह बालक बालचंद्र की तरह लोगो के नेत्रो को प्रसन्न करता हुआ अनुक्रम मे बढने लगा। एक राजा की गोद से दुसरे राजा की गोद मे घूमता वह कुमार एक कमल से दूसरे कमल पर घूमते हुए हंस की तरह शोभा देता था। वह बालक होने पर भी अप्रतिम रूप द्वारा देखती ही स्त्रियों के मन और नेत्रो को हर लेता था। सर्वांगयुक्त शब्दशास्त्र का और दुसरे सभी शास्त्रो को मात्र गुरु के मुख से निकलते ही एक कुल्ले की तरह लीला से पान कर लिया। राज्यलक्ष्मी के भुवन के स्तंभरूप ऐसे शस्त्रशास्त्र और अर्थशास्त्र मानो दुसरी भुजा स्तंभ हो उस तरह उसे ग्रहण कर लिया। निर्मल कलानिधि (चंद्र) की तरह अनुक्रम मे बढते ऐसे उन्होंने अेक लीलामात्र से दुसरी अन्य सभी कलाएँ ग्रहण कर ली। बादमे मृत्युलोक मे से जिस तरह स्वर्ग प्राप्त करते है, उस तरह से साढे ऐकतालीस धनुष्य उची कायावाले होकर शिशु अवस्था मे यौवन प्राप्त कर लिया।

उस सनत्कुमार को कालिंदीसुर का पुत्र महेंद्रसिंह नाम का पराक्रमी प्रसिद्ध मित्र था। एक समय वसंत ऋतु प्राप्त होनेपर सनत्कुमार ने उस महेंद्रसिंह के साथ मकरंद नाम के उद्यान मै कुतुहल से क्रीडा करने गया। नंदनवन मे देवकुमार की तरह उस उद्यान मे सनत्कुमार ने मित्र के साथ विचित्र प्रकार की क्रीडा की। उस समय अश्वसेन राजा को भेट के तौर पर पांच धारा मे चतुर और सभी लक्षणा लक्षित ऐसे अनेक अश्व आये थे, उसमे से जलतरंगो के जैसा चंचल जलधिकल्लोळ नामक अेक अश्व उन्होंने सनत्कुमार को अर्पण किया। वह उस अश्व को देखकर कुमार दुसरी क्रीडा छोडकर उस पर आरुढ हुआ, क्योकि राजपुत्रों को सभी कुतुहल से अधिक हाथी घोडे संबंधी कुतुहल अधिक होता है। अेक हाथ मे चाबुक और दुसरे हाथ मे लगाम लेकर लांघते हुऐ आसन के स्पर्श बिना ही दो ऊरु द्वारा उसको प्रेरणा देकर अश्व दौडाया। तत्काल चरणद्वारा पृथ्वी को स्पर्श किये बिना ही आकाश मे ही चलता हुआ मानो वह सूर्य के घोडे को देखने का इच्छुक हो उस तरह गति से दौडा। ज्यो-ज्यो कुमार उसे लगाम से खिंचने लगा त्यो-त्यो वह विपरित शिक्षावाला वह अश्व अधिका-अधिक दौडने लगा। आसपास दुसरे घुडस्वार राजपुत्रो अश्व को दौडाते हुए उसके साथ चल रहे थे। उनके बीच से मानो अश्वरूप मे राक्षस हो ऐसा वह अश्व आगे निकल गया। सभी राजाओं के देखते देखते नक्षत्रो मे से चंद्र की तरह सनत्कुमार सहित अश्व अदृश्य हो गया। जहाज को नदी को बाढ खिंच लेजाती है उस तरह अपने कुमार को अश्व ने आकर्षित किया है ऐसा जानकर अश्वसेन राजा बडी अश्वसेना लेकर

उसे वापस लाने के लिये उसके पीछे निकल पड़ा । “यह अश्व जा रहा है, यह उसके पैरों के निशान हैं, यह इसके केश और यह है उसके मुँह से गिरी हुई लार ।” इस तरह साथ चल रहे लोगो से कह रहे थे । इतने में ही ब्रह्मांड को भरनेवाली धौकनीरूप मानो अचानक हुई कालरात्रि जैसी अंध बना देनेवाली प्रचंड, वावली (पवनश्रेणी) चढ़कर आई बादल आदि से घर की तरह उड़ती धूलद्वारा सभी दिशाएँ ढंक गई । सेना स्तंभित हो गई । ओक पैर भी चलने के लिये कोई तैयार नहीं हुआ । धूल से भरे मार्ग से कुमार के अश्व के पद चिन्ह और फेस इत्यादि के चिन्ह लुप्त हो गये । ऊपर आकाश और समान भूमि दिखाई देने लगी वृक्ष आदि कुछ भी नहि दिखाई देता था । मानो सभी जन पाताल में समा गये हो ऐसा हो गया । सभी सैनिक, समुद्र के जल में जिनके जहाज लुप्त हो गये और नाविकों की तरह उसका उपाय ढूँढने में मूढ़ होकर व्याकुल हो गये ।

ऐसा दृश्य देखकर कुमार के मित्र महेंद्रसिंह ने नमस्कार करके अश्वसेन राजा से विज्ञप्ति की “हे देव ! यह दैव की दुर्घट घटना देखे कहां कुमार ! कहीं वह दुरदेशी अश्व ! कहीं शील जाने बिना अश्व पर चढ़ना ! कहीं उस दृष्ट अश्व से कुमार का हरण और कहीं दृष्टिमार्ग को आच्छादन करनेवाली वह रज की वावली (औंधी) ! तथापि एक सामंतराजा की तरह वैसे दैव को जीतकर आप स्वामी के जैसा उस मेरे मित्र को मैं ढूँढकर लाऊँगा । हे प्रभु ! पर्वतों की गुफाओं में और उसके गहरे शिखरों में, घाटी, वृक्षघटा से दुर्गम ऐसी भूलभूलैयों में, पाताल जैसे नदीयों के तट कंदराओं में, निर्जन प्रदेश में और दूसरे देशों में अल्प परिवार के साथ या कभी अकाकीपन में कुमार की खोज करने में मुझे सहूलियत होगी । आप महाराजा यहाँ वहाँ सेना लेकर खोजने जाओगे तो छोटी गली गलियारों में गजेन्द्र के प्रवेश की तरह बहुत कठिनाई होगी” इस प्रकार कहकर बारंबार कहकर चरणों में गिरकर महेंद्रसिंह ने अश्वसेन राजा को वापस लाँटाया, इसलिए वह दुःखी होकर अपने नगर में आया ।

बाद में सारसार परिमित (थोड़ा) परिवार लेकर गजेन्द्र की तरह दुर्वार ऐसा महेंद्रसिंह तत्काल बड़ी घाटीयों में दाखिल हुआ । उन घाटीयों में गेंडों ने अपने शिगों से उखाड़े हुए पाषाणोंद्वारा सभी मार्ग विषम बन गया था । धाम से पीडित सुअरों ने प्रवेश करके छोटे तालाबों को कीचड़मय कर डाला था । प्रौढ़ भालुओं के नाद से गुफाओं में प्रति ध्वनि होती थी । गुफा में बैठे केशरीसिंह के नाद से भयंकर दृश्य दिखाई दे रहा था । लंबी छलांग लगानेवाले चित्तों के समूह से मृग के झुंड आकुल व्याकुल हो रहे थे । पशुओं को निगल कर अजगर वृक्षों से लिपट कर पड़े थे । चमरु मृगों की टोलियाँ मार्ग में वृक्षों की छाया में बैठी थी । सिंहनी के साथ जलपान करते सिंह मार्ग की सरिताओं में रुकावट डाली थी और उन्मत्त हाथियों ने मार्ग के वृक्षों की टूटी हुई शाखाओं द्वारा वह घाटी दुर्गम बन गई थी । ऐसी घाटी में सनत्कुमार की खोज करने के लिये प्रवेश किया । कटिले वृक्षों से, शिकारी प्राणीयों से और गह्वों से विकट ऐसी महाघाटी में घूमते समय उसके साथ की सेना उससे बिछड़ गई । अनुक्रम में खेद पाये साथ के मंत्री और मित्रादिक ने छोड़ा हुआ महेंद्रसिंह संगरहित मुनि की तरह अकेला घूमने लगा । बड़े बड़े लतागृहों में और पर्वत गुफाओं में वह पल्लीपति की तरह धनुष्य लेकर अकेला भटक रहा था । वन के हाथी और सिंहों की नाद ध्वनि में वीर सनत्कुमार के नाद की शंका से वह दौड़ने लगा और अपने मित्र

को देखा नहीं, तब वह वापस उछलते हुए झरने की ध्वनि पर शंका करके वहाँ तेजी से दौड़ गया। प्रेम की गतिन्यायी है। नदी, हाथी और सिंह से उसने कहा कि “मेरे बंधु की जैसी ध्वनि यहाँ हो रही है, इसलिए वह तुम्हारे पास है ऐसा मुझे लग रहा है, क्योंकि अंक अंश दर्शन से सर्व लाभ प्राप्त होता है।”

इस तरह सभी जगहों पर अपने मित्र को देखा नहीं तब वह पास के वृक्ष के उपर चढ़कर भटके हुए पथिक की तरह बारंबार दिशाएँ देखने लगा। उस समय वसंत ऋतु होने से अशोक में शोक धारण, बकुल में व्याकुल होता हुआ, आम्रवृक्ष को सहन न करता हुआ, मल्लिका में दुर्बल होता हुआ, कर्णिकार का तिरस्कार करता हुआ, गुलाब में लाल होता हुआ, सिंदुवार से दूर रहता, चमेली से कंपायमान होता हुआ, दुर्जन की तरह मलयानिल से विमुख रहता हुआ, कोकिला के पंचम स्वर उच्चारण कर्णकान फोड़ते हैं ऐसा माननेवाला और चंद्र के किरणों से भी ताप को शांत न करनेवाला महेंद्रसिंह दरिद्र के पुत्र की तरह अकेलेपन में महादुःख में वसंत समय में निर्गमन कर रहा था। मानो अग्नि के समूह में अंगारे बिछाये हो उस तरह चरणकमल को जलाती ऐसी सूर्यकिरणों से उष्ण रजद्वारा पैरों से जलते, तुरंत बुझ गये दावानल की भस्मद्वारा दुःसंचार ऐसे मार्ग में मानो अग्निस्तंभ रचा हो उस तरह चरण के ताप को महसूस न करते, अग्निज्वाला हो ऐसे उष्ण वायु से शरीर को लगानेवाले ताप को गिरि में घूमनेवाले हाथियों की तरह उसे महसूस न करते और रोगी जिस तरह क्वाथ पीता है उस तरह सरिता के किचड़वाले उष्ण पानी का पान करता हुआ वह महेंद्रसिंह ने अकाकीपन में भटक भटककर ग्रीष्मऋतु को निर्गमन करके। जिसके मुख में विद्युत है ऐसे राक्षस की तरह विश्व को क्षोभ करनेवाले मेघ से हृदय में क्षोभ नहीं पाते, तीक्ष्ण बाण की तरह अखंड धारा से छेदित होने पर भी सन्नद्ध हुए लडाकूओं की तरह जरा भी घबराये बिना, जगह-जगह वेग से वृक्ष को उन्मूलन करनेवाली वन की दुस्तर नदीयों को राजहंस की तरह अनायास उतर जाने से और वराह की तरह किचड़वाले मार्ग को लीलामात्र से लांघते हुए वह महेंद्रसिंह ने मित्र की खोज में वर्षाऋतु भी उल्लंघन की। उसके बाद मस्तक पर चित्रानक्षत्र का घोर ताप और पैरों में गर्म बालु को सहन करने से अग्नि के सरावसंपुट के अंदर मानो बसा हुआ है ऐसा अनुभव करता हुआ, स्वच्छ जल में कमलों में और हंसादिक पक्षियों में अविश्रांत हृदय से ‘अरे मित्र ! तुम कहाँ हो ?’ इस तरह पुकारते हुए, मंदगंधी सप्रवर्णी बास से क्रोधित दौड़ते हाथियों के बीच वनांतर में आये हाथी की तरह चलते और मित्र की तरह कमल के सुगंध पवन से प्रेरित वह महेंद्रसिंह शरदऋतु के मेघ की तरह भटक-भटक कर शरदऋतु का उल्लंघन किया। उसके बाद मानो हिमाचल के बंधु हो ऐसे उत्तरदिशा के पवन द्वारा सरोवर और नदीयों के हिमरूप बने जल में दावानल से भी अदाह्य फिर भी जल में दहन होनेवाली ऐसी पद्म, कल्हार, कैरव और उत्पल की पंक्तिओं में शीत से पीडित होने से दावानल की भी इच्छा करनेवाले किरात लोगों में दृढ़ निश्चय से घूमते ऐसे उसने हेमंतऋतु भी निर्गमन करके। उसके बाद वृक्षों की शीर्ण हुई गिरे हुए सर्प और बिच्छुओं पर निःशंकता से चरणन्यास करते और कर्ण के मर्म को छेदते हो ऐसे दुःश्राव्य भ्रमर शब्द द्वारा जागृत होकर उंचे कान कर रहे केसरीसिंहों के नाद से भी कंपित न होनेवाले ऐसे उसने नवीन पल्लवों के स्वाद मात्र से उदरपूर्ति करते हुए शिशिरऋतु को मित्र की तरह अति ठंडे होकर निर्गमन किया। इस तरह सनत्कुमार

की खोज में घाटी में घूमते महेंद्रसिंह ने अंक वर्ष पूर्ण किया ।

एकबार वह घाटी में कुछ दूर जाकर निमित्तिया की तरह मुंह ऊपर उठाकर सभी दिशाओं में देख रहा था । उसी समय जलकूक, ब्रौच, हंस और सारसपक्षियों का हर्ष कोलाहल उसे सुनने में आया और कमल की खुशबू का वहन करनेवाले पवन से उसे आश्वासन मिला, उससे उसने अंदाज लगाया 'यहाँ नजदीक में कोई सरोवर है' ऐसा उसे निश्चय हुआ । तत्काल आनंद के अश्रु आजाने से मित्र का समागम होगा, ऐसा निश्चय करके राजहंस की तरह वह सरोवर के सन्मुख चला । आगे चलते गांधार राग में गायन गाया जा रहा था, मधुर वेणु का नाद और मनोहर वीणा की ध्वनि उसे सुनाई दी । इसलिए हर्ष सहित आगे चलते हुए वेषधारी रमणीयों के बीच में रहे और प्रिय हैं वैसे दर्शन जैसे अपने मित्र सनत्कुमार को उसने देखा । तुरंत उसके मन में विचार आया कि 'क्या यह मेरा प्रिय मित्र सनत्कुमार है ! या कोई माया है ! या क्या इंद्रजाल है ! अथवा क्या मेरे वैतालिक के मुख से इस प्रकार कर्ण में अमृत जैसा वाक्य उसके सुनने में आया है ।

“कुरुवंशरूपी सरोवर में हंस समान, अश्वसेन रूपी समुद्र में चंद्र समान और सौभाग्य में कामदेव के समान हे सनत्कुमार ! तुम्हारी जय हो । विद्याधरो की कन्याओं की भुजलता को आलिंगन करने का वृक्ष और वैतालिकगिरि की दोनों श्रेणियों की जयलक्ष्मी द्वारा आढ्य ऐसे हे कुमार ! आपकी जय हो ! इस प्रकार सुनते ही ब्रीष्म में तप्त हाथी जिस तरह जलाशय समीप आता है उस तरह वह सनत्कुमार के समीप गया । अश्रुधारा के साथ चरणकमल में गिरते हुए महेंद्रसिंह को खड़ा करके सनत्कुमार ने आलिंगन किया । अतर्कित हुए परस्पर के समागम से विस्मित दोनों मित्र वर्षाकाल के मेघ की तरह हर्षाश्रु को बहाने लगे । विद्याधरो के कुमारों ने आश्चर्य से देखे दोनों मित्रों के रोम-रोम हर्षित होकर बड़े मूल्यवान आसन पर बैठे । दृष्टि और मन दूसरी जगह नहीं रखते हुए वे दोनों मित्र परस्पर योगी की तरह रूपस्थ ध्यान की मुद्रा में परायण हुए । सनत्कुमार के योग से महेंद्रसिंह का श्रम दिव्य औषध से रोग की तरह मिट गया ।

बाद में सनत्कुमार अपने नेत्र के हर्षाश्रु पोछकर अमृत जैसी वाणी द्वारा महेंद्रसिंह से बोला- “प्रिय मित्र ! यहाँ पर किस तरह आये ? अकेला क्यों हो ? मैं यहाँ पर हूँ यह आपने कैसे जाना ? इतना समय कहाँ निर्गमन किया ? मेरे वियोग होने पर पूज्य पिताश्री ने प्राण किस तरह धारण किये ? और मातापिता ने ऐसे दुर्गम प्रदेश में आपको अकेला कैसे भेजा ?” इस तरह कुमार ने पूछा, इसलिए महेंद्रसिंह गदगद वाणी से अपनी पूर्व वृत्तांत यथार्थ तरीके से कहा । बाद में सनत्कुमार ने चतुर ऐसी विद्याधरो की रमणीयों द्वारा उसे स्नान और भोजनादि करवाया । बाद विस्मित प्रफुल्लित लोचनवाला महेंद्रसिंह विनय से अंजली जोड़कर बोला- “प्रिय मित्र ! वह तुरंग बाद में आपको कितनी भूमि तक ले गया ? और तबसे मेरे वियोग में आपको क्या-क्या मिला ? उसी तरह यह समृद्धि आपको कहाँ से प्राप्त हुई ? वह यदि मुझ से गोपनीय योग्य नहीं है तो प्रसन्न होकर कहने योग्य हो” ऐसे उसके वचनों को सुनकर सनत्कुमार ने चित्त में विचार किया कि “यह आत्मा समान मित्र से कुछ भी गोपनीय नहीं है, परंतु यदि कोई भी दुसरा (भी अपना) वृत्तांत कहता है तो भी महात्मा लज्जित होते हैं, तो मैं मेरा

वृत्तांत स्वमुख से कैसे कहूं ? इसलिए दुसरे के पास कहलवाया जाये ।” ऐसा निश्चय करके वह अश्वसेन राजकुमार ने अपने बगल में वाम ओर की प्रिया बकुलमति ! ये मेरा मित्र महेंद्रसिंह हैं इसे मेरी कथा सुनाये, क्योंकि अब मेरे नेत्रकमल में निद्रा आ रही है” इस प्रकार कहकर सनत्कुमार सोने की इच्छा जताते हुए भीतर चले गये ।

अब बकुलमति विद्याधरी महेंद्रसिंह से कहने लगी—“हे राजन् ! तुम्हारे सभी के सामने देखते-देखते अश्वने तुम्हारे मित्र का हरण करने के बाद वेगवान उसने यमराज के रहस्यमय क्रीडास्थान जैसी एक बड़ी भयंकर घाटी में प्रवेश किया । दुसरे दिन पंचमधारा से अश्व चलने लगा । परंतु बाद में मध्यान काल में क्षुधा और पिपासा से पीड़ित होकर वह जिव्हा निकालकर खड़ा रह गया । इसलिए श्वास से जिसका गला रुंध गया है और जिसके चरण जकड़ गये हैं ऐसा वह अश्व पर से वह दिवार की तरह कुद कर नीचे उतर गया । बाद में अश्वके पेट और पीठ पर के बंधन ढिले कर दिया पलाण और लगाम भी अलग कर दिये उसी समय वह अधिक गतिशील होने से अपने स्थान पर ही पृथ्वी पर गिर पड़ा और मानो डर के मारे गिरने से उसके प्राण निकल पड़े । बाद में आर्यपुत्र जलपान की खोज में पृथ्वी पर इधर-उधर भटकने लगे । तथापि मरुभूमि की तरह कहीं भी जल उसे दिखाई नहीं दिया । अंग की सुकुमारता से अत्यंत दूर आने के श्रम से और घाटी के दावानल जैसी उष्ण गर्मी से आपके मित्र आकुल व्याकुल हो गये । इससे नजदीक के सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे जाकर बैठा, वैसे ही आँखें मुंद कर पृथ्वी पर गिर पड़े । उस समय पुण्ययोग के कारण उस वन के अधिष्ठायक यक्ष ने आकर अमृत के जैसे शीतल जल से उनके शरीर पर सिंचन किया । उससे वे संज्ञा में आये और बैठे बाद में उन देवताओं के जल से उन्होंने पान किया । बाद में आपके मित्र ने उनसे पुछा-‘आप कौन हैं ? और यह जल आप कहाँ से लाये हो ? यक्ष ने कहा-मैं यहाँ कानिवासी यक्ष हूँ और यह जल तुम्हारे लिये मानस सरोवर से लाया हूँ’ फिर से आर्यपुत्र बोले-‘मेरे इन अंगों में इतना दाह हो रहा है कि मुझे उस सरोवर में स्नान करने के बाद ही दाह शांत होगा ।’ ‘आपकी यह इच्छा मैं पूरी करूंगा’ इस तरह कहकर वे यक्षराज आपके मित्र को कदलीवृक्ष के संपुट में बिठाकर मानस सरोवर में ले गये । वहाँ महावत जिस तरह हाथी को स्नान करवाते हैं उसी तरह शीतल और निर्मल जल द्वारा आर्यपुत्र को स्नान करवाया । उसके साथ निपुण पैरचंपी करनेवाले पुरुषों की तरह सभी अंगों का सुखस्पर्शवाले उस जल से उसका श्रम दूर हो गया ।

उस समय में आपके मित्र के पूर्व जन्म का शत्रु असिताक्ष नाम का यक्ष तुम्हारे मित्र को मारने के लिये नये यमराज की तरह वह वहाँ उपस्थित हुआ ‘अरे ! खड़े रहो, भूखाशेर ज्यो हाथी को देखता है वैसे मैंने बहुत समय बाद देखा है तो अब तुम कितने दूर जाओगे ? इस प्रकार कहकर तिरस्कार पूर्वक उसने अकलकडी की तरह अकल वृक्ष उखाड़कर उसे हाथी जिस धौकनी को उछालता है उस तरह प्रहार करके फेंक दिया । उस क्रोधित यक्ष ने मानो अकाल में कल्पांत काल की तरह धूल उड़ाकर पुरे जगत को अंधकारमय कर दिया और धुएँ जैसी धूमवर्णी भयंकर आकृति धारण करनेवाले होने से मानो अंधकार के सहोदर हो ऐसे पिशाच उसने बनाये मानो जंगम चिताग्नि हो उस तरह ज्वालाओं से

विकराल मुखवाला, गिरते वज्र की ध्वनि जैसा अट्टहास करता हुआ, पिंडाकार केशवाला, दावानल सहित पर्वत हो ऐसा पीले नेत्रोवाला, जिसके कोटर में सर्प रहे हैं ऐसा मानो वृक्ष हो ऐसी लंबी जिह्वाओं को धारण करनेवाले तिक्ष्ण तिरछी टेढ़ी तथा बड़ी दाढ़ों से मानो मुख में कांती को धारण की हो ऐसे वे पिशाच, मक्षिकाएँ जिस तरह शहद पर गिरती हैं उस तरह वे आर्यपुत्र पर गिरे, नटों की तरह शरीर को अनेक प्रकार की आकृति या भंगीमा दिखाकर उनके आगे आकर घूमने लगे तथापि आपके मित्र आपको देखकर तनिक भी डरे नहीं। ऐसे ये बलवान आर्यपुत्र जब ऐसे पिशाचों से भयभीत नहीं हुए, तब उस यक्ष ने कालपाश जैसे नागपाश से उनको बांध लिया, लेकिन तत्काल उन्मत्त हाथी की तरह अपने हाथों से प्रहार करके आर्यपुत्र को मारने लगा। उस समय क्रोधित महावत की तरह हाथी को लोहे का गोला मारता है उस तरह आर्यपुत्र वज्र जैसी मुष्टि द्वारा उसके ऊपर प्रहार किया। पर्वत पर विद्युत द्वारा मेघ की तरह यक्ष ने लोहे का मुदगल से आर्यपुत्र पर प्रहार किया। उसी समय उन्होंने चंदन के वृक्ष को उखाड़ कर उस पर प्रहार किया, जिससे वह सुखे हुए वृक्ष की तरह वह यक्ष पृथ्वी पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद वापस उठकर क्रोधित होते हुए यक्ष ने क्रोधित होकर एक शिला की भांति एक पर्वत उठाकर आर्यपुत्र पर फेंका, उस गिरी के प्रहार से आपके मित्र क्षणभर के लिये सायंकाल में द्रव्य के जल की तरह निश्चल रहता है उसी तरह नेत्रकमल मुंदकर निश्चेतन हो गये। वापस संज्ञा आने पर मेघ को ज्यो महावायु बिखेर देता है उसी तरह उस पर्वत को दूर करके आर्यपुत्र अपने बाहु से युद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए बाद दंड द्वारा यमराज की तरह आपके मित्र ने भुजदंड से उसपर प्रहार करके उसके कण जैसे छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले, तथापि अमरत्व के कारण वह यक्ष मरा नहीं, परंतु मरने की इच्छावाले सुअर की तरह महाचिख लगाकर वह असिताक्ष यक्ष वहाँ से वायुवेग से भाग गया। उस समय रणकौतुक को देखनेवाली देवी और विद्याधरो की स्त्रियों ने आपके मित्र पर षट्कृतुओं की लक्ष्मी जैसी पुष्पवृष्टि की।

बाद में वीर हृदयवाले वे आर्यपुत्र दिन के अपराह्नकाल में वहाँ से चलकर उन्मत्त हाथी की तरह बाह्य भूमि में आये। वहाँ कामदेव को जिन्दा रखनेवाले औषधि जैसे आपके मित्र को इन खेचरकन्याओं ने जो नंदनवन में से आयी थी उन्होंने देखा। वे आपके मित्र को देखकर मनोहर हावभाव करती स्वयंवरमाला जैसी मदालसा दृष्टियाँ उन पर डालने लगी, जिससे वक्ताओं में मुख्य ऐसे आर्यपुत्र उनके हावभाव को प्रगट करने की इच्छा से उनके पास जाकर अमृत जैसी मधुर वाणी द्वारा बोले-‘आप कौन से महात्मा की कुलभूषण पुत्रियाँ हैं और किस हेतु द्वारा आप इस अरण्य को अलंकृत किया है?’ तब उन्होंने कहा-‘हे महाभाग! विद्याधरो के राजा श्रीमान भानुवेग की हम आठ कन्याएँ हैं और यहाँ से नजदीक हमारे पिताकी उत्तम नगरी है, इसलिए कमलिनी में राजहंस की तरह आप विश्रांति के लिये उस नगरी में पधारकर उसे अलंकृत करें।’ ऐसे उनके नम्र वचन से तुम्हारे मित्र उस नगरी में आये। उस समय मानो सूर्य संध्याविधि करने जा रहे हैं वैसा वह पश्चिम के समुद्र में मग्न हो गया। उन आठ कन्याओं के लिये पर की खोज में चिंतारूपी शूल से पीड़ित उनके पिताने विशल्य करने के औषधिरूपी तुम्हारे मित्र को वे कन्याएँ अंतःपुर में पुरुषों के साथ उनके पिता के समीप भेजा। उन्हें

देखकर भानुवेग विद्याधर ने खड़े होकर आदर सहित कहा- 'बहुत अच्छा हुआ, आज हमारा गृह पवित्र हुआ, जिससे आप जैसी पुण्यराशि पुरुष हमारे सदभाग्य से स्वयंमेव पधारे। आप आकृति से कोई बड़े वंश में उत्पन्न हुए वीर पुरुष हैं ऐसा लगता है। क्योंकि क्षीरसागर से ही चंद्र का जन्म हुआ है ऐसा उसकी मूर्ति से जानते हैं ही इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी आठ कन्याओं से पाणिग्रहण करें। क्योंकि रत्न सुवर्ण में ही जड़े जाते हैं।'

इस प्रकार की भानुवेग की प्रार्थना से आर्यपुत्र आठ दिशाओं की लक्ष्मी जैसी आठ कन्याओं के साथ विधिपूर्वक विवाह किया। बाद में उनके साथ रतिगृह में जाकर कंकणबंध सहित रत्नपलंग पर निद्रासुख का अनुभव करने लगे। उसी समय उन्हें निद्रा से पराजित देख असिताक्षयक्ष ने आकर क्षणभर में उन्हें उठाकर दूसरे स्थान पर फेंक दिया। बलवान का छल भी बहुत बलवान है। जाग्रत होने के बाद कंकण सहित अपने शरीर को अरण्य में अकाकी भूमि पर पड़ा हुआ देख तब 'यह क्या हुआ!' ऐसा सोचकर आपके मित्र विचार करने लगा। बाद में अकाकीपन में घाटी में पूर्ववत् ध्यान करते उसे सात मालेवाला आकाश तक उंचा एक प्रासाद उन्हें दिखाई दिया। 'क्या यह किसी मायावी का मायाविलास होगा? इस तरह सोचता हुआ आर्यपुत्र उस प्रासाद के नजदीक आया। वहाँ पर किसी पक्षी की तरह का करुण स्वर से वन में भी रुदन करती हुई स्त्रि का स्वर सुनाई दिया। वह सुनकर दयावीर आर्यपुत्र नक्षत्र के विमान की भ्रांति देता उस प्रासाद की सात भूमि चढ़े। वहाँ 'हे कुरुवंशी सनत्कुमार! जन्मांतर में भी आप मेरे भर्तार बने' इस तरह बारंबार कहती और नेत्रों में अश्रु लाकर मुख झुकाकर एक लावण्यवती कन्या आपके मित्र को दिखाई दि। अपना नाम सुन 'मेरे साथ संबंध रखनेवाली यह कौन होगी' इस तरह शंका करते ये आर्यपुत्र प्रत्यक्ष ईष्टदेवता हो वैसे उस स्त्रि के सामने आकर बोले- 'हे भद्रे! तुम कौन हो? वह सनत्कुमार कौन हैं? तुम यहाँ कैसे आयी? और तुम्हें कौन सा दुःख आ पड़ा है? जिससे तुम उसका स्मरण करके रुदन कर रही हो? ऐसे उनके वचन सुनकर वह बालिका तत्काल हर्षित होकर मानो अमृत वर्षा करती हो ऐसी मधुरवाणी से बोलने लगी -

'साकेतपुर नगर के अधिपति सुराष्ट्रराजा और देवी चंद्रयशा की सुनंदा नाम की मैं पुत्री हूँ और कुरुवंशीरूपी आकाश में सूर्य समान उसी तरह रूप से कामदेव का तिरस्कार करनेवाली सनत्कुमार नाम का अश्वसेन राजा के पुत्र हैं वह महाभुज मनोरथ द्वारा ही वे मेरे भर्तार हुए हैं और मेरे माता पिता ने भी पानी छोड़कर मुझे उन्हे ही दि है। मेरे विवाह के बाद कोई विद्याधर पर द्रव्य का चोर हरण करता है उस तरह, मुझे मेरे निवास स्थान से उठाकर यहाँ ले आया है। यहाँ आकर यह प्रासाद बनवाया, मुझे यहाँ छोड़कर वह विद्याधर किसी स्थान पर चला गया है। अब आगे क्या होगा यह मैं नहीं जानती।' आर्यपुत्र ने कहा- 'अरे भीरुलोचना! अब तुम रुदन मत करो, जिसका तुम स्मरण कर रही हो वह कुरुवंशी सनत्कुमार मैं हूँ।' वह बोली- 'हे देव! आप चिरकाल में मेरी दृष्टिमार्ग में आप आये हो, दैव ने मुझे सुस्वप्न की तरह आपके दर्शन करवाये हैं।'

इस तरह उन दोनों का वार्तालाप चल रहा था, उसी बीच क्रोधित लाल नेत्रोवाला वज्रवेग नाम

का विद्याधर वज्र के वेग जैसा वेग से वहाँ आया । तत्काल उस विद्याधर ने आर्यपुत्र को उठाकर उछलते खेचर के भ्रम की भांति उसे आकाश में उछाला । उस समय 'हे नाथ ! दैवने मुझे मार डाला' इस तरह बोलती हुई बाला सड़े हुए पत्ते की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ी, उस समय तत्काल आर्यपुत्र ने क्रोधित होकर वज्र जैसे पराक्रम से उस के मस्तक पर मुष्टि मारते हैं उस तरह मुष्टिप्रहार द्वारा उस दुराशय वज्र वेगको मार डाला और चंद्र की तरह नेत्र रूप कुमुद को आनंद देते हुए आर्यपुत्र किंचित भी अंगभंग बिना उस बाला के पास आये । उसे आश्वासन देकर उस बुद्धिमान वीर ने तुरंत उसके साथ पाणिग्रहण किया । उस समय निमित्तयाओ ने 'यह स्त्रिरत्न होगा' ऐसी सूचना की ।

उसी समय वज्रवेग की **वंध्यावली** नाम की एक सहोदर बहन अपने भाई के वध से कोप कर वहां आयी, लेकिन जो तुम्हारे भाई का वध करेगा वही तुम्हारा **भर्ता** बनेगा' ऐसा ज्ञानीओ के वचन सुनकर वह शांत हो गई । 'अपना लोभ से कौन से कार्य न बढे ? सबसे अधिक बढ जाय' बाद में दुसरी जयलक्ष्मी हो उस तरह स्वयंवर-परायण जैसी वह कुमारिका आर्यपुत्र को पति बनाने की इच्छा से वहाँ खड़ी रही । इससे आनंदित सुनंदा ने आर्यपुत्र को कहा-इसीलिए आपके मित्र उस रागी बाला के साथ गांधर्वविवाह से तुरंत विवाह किया । उसी समय वहाँ कोई दो विद्याधरो ने आकर अश्वसेन के कुमार को बख्तर सहित महारथ देकर कहा कि 'सर्प को गरुड मारता है उस तरह आपने वज्रवेग को मार डाला, उस खबर को सुनकर उसका पिता **अशनिवेग** जो दिग्गज जैसा पराक्रमी और सभी विद्याधरो का राजा है वह विद्याधरो के सैन्य से दिशाओ का आच्छादन करता हुआ, क्रोधरूपी क्षारजल का सागर बनकर आपके साथ युद्ध करने के लिये आ रहा है, इसलिए हमारे पिताजी चंद्रवेग और भानुवेग से प्रेरित हम दोनों आपके श्वसुर पक्ष के संबंधी होने के कारण आपको सहायता करने यहां आये हैं । हमारे पिताजी ने यह इंद्ररथ जैसा रथ और कवच भेजे हैं, वे लेकर शत्रु की सेना का विजयी करो । हमारे पिताजी **चंद्रवेग** और **भानुवेग** भी पवन जैसे गतिशील वाहनो में बैठकर सेना सहित अभी आपको सहायता करने के लिये आ जायेंगे । हम दोनों उनकी मूर्तियां ही समझे' इस तरह बात चल रही थी तभी मानो पूर्व और पश्चिम दिशा के दो समुद्र हो उस तरह चंद्रवेग और भानुवेग दोनों बड़ी सेना लेकर वहाँ उपस्थित हुए । उस समय आकाशमार्ग से आनेवाले अशनिवेग की सेना का पुष्करावर्त मेघ की तरह बड़ा कोलाहल हुआ । उस समय वंध्यावली ने आर्यपुत्र को प्रज्ञाति नाम की विद्या दी । क्योंकि स्त्रिया भर्तारि (पति) के बश में होती हैं । आर्यपुत्र भी तैयार होकर रथ में बैठकर रण करने के उत्कंठित होकर खड़े रहे, क्योंकि क्षत्रियो को रण संग्राम प्रिय होता है । शत्रुओ के यशरूप और चंद्र के राहूरूप ऐसे चंद्रवेग और भानुवेग वगेरेह विद्याधर अपनी-अपनी सेना लेकर आर्यपुत्र को चारो ओर से घेर लिया, उसी समय 'पकड़ो, पकड़ो, मारो-मारो' ऐसा बोलते बोलते अशनिवेग के सैनिक वहाँ अति वेग से आ पहुँचे तुरंत ही दीनता रहित दोनों के सैनिक युद्ध करने लगे और मुर्गे की तरह क्रोधित होकर उछल-उछलकर युद्ध करने लगे । उस समय सिंहनाद के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था और प्रदीप्त ऐसे युद्ध के बिना कुछ भी नहीं दिखाई देता था । युद्ध कला में निपुण ऐसे योद्धा हाथी की तरह सामने आकर, पीछे हटकर बारंबार प्रहार कर रहे थे और प्रतिकार कर रहे थे ।

इस प्रकार लंबे समय तक युद्ध करके जब दोनों सेना के सैनिक भूख हो गये, तब अशनिवेग पवनवेगी रथ में सवार होकर सामने आया । 'अरे ! यमद्वारा का नया अतिथि और मेरे पुत्र वज्रवेग का शत्रु कहाँ है ? इस प्रकार आक्षेप करके बोलते हुए उसने धनुष्यपर प्रत्यंचा लगाई । उसी समय 'यमराज' द्वार का नया अतिथि और तुम्हारे पुत्र वज्रवेग का शत्रु मैं यहाँ हूँ । इस प्रकार कहकर आर्यपुत्र प्रत्यंचा चढ़ाई । प्रथम वे दोनों बड़े पराक्रम वाले दोनों वीर का सूर्य के किरणों को आच्छादित करनेवाला बाणों का युद्ध चला, बाद में आर्यपुत्र और विद्याधरपति परस्पर युद्ध करने लगे जिसमें गदा तथा अस्त्रों का इस्तेमाल हुआ । लेकिन परस्पर पराजित नहीं हुए । बाद में वे सर्प और गरुड, आद्वेय और वारुण वगैरह एक-दूसरे को बाधक बनानेवाले दिव्य अस्त्रों द्वारा युद्ध करने लगे । धनुष्य का आस्फालन करके बाणों को छोड़ते विद्याधरपति के धनुष्य की ब्रीचा (प्रत्यंचा) को जीव की तरह आर्यपुत्र ने एक बाण से छेद डाला, बाद में मंडलाग्र से आकर्षित दौड़ते-ऐसे अशनिवेग की अर्ध (एक) भुजा को अश्वसेन पुत्र ने अर्धयश की तरह छेद डाली, फिर भी जिसका एक दांत भंग हो गया हो उस तरह वह हाथी की तरह एक दाढ़ से भूख हुआ सिंह की तरह जिसकी एक भुजा छेद डाली है ऐसा वह क्रोधित होकर आर्यपुत्र पर दौड़ा । इससे दांत द्वारा अधर को डंसकर प्रहार करने के लिये दौड़ते आ रहे अशनिवेग के मस्तक को हमारे पति ने उसी समय विद्या से अर्पित चक्र द्वारा छेद डाला । तत्काल अशनिवेग की राज्यलक्ष्मी आपके मित्र और हमारे पति को प्राप्त हो गई । कारण कि पराक्रमी ही लक्ष्मी का स्थान है । बाद में अश्वसेन के कुमार, चंद्रवेगादिक विद्याधरपति तुम्हारे मित्र का विद्याधरो के महाराजा का भी अभिषेक किया और नन्दीश्वर द्वीप में इंद्र करते हैं उस तरह उन्होंने शाश्वत अर्हतप्रतिमाओं का अतुल समृद्धि से वहाँ अष्टाह्निकोत्सव किया ।

एक समय विद्याधर शिरोमणि मेरे पिता चंद्रवेग ने आर्यपुत्र को विनयपूर्वक कहा कि 'पूर्व में एक समय ज्ञान का समुद्र और अपूर्व महिमावाले एक उत्तम मुनि मेरे देखने में आये मैंने उनसे पुछा था कि मेरी इन पुत्रीयों का स्वामी कौन होगा ? तब वे बोले कि यह बकुलमति वगैरह तुम्हारी सौ कन्याओं को सनत्कुमार नाम के चौथे चक्रवर्ती विवाह करेंगे । तब से यह कन्याएँ देने के लिये उनके पास कैसे जाये और उनसे प्रार्थना कैसे करें ? इस तरह मैं चिंतित था, उसी समय मेरे भाग्य योग से आप यही आ गये हैं, इसलिए हे स्वामी ! अब आप प्रसन्न हो जाये और इन कन्याओं से विवाह करे' बड़े पुरुषों की याचना और महर्षि के वचन अवश्य ही सफल होते हैं । इस तरह मेरे मातापिता की प्रार्थना से अर्थीजन को चिंतामणिरूपी तुम्हारे मित्र हमको-सौ कन्याओं से विवाह किया । तब से कभी मधुर संगीत से, कभी उत्तम नाट्य देखने से, कभी श्रेष्ठ आख्यान सुनने से, कभी सुंदर चित्र देखने से, कभी दिव्य वापिकाओं में जल क्रीड़ा के महोत्सव से, कभी उद्यान के पुष्पवाटिका में पुष्प चुनने की क्रीड़ा से और अन्य क्रीड़ा करते, विद्याधरो से घिरे हुए आपके मित्र सुख से काल निर्गमन करने लगे । आज क्रीड़ा करने के लिये आपके मित्र अभी यहाँ आये हुए हैं ऐसे समय में आप यहाँ मिल गये मिलने से दुर्देव का मनोरथ विनाश पाया और आपके मित्र हर्षित हुए ।" इस तरह बकुलमति कह रही थी तभी जल के दाह से हस्ती जल से बाहर निकलता है उस तरह सनत्कुमार रतिगृहे से बाहर निकले । विद्याधरो से

घिरे हुए महेन्द्रसिंह के साथ, मेरु पर चंद्र जाता है उस तरह वैताढ्य गिरि पर गये । वहाँ बड़ी समृद्धि द्वारा कुछ समय तक काल निर्गमन करने के पश्चात् एकबार महेन्द्रसिंह ने इस प्रकार कहा—“हे स्वामी ! आपकी यह समृद्धि देखकर मेरा भी मन बहुत हर्षित हुआ है, लेकिन आपके वियोग से पीडित माता पिता की याद आती है तब विशेष खेद होता है । मैं मानता हूँ कि वे पुत्रवत्सल मातापिता ‘इस सनत्कुमार, इस महेन्द्र’ इसी तरह पुरे विश्व को तन्मयता से देख रहे होंगे । इसलिए अब आप प्रसन्न होकर हस्तिनापुर चले और समुद्र जिस तरह चांद को आनंद देता है वैसे आप पितृजन को आनंदित करे ।

महेन्द्रसिंह के ऐसे वचन सुनकर सनत्कुमार तुरंत पिता के पास जाने के लिये उत्कंठित हुए और तुरंत सेना सहित सैंकड़ों विद्याधरपतियों के साथ घिरे हुए और प्रकाशमान विमानों से आकाश को सैंकड़ों सूर्यवाला करते सनत्कुमार हस्तिनापुर की ओर चल पड़े । उस समय कितने विद्याधर उनके ऊपर छत्र धारण करते थे, कोई चामर डालते थे, कोई पादुका उठाते थे, किसने पंखे लिये थे, किसीने घड़ी ग्रहण की थी, किसने तांबुल करंड हाथ में रखा था, कोई मार्ग दिखा रहे थे, कोई विनोद कराते हुए चल रहे थे, कोई अश्वारूढ होकर घूम रहे थे, कोई रथपर चढ़े थे और कोई पैदल चल रहे थे । इस तरह सर्व परिवार को लेकर, शत्रुरुपी पर्वत के वज्र समान ऐसे सनत्कुमार स्त्रियों और मित्रों सहित हस्तिनापुर आ गये । ग्रीष्म के ताप से पीडित मेघ की तरह सनत्कुमार ने अपने दर्शन से दुःखार्त मातापिता को और नगरजनो को आनंदित किया । उसी समय मन में प्रसन्न अश्वसेन राजा ने अपने राज्य पर सनत्कुमार को और उसके सेनापति के तौर पर महेन्द्रसिंह को स्थापित किया, बाद में श्री धर्मनाथ तीर्थंकर के तीर्थ के कोई रथविर मुनि के पास से दीक्षा लेकर अश्वसेन राजा ने अपना स्वार्थ साध लिया । राज्य को नीति से पालन करते हुए सनत्कुमार को अनुक्रम में चक्र वगैरेह चौदा महारत्न प्राप्त हुए । बाद में उसने चक्र के मार्ग का अनुकरण करके षट्खंड भरतक्षेत्र और नैसर्ग वगैरेह नव निधि साधे और एक हजार वर्ष में भरतक्षेत्र को साध कर हस्तिनापुर पर आरूढ होकर हस्तिनापुर में प्रवेश किया । नगर में प्रवेश पर ही उस महात्मा ने अवधिज्ञान द्वारा सौधर्म इंद्र ने सौहार्द द्वारा मानो साक्षात् स्वयं हो ऐसा देखा । ‘यह पूर्व जन्म के सौधमेंद्र थे, इसलिए ये मेरे बंधु हैं’ ऐसा सोचकर इंद्रने स्नेहवश होकर कुबेर को इस प्रकार से आज्ञा की “ कुरुवंशरूपी सागर में चंद्ररूपी और अश्वसेन राजा के पुत्र यह सनत्कुमार चक्रवर्ती हैं, ये महात्मा मेरे बंधुवत् हैं । वे षट्खंड भरत के साध कर आज अपने नगर में प्रवेश कर रहे हैं, इसलिए आप जाइये और उनका चक्रीपन का अभिषेक करें ।” इस प्रकार कहकर इंद्र ने सनत्कुमार के लिये हार, चंद्रमाला, छत्र, दो चामर, मुगुट, दो कुंडल, दो देवदूष्य और प्रकाशमान सिंहासन, दो पादुकाएँ और पादपीठ कुबेर को अर्पण किया तथा तिलोत्तमा, उर्वशी, मेना, रंभा, तुंबरु और नारद तथा उसके अलावा दूसरे को इंद्र ने चक्रवर्ती के अभिषेक महोत्सव में जाने के लिये आज्ञा की । इस तरह आज्ञा होते ही तुरंत कुबेर उनके साथ हस्तिनापुर में आये और इंद्र का संदेश सनत्कुमार से कहा । बाद में सनत्कुमार की आज्ञा लेकर कुबेर ने एक ही क्षण में रोहणगिरि के तट जैसी ऐक योजन के विस्तारवाली माणिक्य पीठ तैयार करवाई, उसके ऊपर दिव्य मंडप की रचना करके उसके मध्य में मणिपीठ बनवाई उसके ऊपर दिव्य मंडप की रचना करके उसके मध्य में

मणिपीठ बनवाई उसके ऊपर एक सिंहासन रचा, कुबेर के आदेश से देवता क्षीरसागर का जल लाये, सभी राजा अमूल्य गंधमालादि लाये। बादमे कुबेर ने विज्ञप्ति करके चक्रवर्ती को उत्तम सिंहासन पर बिठाया और इंद्र द्वारा भेजे गये उपहार भेट अर्पण करके इंद्र के समान देव वगैरेह परिवार की तरह सनत्कुमार का सामंतादि परिवार मणिपीठ पर योग्य स्थान पर बैठा। बादमे देवता ने नाभिराजा के पुत्र ऋषभदेव भगवान की तरह सनत्कुमार का पवित्र जल द्वारा चक्रवर्ती अभिषेक किया। उस समय तुंबरु प्रमुख गायको ने मंगलगीत आरंभ किये देवताओ ने पटहादिक वाजिंत्रो बजाये, रंभा, उर्वशी वगैरेह नर्तकीयो ने नृत्य किया और गंधर्वों ने विचित्र प्रकार के नाट्य प्रस्तुत किये। इस प्रकार से सनत्कुमार का अभिषेक करके देवताओ ने दिव्य वस्त्र, अंगराग, नेपथ्य और माला द्वारा उन्हें अलंकृत किया। बाद मे हर्षित हुऐ कुबेर ने उन्हें मदगंधी गजरत्न पर बैठाकर हस्तिनापुर मे प्रवेश करवाया और अलकानगरी की तरह हस्तिनापुर को समृद्धि से समृद्ध करवाया। तत्पश्चात् चक्रवर्ती ने विदाय दिये हुऐ सभी अपने-अपने स्थानो पर लौट गये। देवकृत अभिषेक हो जाने के बाद बत्तीस हजार मुगुटबद्ध राजाओ ने दुसरे सामंतादिको ने अपनी संपत्तिरूपी वल्ली मे नीकरूपी चक्रीपन का अभिषेक किया। उस अभिषेक के बारा साल तक उत्सव से पुरा हस्तिनापुर बारा साल तक दंड, कर और राज्यलडाकूओ के प्रवेश से रहित रहा। कर वगैरेह से पीडा रहित और ऋद्धियो मे इंद्र के समान ऐसे सनत्कुमार ने अपनी प्रजा का पिता की तरह पालन किया। इन तीन लोक मे उसके जैसा पराक्रमी, प्रतापवान और अप्रितम रूपवंत दुसरा कोई भी हुआ नहीं है।

एक बार सुधर्म की सभा मे रत्नमय सिंहासन पर बैठकर शक्रेंद्र सौदामनी नाम का नाटक करवा रहा था। उस समय सभी के रूप का पराभव करनेवाली ऐसी अपने निर्दोष रूप से पर्षदा मे बैठे देवताओ को विस्मित करता देह की प्रभा से स्वर्ग वासी सर्व देवो के तेज ढकदेनेवाला संगम नाम का कोई देव ईशान कल्प से किसी कार्य प्रसंग से वहाँ आया। क्षणभर बाद उसके जाने के बाद देवताओ ने शक्रेंद्र से पुछा-‘इस देव को ऐसा लोकोत्तर तेज और ऐसा अनुपम रूप कैसे प्राप्त हुआ होगा ? शक्रेंद्र बोले-‘उसने पूर्व जन्म मे आचाम्ल वर्द्धमान तप किया है, इससे इसे ऐसा रूप और तेज प्राप्त हुआ है।’ देवताओ ने दुबार पुछा-‘इसके जैसा इस जगत मे दुसरा कोई पुरुष होगा क्या ?’ सौधर्म पति बोले-‘कुरुवंश मे शिरोमणि सनत्कुमार चक्रवर्ती जैसा रूप है ऐसा दुसरी जगह पर कहीं देवो मे या मनुष्यों मे नहीं है।’

यह सुन विजय और वैजयंत नाम के दो देवताओं को उस रूप की प्रशंसा पर श्रद्धा नहीं आ रही थी। वे पृथ्वी पर उनका रूप देखने के लिये वे विप्र रूप धर राजद्वार पर आकर द्वारपालके पास खडे रहे। उस समय सनत्कुमार सभी वेश उतारकर अंग पर अभ्यंग करवा कर स्नान करने का आरंभ कर रहे थे। उस समय द्वारपाल ने आकर द्वार पर खडे दो विप्र (ब्राह्मणों) की सूचना दि इसलिए न्यायी चक्रवर्ती ने उसी समय भी उन्हें प्रवेश करने की आज्ञा दि। वे वहाँ आकर राजा को देख विस्मय से होकर सिरहिलाकर चिंता करने लगे-‘अहा ! क्या सुंदर स्वरूप है ? इसका ललाट मानो अष्टमी के चांद का तिरस्कार कर रहा है। नीलकमल की कांति को जीतनेवाले नेत्र कानो तक विश्रांत हुऐ है।

अधर पके हुऐ बिंबफल की कांति का पराभव कर रहे हैं। कान छीपकी शोभा को लज्जित कर रहे हैं। कंठ पांचजन्य शंख को जीतता है, भुजाएँ हस्ती की सूंड का तिरस्कार कर रही हैं। उरस्थल सुवर्णगिरि की लक्ष्मी को लुटता है, मध्य कटिभाग केशरीसिंह के कुमार के उदर जैसा है। विशेष क्या कहे ? उसके सभी अंगोचर हैं की शोभा वाणी अहा ! लावण्य सरिता की बाढ ऐसी उछल रही जिससे चंद्रिका मे तारो की कांति की तरह शरीर पर किया हुआ अभ्यंग तो कोई जानता ही नहीं है ? जैसा इंद्र ने वर्णन किया था वैसा ही रूप है, उसमे किसी भी प्रकार बदलाव नहीं है, क्योंकि महात्मा कभी भी मिथ्या भाषण करते ही नहीं है।”

सनत्कुमार ने पुछा—“हे उत्तम द्विजो ! आप यहाँ किस लिये आये हैं ?” वे बोले—“हे नरकेसरी ! इस चराचर जगत मे लोकोत्तर चमत्कारी आपके रूप का गुणगान हो रहा है, इसलिए हे पृथ्वीन्द्र ! दूर से वह हकीकत सुनकर हमे कुतूहल होने से वह देखने हम यहाँ आये। हे राजन् ! लोगो मे आपके रूप का वर्णन हमारे सुनने मे आया था, उससे भी अधिक यहाँ विशेष दिखाई दिया है।” यह सुनकर मंद हास्य से सनत्कुमार बोले—“हे द्विजवर ! अभी मेरा अंग अभ्यंग से व्याप्त है, इसलिए अभी आपको थोड़ी कांति दिखाई दे रही है परंतु क्षणभर आप एक ओर खडे रहकर राह देखे। मेरे स्नान करने का समय है उसके हो जाने के पश्चात् विचित्र वेश से और आभूषणों से जब मेरे शरीर को सजाऊंगा तब उस रत्नसहित कांचन जैसा आपको दिखाई देगा।” इस प्रकार कहकर राजा स्नान करके उत्तम वेश धारण कर और आभूषण पहन कर गगन पर सूर्य की तरह बडे आडंबर से सभा मे आकर बैठा।

बाद मे राजा की आज्ञा पाकर वे दोनो विप्र राजा के पास आये। उस समय राजा विकृत हुआ रूप देखकर खेद से वे सोचने लगे—अहा ! क्षणभर मे वह रूप, वह कांति और वह लावण्य कहाँ चले गये। अथवा मनुष्य को सभी क्षणिक ही होता है” इस तरह उन्हे खेद से देखते राजा ने पुछा—“प्रथम बार मुझे देखकर खुश हुऐ थे और अभी अचानक खेद से मलिन मुखवाले कैसे हो गये ? उस समय उन विप्रो ने अमृत जैसी मधुरवाणी से कहा—“हे महाभाग ! हम सौधर्म देवलोक के निवासी हैं। वहाँ देवताओं की सभा मे शक्रेंद्र ने आपके रूप का वर्णन किया, उस बात पर हमे श्रद्धा नहीं आई इससे हम मनुष्यरूप मे प्रत्यक्ष देखने के लिये यहाँ आये, वहाँ प्रथम इंद्रने जैसा कहा था वैसा ही स्वरूप हमे देखने मिला, लेकिन अभी आपका रूप कुछ अलग हो ऐसा हमे दिखाई दे रहा है। क्योंकि अभी तो निःश्वासो से दर्पण की तरह, कांति के सर्वस्व को चुरानेवाले व्याधिओं से आपका देह सभी ओर से घिरा हुआ दिख रहा है इसलिए वह विरूप लग रहा है, इसलिए हमे खेद हो रहा है।” इस प्रकार कहकर वे दोनो देवता अंतर्धान हो गये, लेकिन उनके वचनो को सुनते ही राजाने बर्फ से ग्रस्त हुऐ वृक्ष की भांति अपने शरीर का अवलोकन करने लगा।

वह विचार करने लगा—“रोग के स्थानरूप इस शरीर को धिक्कार है। तुच्छबुद्धिवाले मुग्धजन उसके उपर बेकार का मोह करते हैं। यह शरीर भीतर से उत्पन्न होनेवाली विविध तकलीफो के द्वारा दारुण उदेही के कीडे से काष्ट की जो दशा होती है उस तरह शरीर विदीर्ण हो जाता है। बरगद के फल की तरह बाहर रुचिकर होता है तथापि अंदर से चिट्टियोंसे भरा रहता है आकुल रहता है। बडा

सरोवर के जल को काई की तरह रोग शरीर को रूप संपत्ति को तत्काल बिगाड़ देती है। शरीर शिथिल हो जाता है लेकिन आशा शिथिल नहीं होती है, रूप चला जाता है लेकिन पाप बुद्धि नहीं जाती है, जरा स्फूर्त होता है लेकिन ज्ञान स्फूर्त नहीं होता है-ऐसे प्राणीयों के स्वरूप को धिक्कार है ! इस संसार में रूप, लावण्य, कांति, शरीर और द्रव्य वे सभी कुशाग्र पर रहे जलबिंदु की तरह चपल है, इसलिए आजकल विनाश पानेवाले शरीर से सकाम निर्जरा से होनेवाला तप करना ही उसका बड़ा फल और सार है” इस प्रकार वैराग्यभावना प्राप्त होने से सनत्कुमार चक्रीने तुरंत दीक्षा लेने की इच्छा से तत्काल अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया। बाद में स्वयं उद्यान में जाकर विनयंधर सूरि के पास विनयपूर्वक सर्व सावध विरति (चरित्र) तथा प्रधान ऐसा तप ग्रहण किया।

महाव्रतधारी, उत्तर गुण को धारण करनेवाले गाम विहार करनेवाले समता अक्राग चित्तवाले वे सनत्कुमार मुनि के पीछे, महायूथपति हाथी के पीछे हाथी के वृंद की तरह गाढ अनुराग के बंध से सर्व परिवार चला। परंतु कषाय रहित, उदासी ममतात्यागी और परिग्रह वर्जित उन राजमुनि ने छै मास तक उपासना करके अंत में परिवार वापस लौटा। एकबार छठ के पारण पर वह मुनि गोचरी लेने किसी के घर गये, वहाँ बकरी के दूध की छाँछ और चीनकुकर मिला, उसका उन्होंने आहार कर लिया। फिर दुबारा छठ का तप करके उसी तरह पारण किया। जिससे उनके व्याधि का दोहद पुरा हो गया हो उस तरह उनके शरीर में व्याधियाँ अत्यंत बढ गई। खस, शोष, श्वास, अरुचि, उदरपीडा और नेत्रपीडा ऐसी सात बिमारीयाँ को उन पुण्यात्मा ने समताभाव से सातसौ साल तक सहन किया। वे और दुसरे भी दुःसह परीषहो को सहन करते थे फिर भी उपाय करने में बिल्कुल अपेक्षा रहित उस महात्मा ने अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई। उसमें मुख्य कफ, विप्रुष, जल्ल, मल, विष्टा आमर्श और दुसरी सभी औषधीमय होने में सात लब्धियाँ थी।

उस समय सभा में चमत्कार पाकर इंद्र ने देवताओं की प्रशंसा करना आरंभ किया-“अहा ! जलते घास की तरह चक्रवर्ती की लक्ष्मी को छोड़कर यह सनत्कुमार मुनि दुस्तप तप कर रहे हैं। तप के प्रभाव से उन्हें सभी लब्धियाँ प्राप्त हुई, फिर भी शरीर में अपेक्षा रहित यह महात्मा अपने रोगों की भी चिकित्सा करते नहीं हैं।” इंद्र ने कि हुई ऐसी प्रशंसा सुनकर विजय और वैजयंत देवको उस पर श्रद्धा नहीं आई, इसलिए वे वैद्य का रूप धारण करके सनत्कुमार के पास आये और बोले-“हे महाभाग ! आप रोग से परिताप क्यों पा रहे हो ? हम दोनों वैद्यराज हैं और अपने ही औषधि से सर्व उत्तम चिकित्सा करते हैं। आपका शरीर रोग से ग्रस्त है यदि आप की आज्ञा हो तो आपके वृद्धि प्राप्त रोगों का निग्रह करें।” उनका ऐसा कथन सुनकर महातपस्वी सनत्कुमार बोले-“अरे वैद्यराज ! प्राणीयों के शरीर में द्रव्यरोग और भावरोग ऐसे दो प्रकार के रोग होते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये प्राणीयों के भावरोग हैं। वे जन्मांतर में प्राणी के पीछे जानेवाले अनंत दुःख देनेवाले हैं, यदि उन रोगों की चिकित्सा करने में आप समर्थ हैं तो चिकित्सा करें। और यदि द्रव्यरोग की चिकित्सा करते हैं तो इस ओर देखें” इस तरह कहकर उन्होंने गलत पत से शीर्ण हुई अपनी उंगली से अपने कफ के बिंदू से लिपा तुरंत वह सुवर्ण जैसी बन गई। सुवर्णशला का की तरह प्रकाशमान वह उंगली देखकर वे उनके चरणों में

गिर पड़े और बोले-“प्रथम विप्ररूप मे आकर जो दो देवता आपका रूप देखकर गये थे वे हम दोनो देवता आप वैद्यराज बनकर आये हैं। ‘अपूर्व लब्धि प्राप्त होने के बाद भी सनत्कुमार भगवान व्याधि की बाधाओं को सहन करके तप कर रहे हैं’ इस तरह इंद्र ने आपकी प्रशंसा की वह सुनकर हम यहाँ आकर प्रत्यक्ष तौर पर परीक्षा की” इस प्रकार कहकर, प्रणाम करके वे दोनो देव अंतर्धान हो गये।

आधेलाख वर्ष कुमारवय मे, आधे लाख वर्ष मांडलिक मे, दस हजार वर्ष दिग्विजय मे, नब्बे हजार वर्ष चक्रवर्ती मे और लाख वर्ष व्रत मे-इस तरह सब मिलकर तीन लाख वर्ष का आयुष्य चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार ने भोग किया। अपना अवसान समय नजदीक आने की जानकारी होने पर अनशन व्रत ग्रहण करके और तीन लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके वे सनत्कुमार चक्रवर्ती पंच परमेष्ठी का ध्यान धरते हुये कालधर्म पाकर सनत्कुमार देवलोक मे देवपन से उत्पन्न हुऐ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितेमहाकाव्ये चतुर्थपर्वणि

सनत्कुमारचरितवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

पश्चार्हन्तः सीरिणः पञ्च पञ्चोपेन्द्राः पञ्चैद्विषश्चक्रिणौ द्वौ ।

यत्रोक्ता द्वाविंशतिः सूत्ररत्नाभोगेस्तुर्य पर्व तदः श्रियेऽस्तु ॥९॥

सूत्रात् किंचिदुदीरितं कथाभ्यः किंचिद्योगपटाच्च किञ्चिदत्र ।

तेषु स्याद्यदि किञ्चनापि मिथ्या मिथ्यादुष्कृतमस्तु तत्रसन्तः ॥२॥

“पांच अरिहंतो के, पांच बलदेव के, पांच वासुदेव के, पांच उनके शत्रुओं यानि प्रतिवासुदेव के और दो चक्रवर्ती के इस तरह कुल २२ शलाका पुरुषो के चरित्रवाला सूत्ररत्न के समुद्र के इस चौथे पर्व मे आपका कल्याण हो।

इस पर्व मे कुछ समय सूत्र मे से उद्धृत है, कुछ कथाओ मे से लिया है और कुछ योगपट्ट मे से लिया है, इसलिए इसमे कुछ भी मिथ्या लिखा गया हो तो उसके लिये मिथ्या दुष्कृत हो, ऐसा कर्त्ता कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचंद्राचार्य संतजनो को कहते हैं”

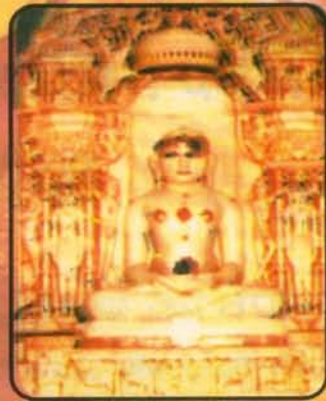
॥समाप्तं चेदं चतुर्थ पर्व॥

श्री त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र का चतुर्थ पर्व समाप्त



श्री शांतिनाथ भगवान

दाठा तीर्थ, गुजरात



श्री शांतिनाथ भगवान

कोठारा तीर्थ, (कच्छ) गुजरात



श्री शांतिनाथ भगवान

शंखलपुर तीर्थ, गुजरात



श्री शांतिनाथ भगवान

शियाणी तीर्थ, गुजरात



श्री शांतिनाथ भगवान

भोपावर तीर्थ, ८६ हजार वर्ष प्रचीन प्रतिमाजी, मध्यप्रदेश

--: सौजन्य :-

अरविंदभाई वाडीलाल शाह के सुपुत्र चिंतनभाई

गाम : मेमनगर, अहमदाबाद, गुजरात

श्री त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र : पर्व ५

श्री शांतिनाथ चरित्र

प्रथम सर्ग

श्री शांतिनाथ भगवान के पांच पूर्वभवो का वर्णन

सभी जगत के पापो की शांति करनेवाले सोलहवे तीर्थंकर और पांचवे चक्रवर्ती शांतिनाथ भगवंत को नमस्कार हो। मोहरूपी अंधकार का नाश करने में सूर्यरूप ऐसे उन भगवंत के अति पवित्र चरित्र के बार में मैं कहूँगा।

चंद्र की तरह मंडलाकारधारी इस जंबूद्विप का सातवा अंश यह भरतक्षेत्र है। उसके दक्षिणार्ध में मध्यखंड के आभूषण रूप देवनगर जैसा रत्नपुर नाम का नगर है। उस नगर में कमल के जैसे लोचनवाला श्रीषेण नाम का एक राजा राज्य करता था, जिस लक्ष्मीदेवी को विकस्वर कमल की तरह निवासरूप था। वह राजा ज्येष्ठ बंधु की तरह हमेशा धर्म को बहुमान देता था और लघु बंधु की तरह अर्थ और काम को निर्बाधपन से पालन करता था। धर्मकर्म में तत्पर ऐसा वह राजा निरंतर अर्थी लोगो की प्रार्थना पूर्ण करता था, लेकिन कामातुर स्त्रियों की प्रार्थना पूरी नहीं करता था। ऐसे उस राजा का रूप सभी उपमाओ से ऐसा विलक्षण था। कि जो चित्रकारो के चित्रविषय में आ नहीं सकता था। वह अपना दंड प्रधान साम्राज्य पालन करता था, फिर भी सर्व वांछित पूर्ति करनेवाले देवताओं की तरह दया की आराधना करता था।

वाणी से हृदय को आनंद देनेवाली और नेत्ररूपी कुमुद के चंद्रिका जैसी अभिनंदिता नाम की उस की शुद्ध शीलवान एक रानी थी। वह कभी भी मन द्वारा भी अपने शील का खंडन नहीं करती थी इसलिए अपनी आत्मा की शोभा बढ़ाती थी। परंतु बाह्यमंडल तो उसके मन को निःसार लगता था। अपने शरीर पर धारण किये आभूषणों को उसने सन्मान दिया था, जिससे स्वाभाविक सुंदर उस बाला को वे आभूषण भाररूप लगते थे। तरंग जैसा लावण्यमय पवित्र अवयवो से सुंदर उसके स्वरूप की एक नकल मात्र दर्पण में दिखाई पड़ती थी, दुसरी कोई उपमा दिखाई नहीं देती थी। वह गुणभूषित रमणी स्वयं एक होते हुए वह अपने आप में एक अनेक रूपा हो उस तरह मातृकुल, पितृकुल और श्वसुरकुल इस तरह तीनों कुल की शोभा बढ़ाती थी। वह श्रीषेण राजा को मेघ माला की तरह हृदयरूप मयूर को आनंद देनेवाली शिखिनंदिता नाम की एक दुसरी रानी थी। पति के साथ अखंड विषय सुख का अनुभव करते हुए अभिनंदिता को कुछ समय व्यतीत होने के बाद गर्भ रहा। उस समय उसने स्वप्न में अपने उत्संग में रहे हुए सूर्यचंद्र को देखा। उस स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर 'आपको दो उत्कृष्ट पुत्र होंगे' ऐसा राजाने कहा। गर्भस्थिति पूर्ण होने पर तेज द्वारा सूर्य-चंद्र जैसे दो कुमारो को अभिनंदिता ने जन्म दिया। श्रीषेण राजाने बड़े उत्सव से इंदुषेण और बिंदुषेण ऐसे उन दोनों के नाम रखें। धात्रीमाता ने पुष्पो की तरह अति यत्न से लालनपालन किये हुए दोनों भाई मानो राजा की दोनों भुजाएँ हो उस

तरह अनुक्रम मे वृद्धि पाये । योग्य आयु होने पर राजाने उन्हे गुरु के पास अपने नाम की तरह व्याकरणादि शास्त्र उन्हे पढाये । वे शास्त्र और शस्त्रो मे और अन्य कलाओ मे निपूण हुऐ, उसी तरह व्यूह मे प्रवेश करने मे और निकलने मे भी कुशल हुऐ । अनुक्रम मे कामविकार रुप सूर्य के प्रकाश मे प्रातःकाल रुपी पवित्र यौवनमय को वे प्राप्त हुऐ ।

इस भरतक्षेत्र मे मगधदेश के बारे मे बडी समृद्धि से सर्व ग्रामो मे मुख्य **अचलग्राम** नाम का एक गाव था । उस गाव में सांगोपांग चतुर्वेद जाननेवाला और सर्व द्विजो मे शिरोमणि **धरणीजट** नाम का पृथ्वीतल पर एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था । विहार करती हुई गृहलक्ष्मी हो ऐसी कुलीन और पवित्र भक्तिवाली **यशोभद्रा** नामक एक पत्नि थीं । उससे अनुक्रम मे **नंदिभूति** और **शिवभूति** नाम के दो कुल दीपक पुत्र हुऐ, उसमे नंदिभूति जेयष्ठ था । उस धरणीजट के घर मे **कपीला** नाम की एक दासी थी । उसके साथ भी वह ब्राह्मण कई समय से रतिक्रीडा करता था । कारण कि जगत मे विषय दुर्जय है । स्वच्छंद क्रीडा करते हुऐ उस दुष्ट द्विज को क्रम मे उस कपिला दासी से एक कपिल नाम का एक पुत्र हुआ ।

धरणीजट ने नम्रता से शोभा देते ऐसा यशोभद्रा के उदर से हुऐ दोनो पुत्रो को रहस्य सहित सांमवेद पढायें । अति बुद्धिमान कपिल मात्र मौन रहकर सुन सुनकर वेदसागर का पारागामी हुआ, क्योंकि बुद्धि से क्या अगोचर है ?

विद्वान हुआ कपिल पितृगृह मे से निकलकर देशांतर की ओर चला, कंठ मे दो **यज्ञोपवीत** धारण करके मै उत्तम ब्राह्मण हूँ ऐसी बढाई मारता हुआ घूमने लगा । विद्वान के लिये कोई परदेश नहीं है । इस तरह घूमता हुआ **रत्नपुर** मे आया । वहाँ वर्षाऋतु के मेघ की तरह अपना पांडित्य दिखाकर गर्जना करने लगा । उस नगर मे सभी नगरजनो के गुरु कला का भंडार और बहुत बुद्धिमान विद्यार्थीयो से शोभित **सत्यकी** नाम का ब्राह्मण रहता था, वह सत्यकी पाठशाला मे प्रतिदिन जाकर कपिल प्रश्न करनेवाले विद्यार्थीयो के और दुसरे विद्वानों के संशय को छेदता था । वह देखकर विस्मय हुऐ सत्य की भी कुतुहल से उसे मंत्र की तरह दुःख से जान सके ऐसे शास्त्रों के रहस्य कपिल से पुछे । श्रद्धालु शिष्योने गुरु की बुद्धि से देखकर वे सर्व रहस्य सविशेषण कह दिये । ये सुनकर प्रसन्न हुऐ सत्यकी गुरुने, युवराज को राजा की तरह, उसे अपने कार्य का धुरंधर बनाया । उज्ज्वल गुणों के मुल्य कहीं नहीं होता है ? उसके बाद हमेशा कपिल सभी शिष्यो को व्याख्यान देने लगा । सत्यकी अपने पुत्र की तरह उससे निश्चित रहने लगा । कपिल भी पिता की तरह सत्यकी अति भक्ति करने लगा, इससे 'इसके लिये मै क्या करू ?' ऐसा सत्यकी प्रसन्न मन से विचार करने लगा ।

एक समय सत्यकी की **जंबूका** नाम की पत्नि ने इस प्रकार से कहा-“अरे भटजी ! यदि आप सावधान है ही फिर भी मै तुम्हे स्मरण कराती हूँ कि देवकन्या की तरह निःसीम रुपलावण्य से शोभित, नम्र, लज्जित, क्षमा, मृदुता और सरलता से दीपती **सत्यभामा** नाम की मेरे उदर से जन्मी कन्या यौवनमय को प्राप्त हुई है, तथापि उसके लिये आप वर की खोज क्यों नहीं करते है ? जिसके घर कन्या, कर्ज, बैर और व्याधि वृद्धि पाते हो वहाँ उसे निद्रा आ सकती है ? और आप तो निश्चिंत होकर सो रहे हो यह

कैसी बात है ? सत्यकी बोला- “प्रिये ! तुमने कहा है वह सत्य है । इतने समय तक मुझे सत्यभामा के लायक वर प्राप्त नहीं हुआ है लेकिन यह कपिल जो रूप संपन्न है, गुणीजनो मे मुख्य युवा, विनीत और उत्तम द्विजाति मे है यह सत्यभामा के लिये उचित वर है ” जंबूका ने यह बात स्वीकार कर ली । बादमे सत्यकी ने शुभलब्ध मे सत्यभामा और कपिल का विधिपूर्वक विवाह करवाया । कपिल भ्रांति रहित सत्यभामा के साथ प्रतिदिन भोग भोगने लगा और सत्य की तरह पुरे नगर मे पुरजनों से पुज्य हुआ । यह कपिल (दामाद होने से) सत्यकी भी पूज्य है’ ऐसा मानकर सभी लोग पर्वदिन पर धनधान्यादि उसे देने लगे । वर्तमान काल मे द्विजजाति मे उत्तम हुआ वह कपिल ऐसे बर्ताव से गुणो की तरह धन से भी वृद्ध (बड़ा) होने लगा ।

एकबार वर्षाऋतु मे रात्रि मे वह कपिल किसी स्थानक पर नाट्य देखने गया था । वहां लम्बे समय तक रुका, बाद मे वहाँ से घर आते समय आधे मार्ग मे सुई से भी भेदा न जा सके ऐसे गाढ अंधकार मे अति वर्षा आने लगी । उस समय मार्ग मे कोई भी मनुष्य दूर तक नहि दिखाई दे रहा था । इसलिये वस्त्र न भीगे इसलिए नबू होकर अपने कपडे बगल मे लेकर घर के द्वार के पास आकर वापस पहने ‘वृष्टि से मेरे स्वामी के वस्त्र भीगे होंगे’ ऐसा मानकर सत्यभामा दुसरे वस्त्र लेकर द्वार पर सामने आयी ‘मुग्धे ! विद्या के प्रभाव से मेरे वस्त्र भीगे नहीं है, इसलिए दुसरे वस्त्रों की आवश्यकता नहीं है’ इस प्रकार कपिल ने अपनी प्रिया से कहा । उस समय उसके वस्त्र अर्नाद्र और पुरा शरीर आर्द्र है ऐसा सत्यभामा को दिखाई दिया । इससे उसने मन मे सोचा कि यदि इसने विद्याशक्ति द्वारा जल से कपडो की रक्षा कर सकता है तो अपने अंग की रक्षा कैसे नहीं की ? इससे जरूर यह कपिल नबू होकर आया है उस पर से मैं मानती हूँ कि मेरा यह पति कुलवान नहि है, परंतु मात्र बुद्धिबल से कान से सुनकर ही वेद पढा है ऐसा मालुम पडता है’ इस प्रकार निश्चय हो जाने पर सत्यभामा उसके ऊपर मंदराग होकर पकड कर लाई गयी दासी की तरह मन मे खेद करने लगी ।

अब उस समय मे अचलग्राम मे धरणीजट ब्राह्मण दैवयोग से निर्धन हो गया । उसके सुनने मे आया कि ‘कपिल धनाढ्य हो गया है’ इसलिए अपने उद्धार करने के लिये रत्नपुर मे आया । कपिल ने पाद्यस्नानादिक से उनका सत्कार किया । साधारण अतिथि भी पूज्य होता है तो ये मेरे पिता तुल्य अतिथि है इनके बारे मे क्या कहना । पिता स्नान करके नित्य कर्म करने पर भोजन का अवसर पर कपिल ने अपनी प्रिया से कहा-

“प्रिये ! मेरे शरीरसंबंधी कुछ कारण है इसलिए पिता के लिये उत्तम स्थान भोजन करे” पिता और पुत्र का अलग-अलग आचरण देखकर सत्यभामा को अधिक शंका दृढ हुई, क्योंकि वह कुलीन थी । अति निर्मल आचरण से अपने ससुर को कुलवान जानकर वह सत्यभामा उनका पिता, गुरु और देववत् आराधना करने लगी ।

एक बार एकांत मे सत्यभामा ने ब्रह्महत्या के सौगंध देकर अपने श्वसुर को बडे विनय से पुछा- “पूज्य पिताजी ! यह कपिल आपका दोनो पक्षो के शुद्ध पक्ष से उत्पन्न हुआ पुत्र है या विपरीत पक्ष से उत्पन्न हुआ है ? प्रसन्न होकर जो सत्य है वह कहे” धरणीजट ने यर्थाथ वह कह दिया । क्योंकि

महात्मा सौगंध के भंग से डरते हैं ।

बाद में कपिल ने विदाय किया हुआ धरणीजट ब्राह्मण घूमकर वापस अचलग्राम में लौट आया । उनके जाने के बाद सत्यभामा ने श्रीषेण राजा के पास जाकर शिकायत की “दैवयोग से यह कोई अकुलीन मेरा भर्तार (पति) हुआ है, तो केसरी सिंह के पास से गाय जिस तरह, राहु से चंद्रकला जिस तरह और बाज पक्षीसे चिड़ियां की तरह मुझे उसके पास छुड़ाये । उससे मुक्त रहकर सतीपन से रहूंगी और सुकृत्य करूंगी । पूर्व के दुष्कर्मयोग से मैं लंबे समय तक ठगी गई हूँ ।” यह सुनकर श्रीषेणराजा ने कपिल को बुलाकर कहा, “धर्माचरण करने के लिये इस सत्यभामा को छोड़ दे । वह तुम से विरक्त है तो अब बलात्कार हरण की हुई परस्त्री की तरह तुझे इससे क्या विषयसुख मिलेगा ? कपिल ने कहा- “राजन् ! मैं उसके बिना एकक्षण भर भी प्राण धरने के लिये समर्थ नहीं हूँ । वह प्रिया मेरे जीवन की औषधि है । पाणिग्रहण की हुई उस मेरी स्त्री का त्याग मैं नहीं कर सकता हूँ । त्याग करना और करवाना वैश्याओं को शोभा देता है ।” ये सुनकर सत्यभामा ने उत्कट होकर कहा “यदि तुम मुझे छोड़ोगे नहीं तो मैं जल में या अग्नि में प्रवेश करने जाऊंगी ।” राजा बोले- “कपिल ! यह बाला प्राण त्याग न करें और कुछ दिन तक ये मेरे मंदिर में रहे” कपिल ने वह बात स्वीकार ली तब राजाने सत्यभामा को रानीयों को सौंप दि । विविध प्रकार के तप करती हुई वह सत्यभामा राजमंदिर में रहने लगी ।

उस समय कौशांबी नगरी में बल नाम का एक बलवान राजा को श्रीमती देवी के उदर से श्रीकांता नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई । वह रूपवती बाला यौवन प्राप्त होने पर श्रीषेण राजा ने पुत्र इंदुषेण को स्वयंवर से वरण के लिये बड़ी समृद्धि सहित रत्नपुर भेजी । उसके साथ अनंतमतिता नाम की वेश्या साथ आयी थी । वह उत्कृष्ट रूपवाली इंदुषेण और बिंदुषेण के नजरी में आयी । उसे देखते ही यह मेरी-यह मेरी है, यह मेरी है, इस तरह दोनों वाद करने लगे । परस्पर ईर्ष्या से वे दोनों देवमरण नाम के उद्यान में आये । वहाँ एक कांता के साथ रति क्रीडा करने कि इच्छा से दो वृषभों की भांति वे दुर्दांत और महाभुज सन्नबद्ध होकर युद्ध करने लगे । उन्हें युद्ध करने से रोकने में श्रीषेण राजा समर्थ नहीं हुये । दुर्मद पुरुष प्रिय समझौते से साध्य नहीं होते हैं, वे दंड से साध्य होते हैं । दोनों पुत्रों की इस प्रवृत्ति को देख और रोकने में असमर्थ ऐसे श्रीषेणराजा अभिनंदिता और शिखिनंदिता के साथ विचार करके ‘यह काल हमें प्राप्त हुआ’ इस तरह बोलते-बोलते तालपुट जहर व्याप्त ऐसे कमल को सूंघते हुये क्षणभर में मृत्यु प्राप्त हुये । दोनों रानीयों ने भी उसी तरह कमल सूंघ कर मृत्यु प्राप्त कर ली । कुलीन कांताएँ पति के बिना थोड़ी देर बाद भी जिवित नहीं रह सकती हैं । यह समाचार सुनते ही ‘अब कपिल से मुझे अनर्थ होगा’ ऐसा सोचकर शरण रहित वह सत्यभामा भी विषय युक्त कमल सुंघकर उनके मार्ग का अनुकरण करके वे चारों मृत्यु प्राप्त करके जंबूद्विप में उत्तर कुरु क्षेत्र में युगल में उत्पन्न हुये । श्रीषेण तथा अभिनंदिता पुरुष-स्त्री हुये, शिखिनंदिता और सत्यभामा पुरुष-स्त्री हुये । तीन पल्योपम आयुष्यवाले और तीन कोश ऊंचे शरीरवाले वे अद्वैत सुख का अनुभव करते हुये कालनिर्गमन करने लगे ।

यहाँ देवरमण उद्यान मे इंदुषेण और बिंदुषेण युद्ध कर रहे थे, वहाँ विमान में बैठकर कोई विद्याधर आया। प्रतिकूल दैव का निवारण करनेवाले मानो द्वारपाल हो ऐसा वह दोनों के बीच खड़े रहकर हाथ ऊपर करके बोला-“अरे मूढो ! यह तुम्हारी बहन है उसे पहचाने बिना तुम स्त्रि बनाने की इच्छा से युद्ध क्यों कर रहे हो ? विस्तार से मेरे वचन सुनो-इस जंबूद्विप मे महाविदेह क्षेत्र मे सीता नदी के उत्तर तट पर **पुष्कलावती** नाम का एक विस्तृत विजय है उसके मध्य में मानो पृथ्वी का मानो रूपा का मुगुट हो ऐसा विद्याधरो का निवासस्थान वैताढ्य नाम का आकाश तक ऊँचा एक पर्वत है उस पर्वत पर उत्तर श्रेणी मे आदित्याभ नाम के नगर मे लक्ष्मी से कुंडलीद्र (शेषनाग) जैसा सुकुंडली नाम का राजा है उसे **अजितसेना** नाम की शीलवती दयिता है उसका मैं **मणिकुंडली** नाम का पुत्र हूँ। एक बार वहाँ से गरुड की तरह आकाश मे उड़ता हुआ मैं श्री जिनेन्द्र का वंदनीय स्वागत करने के लिये पुंडरीकणी नगरी मे गया। वहाँ अपरिमित कीर्तिवाले अमितयश नाम के श्री जिनेश्वर भगवंत की वंदना करके, हाथ जोड़कर उनकी देशना सुनकर देशना पूर्ण होने पर मैंने पुछा ‘हे भगवान् ! मैं किस कर्म से विद्याधर बना हूँ ? ये सुनकर प्रभु बोले-‘महा ऋद्धिवान पश्चिम पुष्करवर द्विपार्द्ध मे शीतोदा नदी के विशाल दक्षिण तीर पर सलिलावती विजय है। उसमे शोक रहित लोगो से भरपूर वीतशोका नाम की नगरी है, पृथ्वी का वह स्वस्तिक हो ऐसी शोभादे रही है। उस नगरी मे पूर्व मे रूप से कामदेव जैसा और बल से इंद्र जैसा रत्नध्वज नाम का राजा था। उसे महप्रधान **कनकश्री** और **हेममालिनी** नाम की दो शीलवती भार्या थी। उसमे से कनकश्री के स्वपन मे उत्संग मे रही हुई कल्पकता की सूचना से बुद्धि और लक्ष्मी जैसी दो पुत्रीयां उत्पन्न हुई, मातापिता ने जन्मोत्सव जैसे उत्सव से उनका क्रमशः **कनकलता** और **पद्मलता** ऐसे नाम रखे। दूसरी पत्नि हेममालिनी ने स्वप्न मे पद्मलता के दर्शन से सूचित **पद्मा** नाम की कुलनंदनी दुहिता (पुत्री) को जन्म दिया। वे तीनों पुत्रीयां कलाकलाप को प्राप्त करके पवित्र यौवनमय मे प्रवेश पाते ही मानो विधाताने तीनों लोक की लक्ष्मी एक ही जगह पर एकत्रित कर दि है ऐसी लगने लगी। उनमें जो पद्मा थी वह **अजितसेना** आर्या के पास रहने से वैराग्य को प्राप्त हुई। अंत मे उसके पास से उसने यथाविधि दीक्षा ग्रहण की।

एक समय आर्या की आज्ञा से पद्मा साध्वी ने चतुर्थ तप करना आरंभ किया। उस तप मे तीन रात्रि के क्रम मे छ मास मे बासठ चतुर्थ होते हैं। ऐसा दुस्तप तप यथार्थ तरीके से करनेवाली साध्वी अेकबार **शरीर चिंता** (वडी नीति) से राजमार्ग पर जा रही थी, उसी समय **मदनमंजरी** नाम की अेक वेश्या के लिये दो कामलंपट बलवान राजपुत्रो युद्ध करते उन्हें दिस्वाई दिये। उनको देखते पद्मा के मन मे विचार आया कि ‘अहा ! इस सुंदर वेश्या का कैसा उत्कृष्ट सौभाग्य है कि उसके लिये ये दोनों राजपुत्र लड रहे हैं ! तो मुझे भी इस तप के प्रभाव से भवांतर मे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो’ इस प्रकार संकल्प के अनुसार निश्चित किया, अंत मे अनशन करके संकल्प की आलोचना किये बिना ही वे मृत्यु को प्राप्त होकर वह पद्मा सौधर्म कल्प मे विपुल समृद्धिवाली देवी बनी।

कनकश्री संसार मे भटकते हुऐ किसी भव मे दानादिक धर्म करने से तुम विद्याधरों का इंद्र मणिकुंडली नाम का बना हूँ **कनकलता** और **पद्मलता** भवभ्रमण करके पूर्व भव मे बहुत प्रकार से

दानादिक धर्म आचरण से जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र के रत्नपुर नगर के बारे में इंदुषेण और बिंदुषेण नाम के श्रीषेण राजा के पुत्र रूप में हुआ है। पद्मा का जीव सौधर्मदिवलोक में से च्यवन करके भरतक्षेत्र में कौशांबी नगरी के बारे में अनंतमतिका नाम की वेश्या हुई है। उस वेश्या के लिए अभी देवमरण उद्यान में इंदुषेण और बिंदुषेण परस्पर युद्ध कर रहे हैं। इस तरह प्रभु के मुख में गत जन्म की बात सुनकर पूर्वजन्म के स्नेह के कारण तुम्हें युद्ध में से बचाने के लिये मैं यहां आया हूँ। मैं गत जन्म में तुम्हारी माता थी और यह वेश्या तुम्हारी बहन है। इस संसार में मोह का विलास ऐसा है, यह आप समझ लें। जन्मान्तररूपी पड्डे की आड़ में प्राणी पूर्वभव के पिता, माता, भगिनी, भ्राता और अन्य संबंधी को हम जान नहीं सकते हैं। अपनी ही लार से मकड़ी के जाल की तरह अपने देह से उत्पन्न होनेवाले मोह को दूर त्याग करके निर्वाणनगर के द्वाररूप दीक्षा को आप ग्रहण करें।” ऐसे उनके वचन सुनकर वे बोले- “अरे! धिक्कार है हमें! शिकारी प्राणियों की तरह मोह से भगिनी के भोग के लिये हमने यह क्या किया! आप गतजन्म में हमारी माता थी उसी तरह इस भव में गुरु बने हैं, जिससे हमें बोध ज्ञान देकर उन्मार्ग से निवृत्त करवाया” इस प्रकार कहकर उन्होंने कवच छोड़ कर धमरुचि नाम के गुरु के पास चार हजार राजाओं के साथ व्रत ग्रहण किया। तप और ध्यानरूपी अग्निद्वारा कर्मरूपी मार्ग कंटक को दग्ध करके वे सरल मार्ग पर दुर्गम लोकाग्र (मोक्ष) को प्राप्त हुए और श्रीषेण इत्यादि चार युगलो ने मृत्यु प्राप्त करके प्रथम कल्पांत में देवपन को प्राप्त हुए।

इस भरतक्षेत्र में महा उत्तम वैताळ्यगिरि के ऊपर रथनुपूरचक्रवाल नाम का नगर है। उस नगर में इंद्र का अनुज बंधु हो ऐसा ज्वलनजटी नाम का एक विविध समृद्धिमान विद्याधरो का राजा था। उसके तेज से सूर्य प्रौढ़ जैसा और शत्रुओं को राजलक्ष्मी को स्वयंवर से वरण अर्ककीर्ति नाम का एक युवराज पुत्र हुआ। उस पुत्र के पीछे चंद्रप्रभा जैसी नेत्र को आनंद देनेवाली स्वयंप्रभा नाम की एक पुत्री हुई। उसे प्रजापति राजा के पुत्र और अचल बलदेव के छोटे भाई पोतनपुर के अधिपति त्रिपृष्ठ नाम का प्रथम वासुदेव से विवाह हुआ। उस समय हर्षित त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अपने ससुर ज्वलनजटी को विद्याधरों को दोनों श्रेणी का अखंडित राज्य दिया। विद्याधर राजा मेघवन की ज्योतिर्माला नाम की दुहिता अर्ककीर्ति की पत्नी हुई। श्रीषेण राजा का जीव सौधर्मकल्प से च्यवन करके कमल में हंस की तरह वह ज्योतिर्माला के उदर में अवतरित हुए। उस समय ज्योतिर्माला ने स्वप्न में अति तेज से आकाश को प्रकाशित करते सहस्र किरणोवाले सूर्य को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। गर्भ समय पूर्ण होने पर उसने साम्राज्यरूपी भवन को दृढ़ आधार देनेवाले स्तंभरूपी और सर्व पवित्र लक्षणों से लक्षित ऐसे एक पुत्र को जन्म दिया। दृढ़ स्वप्न के अनुसार मूर्ति से अमित तेजवाले उस पुत्र के मातापिता ने अमिततेज नाम रखा। कुमार अर्ककीर्ति को अपना राज्य सौंप कर ज्वलनजटी ने जगन्नंदन और अभिनंदन नाम के चारणऋषि के पास से दीक्षा ग्रहण की। सत्यभामा का जीव सौधर्मकल्प से च्यवन करके ज्योतिर्माला और अर्क कीर्ति के पुत्रीरूप में उत्पन्न हुई। वह जब गर्भ में आई तब माता ने स्वप्न में अच्छे तारों भरी रात्रि देखी इसलिए मातापिता ने उसका सुतारा नाम रखा। अभिनंदिता का जीव सौधर्मकल्प से च्यवन करके त्रिपृष्ठ और स्वयंप्रभा के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। वह गर्भ में आते ही

माता ने स्वप्न मे अभिषेक सहित श्रीदेवी के दर्शन किये थे, इसलिए पिता ने उसका श्रीविजय ऐसा नाम रखा । स्वयंप्रभा के भद्र (कल्याण) के कारणरूपी विजयभद्र नाम का एक दुसरा पुत्र उत्पन्न हुआ । शिखिनंदिता का प्रथम जीव कल्प से च्यवन करके त्रिपृष्ठ और स्वयंप्रभा की ज्योतिःप्रभा नाम की पुत्री हुई ।

पूर्व काल मे सत्यभामा का पति कपिल था वह तिर्यचादिक योनि मे चिरकाल भटक कर चमरचंचा नगरी मे अशनिघोष नाम का विद्याधरो का प्रसिद्ध राजा था । अर्ककीर्तिने विस्तारित लोचनोवाली अपनी पुत्री सुतारा नाम की पुत्री को त्रिपृष्ठ के पुत्र श्री विजय के साथ विवाह किया । त्रिपृष्ठ ने अपनी सुंदर पुत्री ज्योतिःप्रभा का अर्ककीर्ति के पुत्र अमिततेज के साथ विवाह किया । श्रीविजय सुतारा के साथ और महाभुज अमिततेज ज्योतिःप्रभा के साथ विषयसुख भोगने लगे ।

एकबार रथनुपूरचक्रवाल नगर की लक्ष्मी द्वारा देववन जैसे विशाल उद्यान मे अभिनंदन, जगन्नंदन और ज्वलनजटी ये तीनों महाशय मानो मूर्तिमान ज्ञानादिक तीन रत्न हो ऐसे सम बरसे अपने पिता और उनके गुरु आये हैं ऐसा जानकर अर्ककीर्ति तत्काल उद्यान मे आकर आदर से वंदना की उत्कंठा विलंब को सहन नहीं कर सकती है । अभिनंदन मुनिने महामोहरूपी हिमराशि को गलने के लिये सूर्यप्रभा जैसी देशना दि । वह देशना सुनने से अर्ककीर्ति को संसार पर वैराग्य हो गया इसलिये अंजली जोडकर उसने अभिनंदनमुनि से विज्ञप्ति की-मैं मेरे पुत्र अमिततेज को राज्य पर बैठाकर व्रत लेने के लिये वापस लौटकर आऊ वहाँ तक आप यही पर बैठने की कृपा करें ? 'धर्म कार्य मे प्रमाद करना उचित नहीं है' ऐसे महर्षि के कहे हुऐ वचन सुनकर अर्ककीर्ति आर्द्र मन से अपने घर गया और बारंबार आग्रहपूर्वक प्रार्थना करके उसने अपने पुत्र अमिततेज को राज्य सौंप दिया । पिता पुत्र का यही ऐसा क्रम है । अमिततेज ने जिसका निष्कर्मणीत्सव किया है ऐसा अर्ककीर्ति ने अभिनंदन मुनि के पास से दीक्षा ग्रहण की । तब से राजमुनि अर्ककीर्ति शमराज्य का पालन करते हुऐ गुरुजनों के साथ विहार करने लगे और विद्याधरो के मुगुट से जिसके चरणकमल हमेशा घिस जाते हैं ऐसे तेजस्वी अमिततेज ने पिता के राज्य की धुरा धारण करली ।

इस ओर त्रिपृष्ठ के शोक से वैराग्य को वहन करते हुऐ अचल बलभद्र ने त्रिपृष्ठ के पुत्र श्री विजय को राज्य पर बैठाकर दीक्षा ली । राजाओं से पूज्यनीय और विजयलक्ष्मी को स्वयंवर से वरण किया श्री विजय पिता का राज्य पालन करने लगा । एक बार अमिततेज, सुतारा और श्री विजय के दर्शन की उत्कंठा से पोतनपुर मे आया । उस समय पोतनपुर नगर में ऊँची पत्ताकाओ से मचानो से मंडित और अनुत्तर विमान की तरह आनंद के एक साम्राज्यरूपी उसे दिखाई दिया । उसमे भी राजकुल दरबार मे तो विशेष खुशियां दिखाई दि । विस्मय पाया अमिततेज आकाश मे से सूर्य समुद्र मे उतरता है उस तरह वहाँ उतरा । उसे दूर से आया देखकर श्रीविजयरारा खडे होकर सामान्य अतिथि भी पूजा के योग्य है, तो ऐसे उत्तम संबंधी अतिथि के लिये तो क्या नहीं होगा ? प्रौढ प्रीति से भरे अमृत के द्रव जैसे वे अपने अपनी बहनों को जीजा को गाढ आलिंगन देकर मिले । पूर्व पश्चिम पर्वत के ऊपर सूर्यचंद्र की तरह दोनों बडे मूल्यवान सिंहासनो पर बैठे । बाद मे स्वच्छ मनवाले अमिततेज ने श्रीविजय से पुछा

कि-“अभी कौमुदी उत्सव, आग्रयण, ग्रीष्म ऋतु या वसंतोत्सव नहीं है, उसी तरह आपके यहाँ पुत्र जन्म भी नहीं है, तथापि इस नगर में कौन से उत्सव से आनंदमय जान पड़ता है ? श्रीविजय बोले-“आज से आठवे दिन एक भविष्यवादी निमित्त यहाँ आया था। उससे मैंने पूछा था कि ‘आप कुछ याचना करने के लिये आये हो या कुछ कहने के लिये आये हो ? इस प्रकार आदर से पूछने पर उसने कहा-‘हे राजन् ! क्योंकि हम याचना से ही जीते हैं, तथापि इस बार आपके पास याचना करना उचित नहीं है। जो कहा भी नहीं जा सकता है ऐसा कहने के लिये मैं यहाँ आया हूँ, कारण कि कहने से धर्म इत्यादि सत्कृत्य द्वारा उसका प्रतिकार हो सकता है। आज से सातवे दिन के मध्याह्न में पोतनपुर के राजा के ऊपर ध्वनि करता हुआ विद्युत्पात होगा’ ऐसी कटुवाणी सुनकर जहर की तरह अति घृणित हुआ मेरा मुख्य मंत्री बोला-तब उस समय तुम्हारे पर क्या गिरेगा ? निमित्त ने कहा-मंत्री ! मेरे पर कोप क्यों कर रहे हो ? जो शास्त्र से देखा जाता है वह मैं कह रहा हूँ, इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है। उस दिन मेरे ऊपर वसुधारा जैसी वस्त्र, आभूषण, माणिक्य और सुवर्ण की वृष्टि होगी’ उस समय मैंने मंत्री से कहा ‘हे महामति ! आप उस पर कोप न करें। कारण कि यह निमित्त दूत की तरह यथाथ कहने से उपकारी है।’

बाद में मैंने निमित्त से पूछा कि ‘हे निमित्तज्ञ ! कहे यह ज्ञान कहाँ से सिखे है ? कारण कि आमन्या रहित पुरुषों के वचन पर प्रतीति न आने से श्रद्धा नहीं होती है।’ नैमित्तिक ने कहा-हे राजा सुनिये, जब बलदेव दीक्षा ग्रहण करके, उस समय उनके साथ मेरे शांडिल्य नाम के पिता ने दीक्षा ली थी और पिता के वात्सल्य से मोहित होकर उनके पीछे मैं लघु वय होने पर भी दीक्षा ग्रहण की थी। उस समय यह सर्व निमित्तज्ञान मैंने सिखा था। श्री जिनशासन के अलावा दूसरे कहीं पर भी अव्यभिचारी ज्ञान नहीं होता है। लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जिवित, मरण, जय और पराजय ये आठ प्रकार के निमित्त मैं जानता हूँ, जब मैं यौवनमय को प्राप्त हुआ, तब एकबार विहार करते करते पद्मिनीखंड नाम के उत्तम नगर में पहुँचा। उस नगर में हिरण्यलोमिका नाम की मेरी एक बुआ रहती थी और उसे चंद्रयशा नाम की एक दुहिता थी। वह बालिका मुझे बाल्यवय में वाग्दान में दी थी, लेकिन मैंने दीक्षा ली इससे हमारा विवाह न हो सका। वह सुंदरी को देखते ही मुझे अनुराग उत्पन्न हुआ, जिससे भाररूपी व्रत छोड़कर मैंने उसके साथ विवाह किया। कामातुर में चिरकाल तक विवेक कहाँ रहता है ! हे राजन् ! आपके ऊपर होनेवाले इस महा अनर्थ जानकर स्वार्थ निमित्त से यहाँ कहने आया हूँ, तो अब आपको जैसा योग्य लगे वैसा करें’ इस प्रकार कहकर वह मौन हो गया।

उस समय सर्व कुलमंत्री बुद्धिमान फिर भी राजा के रक्षण के लिये व्याकुल हो गये। उनमें से एक मंत्री बोला-‘समुद्र में विद्युत्पात नहीं होता है, इसलिए महाराजा सात दिनों तक राजा जहाज में बैठकर समुद्र में रहे।’ दूसरे मंत्री ने कहा-‘ये बात मुझे पसन्द नहीं है, कारण कि यदि बिजली गिर पड़ती है तो उसे कौन रोक सकता है ? इस संकटकाल में वैताड्य गिरि पर विद्युत्पात नहीं होता है इसलिए उस पर्वत पर किसी गुफा में रहकर अपने स्वामी सात दिन बीताये’। तीसरे मंत्री ने कहा-“यह बात मुझे कुछ जचती नहीं है, क्योंकि जो घटना घटनेवाली है वो कहि पर हो सकती है, उसमें

बदलाव नहीं होगा उस पर मैं एक कथा आपको सुनाता हूँ ।

इस भरतक्षेत्र के विषय में विजय नाम के नगर में रुद्रसोम नाम का एक ब्राह्मण रहता था । उसे कोई संतान नहीं था । बहुत सी मन्नत मानने के बाद अंत में ज्वलनशिखा नाम की स्त्री से उसे शिखी नाम का एक पुत्र हुआ । एकबार बुरे दैवयोग से मनुष्य के मांस पर प्रीतिवाला कोई दारुण राक्षस उस नगर में आकर बसा । वह प्रतिदिन कई मनुष्यों को मार कर उनका अल्पमांस खाकर गुठली की तरह वह फेंक देता था । उसकी ऐसी भयंकर हिंसा को देखकर राजा ने उसे मीठे वचनों से समझाकर कहा-अरे ! इस तरह थोड़े मांस के लिये कई मनुष्यों को क्यों मार डालते हो ? व्याघ्रादिक अज्ञ प्राणी हैं, वे भी भूख शांति के औषधरूपी मात्र अन्न पुरुष को ही मारते हैं, इसलिए प्रतिदिन तुम एक मनुष्य का भक्षण करो और वह मनुष्य निर्णय के मुताबिक बारी-बारी तुम्हारे पास स्वयं आयेगा ।’ राक्षस ने यह बात मानली इसलिए राजा ने अपने नगर में रहनेवाले सभी मनुष्यों की बारी के लिये सभी के नामों की चिट्ठियों की गोलीयां बनाई । उन नामों को गोलीयो में से जिसका नाम आये उस मनुष्य को नगर की रक्षा के लिये राक्षस का भक्षण बने ऐसा तय किया गया । इस तरह करते-करते एकबार दैवयोग से उस रुद्रसोम नामके ब्राह्मण पुत्र के नाम की गोली निकली और यमराज ने मानो उसके नाम के चौपड़े का पन्ना खोला हो उस तरह वह नाम पढ़ने में आया । यह खबर सुनकर उसकी माता ज्वलनशिखा ‘हे पुत्र ! हे पुत्र अब तुम मेरे घर नहीं रहोगे ?’ ऐसा करुण रुदन करके पशुओं को भी रुलाने लगी । ऐसी कानों को सुनाई न दे सके ऐसी करुण पुकार सुनकर उसके घर के पास रहनेवाले बड़े भूत के घर में रहनेवाले भूतों ने सुनी । उन्हें करुणा आने से उन्होंने उसकी माता से कहा-‘हे ब्राह्मणी ! तुम रुदन मत करो, स्वस्थ हो जाये, तुम्हारे पुत्र को राक्षस के पास जाने दो, हम उसे राक्षस के पाससे सुरक्षित वापस लायेंगे, जिससे राजा ने की हुई व्यवस्था का पालन हो जायेगा और वह मरेगा भी नहीं, ज्वलनशिखा बोली-‘हे देवताओ ! यदि इस प्रकार होता है तो बहुत अच्छा है’ । इस प्रकार वह कह रही थी, तभी उसी समय पुरुरक्षक आकर उस पुत्र को खींच कर राक्षस के पास ले गये । जैसे ही राक्षस उस द्विज पुत्र को ग्रहण करने आया त्योहि भूतों ने उसका हरण करके उसकी माता के पास ले गये । भय को देखकर ब्राह्मणी ने भयभीत होकर अपनी पुत्र की रक्षा के लिये एक गुफा में उसे छिपा दिया । लेकिन उस गुफा में रहनेवाले अजगर ने उसे निगल लिया । जिससे भावी है वह गलत नहीं होता है अटल रहता है । इसलिए इस बारेमें तप करने का उपाय करें । कारण कि निकाचित कर्म का भी तप करने से क्षय होता है ।”

उसके बाद चौथा मंत्री बोला-“इस निमित्त ने पोतनपुर राजा के उपर विद्युत्पात होगा ऐसा कहा है, कुछ ये श्री विजय के ऊपर विद्युत्पात होगा ऐसा नहीं कहा है । तो आज से सात दिनों तक के लिये दूसरे किसी को नगर का राजा बनाये । जिससे उसके ऊपर विद्युत्पात हो । ऐसा करने से अपने दुरित का नाश होगा” यह विचार सुनकर हर्षित निमित्तिया ने उस मंत्री की प्रशंसा करके और कहा कि ‘मेरे निमित्तज्ञान से भी आपका मतिज्ञान अधिक है, इसलिए इस अनर्थ का परिहार करने के लिये यह कार्य शीघ्रता से करें और आज से सात दिन तक राजा चैत्य में श्री जिनपूजा में तत्पर होकर रहें’

उस समय मैं बोला- 'जिस किसी भी पुरुष का राज्य पर राज्याभिषेक करेंगे वह निरपराधी पुरुष के प्राण का नाश होगा, तो वह भी चिंतनीय है, क्योंकि इंद्र से लेकर चिंटी तक सभी प्राणीयों के प्राण लेना (छोड़ना) बहुत कठिन है। मेरे देखते हुए फिर भी किसी गरीब पुरुष मृत्यु पाता है तो वह कैसी खेद की बात है। हम दुसरो के प्राणों की रक्षा करने का व्रत लेकर बैठे हैं तो हम ही अपने प्राणों के लिये दुसरो को घात कैसे कर सकते हैं ? राजा का ऐसा कथन सुनकर मंत्री बोले- "हे देव ! हमे दो कार्य करने होंगे। एक आपके ऊपर जो अनर्थ आ पड़ा है उसे दूर करना और दुसरा किसी भी प्राणी का वध भी न हो तो उसका उपाय यह है कि-वैश्रवण की प्रतिमा का राज्य पर अभिषेक करें। आपही की तरह सभी जन सात दिनों तक उसकी सेवा करेंगे। दिव्य शक्ति से कभी उसके ऊपर कुछ भी उपसर्ग न होतो बहुत अच्छा है और यदि हुआ तो भी प्राणीवध का पाप नहीं लगेगा।' यह विचार मुझे घटित लगने से मैं जिनमंदिर में जाकर पौषध व्रत ग्रहण करके दर्भ के संस्तारक (आसन) पर बैठा। बाद में सभी मंत्री वैश्रवण की प्रतिमा का राज्याभिषेक करके राजा की तरह उससे बर्ताव करने लगे। स्वामी के हित के लिये बुद्धिवंत जन दुसरो के साथ भी स्वामी के तरह का बर्ताव करते हैं, अनुक्रम में सातवा दिन आया, मध्याह्न काल में आकाश में गर्जना करता हुआ प्रलयकाल जैसा दारुण मेघ घिर आया। थोड़ी देर में उस घोर मेघ में से ब्रह्मांड को फोड़ डाले ऐसा शब्द करता हुआ विद्युत्पात राजसिंहासन पर बैठाई हुई यक्षप्रतिमा के ऊपर हुआ। जिस समय यक्ष पर विद्युत्पात हुआ ठीक उसी समय निमित्तिया के ऊपर अंतःपुर के लोगो ने कि हुई रत्नादिक की वृष्टि हुई। मैंने भी अखंड समृद्धशाली पद्मिनीखंड नगर देकर उस निमित्त को विदाय दी और उस यक्ष की मूर्ति दिव्य रत्नमय नयी बनवाकर स्थापित कि क्योंकि वह मेरी विपत्ति में बंधुरूप हुई थी। मेरे विघ्न की शांति हो जाने से आज नगरजन और अमात्य हर्ष से सर्वोत्सव शिरोमणि यह उत्सव मना रहे हैं।"

यह वृत्तांत सुनकर अमिततेज हर्ष से अपनी बहन सुतारा को वस्त्रालंकार के दान द्वारा पूजा करके सुतारा और श्रीविजय के साथ कुछ समय व्यतीत करके अमिततेज अपने नगर में लौट गया। एक बार श्रीविजय राजा क्रीडा करने के कुतुहल से सुतारा को लेकर ज्योतिर्वन नाम के वन में गया। उस समय कपिल का जीव अशनिघोष विप्रतारणी विद्या को साधकर आकाशमार्ग से आया। वहाँ पति के साथ क्रीडा करती अपनी पूर्व जन्म की सुलोचना सुतारा उसे दिखाई दि। पूर्वजन्म के संस्कार संबंध को नहीं जानते होने पर भी अशनिघोष ने अपनी स्त्रि की तरह उस सुतारा के उपर जागे अनुराग से उसे प्राप्त करने की उत्कंठा जगी। बाद में विद्या के बल से उस क्रीडा करते स्त्री पुरुष के आगे उसने दिव्य कुंदक की तरह छलांग मारकर क्रीडा करता नेत्रो से हरण करे ऐसा मनोहर सुवर्ण का मृग बन गया। मानो इंद्र की नीलमणि हो ऐसी खुरियां और शींगो से और नीलकमल जैसा विलास करता हुआ वह आंखो को शोभा देता था। देह की पीली कांति से मानो सुवर्णमय हो ऐसा लगता था और कूदने से मानो आकाश को तथा चरणपात से भूमि भूतल को मंडित करता था। उस सुंदर मृग को देखकर सुतारा ने अपने पति से कहा- 'हे स्वामी ! यह मृग ले आवे, वह मेरे क्रीडा करने योग्य है।' कांता के कहने से मानो वायु से अलग हुआ वाहन हो ऐसा वायुवेग से वह उस मृग के पीछे राजा वेग से दौड़ा।

सरिता (नदि) के प्रवाह की तरह सरल और वक्र और कही सरल बनकर चलता मृग जरा भी स्खलन पाये बिगर राजा को दूर ले गया । क्षणभर मे दृश्य और क्षणभर मे अदृश्य या कभी भूमि पर या आकाश मे चलता हुआ मृग देवकृत माया की तरह पकड़ने मे अशक्य हो गया । श्रीविजय दूर निकल गया, तब अशनिघोष धीरे-धीरे आकर वनदेवी की तरह अकेली सुतारा का हरण कर गया ।

बाद मे प्रतारणी विद्या के प्रभाव से वह दुरात्मा ने दुसरा सुतारा का रूप धारण करके 'मुझे कुकुट सर्परूप मे डस लिया' ऐसी कृत्रिम आवाज लगाई । वह पुकार सुनकर राजा हिरण को छोड़कर वापस लौटा विद्वान क्षेम होते है फिर भी योग के लिये तत्पर होते है । पृथ्वी पर छटपटाती और पीडित सुतारा को देखकर राजाने मणि मंत्र और औषधि से उपचार किये । जिनकी प्रथम प्रतीति हुई थी, वैसे भी सभी सर्व उपचार दुर्जन पुरुष मे उपकार की तरह निष्फल हो गये । जिसके नेत्र मुंद गये है, वदनछबी विवर्ण हो गई थी, उरयुगल और स्तनयुगल कांपते थे और जिसके सभी अंगउपांग के संधि (जोड) और अस्थीबंधन शिथिल हो गये है-ऐसी सुतारा राजा के देखते देखते मे कालधर्म को प्राप्त हुई । अपनी प्रिया को गतप्राणा देखकर राजा भी गतप्राण हुआ हो उस तरह वह निःसंज्ञ बनकर मुर्छित बनकर पृथ्वी पर गिर पडा । चंदन के रस का मस्तक पर सिंचन करके पुनः चैतन्य प्राप्त होने पर वह इस प्रकार से ऊँचे स्वर मे विलाप करने लगा-“अरे ! हे मनोरमा ! तुझे ले जानेवाले देव ने मुझे लुट लिया । हे प्रिये ! तुम्हारे प्राण से ही मैं जिवित था । प्यारी कांता ! तुम्हारे बिना यह मानव शोक के भार से आधारभूत स्तंभ बिना के जर्जित घर की तरह तत्काल टूटकर गिर पड़ेगा । अरे ! मेरी वल्लभा को ललचानेवाले सुवर्ण मृगने वल्लभा की आज्ञा पालन मे तत्पर इस जड पुरुष को ठग लिया । मेरी प्रिया को प्रत्यक्ष देखने मे तक्षक नाग भी समर्थ नहीं है तो यह कुकुट सर्प का क्या विसात ! परंतु अहा ! दैव बलवान है तो अब दयिता के पीछे जाने के लिये अग्नि मे जलकर प्राण छोड़कर इस प्रकार के दुर्देव की कुछ मांग हो तो उसे पूर्ण करता हूँ ।” इस तरह विलाप करके उसने राजाने एक चिता की रचना कि और रतिमंदिर की शय्या की तरह वह धीरे-धीरे सुतारा के साथ स्वयं बैठकर उसे अलंकृत करके । जैसे ही उसमे अग्नि प्रज्वलित करके जलने का आरंभ कर रहे है उसी समय वहाँ पर दो विद्याधर आये । उसमे से एक ने मानो अभिमंत्रित जल द्वारा चिता का सिंचन किया, उसी समय उसमे से अट्टहास्य करती हुई प्रतारणी विद्या जो सुतारा का रूप धारण करके रही थी वह पलायन हो गयी । उस समय “प्रज्वलित ज्वालावाली अग्नि कहाँ और गतप्राणा मेरी प्रिया कहा ! वापस यह अट्टहास्य करती हुई स्त्रि कौन है ? क्या ये देवनाटक तो नहीं है” इस तरह चिंतन करता हुआ श्री विजय स्वस्थ हुआ, तब उसने अपने आगे दो सौम्य आकृतिवाले पुरुषो को खडा देखा । ‘यह क्या ?’ ऐसा राजाने उनसे पुछा, तब वे प्रणाम करके बोले-

‘हम विद्याधरपति अमिततेज के सेवक है **संभिन्नश्रोत** तथा **दीपशिख** नाम के हम दोनो पिता पुत्र है । स्वेच्छा से हम तीर्थों के जिनबिंबो को वंदन करने निकले है । यहीं पास मे आने पर हमने सुनने मे दुःश्राव्य और पशुओं के कानो को भी कोरनेवाली ऐसी करुणाक्षरवाला इस तरह की वाणी सुनी-हे मेरे प्राणनाथ श्रीविजय ! हे राजाश्वो से सेवितनाथ ! अरे तेज से सूर्य जैसे बांधव अमिततेज ! पराक्रम

द्वारा बलभद्र जैसे हे वत्स विजयभद्र ! सर्वदा संनहित रहनेवाले हे त्रिपृष्ठ कुल के देवताओ ! नहार के पास से मृग की तरह इस दुष्ट विद्याधर के पास से सुतारा का बिना विलंब रक्षण करे, रक्षण करे, ऐसी वाणी सुनकर हमारे स्वामी की बहन को कोई दुरात्मा हरण कर ले गया है ऐसा जानकर शब्द भेदी बाण की तरह उस वाणी का अनुकरण करके चले तत्काल हाथी ने ग्रहण कि हुई पद्मिनी की तरह अशनिघोष ने पकड़ी हुई चपलनेत्रा सुतारा को हमने देखा । स्वामी की बहन के हरण की उपेक्षा करने में असमर्थ ऐसे हमने भ्रूकुटी चढाकर उस शत्रु से कहा- 'हे हत्यारे विद्याधर ! देवप्रतिमा का चांडाल हरण करते है उस तरह सुतारा का हरण करके कहाँ जा रहा है ! अरे दुष्ट ! अब तु जिवित रहनेवाला नहीं है । हम तुम्हे मार डालेंगे, इसलिए आयुध ग्रहण कर । हम विद्याधर के पति अमिततेज के सेवक हैं' इस तरह आक्षेप करके साप को खिलौने की तरह खेलनेवाले की तरह दो काली सर्प के जैसी तलवारे म्यान में से निकाल ली, हम उस अधम पुरुष को मारने आगे बढ़े तभी देवी सुतारा ने कहा- 'तुम युद्ध करना रहने दो और यहाँ से ज्योतिर्वन में जाओ, वहाँ मेरे स्वामी श्रीविजय रहे हैं, वे प्रतारणी विद्या से प्राणत्याग कर रहे होंगे, तो वहाँ जाकर उन्हें बचाइये, उनके जीने से ही मैं जिवित रह सकती हूँ।' ऐसी सुतारा की आज्ञा से हम तत्काल यहाँ हम आये और अभिमंत्रित जलसे आपकी चिताग्नि बुझाकर शांत किया । वेताल की तरह उन्मत्त होकर अट्टहास्य करती हुई जो पलायन हो गई वह सुतारा का रूप धारण करनेवाली प्रतारणी विद्या थी ।''

अपनी प्रिया सुतारा के हरण के बारे में जानकर विरहाग्नि द्वारा चितानल से भी अधिक प्रज्वलित हुआ श्रीविजय खेद पाया इस तरह देखकर वे बोले- "हे स्वामी, खेद न करे, दैव की तरह वह आपसे कितना दूर जायेगा ? बाद में वे झुककर पृथ्वी का स्पर्श करके प्रणाम करके बहुत प्रार्थना द्वारा श्रीविजय राजा को वैताड्य पर्वत पर ले गये । उसे ससंभ्रात तुरंत ही मानो मूर्तिमान विजय हो उस तरह अमिततेज श्रीविजय के सामने आया और उसे बड़े सन्मान से उचित आसन पर बैठाकर आगमन का कारण पूछा श्रीविजय की प्रेरणा से उन विद्याधरो ने सुतारा के हरण का वृत्तांत सुनाया । वह सुनकर अर्ककीर्ति के कुमार ने भ्रूकुटी से ललाट को वक्र करके और रोष से कपोल तथा नेत्रों को लाल करके श्रीविजय राजा से कहा- 'जिस तरह फनघाटी तक्षक मस्तक को खुजलाता है और सो गये केसरी सिंह को केशराशि को उखाड़ता है उस तरह तुम्हारी स्त्रि मेरी बहन सुतारा का हरण करके वह नराधम अशनिघोष कितना जियेगा !' इस प्रकार कहकर अर्ककीर्ति के पुत्र ने शस्त्रावरणी, बंधनी और मोक्षणी विद्या श्रीविजय को दी । बाद में शत्रु के कालरूप अमिततेज ने रश्मिवेग, रविवेग, अर्ककीर्ति, भानुवेग, सूर्ययशा, भानु, चित्ररथ, अर्कप्रभ, अर्करथ, रवितेज, प्रभाकर, किण्विग और सहस्रकीर्ण वगेरेह अपने पांचसौ पुत्रों को त्रिपृष्ठ के पुत्र श्रीविजय के साथ महाशूरवीर सेना सहित चमरचंचा नगरी में अशनिघोष के पास से सुतारा को लेने के लिये भेजे । विद्याधरो के सर्व सैन्य से गगनमंडल से आच्छादित करता हुआ, लडाकुओं के शस्त्रों से आकाश को सेंकडो ध्वजाओवाला, असंख्य अश्वों के शब्दों से सूर्य के अश्वों बुलानेवाले, हाथियों की पंक्तियों से गगन में दुसरी मेघमाला का विस्तार और प्रकाशिता विमानों से सूर्य के उत्पात को दर्शाता (दिखलाता), त्रिपृष्ठ का पुत्र अमिततेज अशनिघोष

को विद्यावाला जानकर अपने पूर्ण पराक्रमी सहस्ररश्मि पुत्र के साथ परायी विद्या का भेद करनेवाली महाज्वाला नाम की विद्या को सिद्ध करने के लिये हिमवतगिरि पर गये। वहाँ जयंत नाम के महर्षि का उसग्व ध्यान में रहते थे, उनके और धरणेंद्र के पवित्र चरणमूल में मासिक भक्त द्वारा सात रात्रि की प्रतिमा धारण करके उस विद्या को सिद्ध करने के कार्य में लग गये। उसी तरह विद्या सिद्ध करने के लिये बैठे पिता का रक्षण करने के लिये सहस्ररश्मि तत्पर रहा था। उसी तरह उस पिता पुत्र को कुछ एक मास बीत गया।

इस ओर चमरचंचा नगरी के बाहर पडाव डालकर पडे श्रीविजय ने अशनिघोष के पास एक दूत भेजा। उस दूत ने आकर निःशंक अशनिघोष को कहा- “कौंअे की तरह ऐसा लज्जाकारी कर्म करनेवाले तुझे धिक्कार है ! धैर्य और विर्य रहित पुरुषों को पराक्रम छल करने में ही होता है। इस सुतारा देवी का हरण करके तुम उन छलधारी पुरुषों में सर्वश्रेष्ठी बन गये हो और श्रीविजय के प्रतारणी विद्या चलाकर दाढी और मुछ धारण करनेवाले तुमने कैसा प्रेक्षापूर्वक काम किया है, वह भी सोचो। प्रताप द्वारा सूर्य जैसे श्रीविजय को क्या तु नहीं जानता है ? जो प्रताप रहित होते हैं उन्हीं पुरुषों में तुम्हारा छल चलता है। वह वीर तुम्हारी विद्या को निष्फल करके यहाँ आया हुआ है और अब वह सुतारा को अर्पण कर दो। यदि तुम प्रणिपातपूर्वक सुतारा को स्वयं अर्पण कर दोगे तो तुम्हारा जीवन कुशल मंगल हो जायेगा, अन्यथा मृत्यु तो तैयार है ही” दूत के ऐसे वचन सुनकर अशनिघोष मेघ की गर्जना जैसी घोर गिरा से बोला- “अरे दूत ! तुम उद्धत और निर्लज है, ऐसा दूत मैंने किसी भी जगह पर नहि देखा। यदि श्रीविजय यहाँ आया है तो उस बिचारे तपस्वी का क्या होगा ? यदि पक्षी मेरुपर्वत पर जाते हैं तो क्या वे पराक्रमी हैं ऐसा समझा जायेगा क्या ? मेरे एक लेशमात्र से वह शक्तिशाली नष्ट होकर वापस लौट जायेगा, क्योंकि बालू से बना देवालय नदी के वेग को सहन नहीं कर सकता है, इसलिए वह जिस रास्ते से वह आया है उसी रास्ते से लौट जाये इसीमें उसकी भलाई है, लेकिन यदि उसने सुतारा की मांग की तो यमराज के घर ही जाना पडेगा। इन दो बातों का विचार करके चाहे तो रहे या जाये, कुछ भी करें। तुम भी तुरंत यहाँ से तत्काल चला जा और इस तरह की मेरी वाणी उसे सुना दे।”

इस तरह अशनिघोष के कहे वचन सुनकर वह दूत तुरंत नगर से निकलकर श्रीविजय के पास आकर उस निष्ठुर का संदेश उनसे कहा। कोपानल में पवन जैसा यह सन्देश सुनकर श्रीविजय ने अपनी तैयार रखी हुई सेना फिर से सज्ज करके श्रीविजय की सेना को उत्कंठित देखकर अशनिघोष युद्ध का आतिथ्य करने के लिये अपने पुत्रों को आज्ञा दि। तत्काल अश्वघोष, शतघोष, सहस्रघोष, भीमघोष, घनघोष और मेघघोष वगैरेह सर्व पुत्र सभी सामग्री के साथ युद्ध करने के लिये चमरचंचा नगरी के द्वार से बाहर निकल पडे। उस समय दोनों सेना में बड़ी ध्वनि से शरदङ्गतु में मेघ जैसे रणवाजिंत्र बजाने लगे। बाद में बाणों से छेदित उछलते छत्रों से आकाश सौ चंद्रोवाला दिखाई पडता था। कटे हुए मस्तकों से मानो बहुत राहुवाले हो ऐसा दिखाई दे रहा था, बडे मंदगंधी गजेंद्रों के परस्पर टकराने से मानो पर्वत टकराते हो वैसे रुधिर के किचड से मानो भूमि पर संध्या के बादल विश्रांत कर रहे हैं ऐसा दिखाई दे रहा था। उसमें मद्य की तरह रुधिरपान से भूत वेताल उन्मत होकर नाचते थे, बडे लडाकू

हुकार करके मानो मंत्रास्त्र पढते हो ऐसे दिखते थे । बाणों से हनन होते हस्तीयो के कुंभस्थल मे से निकलते मुक्ताफल द्वारा आकाश तारोवाला दिखाई पडता था और सैन्य से उडी हुई धूल से मानो सर्वत्र प्रदोषकाल उत्पन्न हो गया हो ऐसा दिखाई पडता था, ऐसा दोनो सेनाओ मे बडा युद्ध हुआ । गदा के घोर प्रहार से अति मूर्छित हुऐ योद्धाओ को कोई उनके बंधु अपने वस्त्रो के घोर से हवा कर रहे थे । कोई प्यासे वीरो को जलभरे घडो से बालाऐ बारंबार पानी पिला रही थी । अपनी प्रियतमाओ को देखने के बाद भी देवांगनाऐ आकर 'यह मेरा पति, यह मेरा पति, उत्कंठ से अपने वीरो का वरण करती थी । कोई शत्रुका मुगुट लेकर नाच रहा है, उसे देखकर किसी शत्रु का देह भी नाचने लगता था । जिस तरह बंदर उछल कूद करता है वैसे कुछ रथो मे से दुसरे रथो मे उछल कूद कर रहे थे । कोई वीर चिरकाल तक युद्ध करते हुए शस्त्र समाप्त होने पर अपने सिर से शिरस्त्राण लेकर उसके द्वारा शत्रु पर प्रहार करता था । कुछ योद्धा सभी शस्त्र समाप्त हो जाने पर हाथीयों के दांतो की तरह अपने दांतो से काटते हुए तथा भुजदंडो से युद्ध कर रहे थे ।

इस प्रकार अस्त्रो से, शस्त्रो से और माया से युद्ध करते दोनो सेनाओको कुछ एक मास बीत गया । उस समय मे पवन जिस गति से वृक्षों को तोड डालता है, उसी तरह श्रीविजय की सेनाने अशनिघोष के कुमार को मार से पीडित कर डाला । यह देखकर वज्र जैसी गदा उठाकर अपने भग्न हुऐ कुमारो का तिरस्कार करता हुआ वह शत्रुओ को त्रस्त करता हुआ अशनिघोष, वराह की तरह छोटे सरोवर मे मंदराचल की तरह समुद्र मे घुसता है उसी तरह विद्या और भुजाओं के पराक्रम से प्रकाशित होकर शत्रुओ की सेना मे प्रवेश हुआ । तत्काल उसने अमिततेज के पुत्रों को भग्न कर दिया । मनस्वी जिसका बदला सामने सामने तुरंत दे देते है । सुतारा के भ्रातृजा को (भतीजोको) भग्न हुऐ देखकर श्रीविजय "खडा रह, खड रहा" ऐसे बोलते हुऐ स्वयं अशनिघोष के साथ युद्ध करने आया । दोनो योद्धा गर्जते, तिरस्कार करते अपनी शस्त्रशक्ति और विद्याशक्ति दिखा रहे थे, अति चालाकी से एक दुसरे के प्रहार से बचते हुऐ और सुरअसुरो के जैसे बडे युद्ध करने लगे । बाद मे पराक्रमी श्रीविजय क्रोध करके खड्ग से केले की तरह उसके दो टुकडे कर दिये । बाद मे उन दो टुकडे करने पर चार उनमे से अशनिघोष हुऐ । उन चार मे से आठ अशनिघोष हो गये । बहुत से अशनिघोषो से घिरा हुआ राजा श्रीविजय पोतनपुर मानो बादलो के बीच धिरे हुऐ विंध्याद्रि पर्वत जैसा दिखाई देने लगा ।

जिस समय अशनिघोष को छेद छेदकर श्रीविजय शांत हुआ, उसी समय महाज्वाला विद्या के साध कर अमिततेज वहाँ आया । प्रताप से उग्र तेजवाले अमिततेज को आता हुआ देखकर सिंह मृगो की तरह अशनिघोष के सैनिक जान बचाकर भागे । 'दुष्ट शत्रुओं को भागने भी नहीं देना चाहिए' ऐसा सोचकर उन पर सिद्ध महाज्वाला विद्या को छोडो । उस महाविद्या से संद्यमोह पाकर सभी शत्रु अमिततेज के शरण मे आ गये । गंधहस्ती के मद की गंध से दुसरे हाथी जैसे भाग जाते है वैसे ही अमिततेज को देखकर अशनिघोष कूदकर भागने लगा । अमिततेज ने महाज्वाला विद्या को कहा कि 'इस दुरात्मा को तुम दूर से यहाँ पकड के लाओ' तत्काल सभी विद्या का अंत करनेवाली वह महाविद्या कोप से क्रोधित काल की तरह अशनिघोष के पीछे दौडी । उससे पलायन अशनिघोष को किसी भी

स्थान पर शरण नहीं मिली। अंत में शरण की इच्छा से वह दक्षिण भरतार्द्ध में दाखिल हुआ। उसके सीमांतगिरि पर श्री ऋषभदेव प्रभु के चैत्य में समवसरण के स्थान में एक गजध्वज की स्थापना की थी। पूर्व सागर के तट पर गिरि के उपर शुक्ल ध्यान धरनेवाले बलदेव मुनि एक रात्रि की प्रतिमा का स्वीकार करके रह रहे थे। उसी रात्रि में धातिकर्म का छेद होने से महामुनि को विश्वसंक्रम में दर्पणरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनके केवलज्ञान का महिमा करने की इच्छा के मानो नियुक्त अधिकारी की तरह सुरअसुर वहाँ आये थे और अभिनंदन, जगन्नंदन, ज्वलनजटी, विजटी, अर्ककीर्ति, पुष्प केतु और विमलमति वगैरेह चारणामुनि भी वहाँ आकर बलदेव मुनि की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करके पास बैठे थे। उस समय महाज्वाला विद्या के पीछे आने से भयभीत अशनिघोष तत्काल समतारूपी अमृत के द्रहरूप वह अचल मुनिश्वर के शरण में गया। महाज्वाला अशनिघोष को वहाँ बैठा देखकर वे वापस लौट गई, क्योंकि केवली की सभा में इंद्र के वज्र की शक्ति का प्रभाव भी नहीं चलता है। अपनी निष्फलता से लज्जित हुई उस विद्याने आकर अमिततेज से सभी वृतांत सुनाया। वह वृतांत सुनकर मेघध्वनि से मयूर की तरह अमिततेज और श्रीविजय राजा बहुत खुश हुए। बाद में उस नगरी में से सुतारा को शीघ्र से लाने के लिये मरिचि को आज्ञा दी। और उत्कंठित हुए हृदय से अमिततेज और श्रीविजय सेना सहित पवन वेग से विमान द्वारा सीमाद्रि पर तुरंत आ गये। वहाँ प्रथम ऋषभनाथ प्रभु की वंदना करके बाद में बलदेवमुनि की वंदना करके उनके आगे वे बैठे।

यहाँ मरीचि चमरचंचा नगरी में प्रवेश करके अशनिघोष के घर में प्रवेश करके उनकी माता के पास आया, वहाँ हिमपीडित नलिनी जैसी, पंकमद्म कमलिनी की जैसी, दावानल से दग्ध हुई लता जैसी पाश बांधे मृग जैसी, धंधुलाई सी चंद्रलंखा जैसी, किनारे पर पड़ी हुई मच्छली की तरह, बंधन में पड़ी हुई हथनी जैसी और मरुदेश में रही हुई हंसनी जैसी अत्यंत दुःखी उपवास करती हुई और मंत्र की तरह पति के नाम का स्मरण करती सुतारा उसे देखने में आई। मरीचि ने अशनिघोष की माता से कहा-‘अमिततेज ने सुतारा के लाने के लिये मुझे आज्ञा दी है’ तब अशनिघोष की माता सुतारा को साथ में लेकर जहाँ उसके पति थे वहाँ बलभद्र केवली सभा में आकर और मानो कोई धरोहर अपने पास रखी हो और उसे लौटाते हैं उसी तरह उस निर्दोष सुतारा श्रीविजय और अमिततेज को अर्पण कर दि। बाद में वह प्रसन्न होकर भगवान बलदेव केवलज्ञानी को वंदना करके योग्य स्थान पर बैठी। उस समय अशनिघोष ने नर और विद्याधरो के इंद्र जैसे श्रीविजय और अमिततेज को मीठे वचन कहे।

उस सभा में सभी शांत हो जाने पर अचल स्वामी ने उनकी शुद्धि करनेवाली देशना दी। देशना के अंत में हाथ जोड़कर अशनिघोष ने बलभद्र मुनि के विज्ञप्ति की-“हे मुनिवर्य! अपने स्थान में रह रही इस सुतारा को हाथी जिस तरह कमल को हर लेता है, उस तरह मैंने कोई दुष्ट मन से हरण नहीं किया था, परंतु पहले एक बार मैं चमरचंचा नगरी से भगवान जयंत मुनि के स्थान पर गया था और वहाँ निवास करके भ्रमर की तरह कुछ गुणगुनाहट करते हुए सात उपवास करके भ्रामरी विद्या सिद्ध की थी। वहाँ से वापस लौटते समय ज्योतिर्वन में श्रीविजय के पास रही ये सुतारा मेरे देखने में आई। उसे देखते मात्र ही उस पर किसी हेतू द्वारा मुझे अकथ्य स्नेह उत्पन्न हो गया। बाद में मैंने सोचा कि इस

रमणी के बिना मैं यहाँ से नहीं जा सकता, क्योंकि मेरा मन मानो उससे बंध गया हो उस तरह उसे ले जाने की उत्कंठा होती है लेकिन शेषनाग के मस्तक पर रहे हुए मणि की तरह इस बलवान श्रीविजय के पास से इस स्त्रि का हरण नहीं हो सकता है ? ऐसा सोचकर प्रतारणी विद्या से श्रीविजय को मोहित करके, चील हारलता का हरण करती है उस तरह मैंने इसका हरण किया । उस आनंदित सुतारा को मेरी माता के पास रखा । चंद्र में भी दाग है, परंतु इस सुतारा में जरा भी दाग नहीं है । मैंने कभी भी उससे कुछ भी कुवचन कहा नहीं है । तो हे भगवान् ! उसके उपर मुझे इतना अधिक स्नेह होने का कारण क्या है ? वह आप बतलाइये” ।

बाद में वे भगवंत ने सत्यभामा और कपिल की तथा श्रीषेण और शिखिनंदिता तथा अभिनंदिता की कथा सुनाई । बाद में मुनिश्वर ने कहा “ श्रीशेषण, अभिनंदिता, शिखिनंदिता और सत्यभामा मृत्यु पाकर युगल बने थे । वहाँ से मृत्यु पाकर वे चारों सौधर्म देवलोक में देवता हुए । वहाँ से च्यवन करके श्रीशेषण का जीव यह अमिततेज हुआ, अभिनंदिता का जीव श्रीविजय हुआ है और सत्यभामा का यह जीव सुतारा बना हुआ है । कपिल आर्तध्यान से मृत्यु प्राप्त करके अनेक योनियों में भटका और आर्तध्यान से बंधा हुआ कर्म अकाम निर्जरा द्वारा तिर्यच योनि और नारकी में उत्पन्न होकर गवाया बाद में भूरत्न नाम की घाटी में औरावती नदी के तट पर तापस के अग्रसर जटिलकौशिक नाम का तपस्वी की पवनवेगा नाम की पत्नि से उस कपिल का जीव शमिलायुग के न्याय से धर्मिल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । आंगन के वृक्षों की तरह उसका लालन-पालन किया हुआ धर्मिल अनुक्रम में बड़ा हुआ । इसलिये सिर पर जटा रखकर अपने पिता से तापसी दीक्षा ली लेकर उसने बालतप करना आरंभ किया । क्योंकि वह कार्य उसकी पितृ परंपरा से चला आ रहा था । हेमंत ऋतु में पर्वतो के पत्थर जिस तरह झरने के पानी को सहन करते हैं उस तरह हिमद्वारा भयंकर ऐसी रात्रियों में गिरते हुए शीतल जल के संताप को सहन करने लगा । ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न में सिर पर सूर्य के आसपास में मेघ की दृष्टि द्वारा भरी हुई घाटीयां और सरोवरो में कंठ तक जल में रहकर वह अघोर मंत्रों का जप करने लगा । अप्काय और पृथ्वीकाय जीवों को पीडा करने में उच्छंखल बने धर्मिल ने वापी, कूप और सरोवर खोदे और खुदवाये । बालक की तरह अल्प बुद्धिवाले उसने हासिये और कुहाड़ी से कृषिकार की तरह अपने मन से बहुतसी समिधा और दर्भ छेद डाले । घुण जात के जीवों के दाह से और पतंग के गिरने से होनेवाले पाप में निर्भय होकर उसने धर्म की सिगड़ी बनवा करके और मार्ग में दीपदान करने लगे । भोजन के पहले अतिथि की तरह कौं अत्यादि दुष्ट तिर्यचो का उसने पिंडदान दिये । बरगद, पीपल और अरीठा वगैरेह वृक्षों की देववत् पूजे और वेदना की, गायों का पूजन करके जल द्वारा वृक्षों का सिंचन करवाया । जगह-जगह पर प्याऊ बनवाई । इस तरह मुग्धबुद्धि धर्मिल ने पूर्वोक्त सर्व कार्य धर्मबुद्धि से करते-करते बहुत काल निर्गमन किया और उससे प्रयास का फल मिला । एकबार महर्द्धिक की तरह विमान पर बैठकर आकाश मार्ग से जाता हुआ एक विद्याधर उसे दिखाई दिया, उसे देखकर ‘इस तप के फल से अगले भव में ऐसा बनू’ ऐसा उसने संकल्प किया और अनुक्रम में वह मृत्यु पाया । वहाँ से चमरचंचा नगरी में विद्याधरो का राजा इंद्राशनि की आसुरी नाम की पत्नि से तुम पुत्ररूपे में उत्पन्न हुआ । पूर्व

जन्म के संबंध से सुतारा के उपर तुझे अपार रोह उत्पन्न हुआ, क्योंकि पूर्व जन्म के संस्कार सेंकड़ों जन्म तक चले आते हैं” ।

इस तरह अपना पूर्वभव सुनकर सुतारा, अमिततेज, श्रीविजय और अशनिवेग परम संवेग और विस्मय पाये । बाद में अमिततेज ने पुछा-“हे मुनिवर्य ! मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ? तब बलभद्रमुनि बोले-इस भव से नौहवे भव के विषय के बारे में इस भरतक्षेत्र के अंदर बत्तीस हजार मुगट बद्ध राजा सेवन करते हैं, चौदा महारत्नों के नाथ, नवनिधि के ईश्वर, लवण समुद्र की और शुद्ध हिमालय जिसकी मर्यादा है इतनी पृथ्वी के स्वामी और मगधादिक देवकुमारों को संभाले ऐसे आप पांचवे चक्रवर्ती होंगे और उसी भव में चौसठ इंद्रोंने जिसके चरण सेवे हैं ऐसे शांतिनाथ नाम की सोलहवे तीर्थंकर भी आप होंगे । उस समय यह श्रीविजय राजा आपके पहले पुत्र और प्रथम गणधर होंगे ।

ऐसा सुनकर श्रीविजय और अमिततेज अचल मुनि को प्रणाम करके श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये । अशनिघोष ने बलभद्र को प्रणाम करके भक्तिद्वारा नम्र होकर विज्ञप्ति की-“हे सर्वज्ञ प्रभु ! आपके मुख से पूर्व भव में भोगे हुए दुःख सुनने से मेरा मन अभी भी (आवेश से) कांप रहा है । हे भगवन् ! आपके कहने के अनुसार कपिल के जन्म में प्रिया के वियोग से जो आर्तध्यान किया था, उससे विविध प्रकार के वध, छेद और भेद द्वारा भयंकर योनि में उत्पन्न हुआ और वहाँ बहुत बार तक फल भोगा । उसके बाद अकाम निर्जरा से जैसे तैसे उन दुष्कर्मों को जीर्ण करके मैं पूर्व भव में मनुष्य अवतार पाया । परंतु उसमें भी अभाग्य योग से जिन धर्म न पाने से तापस होकर अल्प फलवाला और बहुत कष्टवाला मैंने बालतप किया । वैसे तप के परिणाम में भी वापस संकल्प करके फिर से इस चंचानगरी में मैं विद्याधर का पति बना । लेकिन हे प्रभु ! ऐसे निदानवाले तप का पर स्त्रीहरण का और महाज्वाला विद्या भय मुझे तो महाशुभ फलवाला परिणाम आया कि मुझे सभी दुःखों से छुड़ानेवाले आप महात्मा की शरण मिली । पास में रही वस्तु को भी जिस तरह अंध जान नहीं सकता है उस तरह जिनधर्म न जानता हुआ मैं इतने भव तक भटकता रहा, परंतु अब आप मेरी रक्षा करें । हे विभो ! अब यतिधर्म बिना एक भी क्षण मेरा व्यर्थ नहीं जायेगा । इसलिये मुझे अभी दीक्षा दे ।” ‘वह योग्य है’ ऐसा कहकर मुनि ने अनुग्रह किये अशनिघोष उत्तम आश्रय को प्राप्त करके विनय से बोला अमिततेज के बारे में बोला-“कर्मरूपी घास में अग्नि समान ज्वलनजटी प्रत्यक्ष विजय धर्म जैसे आपके पूज्य पितामह हैं, ये भगवान् अर्ककीर्ति जो तृण की तरह वैभव का त्याग करनेवाले और तप के तेजद्वारा अर्क (सूर्य) जैसे तुम्हारे पिता हैं और भावी चक्रवर्ती उसी तरह तीर्थंकर जैसे आप हैं । तो आपको प्रणिपात करते, जो कि मैं मानो हूँ फिर भी मुझे कोई लज्जा नहीं है, इसलिये अब यह चमरचंचा नगरी मेरा राज्य और अश्वघोषादिक यह मेरे पुत्र और मेरा सब कुछ हैं वह सब आपका है ऐसा समझे, अलग न समझे” इस तरह कहकर अपने बड़े पुत्र अश्वघोष को क्षीरकंठ बालक की तरह अमिततेज के उत्संग में अर्पण कर दिया । बाद में इंद्राशनि के कुमार अशनिघोष ने बहुत से राजाओं के साथ अचलस्वामी के पास से दीक्षा ग्रहण की । बाद में बलभद्र मुनि को झुककर अमिततेज, श्रीविजय और अश्वघोषादिक अपने-अपने स्थान लौट गये ।

अपार लक्ष्मीवाले श्रीविजय और अमिततेज शक्र और ईशान इंद्र की तरह काफी लक्ष्मी द्वारा निरंतर अर्हत् के मंदिरों में उत्कृष्ट तरीके से अष्टाई उत्सवादि का आचरण करते, अेषणीय, कल्पनीय और प्रासुक पदार्थों का साधुओं को दान देकर अपनी समृद्धि को कृतार्थ करते थे, अनेक चितारूप ग्रीष्म ऋतु से आर्त प्राणीयो की पूर्व दिशा के पवन और मेघ की तरह सभी पीडा को हरनेवाले, अच्छी बुद्धिवाले वे रातदिन आत्म गोष्ठी में रहते थे, गुरु के पास से शास्त्रों के रहस्यों को भाव से सुनते थे, डरता हुआ मनुष्य परछाई को भी त्याग देता है उस तरह कुतीर्थी की गोष्ठी को भी छोड़ देते थे । कुपथ्य की तरह अखिल व्यसनो का त्याग से कभी क्षण मात्र में विषयसुख अनुभव, योग्य अवसर पर पाप रहित ऐसी चिंता का चिंतन और अपने अपने नगर में अनेक मनवाले होकर रहते हुए वे काल निर्गमन करने लगे ।

एक बार चैत्य के पास आये पौषधागार में पोसह ग्रहण करके विद्याधरो ने अर्हत् धर्म कह रहे थे, उस समय में श्री जिनबिंब को वंदन करने इच्छा से मानो धर्म की दो भुजाएँ हो ऐसे दो चरणमुनि उस चैत्य में उतरे । उन्हें आकाश मार्ग से उतरते देखकर अमिततेज खड़े हो गये और इष्ट के दर्शन से हर्ष पाकर उन्हें वंदना की । दोनों मुनियो ने जिनेन्द्र की तीन प्रदक्षिणा करके वंदना की, बाद में अमिततेज से कहा- “मरुस्थल में जल की तरह इस संसार में मनुष्यत्व अति दुर्लभ है, वह प्राप्त हो जाय तो कभी भी व्यर्थ तरीके से गवाना नहीं चाहिये और जैन धर्म की आराधन में थोड़ा भी प्रमाद करना नहीं चाहिए, क्योंकि उस धर्म बिना उत्तरोत्तर मनोरथ दूसरा कोई नहीं है” इस प्रकार का कहकर विश्व को इष्ट दर्शनवाले वे दोनों मुनि चारणमुनि वर्षाकाल के मेघ की तरह आकाश मार्ग से चले गये । बाद में श्री विजय और अमिततेज हर साल जैन मंदिरों में तीन महोत्सव करने लगे । अमुमें चैत्र और आसो महिने में दो अष्टाओमें देवताएं, नंदिश्वर द्विप में जाकर महोत्सव करते हैं और दूसरे अपने अपने जिन चैत्यों में करते हैं अुसी तरह वे भी उसमें चैत्र और अश्विन मास में अपने-अपने चैत्य में करते थे और तीसरा अशाश्वत (अनियमित समय) उत्सव सीमाद्वि पर जाकर श्री ऋषभनाथ के चैत्य में अचल बलदेव की ज्ञानभूमि के स्थानक पर करते थे ।

एक बार राजा अमिततेज मेरु पर सूर्य की तरह अपने महल पर प्रधानमंडल परिवार के साथ बैठे थे, उस समय में किचड और जल सुख गये हो ऐसी ग्रीष्मऋतु में सरोवर की तरह तप से जिनके मांस तथा रुधिर सुख गये हैं, उद्वेल (ऊछलते) सागर की तरह शरीर के जोड़ों को कड़ कड़ होनेवाला आवाज, प्रगट किये हुए परशु के जैसा जिनका उदर दुर्बल और भीषण दिखाई देता था, निर्दोष तप संपदा के तेज से प्रकाशी हो रहे थे-ऐसे धर्मादर्श तुल्य मासक्षपणक कोई मुनि भिक्षा के लिये नगर में आये उन्हें दिखाई दिये । एक जिनदर्शन ही जिसे प्रिय है ऐसे अमिततेज उन्हें देखते ही महल से उतरकर उनके पास आया, तीन प्रदक्षिणा करके वंदन करके निर्दोष अन्नादिक द्वारा उन्हें प्रतिलाभित किया । उस समय सत्पात्र को दिया गया अन्नादिक दान के प्रभाव से वसुधारा वगैरेह पांच दिव्य प्रगट हुए इस तरह धर्मचेष्टा करते हुए और सुखमग्न रहते श्रीविजय और अमिततेज को हजारों वर्ष बीत गये ।

एक समय अमिततेज और श्रीविजय साथ मिलकर नंदनवन में रहे हुए शाश्वत अर्हत् की वंदना

करने गये । वंदना करके कुतूहल से टहलते-टहलते नंदनवन की रमणीक भूमि देखने लगे । ऐसे में विपुलमति और महामति नाम के दो चारणमुनि सुवर्ण शिलापर बैठे उनकी नजर में आये, उनके पास जाकर प्रदक्षिणा करके वंदना करके दोनों श्रावक राजा उनके पास बैठकर इस प्रकार की धर्मदेशना सुनने लगे-

इस जगत में मृत्यु सभी प्राणीयों के करीब हमेशा रहा हुआ है, इसलिए कसाई के घर में रहे हुए पशुओं की तरह इन प्राणीयों का जीवन चपल है । जिन मनुष्यों की, आयु क्षणिक है ऐसा जानते हैं तथापि धर्म में उद्यम करते नहीं हैं वे तो सिर्फ मोह में विलास करते हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक मोह ऐसे बड़े शत्रु है कि मनुष्य के हितकारी धर्म के मूल को जड़ से छेद डालते हैं । इसलिए मानवजन्म के फल की इच्छा से मोह को छेद कर निरंतर धर्म करना चाहिए जिससे फिर से मनुष्य जन्म प्राप्त हो”

इस प्रकार की देशना सुनकर अपना शेष आयु कितनी है ? ऐसा उन्होंने प्रश्न किया । इसलिए ‘अब सिर्फ छब्बीस दिन का आयुष्य शेष है’ ऐसा मुनिश्वरो ने उत्तर दिया । ऐसा अमोघ मुनि वाक्य सुनकर वे नर और विद्याधर के राजा निर्वेदयुक्त हो गये महा पश्चाताप करते हुए इस प्रकार बोले- “अरे ! सदा निद्रालु की तरह, सदा मद्यपान करनेवाले की तरह, सदा बालक की तरह सदा मुर्छित की तरह सदा अपस्मारी की तरह हमने अरण्य में उगे हुए पुष्पों की तरह इस मनुष्यजन्म प्रमाद में निष्फल गवां दिया है” इसलिए चारणमुनि उन्हें प्रतिबोध करते हुए बोले- “हे महानुभाव ! खेद ना करे, अभी भी तुम्हें प्रव्रज्या लेनी युक्त है । जिस तरह निशा के अंत में भी हुई चंद्रज्योति कुमुदविकास का कारण बनती है उसी तरह जन्मांत में भी ब्रह्मण की दीक्षा कल्याण हेतु होती है” चारणमुनि के ऐसे प्रतिबोध से श्रीविजय और अमिततेज धर्मक्रिया में उत्सुक होकर अपनी-अपनी राजधानी में आये । वहाँ मुख्य जिनचैत्यो में बड़े अष्टाई उत्सव करवाये और दीन तथा अनाथ प्राणीयों को यथारुचि दान दिया । बाद में अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर दोनों राजा ने अभिनंदन और जगन्नंदन मुनि के पास जाकर व्रत ब्रह्मण किया । और तुरंत ही पादपोषगम नाम का अनशन भी अंगीकार कर लिया । उस समय श्रीविजय ने अपने पिता का स्मरण किया और उनकी अधिक समृद्धि और अपनी हीन समृद्धि का विचार करके ‘मैं उनके जैसा बनूँ’ ऐसा संकल्प किया । संकल्प करनेवाले श्रीविजय और संकल्प न करनेवाले अमिततेज आयुक्षये मृत्यु पाकर प्राणत नाम के दसवे कल्प में उत्पन्न हुए । वहाँ सुस्थितावर्त और नंदितावर्त विमान के स्वामी मणिचूल और दिव्यचूल नाम के देवता बनकर वे सुख से रहने लगे । मन की इच्छानुसार वांछित अर्थ को सिद्ध करनेवाले वे देवता रतिसागर में गाढ मग्न होकर बीस सागरोपम का आयुष्य सुख से निर्गमन किया ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये पंचमपर्वणि

श्रीशांतिनाथदेवस्य श्रीषेणादिभवपंचकवर्णनो नाम प्रथम सर्गः ॥१॥

द्वितीय सर्ग

श्री शांतिनाथ भगवान के छठे और सातवे भव का वर्णन

इस जंबूद्वीप मे प्राग्विदेह के आभूषणरूपी रमणीय नाम के विजय मे सीता नदी के दक्षिण तट के बारे मे पृथ्वी के शुभ व्यूह करनेवाली परम समृद्धि द्वारा शुभ लक्ष्मी के स्थान शुभा नाम की एक नगरी है। उसमे स्थिरता मे मेरु जैसा और गांभीर्य मे सागर जैसा स्तिमितसागर नाम का राजा था। उसे अप्सरा की सौभाग्य संपत्ति का पराभव करवानेवाली और शील की धुरा को धारण करनेवाली वसुंधरा और अनुद्धरा नाम की दो पत्नियां थी। नंदितावर्त्त विमान से च्यवन करके अमिततेज का जीव वसुंधरा देवी के उदर मे अवतरित हुआ। सुख से सो रही वसुंधरादेवी ने बलभद्र के जन्म को सूचित करनेवाले चार महास्वप्न मुख मे प्रवेश करते देखे। उस समय उसे उत्पन्न हुऐ परमानंद से पराभव पाकर वह निद्रा से दूर हो गई, रानी ने राजा से विज्ञप्ति की “प्राणनाथ ! मैंने आज स्वप्न मे बादल मे चंद्र प्रवेश करता है उस तरह स्फटिक गिरि जैसे चार दांतोवाले हाथी मुख मे प्रवेश करता हुआ देखा, शरदऋतु के बादलो से बना हुआ ऐसा निर्मल कांतिवाला, ऊँची कुबडवाला और सरल पुछवाला गर्जन करता हुआ वृषभ मेरे देखने मे आया। दूर फैलते किरणों के अंकुरो से मानो दिशाओ के कर्णाभरण की रचना करता हो ऐसे चंद्र का अवलोकन किया और उसके बाद गुंजन करते हुऐ भ्रमर मानो शतमुखी मुख से गाते हो ऐसा और विकसित कमलो द्वारा परिपूर्ण सरोवर देखा। हे स्वामी ! इस स्वप्न का क्या फल प्राप्त होगा उसे मुझे कहें। उत्तम स्वप्न के बारे मे सामान्य मनुष्य को पुछना अनुचित है” राजाने कहा- ‘हे देवी ! लक्ष्मी द्वारा देव जैसा लोकोत्तर बलशाली तुम्हे बलभद्र पुत्र होगा’ उस समय से रत्नगर्भा पृथ्वी निधान को वंशलता मुक्तफल को धारण करती है उस तरह वसुंधरादेवी ने गर्भ धारण किया। वे महादेवी गर्भसमय पूर्ण होनेपर श्रीवत्स के चिन्हवाले, श्वेतवर्णवाले, पूर्ण अवयववाले संपूर्ण लक्षण को धारण करनेवाला एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म से स्तिमितसागर राजा पार्वण इंदु के (चन्द्र के) उदय से सागर की तरह हर्षित हुये। पिता ने बारहवे दिन बारह सूर्य जैसी कांतिवाले उस पुत्र का अपराजित नाम रखा। पुत्र को देखते ही चुंबन करते, आलिंगन करते और उत्संग मे बैठाते महाराजा, धन को प्राप्त करनेवाले निर्धन की तरह कभी भी विराम नहीं लेते थे।

उसके बाद कुछ समय बाद सुस्थितावर्त्त विमान मे से च्यवन करके श्रीविजय का जीव अनुद्धरा देवी की कुक्षि मे अवतरित हुआ। उस समय सुख से सो रही अनुद्धरा देवी की कुक्षि मे अवतरित हुआ। उस समय सुख से सो रही अनुद्धरा देवी ने रात्रि के शेष भाग मे अपने मुख मे प्रवेश करते सात स्वप्न देखे। उसमे प्रथम कुंकुम जैसी अरुण केसरा, चंद्रलेखा जैसा नाखून और चामर जैसे पुछवाला किशोर सिंह केशरीसिंह देखा। बाद मे सुंद मे पूर्ण कुंभ को धारण करनेवाले दो हाथीयो द्वारा क्षीर जल से अभिषेक करती पद्मासना लक्ष्मी देवी देखी, बाद मे बडे अंधकार को टालनेवाला, रात्रि को भी दिन करनेवाला और प्रचंड तेज को फैलानेवाले सूर्य का अवलोकन किया बाद मे स्वच्छ और स्वादिष्ट जल

से पूर्ण मुख के ऊपर पुंडरीक कमल से अर्चित, सुवर्ण से निर्मित और पुष्पमाला से सुशोभित पूर्ण कुंभ देखा। बाद में विविध जलचर प्राणीयों से भरपूर, रत्नसमूह से प्रकाशित और गगन तक उछलती सागर की लहरों से तरंगित समुद्र का अवलोकन किया। बाद में पंचवर्णी मणि की ज्योति के फैलाव से गगन के गण में इन्द्रधनुष की शोभा को धारण करता हुआ रत्नों का संचय देखा और अंत में धूम्ररहित ज्वालाओं से आकाश को पल्लवित करता और देखने लायक योग्य सुख देनेवाला प्रकाशमय अग्नि का अवलोकन किया। इस तरह सात स्वप्न देखकर जागृत हुई अनुद्धरा देवी ने पति से निवेदन किया। वह सुनकर राजाने कहा- 'तुम्हें वासुदेव पुत्र होगा' स्वप्नफल को सुनकर देवी खुश हुई। समय आने पर आकाश जिस तरह मेघ को जन्म देता है उसी तरह देवी ने नेत्र को उत्सव देनेवाला और नीलकमल जैसा श्याम वर्णवाले कुमार को जन्म दिया। अनुद्धरा के उदर से उत्पन्न हुए उस महावीर्य कुमार का राजाने बड़े उत्सव से अनंतवीर्य ऐसा नाम रखा। हंस जिस तरह एक कमल से दूसरे कमल पर जाता है उस तरह रात्रि दिवस धात्रीयों के उत्संग में घूमता हुआ वह राजकुमार धीरे-धीरे वृद्धि पाने लगा। अनुक्रम में बढ़े हुए और रमणीयों ने देखे वे रमणीय आकृतिवाले वासुदेव अपने बड़े भाई के साथ मित्र की तरह खेलने लगे। मानो वर्षाऋतु और शरदऋतु के मेघ एक जगह एकत्रित हुए हो ऐसे श्वेत और श्याम शरीरवाले वे दोनों भाई शोभा दे रहे थे। योग्य आयु में उन्होंने लीलामात्र से सभी शास्त्र सिख लिये 'ऐसे पुरुषों को पूर्व भव के अभ्यास से कि हुई विद्या स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।' उन्होंने गुरु के पास ऐसा अभ्यास किया कि जिससे गुरु का ज्ञान को जिवित रखनेवाले हो गये। अनुक्रम में वे लक्ष्मी का वासगृह और मंत्रतंत्र बिना का कामिनीजन को कामणरूपी यौवन को प्राप्त हुआ।

एक बार विविध अतिशयवाले स्वयंप्रभु नाम के मुनि वहाँ पधारे। उन्होंने नगर के बाहर उपवन के किसी एक भाग में निवास किया। उस समय अश्वक्रीडा में चतुर राजा स्तिमितसागर अश्व को खिलाने के लिये नगर के बाहर निकले। उन्मत्त और शांत अश्वों को खिलवाड़ करवा के अश्वक्रीडा में रेवंतकुमार जैसा वह राजा शांत होकर उसी वन में आया। बहुत तरुण वृक्षों से मानो उसमें मेघ विश्राम लेने आया हो ऐसा, नीक द्वारा झरनेवाला गिरि हो ऐसा, कदली के पत्रों से मानो पांथजन को पंखा झुलता हो ऐसा और सर्वत्र उगी हुई हरियाली मानो मरकत मणि से तल बांधा हो ऐसा वह वन दिखाई देता था। इलायची, लौंग, कंकोल, चारोली की खुशबु को वहन करता हुआ सुखकारी पवन उसमें मार्जन करके दासी का काम कर रहा था। पृथ्वी पर रहा हुआ मानो नंदनवन हो ऐसे उस उद्यान में राजा हर्ष से नेत्र स्थिर करते हुए प्रवेश किया। क्षणभर में विश्राम लेकर आगे देखा तो अशोकवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न प्रतिमाधारी मुनि को देखा। तत्काल शीत लगनेवाली भक्ति से रोमांचित होकर उसने मुनि के पास जाकर तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन किया। मुनि ने अपना ध्यान विलंब करके धर्मलाभ रूप आशिष दिया। सत्पुरुष अपना आरंभ किया हुआ कार्य दूसरे के हित में छोड़ देते हैं। बाद में स्वयंप्रभु मुनि ने जैसे उदाहरण से श्रोताओं को मानो प्रत्यक्ष अनुभव करते हो ऐसी धर्मदेशना दी। वह देशना सुनकर राजा क्षणभर में प्रतिबोध पाया। घर जाकर अपने पुत्र अनंतवीर्य को राज्यासन पर बैठाया, अनंतवीर्य तथा अपराजित ने जिसका निर्गमोत्सव किया है ऐसे राजा ने स्वयंप्रभुमुनि के

पास से दीक्षा ग्रहण की। उस महात्मा ने दुःसह परिषद् को सहन करके मूलगुण और उत्तरगुण चिरकाल पालन किया। अंत में दैवयोग से उसके मन द्वारा चारित्र्य की विराधना हो गई, इसलिए मृत्यु पाकर वह भुवनपति निकाय में चमरेंद्र बने।

निःसीम पराक्रमरूपी धनवाला और देवताओं से भी अपराजित ऐसा अनंतवीर्य अपने भाई अपराजित के साथ पृथ्वी का राज्य करने लगा। एक बार किसी विद्याधर के साथ वे दोनों भाईयों की पवित्र मैत्री हो गई। सत्पुरुषों का संसर्ग सत्पुरुषों के साथ ही होता है। उस विद्याधर ने उन्हें महाविद्या दी 'इस विद्या का साधन बनाये' ऐसा उपदेश देकर वह वैताढ्य गिरि पर अपने स्थानक पर गया। अनंतवार्य और अपराजित को बर्बरी और किराती नाम की दो दासीयां थी। वे दोनों गीत, नाट्य वगैरह कलाओं में निपुण थी। रंभादिक अप्सराओं से भी सुंदर गायन और नृत्य करती वे युवतीयां बलभद्र और अनंतवीर्य के चित का रंजन करती थी।

एक बार बलभद्र और वासुदेव उस रमणीयों के पास से सभा में एक उत्तम नाटक करवा रहे थे उसी समय चंचल शिखा को धारण कर, सभी जगह मुक्त भ्रमण करनेवाले, सर्वत्र कलह में कौतुक देखनेवाले और स्थिरता में पारे जैसे अस्थिर नारद घूमते घूमते उस सभा में आये। त्रिदंडधारी नारद के हाथ में वीणा थी। अक्षसूत्र, ब्रह्मसूत्र और कोपीन धारण किये थे, श्वेत वर्णवाले, हंस की तरह आकाश में चलते थे, सुवर्ण की पादुका पर पैर रखे हुए थे और हाथ में कमंडलु था। उस समय बर्बरी और किराती का मनोहर नाटक देखने में दोनों भाईयों के मन व्याक्षिप्त होने से उन्होंने नारद ऋषि को सन्मान दिया नहीं, जिससे नारद ने कोप करके सोचा 'ये मद से भरे पुरुषों के पास मैं अभ्यागत होकर आया हूँ, तथापि वे मुझे मान देने के लिये खड़े नहीं हुए अरे! यह नीच चेटीयों के नाटक को बहुत मान दे रहे हैं और मैं यहाँ आया हूँ तो भी वे हीन जनो की तरह मेरी ओर देखा भी नहीं! इसलिए दासी पर प्रीति रखनेवाले दोनों अधम पुरुषों को उनकी अवज्ञा का फल अभी दिखाता हूँ। इस प्रकार सोचकर नारद पवन वेग से वैताढ्यगिरि उपर रहे हुए दमितारि राजा के पास गये लक्ष्मी द्वारा इंद्र जैसा विद्याधरो का राजा दमितारि सैंकड़ों विद्याधरो के परिवार के साथ सभा में बैठा था। वह नारद को दूर से आते देखकर सिंहासन और पादुकाओं का त्याग करके संसंभ्र उन्हें मान देने के लिये खड़ा हो गया। उन्हें बैठने के लिये सिंहासन दिया 'ऐसे ऋषियों का जीतना मान देते हैं उतना कम है' नारद सिंहासन पर न बैठते हुए अपने साथ लाये दर्भ के आसन पर बैठे, कारण की ऐसे महात्मा भक्ति की इच्छा रखते हैं, वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं।

तीन खंडों को विजयी राजा से नारद ने कहा- 'विद्याधरो के राजा और बड़े पराक्रमी हे त्रिखंडेश्वर! आपका कल्याण हो। हे राजन्! राज्य, देश, नगर, गोत्र, संबंधी परिग्रह और उसके अलावा आपके जो जो भी तुम्हारे संबंध हो उन सभी का सर्व कुशल हो?' दमितारि बोला- 'मुनिवर्य! मेरे यहाँ सभी कुशल हैं, उसमें आपके अनुग्रह से विशेष कुशल है। महाशय! आपको एक बात पुछू आपसे आप निरंतर स्वच्छंद होकर आकाश में विचरण करते हो तो आपने किसी जगह पूर्व में न देखा हो वैसा कोई आश्चर्य आपके देखने में आया है?' यह प्रश्न सुनकर 'अब अपना मनोरथ सिद्ध होकर

रहेगा' ऐसा मन मे सोचकर हर्ष से प्रफुल्लित होते हुऐ नारद दमितारि राजा के बारे मे बोला- "हे राजन् ! इस पृथ्वी के भ्रमण फल स्वरूप, देवलोक मे भी संभव नहीं है ऐसा एक आश्चर्य आज ही मेरे देखने मे आया है शुभा नाम की बडी नगरी मे आज ही क्रीडा करने मै गया था, वहाँ अनंतवीर्य राजा सभा मे बैठा था और उसके पास बर्बरी और किराती नाम की दो रमणीया आश्चर्य कराये ऐसा नाट्य प्रदर्शन कर रही थी । मै कौतुक से स्वर्ग और पृथ्वीलोक पर घूमा करता हूँ, लेकिन ऐसा अद्भुत नाटक मुझे कही पर भी दिखाई दिया नहीं । हे राजन् ! सौधर्म देवलोक मे जैसे शक्रेन्द्र है वैसे इस विजयाहर्द मे आश्चर्यरूपी वस्तुमात्र के आप ही पात्र है, स्वामी बनने योग्य है, इसलिए जहाँ तक आप उन दोनो नाटक करनेवाली को यहाँ नहीं लायेंगे तब तक आपकी विद्या, पराक्रम, तेज, हुकुम और राज्य कैसे भी हो तो वे सब किस काम के ? कुछ काम के नहीं है" । इस प्रकार कहकर नारद मुनि पृथ्वी पर जिस तरह बीज बोते है उस तरह अपना स्वार्थ सिद्ध करने लिये वहाँ कलेश का बीज बोकर आकाश मार्ग से चले गये ।

नारदजी के वचन सुनकर तीन खंडो का अश्वर्य गर्वित दमितारि राजा ने अपराजित के बंधु अनंतवीर्य के पास दूत भेजा । वह दूत शोभानगरी मे आकर अद्यज बंधुसहित सभा मे बैठे अनंतवीर्य को नमस्कार करके वचनो की विशिष्ट रचना से इस तरह बोला- "हे राजन् ! इस अर्ध विजय मे जो कुछ भी अद्भुत वस्तु उत्पन्न होती है वह सभी राजाधिराज दमितारि राजा की है ऐसा समझे, इसमे कोई संशय न रखे, इसलिए आपके पास जो बर्बरी और किराती नाम की दो प्रसिद्ध नाटक करनेवाली है उन्हे महाराजा दमितारि को ओर भेज दे । जो सर्व राज्य के स्वामी होते है उसे राज्य मे चेटी वगेरेह जो कुछ उत्तम पदार्थ हो वे सभी स्वाधीन करें, क्योकि घर दिया है तो साथ मे उसकी वस्तुऐं भी अलग कैसे रह सकती है ?" ऐसे दूत के वचनो को सुनकर अनंतवीर्य ने कहा- 'हे दूत ! तुम अभी चले जाओ, मै जरा सोचकर बाद मे तुरंत दासीयों को भेज दूगां ।' इस प्रकार बलदेव के कहने से दूत हर्षित होकर और जल्द वापस लौट कर दमितारि राजा से सिद्धप्राय हुआ प्रयोजन कहकर सुनाया ।

प्रच्छन्न अग्निवाले दो कुंड हो ऐसे गूढ क्रोधवाले अपराजित और अनंतवीर्य ने दोनो बंधु दूत के जाने के बाद सोचने लगे- "राजा दमितारि आकाशगमन और विद्यासिद्ध के बल से अपने ऊपर ऐसे शासन मे प्रवृत्त है, इसके अलावा और कुछ भी इसके पास अधिक नहीं है । हमे भी मित्र विद्याधर ने जो विद्या पूर्व मे दि है उसे अभी सिद्ध करके देखे, तो उसका क्या भार है ? इस तरह दोनो भाई चिंतित थे उसी समय मानो संकेत करके रखी हुई हो उस तरह वहां प्रज्ञति वगेरेह विद्या प्रगट हो गई, विद्युत के तेज जैसे उद्योत को धारण करनेवाली विविध अलंकारो से भूषित और दिव्य वस्त्रो से अलंकृत वे विद्याऐं अंजली जोउकर कहने लगी-जिस विद्याओं को सिद्ध करने की इच्छा रखते हो वे हम ही है । पूर्व जन्म मे तुमने हमे सिद्ध की थी अब हम आपके पास बिना प्रयास से आई है । हे महाभाग ! मंत्रशास्त्र मे देवता की तरह हम आपके शरीर मे संक्रमण करेगें, इसलिए अब जो भी आज्ञा हो वह बतलाईये' ऐसे विद्याओ के वचन सुनकर उन्होंने कहा कि 'एवमस्तु' तब वे विद्याऐं पूर्व पश्चिम समुद्र मे जिस तरह सरिताऐं प्रवेश करती है उस तरह उनके अंगो मे प्रविष्ट हो गई । वे स्वभाव से बलवान तो थे ही, उसमे इस विद्या के प्रभाव से कवचधारी सिंह की तरह अधिक बलवान हो गये । बाद मे गंध और मनोहर पुष्पो से

उन्होंने विद्याओं की पूजा की। विवेकी जन कभी भी पूज्य की पूजा के क्रम का उल्लंघन नहीं करते हैं। इसी समय के दरम्यान मे दमितारि का दूत पुनः गति से वहाँ आया और तिरस्कार से बोला 'अरे ! मूर्ख की तरह अज्ञानी तुम दोनों युवानों ने स्वामी की ओर ऐसा अनादर क्यों आरंभ किया है ? 'हम चेटीओ (नर्तकी) को तुरंत भेज देंगे' इस प्रकार कहकर अद्यापि क्यों भेजी नहीं है ? क्या तुम्हें मरने की इच्छा है ? मुझे तो तुम वास्तव में मूर्ख लग रहे हो। उन महाराजा के कोप को तुम जानते नहीं हो। मैं मानता तुम्हारा जडमूल से उन्मूलन किये बिना जानेवाली नहीं है। आप दूसरा विशेष तो कुछ दोगे नहीं, लेकिन दो चेटिकाएँ तो दे दो, नहीं तो महाराजा दमितारि तुम्हें और तुम्हारे राज्यलक्ष्मी को जप्त कर ले जायेंगे।' फिर भी वासुदेव अनंतवीर्य समर्थ थे, तथापि कोप को गूढ़ में रखकर हास्य द्वारा अधर पल्लव को हंसाते हंसाते शांति से बोले- "महाराजा दमितारि बड़े मूल्यवान रत्नों से, बहुत द्रव्यों से, घोड़े और गजेन्द्रों की भेट देकर संतुष्ट करने योग्य हैं, वे महाराजा यदि मात्र दो चेटियों से संतुष्ट हैं तो उन्हें लेकर तुम आज अपराह्न काल में जाओ" इस प्रकार कहा इसलिए अपनी दूतकला को यथार्थ मानता हुआ वह अपने अतिथिगृह की ओर लौट गया।

दूत के जाने के बाद दोनों वीरों ने स्तंभ पर घर के भार की तहर और धुरा पर बैलगाड़ी की तरह अपने राज्य का भार मंत्रीयों पर आरोपण करके। दमितारि राजा कैसा है उसे आंखों से देखने के कौतुक से स्वयं विद्या के प्रभाव से बर्बरी और किराती का रूप धारण करके चेटीयों का रूप धारण दोनों बंधु दूत के पास आई 'अनंतवीर्य और अपराजित दमितारि राजा के लिये हमें भेजा है ऐसा कहने पर, दोनों चेटीयों के साथ दूत हर्षित होकर वहाँ से चला तत्काल वैताढ्य गिरि पर आकर उसने दमितारि राजा से विज्ञप्ति कि "महाराज ! ज्यो असुर चमरेंद्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं, उसी तरह मैं भी अपराजित और अनंतवीर्य को विशेष नम्र होकर मस्तक पर मुगुट की तरह आपकी आज्ञा को सदा धारण करता हूँ। यह बर्बरी और किराती नाम की चेटीरत्न उन्होंने आपको भेट करने के लिये अर्पण कि है।" दमितारि ने सौम्यदृष्टि से दोनों चेटी का अवलोकन किया। जिन गुणों का वर्णन जनश्रुति से सुनने में आता है, वह उनके ज्ञाताओं के अनुराग करनेवाला होता है' तुरंत ही दमितारिने नाटक का अभिनय करने की आज्ञा की। अपूर्व वस्तु देखने की इच्छा जरा भी कालक्षेप सहन नहीं करती है।

महाराजा की आज्ञा से वे पात्ररूपी दो नटीयों ने रंगभूमि पर आकर और प्रत्याहारादिक अंगों से पूर्व रंग करने लगी। रंगाचार्य ने पुष्पांजली से रंगपूजा की। गायकादि परिवार योग्य दिशा में बैठा। नट ने आकर नांदीवाद पूर्वक नांदीपाठ किया, नांदी हो जाने के बाद अंग सहित प्रस्तावना का अभिनय शुरू किया। गायिकावृंद विचित्र नेपथ्य धारण करके जाति राग सहित पात्र के प्रवेश को सूचित ध्रुवांगीति गाने लगी। बाद में प्रकृति, अवस्था, संधित के अंग और संधि द्वारा उन्नत ऐसे रससागर नाटक का अभिनय शुरू हुआ। ऐकांत सुखामृत के सिंधुरूपी संप्रयोग शृंगार से वह दुःखी अवस्था के कारण रूप विप्रयोग शृंगार से, वह वह संघटन के उपायो से और सर्व विघ्न के परिहार से कोई-कोई प्रसंग पर कामदेव के साम्राज्य की संधि और विग्रह की कल्पना होने लगी। नेपथ्य में आये बड़े पेटवाले,

दांतवाले, लंगड़े, कुबड़े, चिबला, खुलेबालोवाले, सिरपर टालवाले, काने, विकराल, अपा के घंटा बांधनेवाले, अंगो पर भस्म लगानेवाले, बगल और नासिका बजानेवाले, कान और भ्रूकुटी नचानेवाले, दुसरे की भाषा का अनुवाद करनेवाले, कपट द्वारा मुग्ध करनेवाले, कुछ विदूषक और विटपुरुष देहातियों की तरह आकर नगर के चतुर पुरुषों को भी हसाने लगे । आकाशवाणी, दैव को उपालंभ, अश्रुपात, अस्थान पर याचना, भूमि पर आलोटन, रुदन, भृगुपात (भैरवजंप), गले में फांसी का फंदा, जल, अग्नि में प्रवेश, विषभक्षण, शस्त्रघात, हृदयताडन, समृद्धि का नाश और इष्ट का वध इत्यादिक दृश्यों से कुर लोगो को भी आर्द्र करके अश्रुपात करवाने लगे । वे कभी दांत तथा होठ की पीड़ा से, नेत्रों की लाली से, भ्रूकुटी चढ़ाने से, गाल बजाने से करतल पछाड़ने से, पृथ्वी फाड़ने से, आयुध खिंचने से, रुधिर आकर्षणसे, वेग द्वारा दौड़ने से, प्रहार सहित लड़ाईयों, से गात्र के कंपन से, अश्रुपात करवाने से स्त्री के अपहरण से और सेवकों के तिरस्कार से धीर पुरुषों को भी कंपन करवाते थे । कभी गांभीर्य, स्थैर्य, चातुर्य तथा त्यागादिक उज्ज्वल गुण, हृदय का जोश, पराक्रम, न्याय और दृढ प्रतिज्ञा वगैरेह दृश्यों से जो स्वभाव से मित्र थे, उनमें भी पराक्रम प्रगट करते थे । तालु, कंठ और होठ के शोषण से चपल नेत्रों द्वारा अवलोकन से करपंथी, स्वरभेद से, विवर्ण दिखाने से, सरल चिन्हों से, प्रेतादिक विकृतरूप दिखा कर और उनके स्वर को सुनाने इत्यादि से कभी सभी सभाजनो को त्रस्त कर देते थे । कभी अंगो का संकोचन, हृदय का उद्वेग, नासिका और मुख का विषम देखाव, थूंकना, बारंबार होठों को मरोड़ना वगैरेह और दुर्गंध, वमन, व्रण, कीड़ों के दर्शन और श्रवण वगैरेह बीभत्स दृश्यों से सामाजिक लोग मन में अधिक दुःखी होते थे । कभी लोचन के विस्तार से, निर्मिमेष देखने से, श्वेद, अश्रु और पुलकावली के दर्शन से, साधुवाद से, दिव्य आलोक से, इच्छित वस्तु की प्राप्ति से और इंद्रजाल के दृश्य से सहसा सभासदों को विस्मय में डाल देते थे । कभी मूलोत्तर गुणों से, ध्यान से, अध्यात्म ग्रंथ के चिंतन से, सद्गुरु की उपासना से, देवपूजादिक से और वैराग्य, संसारमय और तत्वाज्ञानादिक के दृश्यों से विषय स्वाद में लुब्ध पुरुषों को भी शांति दिलाते थे । इस तरह सभी नट जिन-जिन रस का अभिनय करते, उस-उस रस में सर्व सभाजन तन्मय हो जाते थे । प्रथम कहे हुए बताये गये सभी अभिनय यथार्थरूप से करके दिखाने से मानो वे सभी अपने समक्ष सही (वास्तविक) बन रहा हैं उस तरह सभी सभाजन समजते थे ।

चतुरजनों में अग्रणी महाराजा दमितारि इस नाटक की छटा देखकर 'यह दोनों चेटीयां संसार में रत्नरूप हैं ऐसा मानने लगा । बाद में कपटी नटी बने दोनों वीरों को राजा ने अपनी कनकश्री नाम की पुत्री नाट्यशिक्षण के लिये अर्पण की । वह रमणीय राज्यकन्या का मुख पुत्री नाट्यशिक्षण के लिये अर्पण की । वह रमणीय राज्यकन्या का मुख पूर्णचंद्र जैसा था, त्रस्त हुई हिरणी के जैसे लोचन थे, पक्व बिंबफल जैसे अधर थे, शंख के जैसी ग्रीवा थी, कमल के जैसी भुजाएँ थी, सुवर्ण कुंभ की उपमा के लायक स्तन थे, वज्र के मध्यभाग जैसा कृश उदर था, वापिका जैसी नाभि थी, नदी के तट जैसा कटिप्रदेश था, करभ के जैसे उर थे, मृगनी जैसी जंघाएँ थी, कमल जैसे हाथ पैर थे, सभी अंग लावण्यजल में मग्न हो गये थे, कंठ में मधुर आलाप शोभा दे रहा था और वह शिखि पुष्प जैसी कोमल

थी। ऐसी यौवन वय को प्राप्त मनोहर बाला को देखकर वह कपटी चेटी बने वीरो ने उसे बारंबार मधुर आलाप में बुलाकर सभी प्रकार के अभिनय सहित सभी नाटको का विधि निबर्हण संधि तक सिखा दिया। उन कपट चेटीयो ने नाटक के माध्यम से महाभुज अनंतवीर्य के उत्कृष्ट रूप, शौर्यादि गुणों का गान करती थी। एक समय कनक श्री ने पुछा-‘अरे युवतियों ! क्षण प्रतिक्षण जिनके गुण आप गाती हैं वे पुरुषोत्तम अनंतवीर्य कौन हैं ? तब मायाचेटी बना अपराजित हास्य करते हुऐ बोला-हे शुभानने ! यह विजय में शुभा नाम की अेक बड़ी नगरी है उसमें गुणों का सागर और प्रताप में सूर्यरूप स्तिमितसागर नाम का राजा है उन महात्मा के विजयी भूमिरूप और शत्रुओं से अपराजित नाम का ज्येष्ठ पुत्र है और निर्मल गुणों से अकनिष्ठ ऐसे अनंतवीर्य नाम का कनिष्ठ पुत्र है। यह अनंतवीर्य रूप से कामदेव को जीतनेवाला, शत्रुओं की गर्व ग्रंथि को तोड़नेवाला, दातार, दृढ प्रतिज्ञावान और शरणागत वत्सल है। उसकी भुजा शेषनाग जैसी लंबायमान है, भुजांतर (हृदय) शीला जैसा विशाल है वह लक्ष्मी का वासागार और पृथ्वी का आधारभूत है। आश्रितोरूपी कमल का सूर्य और दाक्षिण्यता का क्षीरसागर है। हम अल्पबुद्धिवाले उस महात्मा के कितने गुणगान करें ? सुर असुर और मनुष्यों में उसके जैसा दुसरा कोई पुरुष नहीं है।’ यह सुनकर कनकश्री मानो वह अपने सामने ही है उस तरह उसे देखने के लिये पवन से घायल सरसी की तरह उत्कंठित हो गई। रोमांच के मिष से मानो साक्षात् कामदेव के बाण से छेदित हो और निःस्पंद पूतली की तरह स्तब्ध होकर चित में विचार करने लगी की ‘सद्गुणी अनंतवीर्य जिसके मालिक है उस देश को, उस नगरी को, उस प्रजा को और उस स्त्रीजन को धन्य है। दूर रह हुआ चंद्र भी पोयणी को आनंद देता है और आकाश में रहे हुऐ मेघ मयूरी को नचाते हैं। उन्हें तो दैव की अनुकूलता से उस तरह घटित होता है, लेकिन मेरे और अनंतवीर्य के बीच कैसा दैव होगा ? उसका मेरे साथ पतिभाव होना दूर की बात हो गई, लेकिन मैं उसे देख भी नहीं सकती ? और ऐसे मनोरथ की सिद्धि करके देनेवाले मित्र भी इस जगत में दुर्लभ हैं।’

इस तरह चिंतित कनकश्री को देखकर इंगिताकार से उसके मनोगतभव जाननेवाला अपराजित बोला-‘अरे मुग्धा ! अपराजित के अनुजबंधु अनंतवीर्य के गुण मेरे मुख से सुनकर आप शल्य पीडित होकर आप खेद क्यों कर रही हो ? आपकी क्या उन्हें देखने की इच्छा है ? हितपीडित पद्मिनी की तरह ग्लानि हुई कनकश्री दीन से भी दीन होकर स्वरभेद से तुटे फुटे अक्षरों से बोली-“बहन चेटी ! अनंतवीर्य देखने की मेरी इच्छा उस हाथ में चंद्र को ग्रहण करने की इच्छा जैसी है, पैरों द्वारा आकाश में चलने की इच्छा जैसी है, दो हाथों की भुजाओं से समुद्र तैरने की इच्छा जैसी है, उस सुंदर शोभानगरी के अधिपति मेरे मंदभाग्य को दृष्टिगोचर किस तरह से होगी ? मुझे ऐसा मनोरथ करना वह भी कष्टरूप है” ज्येष्ठा मायानटी ने कहा-‘भद्रे ! यदि उसे देखने कि आपकी इच्छा है तो खेद न करें। मैं अभी आपको दिखाऊंगा। मुग्धा ! मेरी विद्याशक्ति से वन में वसंत और मलयानिल आते हैं उस तरह वह अनंतवीर्य और अपराजित को मैं यहाँ ले आऊंगा।’ कनकश्री हर्ष से बोली-“प्रिय बहन ! आप में सभी बातें संभव हैं। कारण कि वह गुणसमुद्र दोनों वीररत्नों के आप पार्श्ववती हैं। आपके ऐसे भाषण से मेरा दैव अनुकूल है ऐसा मैं मानती हूँ जरूर मेरा कोई कुलदेवता आपके मुख में

उतरे हैं। हे कलावती ! आप अभी आपकी वाणी सफल करें। ऐसे नररत्नो का परिवार भी मिथ्याभाषण नहीं करता है।”

मानो देव संतुष्ट हो गये हो उस तरह रूप से कामदेव जैसे अनंतवीर्य और अपराजित का इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था उसी समय अपना-अपना स्वरूप प्रगट करके अपराजित बोले-‘भद्रे ! जिनके गुणों के बारे में कहता था वे मेरे भ्राता ये अनंतवीर्य हैं। देखे, वे बरोबर हैं कि नहीं ? मैंने उसका रूपवैभव को थोड़ा वर्णन किया था, कारण की वह वाणी से अगोचर था, अब उसे नेत्रगोचर करे।’ उसे देखते ही दमितारि राजा की कन्या में एक साथ जुस्से में, विस्मय लज्जा, प्रमोद, मद और चपलता प्रगट हुई और अपराजित स्वसुरतुल्य मानकर वह बाला उत्तरीय वस्त्र से घुंघटवाली मर्यादा करके खड़ी रही। तत्काल कामदेवरूप मेघ के महोदय से अनंतवीर्य भी पुष्पित कंदब की तरह रोमांचित हो गया। मृगेक्षणा कनकश्री सहज में मान और लज्जा छोड़ स्वयं दूतपन स्वीकार करके इस प्रकार बोली-“यह वैताढ्य पर्वत कहों ! आपके पाससे चेटी के लिये पिताश्री का मांगना कहों ! चेटीरूप में तुम्हारे दोनों का यहाँ आना कहों ! नाटकशिक्षा के लिये तुम्हें सौपना कहों ! आर्यपुत्र ने किया हुआ आपका गुणकिर्तन कहों ? और अंत में आपने प्रत्यक्ष किया हुआ आत्मस्वरूप कहों ? यह सभी असंभवित फिर भी मेरे भाग्य से संभवित हुआ है। जिस तरह आप मेरे नाट्याचार्य बने थे, उसी तरह अब आप मेरे पति बने हैं। उससे यदि संप्रति कामदेव से मुझे बचाना नहीं, तो आपको मेरी हत्या लगेगी। प्रथम श्रवणमात्र से आपने मेरा हृदय ग्रहण किया था। अब मेरा पाणिग्रहण करें, प्रसन्न हो और मेरे पर अनुग्रह करें। इस वैताढ्य पर्वत की दक्षिण और उत्तर श्रेणी में बसनेवाले युवान विद्याधरो में आपके जैसे वर का अभाव है। मेरे अच्छे भाग्य से जीवलोक के चंद्रभूत और जीवनौषधरूपी आप प्राप्त हुऐ हो” तब अनंतवीर्य ने हर्ष से कहा-‘हे सुभ्रु ! हे सुभगे ! यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो चलो, उठो, हम शुभानगरी में जाये’ कनकश्री बोली-‘अब मेरे इस प्राणो पर आपका ही राज्य है, लेकिन विद्या के सामर्थ्य से दुर्मद बना मेरे पिता दुष्ट है, इसलिये वे बड़ा अनर्थ करेंगे और वे अर्थ का अनर्थ का कारण मैं बनूंगी इसका मुझे भय है, आप बलवान हैं फिर भी एकाकी और अस्त्ररहित हैं।’ तब अनंतवीर्य ने हसते हुऐ कहा-‘कातरे ! भयभीत न हो। सभी तरह से बलवान ऐसा आपका पिता मेरे साथ युद्ध करने में क्या हिसाब है ? हे प्रिये। कभी कोई दुसरा पीछे युद्ध करने की इच्छा से आयेगा, तो उसे भी मृत्यु के मुख में जाना होगा, इसलिये निःशंक होकर चले आये।’

इस प्रकार अनंतवीर्य के कहने पर वह बाला भुजवीर्यशाली वीर के साथ साक्षात् स्वयंवरा लक्ष्मी की जैसी हो ऐसी उस तरह वह चल पड़ी। उस समय मानो ध्वजासहित प्रासाद की तरह वह अनंतवीर्य ऊंचे हाथ करके मेघ के जैसी गंभीर वाणी से बोला-“हे सर्व पुराध्यक्षो ! सेनापतियो ! मंत्रीयो ! कुमारो ! सामंतो ! लडाकूओं ! और जो कोई दुसरे दमितारि पक्ष करनेवाले हो वे सभी ! तुम सावधान होकर मेरे वचन सुनो। यह मैं अपराजित द्वारा शोभायमान अनंतवीर्य, दमितारि राजा की पुत्री कनकश्री मेरे घर ले जा रहा हूँ। ‘वह चोरी करके ले गया है’ ऐसा पीछे अपवाद देवे नहीं इसलिये उपेक्षा न करें और जो इच्छा हो तो शस्त्रधारी होकर मेरे सामने आकर मेरी शक्ति देखे” इस प्रकार की उद्घोषणा

करके अनंतवीर्य कनकश्री और अपराजित को साथ लेकर वैक्रिय विमान द्वारा आकाश में चले । अनंतवीर्य के ऐसे वचन सुनकर दमितारि ने 'इस पृथ्वी पर मरने की इच्छावाला यह तपस्वी कौन है ? ऐसा कहकर लडाकूओ से आज्ञा कि 'भाता सहित उस दुष्ट को मारकर या पकड़ कर कनकश्री पुत्री को ले आये और उस दुष्ट को उसके दुर्नय का फल उसे दे ।'

दमितारि की आज्ञा से सभी लडाकू मनोवृत्ति में जुस्सा लाकर, ऊंचे दांत करके हाथियों की तरह ऊंचे हथियार करके अनंतवीर्य के पीछे दौड़े । उस समय में वीर्यभूषित अपराजित और अनंतवीर्य ने हल शार्ङ्ग धनुष्य वगैरेह दिव्य रत्नो स्व प्राप्त हुए उसी समय में अनेक शत्रुओ का दमन करनेवाले दमितारि के लडाकू नजदीक आकर एक साथ मेघ की तरह शस्त्रधारा बरसाने लगे । क्षणभर में वे दोनों पुरुषव्याघ्रो ने क्रोध द्वारा लीलापूर्वक युद्ध करना आरंभ किया । जिससे वे सभी लडाकू हिरण की तरह वे सभी लडाकू त्रस्त होकर भाग खड़े हुए । उन्हें भागते देखकर अधिक क्रोधित होकर दमितारि शस्त्रो द्वारा अधिक वृक्षोवाला वन के जैसा आकाश करता हुआ युद्ध करने चला उस समय 'अरे ! युद्ध करो, युद्ध करो, खड़ा रह, आयुध छोड़ दो, छोड़ दो मर जायेगा-मर जायेगा हमारे स्वामी की कन्या को छोड़ दे, हम तेरे प्राण बचायेंगे' ऐसे विकट स्वर ध्वनियों से और कान में कटु लगनेवाले लडाकूओं के आलाप सुनकर कनकश्री मोहविह्वल होकर हे आर्यपुत्र ! हे आर्यपुत्र ! ऐसा कहने लगी । उसे अनंतवीर्य ने कहा- 'हे मुग्धे ! मेंढक के अवाज की तरह होनेवाली मानवध्वनि से तुम व्यर्थ क्यों डरती हो ? इंद्र से मैनाक की तरह मेरे से त्रस्त होकर और हनन होते यह सैन्य सहित दमितारि को अभी देख लो' इस तरह कनकश्री को आश्वासन देकर अनंतवीर्य वासुदेव अपराजित बलदेव के साथ तिरस्कार किये हुए सिंह की तरह युद्ध करने वापस आया उस समय बैरीयों को कूटनेवाला दमितारि कोटिगम लडाकूओं ने, दिये की कीटपतंग घेरते हैं उसी तरह वासुदेव को घेर लिया, तभी स्थिरता में मेरुपर्वत समान अनंतवीर्य क्रोध करके विद्याशक्ति से अपनी सेना उसकी सेना से द्विगुणी उत्पन्न की । दमितारि के लडाकूओ धातुसहित पर्वतो की तरह रुधिरपंक्ति से आर्द्र शरीरवाले होने के बावजूद भी युद्ध करने लगे । उस समय "जिसका यह धड़ रणभूमि में नाचते हैं वह मेरा पति है, जो यह हनन कर रहा है उससे साथ मैं कब खेलूंगा ? जो इस मुख में भाले को दांत द्वारा पकड़ के रखा है वह मेरा पति बने, जो इस हाथी के कुंभपर चढ़ रहा है वह मेरा स्वामी है, जो इस अस्त्र के भङ्ग होने पर सिर्फ मस्तक के उपर रहे टोप द्वारा युद्ध कर रहे हैं उनकी मैं दासी हूँ, जो यह हाथी के दांत उखाड़कर शस्त्रधारी हुआ है वह मेरा प्रिय है ।" इस प्रकार आकाश में रही देवांगनाओं के मुख से अनुराग वचन निकलते थे । दमितारि राजा की विद्याशक्ति द्वारा अति दुर्मद हुए सैनिक रणभूमि में भद्रहस्ती की तरह जरा भी भङ्ग नहीं हुए, इसलिए युद्धरूपी नाटक के अभिनय करने में नटरूपी वासुदेव नाद से भूमि और आकाश के अंतराल को भरे ऐसा पांचजन्य शंख का शंखनाद किया । जगद्विजयी विष्णु ने किये शंखनाद के व्याप ने से सर्व शत्रु, मानो अपस्मार रोगीयो की तरह वे मुख से फेस निकलते हुए भूमि पर गिर गये, इससे दमितारि राजा स्वयं रथ पर बैठकर अनंतवीर्य के साथ दिव्य शस्त्रास्त्र से युद्ध करने लगे ।

अंत में कनकश्री के पिता ने वासुदेव को दुर्जय मानकर विद्युर जैसे प्रिय मित्र जैसे चक्र का

स्मरण किया। तत्काल सैंकड़ों ज्वाला से व्याकुल वह चक्र समुद्र में वडवाग्न की तरह दमितारि राजा के कर में आकर स्थिर हुआ। उसे आया देखकर दमितारि बोला- 'अरे दुर्मति ! अब यहाँ खड़े रहने से मर जायेगा। इसलिए अभी भी मेरी पुत्री को छोड़ कर चला जा' अनंतवीर्य ने कहा- तुम्हारी कन्या के साथ तुम्हारे चक्र को और तुम्हारे प्राणों को भी मैं ले जाऊंगा, इसके बिना यहां से मैं जानेवाला नहीं हूँ' इस प्रकार के कहने पर अग्नि जैसे लाला नेत्रों द्वारा प्रज्वलित होता हुआ दमितारि ने चक्र घूमाकर अपराजित के बंधु अनंतवीर्य पर छोड़ दिया। वासुदेव के हृदय पर तुंबाग्न की तरह चक्र के प्रहार लगने से क्षणभर के लिये मुर्छित हो गये। तभी अपराजित आकर पवन डालते हैं उसी समय वे खड़े हो जाते हैं और उस पार्श्वस्थ चक्र को पकड़ लिया। सौ आरेवाला चक्र उनके हाथ में आने पर वह हजार आरेवाला बन गया। बाद में अर्धचक्री ने हास्य करके प्रतिवासुदेव को कहा- 'तुम कनकश्री के पिता हो ऐसा मानकर मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ इसलिए तुम चले जाओ।' दमितारि बोला- 'अरे दुर्मति ! देनेवाले के पैसे से जिस तरह करजदार धनवान बनता है उस तरह मेरे अस्त्रों से अस्त्रोवाला बना है इसलिए उस चक्र को छोड़ दे, उस तरह तुम्हारा पुरुषार्थ भी छोड़ दे, अथवा मेरे वीर्यरूपी वारिधि में तुम देले (पथथर) जैसा बन जा' ऐसे उसके वचन सुनकर क्रोधित हुए अनंतवीर्य ने यमराज जैसा होकर उस चक्र को छोड़ दिया उससे उस चक्र ने तत्काल कमल की तरह दमितारि का मस्तक छेद डाला। उनका वीर्य देखकर हर्षित देवताओं ने आकाश में से पंचवर्ण के पुष्पो से वृष्टि की। बाद में वे कहने लगे "हे विद्याधरो के राजाओं ! सभी तत्पर होकर सुने। यह अनंतवीर्य विष्णु हैं और यह अपराजित बलभद्र हैं, इसलिए उनके चरणों की उपासना करे और रणांगण से निवृत्त हो जाओ, सूर्य और चंद्र की तरह जिनका उदय है वे वंदनीय हैं।"

ऐसे देवताओं के वचन सुनकर सर्व विद्याधरो के राजा मुगुट झुकाकर वे शरण करने योग्य बलदेव और वासुदेव के शरण में गये। बाद में विद्याधरो के राजा, अपने ज्येष्ठ बंधु अपराजित और प्रिया कनकश्री को साथ लेकर अनंतवीर्य वासुदेव विमान में बैठकर शुभापुरी की ओर चले कनकगिरि (मेरु) के पास से निकलते समय वासुदेव से विद्याधरो ने कहा- "यहां रहे हुए श्री अर्हत भगवंत की आशातना करते नहीं हैं। इस कनकगिरि पर अनेक जिन चैत्य हैं, उन्हें यथा योग्य वंदन करके आप पूज्यपाद यहाँ से चले" यह सुनकर वासुदेव परिवार के साथ विमान से उतरे, नेत्रों को शीतलता देनेवाले उन चैत्यों की यथा योग्य वंदना की, बाद में वे कुतुहल से उस गिरिवर की शोभा देख रहे थे, वहाँ एक ओर के प्रदेश में वर्षोपवास की प्रतिमा जैसे कीर्तिधर नाम के मुनि दिखाई दिये उसी समय उनके घातीकर्म नाश होने से उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देवताओं ने उनकी महिमा का आरंभ किया। ये देखकर अनंतवीर्य वासुदेव खुश हुए बाद में वे केवली भगवंत की तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके परिवार सहित अंजली जोड़कर आगे बैठे और उनकी देशना सुनने लगे।

देशना समाप्त होने पर कनकश्री ने नमस्कार करके पूछा- 'भगवन् ! मेरे पिता का वध और बंधुवर्ग से विरह क्यों हुआ होगा ? मुनिवर बोले- "घातकीखंड द्विप में भरत के बारे में शंखपुर नाम का बड़ा गाँव था। वहाँ दूसरे के यहां काम करके घर चलानेवाली दारिद्र्य दुःख से पीड़ित श्रीदत्ता नाम

की एक गरीब स्त्री थी। वह सारा दिन कुटना, पिसना, पानी भरना, घर की बुहारी करना, घर की पुताई करना इत्यादि दूसरों के काम करती थी। इस प्रकार सारा दिन व्यतीत हो जाने पर वह उल्लू को स्त्री के अवलोकन की तरह उसे जैसे तैसे भोजन प्राप्त होता था। कैसी भाग्य की मंदगति!

एक बार वह घूमती-घूमती हुई शोभा से देवगिरि-मेरु जैसे श्रीपर्वत नाम के गिरि पर आ गई। वहाँ निर्मल शीला पर बैठे, त्रिविध गुप्ति से पवित्र, भूत के जैसे दुःसह परिषद् से अपराजित, अखंड पंचविध समितिवाले तप की अमित शोभा को धारण करनेवाले, निःसंग निर्मम, शांत, कांचन और पत्थर पर समान वृत्तिवाले, शुक्ल ध्यान में वर्तन करनेवाले और गिरिशिखर की तरह स्थिर सत्ययज्ञा नामक एक मुनि उसे दिखाई दिये। कल्पवृक्ष जैसे उनके दर्शन करके श्री दत्ता ने प्रेम से प्रणाम किये, तब उन्होंने कल्याणरूपी वृक्ष के दोहदरुप 'धर्मलाभ' ऐसी आशिष दी। श्री दत्ता बोली-हे मुनि! मेरी ऐसी दुःस्थिति के अनुमान से मानती हूँ कि पूर्व जन्म में जरा भी धर्म किया नहीं है। नित्य दुष्कर्म से दग्ध हुई ऐसी मुझे ब्रिष्म में गर्म गिरिभूमि को मेघ वृष्टि की तरह आपकी धर्म लाभरूपी आशिष शीतल कर रही है। फिर भी मंद भाग्य मैं आपके उपदेश के योग्य नहीं हूँ। तथापि आपका वचन अमोघ है ऐसा मैं जानती हूँ इसलिए आप मुझे मेरे कल्याण के लिये उपदेश करें। हे भगवन्! मैं आनेवाले भव में वापस इस स्थितिवाली न बनूँ ऐसा आप करें। हे त्राता! आपके जैसे रक्षक हो तो क्या-क्या वांछित न मिले? ऐसे उसके वचन सुनकर उसकी योग्यता का विचार करके मुनि ने उस दुःखी अबला को धर्मचक्रवाल नाम का तप करने के लिये कहा-इस तप के विधान में प्रथम अष्टम, बाद में अेक उपवास का पारणा, दूसरा उपवास पारणा इस तरह सैतीस उपवास करने के बाद अष्टम करने की सूचना देकर कहा- 'हे दुःखी स्त्री! देवगुरु की आराधन में लीन होकर तुम्हें तप करना होगा। इस तप के प्रभाव से कौंअे की मादा के बच्चों जैसा फिर से ऐसा भव प्राप्त ना होगा' मुनिमहाराज के वचनों को मान्य करके श्री दत्ता अपने गांव गई। वहाँ जाकर उसने धर्मचक्रवाल तप का आरंभ किया। उस तप के प्रभाव से उसने पारणा में पूर्व में स्वप्न में भी कभी नहीं देखा और अच्छी दशा के नाटक की प्रस्तावना रूप स्वादिष्ट भोजन प्राप्त किया। तब से धनवान लोगों के घर में अच्छा काम मिलने से उसे द्विगुण और त्रिगुण मूल्य और उत्तम वस्त्र मिलने लगे, थोड़े समय में श्री दत्ता कुछ सकिंचना (द्रव्यवाली) हो गई इसलिए देवगुरु की पूजा यथाशक्ति विशेष करने लगी। एक दिन उसके घर की जीर्ण दिवार का प्रदेश एक हवा के झोंके से गिर गया। उसमें से सुवर्णादिक धन निकल आया। उस धन से उसने तप की समाप्ति में चैत्यपूजा और साधु-साध्वियों को प्रतिलाभित करने के लिये बड़ा उद्यापन (उजमणना) किया। तपस्या के अंतिम दिन उसने कोई साधु के योग के लिये सभी दिशाओं में देखने लगी, वहाँ मासपक्ष के पारणों के लिये घूमते सुव्रतमुनि उसे दिखाई दिये। अपनी आत्मा को धन्य माननेवाली श्री दत्ता ने प्रासुक अन्नादिक द्वारा उन्हें प्रतिलाभित किया और बाद में नमस्कार करके आर्हत धर्म के बारे में पृच्छा की तब मुनिने कहा- 'हे शुभे! भिक्षा के लिये गये मुनि किसी भी स्थान पर धर्मदिशना करे ऐसा हमारा आचार नहीं है। इसलिए हे भद्रे! यदि आपको सुनने की इच्छा हो तो मेरे उपाश्रय में जाने के बाद योग्य समय पर वहाँ आये।' इस प्रकार कहकर मुनि अपने स्थानक पर गये। लाये हुए आहार द्वारा मासपक्ष का

पारणा करके वे मुनिवर्य स्वाध्याय कर रहे थे, तब नगरी के लोग और श्री दत्ता वंदना करने के लिये आई वंदन करके सभी योग्य स्थान पर बैठे, तब मुनिने प्रसन्न वाणी से ऐसी धर्मदेशना देना आरंभ किया-

इस संसार में चौर्यासी लाख योनि में भटकता भवी प्राणी, दैवयोग से अंध की तरह इच्छित स्थान को प्राप्त करता है, उस तरह वह मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है। उसमें सभी ज्योतिषों में चंद्र की तरह सर्व धर्म में प्रधान श्री सर्वज्ञकथित धर्म प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है, इसलिये उस धर्म में समकित पूर्वक यत्न करना चाहिये जिससे संसारी जीव लीलामात्र में संसारवारि के पार उतर जाते हैं' इस प्रकार की देशना सुनकर वंदना करके सर्व पुरलोक और श्री दत्ता हर्ष पाते हुये अपने-अपने स्थानको पर गये।

कितने समय तक आर्हत धर्म का अच्छी तरह पालन करती हुई श्री दत्ता को कोई कर्म के परिणाम से मन में ऐसा संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'यह श्री जिनधर्म का फल बड़ा कहलाता है, लेकिन मुझे फल मिलेगा या नहीं? वह मेरे मानने में नहीं आता है' सुव्रतमुनि जैसे सद्गुरु का उपदेश फिर भी श्री दत्ता ने ऐसा विकल्प किया इससे सही माने में भवित्यता अति दुर्वार है। एक बार वह सत्यशा मुनिराज को वंदन करने जा रही थी, वहाँ उन्होंने आकाशमार्ग से विमान में बैठकर दो विद्याधरो को जाते देखा श्री दत्ता उनके रूप से मोहित होकर घर आई। बाद में पूर्व में की हुई विचिकित्सा (धर्मफल का संदेह) आलोचना किये बिना मृत्यु पायी।

इस जंबूद्विप में प्राग्विदेह के आभूषणरूप रमणीय नाम के विजय में वैताढ्य नाम का पर्वत है। उसमें इंद्रनगरी के सहोदर हो ऐसा सर्व कल्याण के मंदिररूप शिवमंदिर नाम का नगर है। उसमें बड़ी समृद्धिवाले विद्याधरो के राजाओं के पूजने योग्य कनकपूज्य नाम का राजा है। उसकी वायुवेगा नाम की पत्नि से मैं कीर्तिधर नाम का पुत्र हुआ। मेरी अनिलवेगा नाम की अेक अंतःपुरप्रधान पत्नि थी। अेक बार सुखशय्या में सोई वह स्त्री ने रात्रि में कैलाश जैसा श्वेत हाथी, मेघ की तरह गर्जना करता हुआ वृषभ ओर निधिकुंभ जैसा कुंभ इस तरह अनुक्रम में तीन स्वप्न देखे। तत्काल प्रातःकाल में पद्मिनी की तरह जाग्रत हुई अनिलवेगा ने प्रफुल्लित वदन से उन स्वप्नों को मेरे आगे निवेदन किया। वह सुनकर मैंने कहा कि-'त्रिखंडविजय का स्वामी अर्धचक्रवर्ती तुम्हारा पुत्र होगा' समय आने पर खदान की भूमि की तरह रत्न को जन्म देती है अनिलवेगा ने सर्व लक्षण संपूर्ण देव जैसे कुमार को जन्म दिया। जब कुमार गर्भ में था, तब मैंने शस्त्रुओ का दमन किया था, इससे मैंने उसका दमितारि ऐसा नाम रखा। अनुक्रम में कुमार के बड़े होने पर सभी कलाएँ ग्रहण करके और रूपपावन यौवन प्राप्त हुआ। एक दिन वह विजय में विजयीपन में विहार करते, शांति के करनेवाले महात्मा श्री शांतिनाथ भगवान हमारे नगर के बाहर पधारे हैं। उनके पास जाकर वंदन करके धर्मदेशना सुनकर तत्काल वैराग्य पाकर कुमार दमितारि को राज्य पर बैठाकर और मैं शांतिनाथ भगवान के पास से दीक्षा ली। उस समय चारित्र को उचित ऐसी ग्रहणा और आसेवनारूप दोनों प्रकार की शिक्षा मैंने अंगीकार की। अनुक्रम में इस पर्वत उपर मैंने वार्षिकी प्रतिभा अंगीकार की, जिससे मेरे घातीकर्म का

क्षय हुआ मुझे अभी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। चक्र उत्पन्न होने से उसके द्वारा तीन खंडों का विजय करके दमितारि राजा महाबलवान प्रतिवासुदेव हुए। दमितारि की मदिरा नाम की प्रिया की कोख से श्रीदत्ता के जीव से कनकश्री नाम की पुत्री हुई। पूर्व भव में श्री जिनधर्म के फल संबंधी विपरीत संकल्प किया और उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही मृत्यु हुई, इससे इस भव में बंधु का विरह और पिता का वध प्राप्त हुआ। इसलिये धर्मसंबंधी किंचित् भी कलंक अत्यंत दुःख देते हैं। जैसे थोड़ा या अधिक मात्रा में किया हुआ उग्र विषपान करने से प्राण का नाश करता है। अब फिर दुबारा उसी प्रकार करना नहीं जिससे दुबारा वही फल मिले। भव्य जीव में पांच दोष (शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा और मिथ्यादृष्टि का संस्तव (परिचय) वर्जित ऐसा समकित ग्रहण करें।”

इस प्रकार सुनते ही कनकश्री को वैराग्य उत्पन्न हुआ, इससे उसने वासुदेव और बलभद्र से विज्ञप्ति की “ऐसे अल्प दुष्कृत द्वारा भी यदि ऐसा दुःख प्राप्त होता है तो मुझे दुष्कृत की खानरूपी कामभोग द्वारा आसान हुआ। जिसमें छोटे छिद्रों से बड़ा जहाज भी डूब जाता है, उसी तरह प्राणी थोड़े दुष्कृत द्वारा भी डूब जाता है। पूर्वभवं में दारिद्र्य पीडित ऐसी और महा उत्तम तप करते-करते भी फल की शंका कहाँ से हुई? अहा! कैसी मेरी मंदभाग्यता! अब अश्वर्य में निमग्न रहते और इच्छित भोग भोगते मुझे कितनी बहुत विपरीत कल्पनाएँ और दूसरे दोष होने की संभावना है? इसलिये कृपा कर मुझे सद्य दीक्षा लेने की आज्ञा दे। ऐसे अनेक प्रकार के छल करनेवाले भवरूपी राक्षस से मैं भयभीत हूँ” यह सुनकर विस्मय से विकसित नयन से वे बोले की “गुरुचरण के प्रसाद से तुम्हारा यह कार्य निर्विघ्न से पूर्ण हो, लेकिन हे बुद्धिमते! हमे यहाँसे सौभाग्यशाली शुभा नगरी में जाना है। वहाँ जाकर हम आपका बड़ी समृद्धि से निष्क्रमणोत्सव करेंगे और वहाँ स्वयंप्रभ प्रभु के पास से संसार समुद्र में तैरने में जहाजरूप व्रत का आप ग्रहण करें।” ‘तथास्तु’ ऐसा कहकर कनकश्री ने उस बात को मान्यता दे दी।

बाद में दोनों उसे साथ में लेकर महर्षि का वंदना करके शुभा नगरी में आये। वहाँ दमितारि ने प्रथम युद्ध करने के लिये भेजा गया वीरों के साथ युद्ध करता हुआ अनंतसेन पुत्र दिखाई दिया। अपने बंधु अनंतवीर्य के पुत्र को श्वानों की तरह अनेक लड़ाकू योद्धाओं से घिरा हुआ देखकर हल को घूमते हुए बलभद्र क्रोधित होकर दौड़े। बलभद्ररूप पवन के वेग को सहन न करते हुए दमितारि के लड़ाकू योद्धा कपास की तरह कांदिशिक (इधर-उधर भ्रमित अवस्था में) होकर दसों दिशा में भाग गये। बाद में वासुदेव सर्व परिवार के साथ वे नगरी में प्रवेश किया। शुभदिन सर्व राजाओं ने मिलकर उन्हें अर्धचक्रवर्ती का अभिषेक किया। उस समय में पृथ्वी पर विहार करते स्वयंप्रभ भगवान् स्वेच्छा से वहाँ आकर पधारे। नगर के द्वारपालों ने आकर ‘हे स्वामी! स्वयंप्रभ प्रभु के यहाँ पर पधारने से आप आज सभी प्रकार से वृद्धि प्राप्त कर रहे हैं।’ ऐसा कहकर अनंतवीर्य को बधाई दी। उन्हें साढे बारह कोटि द्रव्य बधाई में दिया। अनंतवीर्य के अग्रज बंधु और कनकश्री को साथ लेकर प्रभु वंदना करने गये। भगवान् स्वयंप्रभ ने भव्यजनो के अनुग्रह की इच्छा से सर्वभाषानुगामिनी की वाणी से देशना दी। बाद

मे कनकश्री ने कहा-हे जगद्गुरु ! मैं घर जाकर वासुदेव की आज्ञा लेकर दीक्षा लेने के लिये आ रही हूँ, इसलिये मेरे उपर कृपा करके आप यहीं रहें । तीर्थंकर ने कहा-‘प्रमाद ना करे’ यह वाक्य सुनकर कनकश्री, वासुदेव और बलभद्र अपने स्थान पर आये । बाद मे अपने स्वामी वासुदेव की आज्ञा लेकर बड़ी समृद्धि से जिसका निष्क्रमणोत्सव किया है ऐसी कनकश्री ने स्वयंप्रभ प्रभु के पास से दीक्षा ग्रहण की । उसने अेकावली, मुक्तावली, कनकावली, भद्र, महाभद्र और सर्वतो भद्र इत्यादि तप किये । अनुक्रम मे शुक्लध्यानरूपी अग्नि द्वारा घातीकर्मरूपी ईंधन जलने से कनकश्री को अम्लान केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । बाद मे शेष रहे भवोपग्राही कर्म को पूर्ण करके कनकश्री मोक्षपद को प्राप्त हुई ।

विविध भोग भोगते वासुदेव और बलभद्र देवता की तरह सुख से काल निर्गमन करने लगे । बलदेव अपराजित की विरता नाम की एक स्त्री थी, उससे सुमति नाम की एक पुत्री हुई । वह बालिका बाल्यवय से ही सर्वज्ञकथित धर्म अनुरागी, जीवाजीवादि तत्व को जाननेवाली विविध प्रकार के तप अनुष्ठान का आचरण करनेवाली, अखंड द्वादशविध श्रावक व्रत को धारण करनेवाली और श्री जिनपूजा तथा गुरु की उपासना मे तत्पर होकर एक बार सुमति उपवास के पारणा के लिये बैठ रही थी तभी द्वार पर दृष्टि करते एक मुनि को आते देखा । तीन गुप्ति और पांच समितिवाले उसी तरह साक्षात् धर्म हो ऐसे वे मुनि को अपने थाल मे रहे हुऐ अन्न से प्रतिलाभित किया । उस समय तत्काल वहाँ पर वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट हुऐं । महात्मा को दिया हुआ दान कोटानुकोटि गुना हो जाता है । मुनि ने वहाँ से अन्यत्र विहार किया । निःसंग साधु पवन की तरह अेक स्थान पर नहीं रहते है । रत्नवृष्टि के समाचार सुनकर बलभद्र और वासुदेव वहाँ आये, वह कहने लगे और ‘इस प्रभावीक बालिका के योग्य वर कौन होगा ?’ ऐसी वे चिंता करने लगे । बाद मे अपने ईहानंदमंत्री के साथ विचार करके उस बालिका का स्वयंवर करने का दृढ निश्चय किया । वासुदेव की आज्ञा से विजयार्द्ध मे रहनेवाले सभी विद्याधर और मनुष्यो के राजा स्वयंवर मे आने लगे । वासुदेव के सेवको ने उनकी आज्ञा से इंद्र के सभागृह की भांति एक सहस्र रत्नस्तंभवाला क्षिति के मंडनभूत मंडप की रचना की उसमे फणीपति की फणा के माणिक्य की श्रेणी हो ऐसी भ्रांति देनेवाले रत्नमय सिंहासनो की रचना करवाई । वासुदेव की आज्ञा से उन पर राजाओ और शरीर की शोभा से कामदेव जैसे विद्याधर के कुमार आकर बैठे । बाद मे दिव्य वस्त्र और रत्न के अलंकारो को धारण करके विचित्र रचनाओं से रचे खुशबुदार विलेपन से अलंकृत हुई, मस्तकपर चंद्र बिंब जैसा श्वेत छत्र धारण करनेवाली, समान वय की सखियों से सहित सुवर्ण दंडवाली प्रतिहारीयो से निर्देशित चलती बलभद्र की कन्या वरमाला हाथ मे लेकर वहाँ आयी । आसपास देवताओं की तरह बैठे विद्याधर राजाओं के बीच मे सुमति ने समुद्र की लक्ष्मी की तरह, स्वयंवर मंडप को अलंकृत किया । मानो नीलकमल की माला रचती हो उस तरह उस मृगाक्षी ने मुन्ध दृष्टि द्वारा स्वयंवर मंडप का अवलोकन किया उस समय रत्नमय माणिक्यस्तंभो से शोभित, गगन मे सूर्यमंडल की तरह लटक रहा था । रत्नमय सिंहासन विराजित देवीने अधिष्ठित एक सुंदर विमान अचानक मंडप के मध्य मे प्रगट हुआ । राजकन्या सुमति, आये राजा और विद्याधर के पति अति विस्मय से विकसित नेत्रों से उसे देखने लगे । उनके देखते-देखते तो उस विमान मे से उतरकर मंडप

के मध्य मे एक सिंहासन पर वे देवी अधिष्ठित हुई । उन्होंने दक्षिण भुजा उपर उठाकर सुमति कन्या से कहा-

“मुग्धे धनश्री ! प्रतिबोध पाये, प्रतिबोध पाये, तुम्हारे पूर्वभव का स्मरण करे । सुनो ! पुष्करवर द्वीपार्द्ध मे पूर्व भरतक्षेत्र के मध्य खंड के विषय मे विशाल समृद्धिवाला श्रीनंदन नाम का नगर है । उस नगर मे शरणार्थी जनो का रक्षण करने मे अहर्निश आलस्य रहित महेन्द्र के जैसा महेन्द्र नाम का राजा था । उस राजा को प्राणो से भी अधिक वल्लभ अनंतमति नाम का अेक अनंत गुणमात्र रानी थी । अेक बार अनंतमति रानी सुख से सो रही थी रात्रि के शेषभाग मे अपने उत्संग मे दो सुगंधी और निर्मल माला का अवलोकन किया । उस स्वप्न का वृतांत राजा को बतलाते हुऐ राजा ने कहा कि ‘हे देवी ! इस स्वप्न के सूचन से तुम्हें दो निर्दोष दुहिता (पुत्री) होगी । ‘अनुक्रम मे समय आने पर उसने दो पुत्रीयों को जन्म दिया । उसमे पहेली मै कनकश्री और दुसरी तुम धनश्री ऐसे नाम से हम दोनो बहने थी । हम दोनो परस्पर प्रीति से साथ मे बडे हुऐ, साथ मे कलाकलाप पढे और साथ मे यौवनवय को प्राप्त हुऐ । अेक बार यहाँ वहाँ क्रीडा करते हम स्वेच्छा से देवता की विश्राम भूमिरूपी गिरिपर्वत नाम का पर्वत पर आ गये । वहाँ स्वादिष्ट फल और सुगंधी पुष्पों को चुनती हम दोनो वनगिरि की देवीयां हो उस तरह घूमने लगी । इस तरह घूमते-घूमते एक मनोहर अेकांत प्रदेश मे अति समता से सुशोभित नंदगिरि नाम के मुनि हमे दिखाई दिये । मुनि के दर्शन पाकर हर्ष से उनकी तीन प्रदक्षिणा की भक्तिपूर्वक उन्हें हमने वंदना की । मुनि ने ‘धर्मलाभ’ रूप आशिष देकर हम दोनो को हृदय को आनंद देनेवाली देशना दि । वह धर्मदेशना सुनकर हम दोनो अजंली जोडकर विज्ञप्ति कि ‘यदि हमारे से योग्यता है तो हमे योग्यता अनुसार धर्मोपदेश दे’ नंदनमुनि ने हमारी योग्यता सोचकर हम दोनो को बारह प्रकार के श्रावक धर्म सुनाया इसलिये हमने स्वीकार कर लिया । मुनींद्र की वंदना करके हम दोनो अपने घर आयी उस धर्म को हम सावधानी से पालन करने लगी ।

एक दिन हम दोनो कुतुहल से क्रीडा पर्वत, सरिता, वापिका और विविध वृक्षो से व्याप्त ऐसे अशोकवन मे गई । वहाँ सरिता के तट पर हम विविध क्रीडा कर रही थी । उसी समय त्रिपुर नगर का स्वामी वीरांग नाम का अेक युवा विद्याधर हमे हरण करके ले गया । परंतु उसकी वज्रश्यामलिका नाम की की शुभाशयवाली स्त्री ने केशरीसिंह से मृगली की तरह हम दोनो को छुडवाया था । वहाँ से भीमावाटि के नदी के तट पर वंश के जाल मे हम शापभृष्ट देवी की तरह आकाश से पृथ्वी पर गिरी । अपनी ऐसी मृरणांत आपत्ति जानकर शुभ भावनावाली हम नवकार मंत्र पारायण करके अनशनव्रत ग्रहण किया । वहाँ से मै कनकश्री मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म दैवलोक के पति की नवमिका नाम की अग्रमहिषी हुई । तुम धनश्री मृत्यु पाकर कुबेर लोकपाल की मुख्य देवी हुई और वहाँ से च्यवन करके बलभद्र की सुमति नाम की पुत्री हुई । जब हम दैवलोक मे थे, तब हमने संकेत किया था कि जो यहाँ प्रथम च्यवे उसने यहाँ आकर दुसरी की अर्हत धर्म का बोध करना । इसलिये मै तेरी बहन तुझे बोध करने के लिये यहाँ आई हूँ । इसलिए संसार के तारणहार श्री जैनधर्म का प्रतिबोध करो । नंदीश्वर महाद्विप मे जाकर किये हुऐ शाश्वत अर्हत भगवंत के अष्टाह्निक महोत्सव, जंगम प्रभु के जन्मस्नानादि

उत्सव और पूर्वभव मे अनुभव कि हुई देशना की वाणी याद कर । जन्मांतर रूप निद्रा से वह सब कुछ क्यो भूल जाती हो ? अब तो तुम देवताओं के लिये भी दुर्लभ मानवजन्मरूपी वृक्ष का फल और मानो सिद्धि की प्रिय सखी हो ऐसी दीक्षा ग्रहण करें ।”

इस प्रकार कहकर वह इंद्राणी विद्युत गतिकी तरह अपनी कांति से आकाश में उद्योत करती हुई विमान मे बैठकर अपने स्वर्ग मे गई । तुरंत ही उसे उसकी वाणी से जिसको जातिका स्मरण हुआ है ऐसी सुमति को मानो संसार का भय लगा हो उस तरह वह मुर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । जब उसे चंदन जल से सिंचन किया और पंखे की हवा डालने पर वह बालिका वापस संज्ञा मे आयी और रात्री के जाने से हुऐ प्रातःकाल की तरह वह उठ गई । बाद मे वह अंजली जोडकर बोली- “अरे ! सर्व कुलीन राजा, अब मुझे जाति स्मरण हुआ है । आपको मेरे लिये सभी को बुलवाया है, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप सभी मुझे आज्ञा दे जिससे मैं संसारभ्रमणरूपी रोग के औषधरूपी दीक्षा ग्रहण कर सकु” यह सुन सभी राजा बोले- “हे अनघे ! ‘तथास्तु’ हम सभी तुम्हे आज्ञा देते है कि तुम्हारा इच्छित निर्विघ्न हो” बाद मे वासुदेव और बलभद्र सहित हर्षित होकर बडी समृद्धि से उसका सर्व उत्सवो मे शिरोमणि ऐसा निष्कमणोत्सव किया । देवराज (इंद्र) और यक्षराज (कुबेर) की मुख्य देवीयो ने आकर उसकी पूजा की । ‘वैसी साध्वी स्त्रीयां इंद्र को भी पूज्य है’ बाद मे सुव्रत मुनि के पास सात सौ कन्याओं के साथ उसने मोक्षवृक्ष की नीकरूप दीक्षा ग्रहण की । संवेग से भावित और आत्मारूपी कमल का ध्यान मे भ्रमररूपी उस सुमति ने दो प्रकार की शिक्षा ग्रहण की और विविध प्रकार के तप का आचरण किया । इस तरह कुछ समय व्यतीत हो जाने के बाद क्षपकश्रेणी पर आरुढ होकर मोक्षलक्ष्मी के दूत जैसा केवलज्ञान प्राप्त किया । बाद मे अनेक भव्य जीवो को बोध करवाकर भवोपग्राही कर्म का क्षय करके वह सुमति साध्वी अव्ययपद को प्राप्त हुई ।

सम्यक्त्व द्वारा शोभा देते अपराजित और अनंतवीर्य अश्वनी कुमार की तरह साथ मिलकर राज्य पालन करने लगे । चौर्यासी लाख वर्ष पूर्व का आयुष्य भोगकर अनंतवीर्य वासुदेव निकाचित कर्म से प्रथम नरक मे गये । वहाँ ब्यालिस हजार वर्ष नरक की विविध वेदना उन्होंने सहन की । उपार्जित कर्म का कभी भी नाश नहीं होता है । वहाँ वासुदेव के जन्म के पिता चमेरेंद्र ने आकर वेदना की शांति की । अपत्य स्नेह बहुत बलवान है । संवेगवत अनंतवीर्य के जीव ने अवधि ज्ञान द्वारा अपने पूर्व कर्म को याद करके नरक की दुःसह वेदना को सम्यग्भाव से सहन की ।

बंधु के शोक से उद्वेग पाकर बलभद्र ने तीनोखंडो के पृथ्वी का राज्य अपने पुत्र को सौंपकर जयधर गणधर के पास से व्रत ग्रहण किया । उसके साथ सोलह हजार राजाओं ने दीक्षा ली । महत् पुरुष का अनुकरण पुरुष महत् फल को प्राप्त करता है । अनेक परीषह को सहन करते हुऐ बलभद्र चिरकाल तक तप किया । अंत मे अनशन करके मृत्यु पाकर वे अच्युत देवलोक मे इंद्र हुऐ ।

अनंतवीर्य का जीव नरक मे दुष्कर्म का फल भोगकर अग्नि मे से सुवर्ण की भांति शुद्ध होकर नरक मे से निकलकर और जंबूद्विप मे भरतक्षेत्र मे वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी मे गगनवल्लभपुर के बारे मे विद्याधरपति महात्मा मेघवाहन की मेघमालिनी पत्नि से मेघनाद नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ।

अनुक्रम मे यौवनमय के प्राप्त होने पर उसे राज्य पर बैठाकर मेघवाहन ने परलोक का साधन साध्य किया । मेघनाद अनुक्रम मे भूमि पर और अंतरिक्ष मे जिस तरह सूर्य प्रकाश करता है उस तरह वैताढ्य की दोनो श्रेणीयों का एक तेजस्वी अधिपति हुआ ।

अेक दिन मेघनाद अपने पुत्रों को दोनो श्रेणीयों पर रहे हुऐ अेकसो दस नगर बांट दिये प्रज्ञप्ति विद्याद्वारा मंदगिरि पर गया । वहाँ नंदनवन मे रहे हुऐ सिद्धायतन में शाश्वती प्रतिमा का पूजन किया । उस समय कल्पवासी देवता वहाँ आये । अच्युतेन्द्र ने उन्हे देखकर पूर्वभव के भातृस्नेह से गुरु की तरह बोध किया की 'इस संसार का त्याग करें' वैसे समय मे विद्याधरपति की मानो शरीरधारी स्वार्थसिद्धि हो ऐसे अमरगुरु नाम के गुरु वहाँ पधारे । मेघनाद ने उनके चरणमूल मे रहकर चरित्र अंगीकार किया और अप्रमादी की तरह नियमपूर्वक उसका पालन किया ।

एक बार मेघनाद मुनि नंदनगिरि नाम के पर्वत पर आरुढ होकर, एक रात्रि की प्रतिमा अवलंबन करके ध्यानस्थ हुऐ थे, उसी समय पूर्व जन्म का बैरी, अश्वघ्नीव प्रतिवासुदेव का पुत्र जो चिरकाल मे भवभ्रमण करके दैत्यपन को प्राप्त हुआ था, उसने उस तरह रहे मेघनाद मुनि को देखा । पूर्व के बैर से बडे वृक्षो को पाडे की तरह, वह स्वभावधीर महामुनि को क्रोध से उसने उपसर्ग करना आरंभ किया, तथापि उन्हें चलित करने मे वह शक्तिमान नहीं हुआ । दंतो के दंतघात से क्या पर्वत जरा भी चलायमान होते हैं क्या ? अंत मे थककर वह असुर लज्जा से मलिन मुखवाला हुआ और निष्फल होकर चला गया । बाद मे महामुनि मेघनाद ध्यान से विराम लेने पर उपसर्ग और परीषहो से कंपित न होते हुऐ मेघनाद मुनि चिरकाल तक तीव्र तप आचरण करके अंत मे अनशन करके मृत्यु प्राप्त कर अच्युत देवलोक मे इंद्र के समान देवपन को प्राप्त हुऐ ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्य पंचमपवर्णि

श्री शांतिनाथदेवस्यषष्ठसप्तमभववर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीय सर्ग

श्री शांतिनाथ भगवान के आठवे और नौहवे भव का वर्णन

इस जंबूद्विप के पूर्व में महाविदेह में सीता नदी के दक्षिण तट पर मंगलावती नाम का विजय है उसमें विस्तारवाली रत्नसंचया नाम की नगरी है। उस नगरी में अनेक रत्नों का संचय होने से वह रत्नाकर की स्त्री हो ऐसी लगती है। उसके विषय में लक्ष्मी का योगक्षेम करनेवाला और पवन जैसा बलवान क्षेमंकर नाम का राजा था। पुष्पमाल जैसी कोमल और रत्नमाल जैसी निर्मल रत्नमाला नाम की एक रानी थी। अपराजित का जीव जो अच्युतेंद्र हुआ था वह अच्युत देवलोक में से च्यवन करके छीप में मोती की तरह रत्नमाला की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। उस समय सुख सो रही महादेवी ने रात्रि के शेषभाग में चौदह महास्वप्न और पंदरहवा वज्र देखा। तत्काल जागृत होकर वह वृत्तांत उसने पति से कहा, इसलिए राजा क्षेमंकर ने कहा कि 'आपको इंद्र जैसा वीर चक्रवर्ती पुत्र होगा' गर्भ समय पूर्ण होने पर छठवे लोकपाल जैसे लोकोत्तर पराक्रमी और पवित्र आकृतिवाला अेक पुत्र को उसने जन्म दिया। जब वह पुत्र गर्भ में था तब देवीने स्वप्न में वज्र देखा था, इसलिए पिता ने उसका वज्रायुध नाम रखा। लोकोत्तर शरीरवाले वज्रायुध लोगो की दृष्टि के दोष को दूर करने के लिये ललाट पर विघ्ननाशक आभूषण पहनकर दिन प्रतिदिन बढने लगा। अनुक्रम में वह सुर असुर और मानवो की स्त्रियों के हृदय को मोहक बनाये ऐसा यौवन पाया और सर्व कलासागर को भी लांघ गया। बाद में हाथों में कंगन धारण करनेवाली मानो शरीरधारी लक्ष्मी हो वैसी लक्ष्मीवती नाम की अेक राजपुत्री के साथ विवाह किया। अनंतवीर्य का जीव अच्युत कल्प में से च्यवन करके जिस तरह मेघजल आकाश में से पृथ्वी पर आता है उसी तरह लक्ष्मीवती की कुक्षि में अवतरित हुआ। समय होने पर उसने शुभ स्वप्न सूचित और तेज द्वारा तेज सूर्य जैसा सर्व लक्षण संपन्न पुत्र को जन्म दिया। शुभ दिन मातापिता ने सामान्य जन्मोत्सव से भी अधिक उत्सव करके उसका सहस्रायुध ऐसा नाम रखा। चंद्र की तरह अनुक्रम में बड़ा होकर कलाकलाप द्वारा संपूर्ण यौवनवय को प्राप्त हुआ। रूप में कामदेव जैसा सहस्रायुध शरीरशोभा से लक्ष्मी का उल्लंघन करनेवाली कनकश्री नाम की राजकन्या के साथ विवाह किया। उस स्त्रि से उसे पराक्रमी महाबल जैसा संपूर्ण नरकक्षण संयुक्त शतबल नाम का पुत्र हुआ।

एक बार राजा क्षेमंकर पुत्र पौत्र, प्रपौत्र, मंत्री, मित्र, सामंतो के साथ सभा में बैठा था। उस समय ईशान कल्प में देवताओं की चर्चा हुई कि पृथ्वी पर वज्रायुध जैसा कोई दृढ सम्यक्त्वधारी नहीं है। यह वचन सुनकर चित्रचूल नाम के देव की श्रद्धा हुई नहीं, इससे तत्काल विचित्र रत्नमय मुकुट और कुंडल को चलित करता वह मिथ्यात्व से मोहित और दुर्मति नास्तिक देवता विवाद करने की इच्छा से क्षेमंकर राजा के पर्वदा में आया। उस समय पर्वदा में विचित्र आलाप संलाप चल रहा था। वह सुनकर आस्तिक के उद्योत पर आक्षेप करता हुआ वह देव गर्व से इस प्रकार बोला-“इस जगत में पुण्य, पाप, जीव और परलोक कुछ भी नहीं है, प्राणी आस्तिकता की बुद्धि से व्यर्थ में कलेश पाती है।” यह

सुनकर निष्कपट सम्यक्त्व को धारण करनेवाले वज्रायुध ने कहा-“अरे ! ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध वचन क्यों बोलते हो ? आप ही अवधिज्ञान द्वारा आपके पूर्व जन्म के सुकृत के फलरूपी आपका वैभव तो देखिये । आपको ही पूर्वभव मे मनुष्यत्व और इस भव मे देवत्व प्राप्त हुआ है, तो जो जीव वस्तु यदि नहीं है तो वह किस तरह घटित होती है ? हे धीमान ! इस लोक मे मनुष्यपन प्राप्त करके परलोक मे आपने देवपन प्राप्त किया, इसलिये इस लोक की तरह परलोक भी प्रत्यक्ष ही है ।” क्षेमंकर के पुत्र वज्रायुध ने इस तरह के प्रतिबोध करने से चित्रचूल बोला-“आपने बहुत अच्छा कहा, बहुत सुंदर कहा । इस संसार मे पडनेवाले ऐसे मेरे पर आपने कृपा करके उद्धार किया है अथवा जिसके पिता साक्षात् तीर्थंकर हो उसकी क्या बात है ! मैं चिरकाल से मिथ्यात्वी हूँ, परंतु अच्छे भाग्य की ईर्ष्या से भी आपके दर्शन हुऐ, तो मुझे सम्यक्त्वरत्न दे, क्योंकि सत्पुरुषो का दर्शन निष्फल नहीं होता है” बुद्धिमान मे श्रेष्ठ ऐसे वज्रायुध ने उसका भाव जानकर उसे सम्यक्त्व दिया । ‘सर्वज्ञ के पुत्र वैसे ही होते हैं’ फिर से चित्रचूल ने कहा ‘हे कुमार ! आज से निरंतर मैं तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ, तो भी आज कुछ मांग ले’ वज्रायुध ने कहा-मैं तुम्हारे पास से इतना मांगता हूँ कि आज से दृढ सम्यक्त्वधारी बने’ देव ने कहा-यह आपकी कैसी प्रार्थना ! उसमे तो मेरा स्वार्थ है, लेकिन ऐसा कुछ मांगे की जिससे मैं ऋण मुक्त हो जाऊँ उसके उतर मे मेरा इतना ही कार्य है’ ऐसा वज्रायुध ने कहा तब उस देव ने देव जैसे निःस्पृह वज्रायुध को दिव्य अलंकार दिये । बाद मे चित्रचूल ने ईशानेंद्र की सभा मे वापस आकर कहा कि-‘आप दृढ सम्यक्त्वधारी वज्रायुध की जो प्रशंसा की थी वह घटित है’ उस समय ‘वह वज्रायुध महात्मा भावी तीर्थंकर होगा’ ऐसा कहता हुआ ईशानपति वज्रायुध की स्तुति करने लगे ।

इस तरह विचित्र गोष्ठी और सुंदर क्रीडा करते हुऐ वज्रायुध महर्द्धिमान देव की तरह सुखमग्न रहने लगे । अेक बार वसंत समय मे पुष्प के डालिये को धारण करनेवाली सुदर्शना नाम की एक वेश्याने आकर वज्रायुध से कहा-“स्वामी ! युवान पुरुष क्रीडामित्र और कामदेव का विजयमित्र वसंतऋतु आज अेक छत्रवाला बनकर वृद्धि पा रहा हैं इस ऋतुराज मे झुले पर बैठी नवीन यौवनवती स्त्रीयों को उनकी सखिया हाथ यष्टिया लेकर पतियों के नाम पूछ रही है । यूवा रमणिया अपने आप पुष्प चून लेती है, माला गूँथ रही है, कामदेव को पूज रही है और अपना मान छोड देती है । उसी तरह कुछ मनस्वी कांताओ स्वयंदूती बन जाती है । यह ऋतुराज का ऐसा कोई अपूर्व प्रभाव विजय पा रहे हैं । इस रमणीय ऋतु मे कोलाहल जैसा हो जाता है । पुष्प के मुगुट, पुष्प के हार, पुष्प के बाहुभूषण तथा कंगन धारण करनेवाले युवा पुरुष मानो पुष्पधन्वा का पाखंड मार्ग चलाते हो ऐसा दिखाई पड रहा है । ऐसे वसंत के मित्र कामदेव जैसी वसंत ऋतु उपस्थित होने से देवी लक्ष्मीवती मेरे मुख से विज्ञप्ति कर रही है कि हे प्रभु ! ऐसे मनोहर वसंत में नंदनवन जैसा सुरनिपात नाम के उद्यान मे जाकर परिवार सहित वह कामदेव के धामरूपी उद्यान मे आये । चंद्र के पीछे ताराओं की तरह लक्ष्मीवती वगैरेह सात देवीया उसके पीछे वहाँ आयी । वह सुंदर उद्यान अति विस्तृत छायादार वृक्षों से मानो एक छत्र की भांति हो और पुष्पित वृक्षों के आस पास की क्यारीयो मे पुष्प मे से झरते पराग की कणिकाओ से किचडवाला बन गया था और फलो के भार से झुके वृक्षों की शाखाए भूमि को स्पर्श कर रही थी । उस उद्यान मे

कुमार वज्रायुध अंतःपुर के साथ किसी स्थान पर उत्कंठित मन से और किसी जगह योगी की तरह गुफा में प्रवेश करके । क्रीडा करने लगा । बाद में उद्यान में विहार से शांत हो गई रमणीयों को लेकर वह प्रियदर्शन कुमार जलक्रीडा करने के लिये एक वापिका में गये । नंदीश्वर द्विप की वापिका जैसी मनोहर वापिका में श्रम का नाश करने के लिये कुमार ने प्रिये के साथ प्रवेश किया । बाद में गिरिनदी में हस्ती की तरह अपनी प्रियाओं के साथ वह जलक्रीडा में प्रवृत्त हुआ । जलक्रीडा में होनेवाले करके घात द्वारा उड़े हुए हार के मोती में और जलबिंदुओं में कोई भी अंतर मालुम नहीं पड़ता था । जल में खेलती अंतःपुर की रमणीयों के मुख का और सुवर्ण कमल के मित्र की तरह लंबे समय बाद परस्पर योग संगम हो गया । मृगाक्षियों के उपर अंजली, शींगडी और गंडूष द्वारा होनेवाले जलप्रहार से कामदेव जल के आयुध को धारण करनेवाला हो ऐसा जान पड़ता था । आसपास फैली हुई कामिनीयों की केशराशि मानो कामदेव की ध्वजा के लिये तैयार मीन हो ऐसी दिखाई देने लगी । जलक्रीडा से शांत होकर जल के किनारे विश्राम लेने जानेवाली कुद गौरंगी रमाओ मानो जलदेवीयां हो ऐसी दिखाई देती थी । सुंदर भ्रुकुटीवाली बालिकाओं के नेत्र अपने सापत्न कमल के संघर्षण से मानो रोषित हो गये हो उस तरह जल के छिटों से आताम्र हो गये । मदगंधी वनहस्ती के मद से नदी के जल की तरह वापिका का जल मृगाक्षियों के अंगराग से सुगंधित बन गया था ।

इस तरह शत्रुओं के भय से अस्थानरुप वज्रायुध कुमार भरपूर जलक्रीडा में व्यग्र हो गये थे । उस समय पूर्व जन्म के रिपु दमितारि प्रतिवासुदेव का जीव चिरकाल तक भवभ्रमण करके विद्युदृष्ट नाम का प्रसिद्ध असुर हुआ था, वह वहाँ पर आया । वज्रायुध को देखकर परस्पर दाढ़ को घिसता वह देव 'अरे ! यह जिवित कहाँ जा रहा है ! इस तरह वह क्रोध से चिंतित हुआ । बाद में वह अधम असुर ने चने की मुठ्ठी की तरह परिवार सहित वज्रायुध का चूर्ण बनाने के लिये उस वापिका के ऊपर एक पर्वत को उठाकर डाला और महावत की तरह पैरो में जंजीरे डालकर हाथी को बांधते हैं उस तरह वरुण के पाश जैसा नागपाश से वज्रायुध को बांध दिया । परंतु वज्रायुध ने इंद्र की तरह वज्र से पर्वत को पीस डालते हुए उस तरह मुठ्ठी से पर्वत को छिन्न भिन्न कर दिया और कमल के तंतु जिस तरह पाश को तोड़ डालते हैं उस तरह उसने उसे तोड़ डाला । बाद में वह महाभुज जिस तरह पाताल में से शेषनाग निकलता है उस तरह वह वापिका में से अंतःपुर सहित अक्षतांग बाहर निकला । इसी समय शक्रेंद्र महाविदेहक्षेत्र के जिनेश्वर को नमन करके नंदीश्वर द्विप की यात्रा करने जा रहे थे, उसने वापिका में से निकलते वज्रायुध को देखा । इसलिये 'यह वज्रायुध इस भव में चक्रवर्ती और आगे भव में अर्हंत होगा' ऐसा सोचकर इंद्र ने उसकी पूजा की । भविष्य काल का भी भूतकाल की तरह उपचार होता है । बाद में 'आप धन्य हैं, क्योंकि जंबूद्विप में भरतक्षेत्र में शांतिनाथ नाम के आप सौलहवे तीर्थकर होंगे । इस प्रकार कहकर इंद्र नंदीश्वर द्वीप में गये और वज्रायुध ने स्वेच्छा से विविध प्रकार की क्रीडा करके अंतःपुर के परिवार सहित अपने पुर में प्रवेश किया ।

राजा क्षेमंकर लोकांतिक देवताओं के स्मरण करवाने से प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेने की इच्छा जताई । उससे उन्होंने वज्रायुध कुमार को अपना राज्याधिकार सौंपा और वार्षिक दान देकर उन्होंने

दीक्षा ग्रहण की। विविध अभिग्रह मे तत्पर होकर दुस्तप तपस्या का आचरण करते घातीकर्म का घात होने से वे भुवनभर्ता क्षेमंकर जिन को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तत्काल देवताओं ने आकर केवलज्ञान का महिमा किया। इंद्र और वज्रायुध वगेरेह अपने-अपने स्थान पर गये।

उस समय अस्त्रागार के अधिपति ने हर्षित होते हुये वज्रायुध से बड़े स्वर मे कहा की “अस्त्रागार मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।” वज्रायुध ने चक्ररत्न की बड़ी पूजा करवाई। उसके अलावा दुसरे तेरह रत्न भी अनुक्रम मे उन्हें प्राप्त हुये। बाद मे चक्ररत्न के पीछे चलकर वैताढ्य पर्वत सहित मंगलावती विजय के छै खंडजीत लिये और अपनी मानो दुसरी प्रतिमा मूर्ति हो वैसा पृथ्वी धारण करने मे समर्थ सहस्रायुध नाम के कुमार को युवराज पद पर स्थापित किया।

एक बार सामानिक देवो से घिरे हुये इंद्र की तरह राजा, सामंत मंत्री और सेनापतियों से घिरे हुये वज्रायुध सभामंडप मे बैठे थे। उस समय आकाश से पृथ्वी पर आता और हस्ती से हनन वृक्ष की तरह शरीर कंपन करता एक युवान विद्याधर, मैनाक पर्वत की तरह समुद्र के शरण मे आता है उस तरह वज्रायुध शरण मे आया। उसके पीछे मानो मूर्तिमान विद्यादेवी हो ऐसी सुरेखा नाम की ओक सुंदर विद्याधरी हाथ मे ढाल और खड्ग लेकर आयी उसने वज्रायुध से कहा- ‘हे देव ! आप इस दुरात्मा को छोड दो, जिससे उसे उसके पापो का फल तत्काल दिखादु।’ थोडी देर बाद उसके पीछे यमदूत जैसा भयंकर कोई विद्याधर हाथ मे सुंदर गदा रखकर क्रोध करता हुआ आया। उसने भी वज्रायुध से कहा कि “इस दुष्ट का दुर्नय सुना जिससे मैं और यह स्त्री उसका वध करने के लिये आये। इस जंबूद्विप मे विदेहक्षेत्र के आभूषण जैसा सुकच्छ नाम के विजय मे वैताढ्य नाम का पर्वत है उसके उपर देव लोक की शोभा तुल्य हो वैसा सर्व पुरश्रेणी मे शिरोमणीरुपी शुक्ल नामक एक सुंदर नगर है। उसमे शुक्लदत्त नाम का विद्याधरो का राजा है और उसे दो कुल के यश को धारण करनेवाली यशोधरा नाम की पत्नि है। उसका पवनवेग नाम का मैं पुत्र हूँ मैं अनुक्रम मे कलाकलाप मे कुशलता के साथ यौवन प्राप्त हुआ। वह वैताढ्य गिरि पर उत्तर श्रेणी मे उसके आभूषणरुपी किन्नरगीत नामक नगर मे दीपचुल नाम का राजा है। उसे चंद्रकीर्ति नाम की पत्नि है। उससे सुकांता नाम की सर्वलक्षणलक्षणा पुत्री हुई, जो आपके पास खडी है। यह बाला मणिसागर नाम के पर्वत पर भगवती प्रज्ञातिका नाम की महाविद्या को साध्य कर रही थी। उस समय यह दुष्ट विद्याधर ने आकर उस विद्या मे साध्य तल्लीन बाला को आकाश मे उपर उठा लिया, परंतु वह विद्या सिद्ध हो जाने से उसे त्याग कर यह अधम विद्याधर वहाँ से पलायन हो गया। उसे किसी भी जगह शरण न मिलने से अंत मे वह दुरात्मा आपके चरणमूल को प्राप्त हुआ है। मैं प्रज्ञप्ति विद्या की पूजा के लिये बलि लेकर मणिसागर पर्वत पर आया तब उस गिरि पर अपनी पुत्री को देखवा नहीं, उससे उसके पद चिन्हो को देखते-देखते उसके पीछे यहाँ तक मैं भी यहाँ आया हूँ इसलिये दुष्टो को शिक्षा करनेवाले हे स्वामी ! दोषो की खानरुपी इस अधम को छोड दे जिससे इस गदा द्वारा नारियल के फल की तरह इसका चूर्ण करके यमराज के स्थान भेज दूंगा।”

इस प्रकार का वृतांत सुनकर अवधिज्ञान द्वारा उनका पूर्व संबंध जानकर वज्रायुध चक्रवर्ती बोले- “अरे विद्याधर ! इन सबका पूर्व संबंध सुनो। इस जंबूद्विप मे औरावत क्षेत्र मे विंध्यपुर नाम के

नगर मे विंध्यदत्त नाम का राजा था । उसकी सुलक्षणा नाम की पत्नि से नरलक्षणा पूर्ण नलिनकेतु नाम का एक पुत्र हुआ । उस नगर मे मित्ररूपी कमल मे सूर्य समान धर्ममित्र नाम का एक सार्थवाह शिरोमणि रहता था । उसे श्रीदत्ता नाम की स्त्री से दत्त नाम का पुत्र हुआ और उस दत्त को दिव्य रूपवाली प्रभंकरा नाम की पत्नि हुई । एक दिन वसंत ऋतु मे रति के साथ कामदेव की तरह दत्त अपनी दयिता के साथ उद्यान मे क्रीडा करने लगा । उस समय नलिनकेतु भी वहाँ आया । वह प्रभंकरा को देखते ही कामबाण से घायल हो गया । अहा ! क्या श्लाघ्य रूप है ! जो इस स्त्री के साथ क्रीडा करेगा वह भी श्लाघ्य है ।' इस तरह चिन्तन करके उस कामातुर ने तत्काल उसका हरण कर लिया और क्रीडा करने के उद्यान मे, सरिता मे और वापिका मे वह नलिनकेतु उसके साथ कामदेव की तरह स्वच्छंद क्रीडा करने लगा कुमार दत्त अपनी प्रिया के वियोगाग्नि से पीडित होकर निरंतर प्रभंकरा का ध्यान करके उद्यान मे भटकने लगा । वहाँ घूमते-घूमते दृष्टि मे अमृतांजन समान जिसके दर्शन है ऐसे सुमन नाम के अेक मुनि उसे दिखाई दिये । उस समय घातीकर्मों का क्षय हो जाने से सुमन मुनि ने अज्ञानरूपी अंधकार मे दिवस समान केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।

देवताओं ने आकर केवलज्ञान का महिमा किया । उसी समय दत्तकुमार ने भी आकर मुनि के चरणकमलो मे वंदन करके । मुनि के मुख से धर्मदिशनारूपी सुधापान करके दत्तकुमार ने पूर्व ताप से हुई ग्लानि क्षणभर मे छोड दि । बाद मे निरंतर दानधर्म मे तत्पर और शुभ ध्यान धरनेवाला दत्तशांती से उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके जंबूद्विप के पूर्व मे विदेह सुकच्छ विजय के विषय मे वैताढ्य गिरि पर आये स्वर्णतिलक नाम के नगर मे विद्याधर के राजा महेंद्रविक्रम की अनिलवेगा पत्नि से पुत्र उत्पन्न हुआ । पिताने उसका अजितसेन ऐसा नाम रखा और विधि से विद्याएँ दि । 'विद्याधरो का मूल धन विद्या ही होता है' यौवन प्राप्त होने पर वह विद्याधरो की अनेक कन्याओं से विवाह किया । उनके साथ आकाशमार्ग से घूमते हुऐ गिरिवनादिक मे अनेक प्रकार से खेलने लगे ।

विंध्यदत्त मृत्यु पाकर बाद मे विंध्यपुर मे वासुदेव जैसा उद्भट नलिनकेतु राजा हुआ । वह हरण की हुई दत्त की पत्नि प्रभंकरा के साथ कांदर्पिक देव की तरह विषयसुख भोगने लगा । एक बार जिस तरह वैमानिक देव देवी के साथ प्रकाशमान विमान पर चढते है उस तरह नलिनकेतु प्रभंकरा के साथ अपने महल पर गया । उस समय पर्वत के शिखर जैसा, अंजनाचल जैसा भास्कर कांतिवाला, गर्जना से दिशाओ का तिरस्कार करनेवाला, उद्भ्रांत हुऐ दिग्गज जैसा, विद्युत से आकाश को प्रकाशित करनेवाला और इन्द्रधनुष को धारण करनेवाले मेघ अचानक आकाश मे घिर आया । उन्हे देखकर नलिनकेतु खुश हो गया । वापस क्षणभर मे प्रचंड वेग से मानो गलती से उत्पन्न हुऐ हो उस तरह वे थोडी देर मे वे दसो दिशाओ मे फैल गये दिखाई दिये । इस तरह एक क्षणार्थ मे मेघ की उत्पत्ति और विनाश देखकर नलिनकेतु को वैराग्य से विचार करने लगा कि 'ज्यो यह मेघ आकाश मे क्षण मे उदय और अस्त पाते है उसी तरह इस संसार मे सभी पदार्थ भी उसी तरह की स्थिति मे रहे है । अेक जन्म मे यह प्राणी युवा, वृद्ध, धनाढ्य, निर्धन, पत्नी, पेदल, निरोगी और रोगी होता है, इससे इस संसार मे सब क्षणिक है, ऐसे संसार को धिक्कार है ।' इस प्रकार सोचकर तत्काल पुत्र को राज्य सौंपकर उसने

क्षेमंकर पास से दीक्षा ग्रहण की। कुछ समय तक उग्र तपस्या करने से और शुभ ध्यान ध्याने से घातीकर्म का क्षय होकर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। बाद में क्रम से भवोपग्राही चार कर्म का भी हनन करके नलिनकेतु महर्षि अव्ययपद को पाये। सरल और भद्रिक स्वभाववाली प्रभंकरा रानी सुव्रता गणिनी के पास से चांद्रायण तप का आचरण किया। समकित बिगर के तप के फल से वह प्रभंकरा मृत्यु प्राप्त हुई। यह शांतिमती नाम की तुम्हारी पुत्री हुई। दत्त का जीव इस अजितसेन विद्याधर हुआ है। उसने पूर्व के स्नेह से यह शांतिमती की उठाई थी, इसलिये उसके ऊपर कोप न करें। उसके ऊपर का कोप छोड़कर भाई की तरह उसे क्षमा करें। क्योंकि जो अनंतानुबंधी से कषाय होते हैं वे नरक के लिये होते हैं।”

इस तरह वज्रायुध की वाणी सुनकर तीनों जन वैरमुक्त होकर, संवेग पाकर परस्पर शांत हुए। फिर से चक्रवर्ती वज्रायुध ने कहा कि “तुम तीनों थोड़े ही काल में क्षेमंकर प्रभु के पास से दीक्षा ग्रहण करोगे। वहाँ ये शांतिमती रत्नावली तप करेगी और अनशन द्वारा मृत्यु प्राप्त कर ईशानेंद्र होगा। उसी समय हे पवनवेग और अजितसेन ! तुम्हें घातीकर्म के नाश से केवलज्ञान उत्पन्न होंगे, उससे तुरंत ही केवलज्ञान के महिमा का बड़े उत्सव से ईशानेंद्र आकर करेंगे। और अपने पूर्व जन्म के देह की पूजा करेंगे। बाद में ईशान इंद्र च्यवन करके मनुष्यपन प्राप्त करके केवलज्ञान उपार्जित करके सिद्धपद को प्राप्त होंगे।”

इस तरह चक्रवर्ती वज्रायुध का त्रिकालज्ञानी ज्ञान सुनकर सभी सभासद विकसित नेत्रों से विस्मित हो गये। बाद में राजा पवनवेग, उसकी पुत्री शांतिमती और अजितसेन विद्याधर वज्रायुध को प्रणाम करके इस प्रकार से कहा-“हे जगत्पति ! आप हमारे मातापिता, स्वामी, गुरु और देव हैं, क्योंकि परस्पर पाप करने के प्रवृत्त हमें आपके बिना दुसरा कौन हमारा रक्षणकर्ता बनता ? यदि आपके वचनरूपी नरकद्वार की अर्गला अगर बीच में नहीं आई होती तो हम परस्पर मृत्यु पाकर आज नरक में जाते, इसलिये हे स्वामी ! हमें आज ही आझा दे, जिससे संसार के भय से भयभीत हम अभी क्षेमंकर प्रभु के शरण में जाए इस तरह की उनकी विनंती सुनकर चक्रवर्ती ने आझा दी। बाद में उन्होंने क्षेमंकर प्रभु के पास जाकर दीक्षा ली। बाद में उन्होंने शांत मन रखकर विनाश के भय से कृश हुए शरीर से उग्र तपस्या करके उसमें से शांतिमती मृत्यु प्राप्त करके ईशान कल्प में इंद्र हुई और उन दोनों को उसी समय केवलज्ञान हुआ। ईशानेन्द्र ने आकर केवलज्ञान का महिमा और अपना देहपूजन किया। ईशानेंद्र वहाँ से च्यवी ने दुसरे जन्म में सिद्धि पाये और वे दोनों पवनवेग और अजित सेन आयुष्य पूर्ण होने पर उसी भव में मोक्ष में गये।

वज्रायुध चक्री जयंत सहित इंद्र की तरह सहस्रायुध पुत्र के साथ पृथ्वी पालन करते थे। ऐसे में एकदा सहस्रायुध की पत्नि जयना ने एक समय स्वप्न में किरणों से प्रकाशमान सुवर्ण शक्ति देखी। प्रातःकाल में उसने स्वप्न वार्ता अपने पति से कही, तब उसने कहा हे देवी ! बड़ी शक्तिवाला पुत्र होगा’ तब से उस देवी ने दुर्वह गर्भ धारण किया। समय आने पर जिस तरह पृथ्वी धान्य को जन्म देती है उसी तरह उसने एक पुत्र को जन्म दिया। जयनादेवी ने देखे हुए स्वप्न के अनुसार पिता ने उस बालक का

कनकशक्ति ऐसा नाम रखा । अनुक्रम मे जब बाल्यकाल उलंघन करके यौवनमय मे प्राप्त हुआ, तब सुमंदिरपुर राजा मेरुमालीनी की मल्लदेवी रानी के कोख से उत्पन्न हुई कनकमाला रुपलावण्यती कन्या के साथ यथाविधि विवाह किया ।

श्रीसार नामक नगर मे अजितसेन नाम का राजा था । उसकी प्रियसेना नाम की रानी की कोख से वसंतसेना नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई थी । वह कनकमाला की प्रिय सखी थी । उसके पिता अजितसेन उसके लिये किसी योग्य वर की शोध मे थे, तब उसने उस स्वयंवरा कन्या को कनकशक्ति के पास भेजा, तब कनकशक्ति ने उसे भी यथाविधि विवाह किया । इस विवाह से वसंतसेना की बुआ के पुत्र के मन मे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ । एक बार कनकशक्ति उद्यान मे घूम रहा था, उसी समय मुर्गे की तरह उपर उछलकर और गिरता हुआ अेक पुरुष उसके देखने मे आया । कनकशक्ति ने उसे पुछा- “अरे भाई ! आप पतंग की तरह आप इस तरह क्यों गिरते हो और उछलते हो ? यदि वह रहस्य न हो तो कहे ।’ उसने कहा- “तुम्हारे जैसे महात्माओं के पास रहस्य कहने मे कोई हरकत नहीं है, क्योंकि उसके कहने से गुण होगा । मैं विद्याधर हूँ । किसी कार्य के लिये वैताढ्य पर्वत पर से अन्यत्र जाते समय बीच मे इस उद्यान मे मैं आ गया । उद्यान की रम्यता देखने के लिये क्षणभर रुका । बाद मे यहाँ से उडने के लिये आकाशगामिनी विद्या का मैंने स्मरण किया, लेकिन उस विद्या का एक पद मैं भूल गया हूँ इसलिये जिसके पंख बंधे हो ऐसे पक्षी की भांति के मैं उछलता और वापस गिर जाता हूँ” कुमार ने कहा-हे महापुरुष ! यदि दुसरे के पास वह विद्या सिख सकते हो तो पढो’ । उसने कहा-‘सामान्य पुरुषो के पास यह विद्या सिख नहीं सकते, लेकिन आप जैसे महात्मा तो वह विद्या सिखा सकते हैं, तो सिख ने मे क्या हरकत है ? बाद मे विद्याधर वह एक पद रहित विद्या पढी ली, इसलिये जिसे पदानुसारी बुद्धि है ऐसे कुमार ने वह न्यून पद कह दिया । जिससे जिस तत्काल पूर्ण विद्याशक्ति प्रगट हुई है ऐसे विद्याधर ने विद्या कुमार को दि । विवेकीजन कृतज्ञ होते हैं । बाद मे वह विद्याधर वहाँ से स्वस्थानक पर गया और कुमार कनकशक्ति उस विद्या का यथाविधि सिद्ध करके बडा विद्याधर हुआ ।

वसंतसेना की बुआ का पुत्र जो प्रथमबार रोष धारण कर रहा था । वह कनकशक्ति का कुछ भी अपकार करने मे समर्थ नहीं हुआ, तब लज्जा द्वारा अन्नपान छोडकर मृत्यु प्राप्त करके हिमयुल नाम का देवता हुआ । कुमार कनकशक्ति, वसंतसेना और कनकमाला के साथ विद्याशक्ति से पवन की तरह पृथ्वी पर स्वेच्छा से घूमने लगा । अेक बार वह कनकशक्ति हिमवंतगिरि पर पहुँचा वहाँ विपुलमति नाम का एक चारणमुनि उसे दिखाई दिये । तप्त सुवर्ण जैसे अंगोवाले, कृश हुऐ और कामदेव को जीतनेवाले उसी तरह मानो मूर्तिमान तपतेज हो ऐसे मुनि को कुमार ने भक्ति से वंदना करके बाद मे मुनि के पास से ‘धर्मलाभ’ रुपी आशिष प्राप्त करके दो देवीयों के साथ वहाँ बैठकर संसाररुपी दावानल मे वर्षाऋतु जैसी धर्मदिशना उसने सुनी और महामति कनकशक्ति ने प्रतिबोध पाकर राज्यश्री की तरह दोनो देवीयो को छोडकर दीक्षा ली । विवेक और शुभ हृदयवाली दोनो देवीयो ने भी संवेग पाकर विमलपति नाम की आर्या के पास से व्रत ग्रहण किया । मुनि कनकशक्ति विहार करते-करते सिद्धि के स्थानरुप उस गिरि के ऊपर एक शिला के बारे मे एक रात्रि की प्रतिमा अंगीकार करके काउसगग

ध्यान मे रहे ।

यहाँ पर स्तंभ की तरह स्थिर रहे कनकशक्ति को देखकर वह दुराशय हिमचूल देवता उन्हें उपसर्ग करने लगा । उस अधम देव को उपसर्ग करते हुऐ देखकर विद्याधरो ने आकर क्रोध से उसे त्रस्त किया । सर्वजन सत्पुरुषो के पक्ष मे रहते है । तपसमूह के गिरिरूप वह मुनि प्रतिमा पारकर वहाँ से विहार करके रत्नसंचया नगरी मे आये, उस नगरी के बाहर सूरनिपात नाम के उपवन मे आकर उन्होंने पर्वत की तरह स्थिर होकर अेक रात्रि की प्रतिमा धारण की । उसी रात्रि मे क्षपकश्रेणी मे आरुढ हुऐ उन्हे क्षणभर मे घातीकर्म का क्षय से उज्जवल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । देवताओं ने आकर महाशय का केवलज्ञान का महिमा किया । हिमचूल वह देखकर भय से भयभीत पाकर उनकी शरण मे आया । वज्रायुध ने भी महर्षि के केवलज्ञान के उत्सव किया और उनकी देशना सुनकर वापस नगरी में गये ।

एक बार करोडो देवताओं ने और राजाओ के द्वारा सेवा मे रत्त ऐसे क्षेमंकर प्रभु वहाँ आये । सेवको ने आकर वज्रायुध से कहा- 'हे स्वामी ! क्षेमंकर प्रभु उद्यान मे पधारे है' उन्हें साढे बारह कोटि सौनेया देकर वज्रायुध परिवार के साथ क्षेमंकर प्रभु के पास आये । बाद मे प्रभु की तीन प्रदक्षिणा करके वंदन करके भक्ति से पास बैठकर धर्मदेशना सुनी । देशना के अंत मे वज्रायुध चक्री बोले-हे स्वामी ! इस दुस्तर संसारसागर से मै भयभीत हो गया हूँ इसलिये कुमार सहस्रायुध को राज्य सौंपकर मै वापस लौटकर आऊ तब तक मुझे दीक्षा देने के लिये आप यही रहने की कृपा करें ।' प्रभु ने कहा धर्मकार्य मे प्रमाद न करें । वह सुनकर वज्रायुध ने तत्काल अपनी नगरी मे आकर सहस्रायुध को राज्य सौंपकर । बाद मे सहस्रायुध ने जिनका निष्कमणोत्सव किया है ऐसे वज्रायुध चक्री शिबिका पर बैठकर क्षेमंकर प्रभु के पास आये । वहाँ चार हजार रानीयां, चार हजार मुगुटधारी राजा और सातसौ पुत्रो के साथ वज्रायुध ने व्रत ग्रहण किया । विविध प्रकार के अभिग्रह को धारण करते हुऐ परिषहो को सहन करते हुऐ वज्रायुध मुनि विहार करते-करते सिद्धि पर्वत पर आये । 'मै उपसर्गो को सहन करुंगा' ऐसी शुद्ध बुद्धि से उन्होंने वहाँ विरोचन नाम के स्तंभ पर वार्षिकी प्रतिमा धारण की ।

अब अश्वघ्नीव प्रतिवासुदेव के पुत्र मणिकुंभ और मणिकेतू चिरकाल तक भव मे भटकते हुऐ अंत मे बालतप करके असुर कुमार हुऐ थे, वे स्वेच्छा से घूमते-घूमते वहाँ आ गये, तब वहाँ पर उन्होंने वज्रायुध को देखा । पूर्व के अमिततेज के भव के बैर से दोनो, वृक्ष का महिष उपद्रव करते है उस तरह वे मुनि को यहाँ उपद्रव करने लगे । प्रथम सिंह बनकर वज्रांकुर जैसे तीक्ष्ण नाखूनो से दोनो बगल से उनके देह को खरोचने लगे । थोडी देर बाद वे हाथी बनकर अंतर्वेदी की तरह सूंड के आघात से दांतो के प्रहार से और पैरो के दुःसह पात से उन्हें मारने लगे । बाद मे राक्षस बनकर अपनी दाढो जैसे तीक्ष्ण काती से वे मुनि के यहाँ बडा उपद्रव मचाने लगे । इस तरह वे मुनि को विविध उपसर्ग कर रहे थे, उसी समय इंद्र की रंभा, तिलोत्तमा वगैरेह अप्सराएँ और दुसरी देवांगनाएँ अर्हत का वंदन करने जा रही थी, उन्होंने मुनि का उपसर्ग करते दोनो देवता को देखा, तब 'अरे पापीयो ! तुम ऐसे उत्तम मुनि पर यह क्या आरंभ किया है ? ऐसा कहती वे वेग द्वारा आकाश मे से नीचे उतर आई । उन्हे उतरते हुऐ देखकर

दोनों देवताओं क्षोभ पाकर वहाँ से भागे । 'सूर्य के प्रकाश के सामने उल्लू पक्षी कब तक टिक सकता है ? बाद में रंभादिक देवांगनाओं ने, इंद्र के आगे नृत्य करती हैं उसी तरह वे मुनि के आगे भक्ति से नृत्य करने लगीं । बाद में दर्शन से अपनी आत्मा को पवित्र हुई मानकर वे देवीयां परिवार सह मुनि की वंदना करके अपने-अपने स्थान पर चली गयीं ।

वज्रायुध मुनिने वार्षिकी प्रतिमा पूर्ण करके अनुपम यमनियम धारण करके वहाँ से पृथ्वी पर विहार किया । राजा सहस्रायुध राजश्रेणी द्वारा शोभित होकर विवाहित राजपुत्री की तरह प्राप्त हुई राज्यलक्ष्मी को भोगने लगा । एक बार उस नगरी में से मुनिगण से घिरी हुई पिहिताश्रव नाम के गणधर महाराज पधारे, तब सहस्रायुध ने उनके पास आकर ऐसी भक्ति द्वारा उनकी वंदना करके और कर्ण में अमृतवृष्टि जैसी उनकी देशना सुनी । उस देशना से इस संसार को इंद्रजाल जैसे असार जानकर उन्होंने अपना पुत्र शतबल को राज्य सौंपकर पिहिताश्रव ने गणधर के पास से दीक्षा ग्रहण की । बाद में गुरु के पास से द्विविध शिक्षाग्रहण करके उन्होंने पृथ्वी पर विहार करने लगे । एकबार सहस्रायुध मुनि विहार करते-करते, चंद्र को बुध मिलता है उस तरह, वज्रायुध राजर्षि को अचानक मिल गये । बाद में दोनों पिता पुत्र संयुक्तपन से सदा तपध्यान में तत्पर होकर परिषद् को सहन करके, पुर, ग्राम और अरण्य वगैरेह में विहार करते हुये बहुत समय बित जाने पर एक दिन की तरह सुख से निर्गमन करने लगे । बाद में दोनों मुनियों ने इषत्प्राग्भार नाम के गिरि पर गये वहाँ 'पादपोगम' नाम का अनशन ग्रहण किया । आयुष्य का क्षय होने पर वह महा मुनिवरो ने परम समृद्धिवाले तीसरे ब्रैवेयक में अहमिंद्रपन का अद्भूत पद प्राप्त किया और पचीस सागरोपम की स्थिति वहाँ निर्गमन की ।

इत्याचार्य श्री हेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये पंचमपर्वणि

श्री शांतिनाथदेवस्याष्टमनवमभववर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थ सर्ग

श्री शांतिनाथ भगवान के १०-११ वे भव का वर्णन

इस जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह मे विस्तारवाली पुष्पकलावती विजय के बारे मे सीता नदी के तट पर मध्य खंड के बीचोबीच सरोवर मे पुंडरीक कमल की तरह लक्ष्मी निधान जैसी पंडरीकिणी नामक नगरी है। उस नगरी मे पृथ्वी मे रहा हुआ चंद्र हो ऐसा शत्रुओं के मनोरथ को खंडन करनेवाला घनरथ नाम का महारथी राजा था। समुद्र को गंगा और सिंधु की तरह उसे प्रियमती और मनोरमा नाम की दो पत्नियां थी। वज्रायुध का जीव ग्रैवेयक मे से च्यवन करके महादेवी प्रियमती के उदर मे उत्पन्न हुआ। उस समय अवशेष रात्रि के स्वप्न मे बरसता, गर्जना करता और विद्युत को प्रकाशित मेघ मुख मे प्रवेश करते हुऐ उसे दिखाई दिया। उसने प्रातःकाल मे उस स्वप्न का वृतांत राजा से कहा। यह सुनकर राजा ने कहा- 'आपको मेघ के समान पृथ्वी के संतप्त को हरनेवाला पुत्र होगा' सहस्रायुध का जीव ग्रैवेयक मे से च्यवन करके महादेवी मनोरमा की कुक्षि मे अवतरित हुआ। उस समय उसने स्वप्न मे सुवर्ण के छोटे-छोटे घुंघरुओंवाली ध्वजपताकाओं से शोभा देता और लोहे की चक्रधारवाला अेक रथ मुख मे प्रवेश करते हुऐ देखा। प्रातःकाल मे पति से वृतांत बतलाते हुऐ उन्होंने कहा-हे देवी ! आपको महारथीयो मे अग्रसर पुत्र होगा।' दोनों देवीयों ने समय आने पर मानो दुसरी मूर्ति को प्राप्त हुऐ सूर्यचंद्र हो ऐसे वे दो कुमारों को जन्म दिया। पिता ने शुभदिन पर प्रियमती के पुत्र के स्वप्नानुसार मेघरथ ऐसा नामकरण किया और मनोरमा के पुत्र के स्वप्नानुसार दृढरथ ऐसा नामकरण किया। मेघरथ और दृढरथ कुमार दृढ भ्रातृभाव धारण करे अनुक्रम मे बलभद्र और वासुदेव की तरह बडे होने लगे। थोडे ही समय मे वे कामदेव का राज्यस्थान, कामिनीजन के कामणरूप और रूप के उत्कर्ष को प्रगट करनेवाला यौवनमय को प्राप्त हुआ।

एकबार सुमंदिरपुर के राजा निहतशत्रु के प्रधान ने आकर प्रणाम करके घनरथ राजा को विज्ञप्ति की-हे प्रभु ! डोलर के पुष्पों जैसी उज्ज्वल और उन-उन गुणो से प्रकाशित आपकी कीर्ति चंद्रप्रभा की तरह किसे हर्षित नहीं करती है ? हमारे राजा निहतशत्रु यहाँ से दूर रहे हुऐ है फिर भी वे आपके साथ निर्मल सुहृदपन को धारण कर रहे हैं और अभी तो वे नया संबंध बांधने के द्वारा सान्निध्य मे आकर आपके साथ विशेष स्नेह करने के इच्छुक हैं। उस निहतशत्रु राजा को तीन जगत की स्त्रीयों से अलग, उनके स्वामीपन मे रही हुई हो ऐसी तीन कन्याएँ हैं। उसमे से दो कन्या मेघरथ को एक कन्या दृढरथ को देने के इच्छुक हैं, तब उस तरह करने से आप जैसो के साथ उनका पूर्ण सौहृद हो'' तब राजा घनरथ ने मेघ के जैसी ध्वनि से कहा-हे मंत्री ! इस संबंध द्वारा हमारे दोनो का स्नेह अधिक गाढ हो। प्रवाहो से पर्वतो की तरह नदीयों की तरह सत्पुरुषो का स्नेह बारंबार बंधने से संबंधो मे हमेशा वृद्धि होती है' तब मंत्री बोला-हे देव ! कोई उत्तम ज्योतिषि को बुलवाईये मांगलिक कार्य मे उचित ऐसा लब्ध दिखाईये और शरीर शोभा से कामदेव जैसे आपके दोनो कुमारो को उन कन्याओं के

विवाह के उद्देश्य से वहां भेजे । हमारे स्वामी पर इतना अनुग्रह करें । उसी समय जोशी को बुलवाकर लब्ध का निश्चय करके दोनों कुमारों को वहाँ जाने की आज्ञा देकर राजाने मंत्री को बिदा किया । मंत्री खुश होता हुआ शीघ्र सुमंदिरपुर में आया और निहतशत्रु राजा को वह वृत्तांत सुनाकर हर्षित किया ।

बाद में राजा घनरथ ने, मूर्तिमान कामदेव के जैसे दृढरथ सहित मेघरथ को सुमंदिरपुर की ओर रवाना किया (भेजा) । सामंत, मंत्री, सेनापति और सेना से घिरे दोनों भाई सरिता की बाढ की तरह निर्विघ्न चले । कुछ दूर तक चलने पर मर्यादा पालन में सागररूपी वे सुरेंद्रदत्त राजा की सीमा के पास आये । उसी समय राजा सुरेंद्रदत्त ने शिक्षा देकर भेजे एक दूत ने आकर मेघरथ को गर्विष्ठ वचनों द्वारा इस प्रकार से कहा- “हमारे स्वामी सुरेंद्रदत्त के सुरेंद्र जैसे पराक्रमी हैं । उन्होंने कहा है कि आप हमारे देश के मध्यभाग से नहीं जा सकते हैं । इसलिये इस देश की सीमा को छोड़कर दूसरे मार्ग से जाये । क्योंकि मृगपति के मार्ग में गति क्षेमकुशल होती नहीं है” दूत के ऐसे वचन सुनकर वाचाल मनुष्यों की तरह श्रेष्ठ ऐसे मेघरथ ने कहा “हमें यह मार्ग सरल पड़ता है तो इसका त्याग हम कैसे कर सकते हैं ? नदी गढ़े भरती है, वृक्ष उन्मेल, (सुखाडती है) ऊंची भूमि खोद डालकर तथापि अपना मार्ग छोडती नहीं है, इसलिये हम इस सरल मार्ग से ही जायेंगे । यदि आप का स्वामी सरल नहीं है तो भले ही शक्ति दिखाये” मेघरथ के ऐसे सभी वचन दूतने जाकर सुरेंद्रदत्त से कहा । यह सुनकर जिसने जोर से चिल्लाते हो ऐसे हाथी की तरह तप्त तांबे के जैसे लालनेत्र करके सुरेंद्रदत्त ने युद्ध के लिये बड़ा भंभानाद करवाया । हाथी सवार, घुडसवार, पैदल और रथिकों की बड़ी सेना युद्ध के लिये एकत्रित हुई । लडाकूओं की भुजाओं के आस्फोट से धनुष की टंकार से घोड़ों की हेषावर से रथ के चित्कार से हाथियों की गर्जना से, ऊंटों के कोलाहल से खच्चरों की आवाज से और रण वाद्य के नाद से क्षण में सर्व जगत को बधीर करता सुरेंद्रदत्त राजा सर्व बल से मेघरथ का रणात्थि करने के इच्छुक सामने आया । अंधकार का नाश करने के लिये मेघरथ सूर्य की तरह मेघरथ और दृढरथ कुमार युद्ध के लिये जैतरथ में आरुढ हुए । शंकु, शल्य, चक्र, पास, दंड, गदा, तीर, मुदगल, नाराच और विशिख उसी तरह पाषाण और लोहे के गोले, कर से और यंत्रों से सर्व सैनिक अस्त्रों का मानो मेघ बरसाने लगे, उस समय में दोनों सैन्य के बीच में इतना गहरा शस्त्रपात हुआ कि खेचरों की स्त्रीयां को युद्धदर्शन करने में बाधक विघ्नकारी बन गया । समुद्र में जलजंतुओं से जलतंतु की तरह युद्ध में अस्त्रों से अस्त्र टकराकर टूटने लगे । जिनका वेग अस्खलित है ऐसे शत्रुओं ने पवन से वन की तरह दोनों कुमारों का सैन्य भग्न कर डाला ।

बाद में अद्वैत भुजापराक्रमीवाले दोनों वीर क्रोध करके बड़े सरोवर में हाथी प्रवेश करता है उस तरह वे शत्रुओं की सेना में प्रवेश किया । उस समय उछलते समुद्र की तरह अस्त्ररूपी उर्मियां द्वारा शोभा देते वे दोनों वीर युद्ध करने के लिये आये तब शत्रुओं के कोई भी सैनिक उनके सामने खड़े रह नहीं सके । दो हाथों द्वारा गन्ने केरदेते के जाडों की तरह उन्होंने सैन्यरूपी वन का मंथन शुरू कर दिया । वह देखकर सुरेंद्रदत्त युवराज सहित उनके सामने युद्ध करने दौड़ा । सुरेंद्रदत्त मेघरथ के साथ और युवान युवराज दृढरथ के साथ युद्ध करने लगा । वे परस्पर एक दूसरे के शस्त्र छेदने लगे, उसी तरह अस्त्रों को बाधित करने लगे । उसी समय वे चारोजन रणांगण में लोकपाल की तरह शोभा देने लगे ।

बाद में कराफोट करते और परस्पर तिरस्कार करते हुए वे बंध को जाननेवाले सर्प की तरह भुजा युद्ध करने लगा। वह महा पराक्रमी चारों वीर भुजारूपी शिखर को तिरछी तरह से ऊँचा करने से मानो गंजदंतवाले पर्वत हो ऐसे क्षणभर में युद्धभूमि में दिखने लगे। इस तरह युद्ध करते-करते अंत में मेघरथ और दृढरथ कुमारों ने क्षणमात्र में उन्हें खेद देकर वन के हाथी की तरह बांध लिया। वह देश में स्वेदश की तरह अपनी आज्ञा फैलाकर दोनों कुमार प्रसन्न मुख से चलकर सुमंदिरपुर नजदीक आये। उनके आने के समाचार पाकर खबर सुनकर राजा निहतशत्रु तत्काल सामने आया। 'दूसरे साधारण अतिथि को हम मान देते हैं, तो ऐसे अतिथि के मान के लिये क्या करते हैं ऐसे अतिथि का कहना ही क्या ?

राजा ने उन्हें आलिंगन करके शिर पर चुंबन किया और अहमिंद्र की तरह सुखद्वैत का अनुभव करने लगा। बाद में शुभ लग्न में प्रियमित्रा और मनोरमा नाम की अपनी दो कन्याओं का मेघरथ के साथ विधिपूर्वक विवाह किया और राजाओं ने जिनके चरणकमल धोये हैं ऐसे दृढरथ साथ तीसरी छोटी कन्या सुमती से विवाह किया। बड़ी समृद्धि से यथार्थ विवाह करने के पश्चात् राजाने बड़े सम्मान पूर्वक विदा किये वे अपनी नगरी की ओर चले। मार्ग में सुरेंद्रदत्त राजा को उसके युवराज सहित पूर्ववत् उनके राज्य पर बैठाकर वे दोनों अपनी नगरी में आये। वे महाभुज वीर मानो इंद्र और उपेंद्र प्रीतियोग से एक जगह मिले हो उस तरह अपनी पत्नियों के साथ अनेक प्रकार के भोग भोगने लगे। कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् मेघरथ की पत्नि प्रियमित्रा ने नंदिषेण नाम का और दूसरी पत्नि मनोरमा ने मेघसेन नाम का पुत्र को जन्म दिया। दृढरथ की पत्नि सुमति ने उत्तम गुणरत्न के रोहणाचलरूपी रथसेन को जन्म दिया।

एक समय राजा घनरथ अंतःपुर में यूथपति हाथी की तरह स्त्रियों, पुत्रों और पौत्रों से घिरकर विविध विनोद कर रहा था, उसी समय सुरसेना नाम की एक गणिका हाथ में मूर्गा लेकर वहाँ आई। आकर विज्ञप्ति करने लगी की-“हे देव ! यह मेरा मूर्गा अपनी जाति में मुगुटरत्न समान है। यह मुर्गा किसी दूसरे मूर्ग से कभी भी हारता नहीं। यदि कोई दूसरा मूर्गा इस मूर्ग से जीत जायेगा तो मैं उस मूर्ग को उसे भी उसके एक लाख दिनार दूंगी। हे प्रभु ! यदि किसी के पास ऐसा मूर्गा है तो वह मेरी प्रतिज्ञा (प्रण) भले ही तोड़े” उस समय देवी मनोरमा ने कहा-इस राजा ने भी बात स्वीकार करली, तब देवी मनोरमा ने वज्रतुंड नाम के अपने मुर्ग को दासी के पास से मंगवाया। तत्पश्चात् दोनों मुर्गों को पैदल सैनिकों की तरह उसे मैदान में खड़ा किया, तब विचित्र गति करते और नाचते वे दोनों परस्पर प्रहार करने लगे। उछलते हुए, गिरते, हठ जाते और हठते और प्रहार करते और झेलते हुए वे आपस में लड़ने लगे। उस उत्तम मुर्ग की कलगी लाल हो गई। मानो पक्षीरूपी दो आयुधधारी मनुष्य हो ऐसे वे दो मुर्ग बारंबार अपने तीक्ष्ण नख अपने प्रतिस्पर्धी को मारने लगे 'यह महादेवी मनोरमा का मूर्गा जीता रहा है, अरे यह सुरसेना का मूर्गा जीतता है,' इस तरह क्षण-क्षण जय के भ्रांति होने लगी, लेकिन किसी की भी विजय नहीं हुई इस तरह बहुत समय तक युद्ध चलता रहा फिर राजा घनरथ बोले-‘इन दोनों में से कोई भी जितेगा नहीं’ तब मेघरथ ने पुछा की ‘इस तरह युद्ध होने पर एक की भी

जय और एक का पराजय क्यो नहीं होता है ?' तब त्रिकाल ज्ञानी राजा धररथ बोले-“इन दोनों मूर्खों के पूर्वभव का वृत्तांत सुने -

इस जंबूद्विप में औरावत क्षेत्र के बारे में विविध रत्नों के राशि से भरपूर रत्नपुर नाम का एक नगर था। उस नगर में धनवसु और दत्त नाम के दो परस्पर गाढ़ मित्रता से शोभित वणिक् रहते थे। उनके धन की आशा निवृत्त नहीं हुई थी, चातक पक्षी की तरह वे अत्यंत प्यासे थे, इसलिये वे दोनों मित्र नाना प्रकार के गृहउपयोगी माल से बैलगाड़ी, गाड़ीयां भरकर गाव, नगर और द्रोणमुख इत्यादि में दारिद्र्य के मानो मातापिता हैं वैसे व्यापार के लिये घूमते थे। वे प्यासे, भूखे, थके, मंद, शिथिल, कृश और ठंड धूप तथा बारीश से पीड़ित ऐसे बैलों के ऊपर अतिभार लादकर चाबुक मारकर और पुछे मरोड़ कर परधार्मिक की तरह उन्हें हांकते थे। तीक्ष्ण आरों से सूजे हुए पृष्ठभाग को व्यथा देते थे, विश्राम नहीं देते थे। विलंब हो जाने पर उसे सहन न करके रास्ते में चलते-चलते खाना खा लेते थे। हमेशा कूट तोल माप, कूट मान, कूट रोकड़ और कूट अर्थवाले वचनों से मनुष्यों को मोहित करते थे। लोमड़ी की तरह धूर्त कपटी वणिक् मित्र लोगो को ठगते थे, अेक द्रव्य की अभिलाषा से कई लोगो के साथ लड़ते रहते थे। मिथ्यात्व द्वारा जिनकी बुद्धि मोहित हो गई है और हमेशा लोभ से भरे हैं ऐसे वे निर्दय, कठोर पुरुष धर्म की बात भी नहीं करते थे। इस तरह वे आर्तध्यान में गिरे हुए उन्होंने हाथी का आयुष्य बांधा। आर्तध्यान का फल तिर्यच योनि में जन्म लेने ही जैसा है।

एक बार श्रीनदी तीर्थ में रागद्वेष के वश में रहे हुए परस्पर कलह करते-करते युद्ध करके मृत्यु पाये, वहाँ से मृत्यु पाकर उसी औरावत क्षेत्र में सुवर्णकूला नदी के तट पर ताम्रकलश और कांचनकलश नाम के दो हाथी हुए। अनुक्रम में यौवनमय को प्राप्त और सातो प्रकार के मद से झरते वे दोनों गर्जेंद्र तट के वृक्ष को तोड़कर नदी में डालते हुए तट पर विहार करने लगे। एक समय वे अलग अलग में युथ के युथपति हाथी घूमते-घूमते बिंबप्रतिबिंब की तरह परस्पर को देखते-देखते एकत्रित हो गये। उस समय पूर्व जन्म के रोष से दावानलवाले दो पर्वतो की भांति वे वेग से एक दुसरे का वध करने दौड़े। बहुत समय तक दांत-दांत से सूढ़-सूढ़ से युद्ध करके जन्मांतर में युद्ध करने के लिये ही दोनों एक ही समय में मृत्यु को प्राप्त हुए।

वहाँ से मरण प्राप्त करके जंबूद्विप में भरतक्षेत्र में अयोध्या नगरी के बार में बहुत महिषीरूप (भैंस) धनवाला नंदिमित्र नाम का एक पुरुष था। उसके अतिप्रिय ऐसे महिषी के युथ में वे हाथी के बच्चों जैसे हृष्ट पुष्ट अंगोवाली दो उत्तम महिष हुए। वे महिष उस नगरी के शत्रुंजय राजा की देवानंद रानी के उदर से उत्पन्न हुए धनसेन और नंदिषेण नाम के दो कुमार दिखाई दिये, तब उन अयोध्या के राजकुमार को कुतूहल से गर्विष्ठ और यमराज के वाहन जैसे महिषों में परस्पर झगड़ा लड़वाया। वहाँ चिरकाल तक वे युद्ध करके मृत्यु पाकर उस नगरी में काल और महाकाल नाम के दृढ अंगवाला भेड़ बना। दैवयोग से अंग जगह मिलने से पूर्व के बैरी चिरकाल युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त करके ये समान बलशाली मूर्ख बने हैं। पूर्व में भी इनके आपसी युद्ध में कोई ही एक जीता नहीं है। क्योंकि दोनों समान पराक्रमी हैं। उसी तरह अभी भी कोई भी किसी से जीत नहीं सकता है।”

उस समय मेघरथ ने कहा- “यह मुर्गे केवल पूर्व जन्म के बैरी हैं, इतना ही नहीं वे विद्याधरो से अधिष्ठित हैं, इसलिये परस्पर इस तरह युद्ध कर रहे हैं” बाद में घनरथ ने झुकती झुकाकर उसे कहने की प्रेरणा की, तब मेघरथ ने हाथ जोड़कर इस तरह वह वृत्तांत कह सुनाया-

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में स्वर्णनाभ नाम के नगर के बारे में गरुड जैसा पराक्रमी गरुडवेग नाम का राजा था। उसे पाप बिना की घृतिषेणा नाम की एक रानी थी। उसने अपने उत्संग में रहे हुए सूर्यचंद्र के स्वप्न सूचित चंद्रतिलक और सुरतिलक नाम के दो कुमारों को जन्म दिया। यौवनमय को प्राप्त होते ही वे कुमार एक बार मेरुपर्वत के शिखर पर श्रीमान् शाश्वत अर्हत् की प्रतिमा को वंदन करने गये। वहाँ जिनवन्दन करके कुतूहल से घूम रहे थे, उसी समय सुवर्णशिला पर बैठे सागरचंद्र नाम के एक चारणमुनि उन्हें दिखाई दिये। प्रदक्षिणापूर्वक वे मुनि को वंदन करके हाथ जोड़कर उनके आगे बैठकर वे धर्मदिशाना सुनने लगे। देशना के अंत में नमस्कार करके वे बोले- ‘भगवन् ! अच्छे भाग्य से अज्ञानरूप अंधकार द्वारा पीड़ित ऐसे हमें आप दीपक की तरह प्राप्त हुए हो, इसलिये हे प्रभु ! हमारे पूर्वभव के स्वरूप को कहें। आपके जैसे महात्मा का ज्ञान सूर्य के उदय की तरह परोपकार के लिये है।’

मुनिवर्य बोले- “घातकीखंड द्वीप में पूर्व औरावत क्षेत्र के बारे में वज्रपुर नाम का नगर था। उसमें सभी जीवों को अभय देने की घोषणा करनेवाला अभयघोष नाम का राजा था। उसे सुवर्णतिलका नाम की प्रिया थी, उससे उसे विजय और वैजयंत नाम के दो पुत्र हुए। वे अनुक्रम में कलाकलाप पढ़कर यौवनमय को प्राप्त हुए। उसी समयकाल में वही औरावत क्षेत्र में स्वर्णद्रुम नाम के नगर के बारे में शंख के जैसा उज्ज्वल गुणवाला शंख नाम का राजा था। उसकी पृथ्वी नाम की रानी के उत्संग में रही पुष्पमाला के स्वप्न में सूचित पृथ्वीसेन नाम की पुत्री हुई थी। रूप के उत्कर्ष और विशेष चातुर्य को पोषण करनेवाले यौवन और कलाकलाप उसने संपादन किया। ‘इस पुत्री के योग्य वर यही है’ ऐसा सोचकर शंखराजाने वह कन्या अभयघोष को दी। राजा अभयघोष उस दुल्हन पृथ्वीसेना के साथ रमा के साथ विष्णु की तरह क्रीड़ा करने लगे।

एक दिन वसंतऋतु में वसंत के पुष्पों को धारण करनेवाली कोई एक दासी अभयघोष के पास आयी। उसे देखकर देवी सुवर्णतिलका को मंडित किया है, इसलिये हे प्राणवल्लभे ! इस नवीन वसंतलक्ष्मी का अनुभव करने के लिये हम उचित परिवार लेकर उस उद्यान में जाये।’ उस समय हाथ में कोटि मूल्यवाले युक्ति के पुष्पों को लेकर पृथ्वीसेन राजा के पास आयी। वह देखकर राजा ने प्रफुल्लित नेत्रों से उसकी मांग की। बाद में उचित परिवार लेकर उस उद्यान में गया, वहाँ अनेक प्रकार की क्रीड़ा की। बाद में देवी पृथ्वीसेन राजा की आज्ञा लेकर वह इधर-उधर घूम रही थी, उसी समय एक ओर दंतमंथन नाम के एक विशिष्ट ज्ञानि मुनि उसे दिखाई दिये। भक्ति से भरपूर और हर्षित होकर उसने मुनि को वंदना की। वहाँ संसार पर निर्वेद उत्पन्न करे ऐसी मुनि के पास से देशना सुनी। उसे सुनते ही तुरंत भव से भयभीत होकर राजा की आज्ञा लेकर दंतमंथन मुनि के पास से दीक्षा ग्रहण की। पृथ्वीसेना का अद्भूत चरित्र के गुणगान करता हुआ अभयघोष अपने घर गये।

एक समय राजा अभयघोष अपने मंदिर की छत पर विश्राम लेता हुआ सूर्य की तरह रत्नसिंहासन पर बैठा था । उसी समय तीर्थंकर लिंग को धारण और छद्मस्थपन से सोचते हुए अनंत नाम के अर्हत् अपने द्वारदेश में प्रवेश करते हुए उसे दिखाई दिये । तत्काल राजा संभ्रम से खड़ा हो गया और उचित आहार लेकर भगवंत के पास आकर नमस्कार किया । भगवंत ने उसकी दी हुई भिक्षा से वही पारणा किया । देवताओं ने अभयघोष के मंदिर में वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट किये । पारणा के करने के बाद प्रभु ने अन्यत्र विहार किया । छद्मस्थ प्रभु दुसरे मुनियों की तरह किसी भी स्थान पर नहीं रहते थे । तत्पश्चात् जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे वे अनंतप्रभु विहार करते-करते वज्रपुर नगर में आकर पधारे । यह खबर सुनकर राजा अभयघोष ने वहाँ आकर भक्ति से तीन प्रदक्षिणा करके वंदना करके और संसार का भेदन करनेवाली धर्मदेशना सुनी । देशना के अंत में हे स्वामी ! इस आपकी प्रवृत्ति पर के उपकार के लिये ही है, इसलिये मैं आपसे विज्ञप्ति करता हूँ कि हे विश्वपूजनीय करुणानिधि ! जहाँ तक मेरे पुत्र के ऊपर पूरी पृथ्वी का भार रखकर आपके चरणकमलो में दीक्षा लेने के लिये वापस न लौटु वहाँ तक आप यहि बिराजिये ।' धर्मकार्य में प्रमादी नहीं होना चाहिए'-ऐसा प्रभु बोले, तब राजा अभयघोष घर आकर अपने दोनों पुत्रों को अलग-अलग कहा हे वत्स विजय ! इस क्रमागत राज्य को तुम ग्रहण करे और वत्स वैजयंत ! तु विजय का यौवराज्य स्वीकार करें । मैं श्री अनंतनाथ प्रभु के पास से दीक्षा लूंगा जिससे मुझे दुबारा यह अति गहन संसार में आना न पड़े ।' तब दोनों पुत्र बोले-पूज्य पिताजी ! जिस तरह आप इस संसार से भयभीत हैं, उसी तरह हम भी इस संसार से भयभीत हैं, इसलिये हम भी दीक्षा ग्रहण करेंगे, क्योंकि दीक्षा लेने से इस लोक में आपकी सेवा और परलोक में मोक्ष प्राप्ति ऐसे दो फल हमें प्राप्त होंगे ।' 'पुत्रो ! तुम धन्य हो' ऐसा बोलते राजा बड़ी उदारता से अपना विस्तृत राज्य अन्य किसी को दे दिया और अपने दोनों पुत्रों को साथ में लेकर स्वयं श्री अनंतनाथ प्रभु के पास गये । वहाँ सर्व संघ की समक्ष उन्होंने दीक्षा ग्रहण की । वे तीनों राजमुनियों में अभयघोष ने अति उग्र तप करके बीस स्थानको की आराधना की और तीर्थंकरनामकर्म उपार्जित किया । आयुष्य पूर्ण होने पर वे तीनों काल समाप्त करके देवलोक में बाईस सागरोपम के आयुष्यवाले देवता बने ।

इस जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह के आभूषण जैसा पुष्पकलावती नाम के विजय में पुंडरीकिणी नाम की नगरी है । उस नगरी में हेमांगद नाम का राजा था । इंद्र की तरह उसे वज्रमालिनी नाम की प्रिया थी । अच्युत देवलोक में से च्यवन करके अभयघोष का जीव उस वज्रमालिनी ने कुक्षी में आया । चौदह स्वप्न देखे जिसमें तीर्थंकर महिमा को सूचित किया है ऐसा एक पुत्र को जन्म दिया इंद्रादिक ने आकर उसका जन्माभिषेक किया । पिताने घनरथ नाम रखा । वह घनरथ तीर्थंकर होकर अद्यापि गृहवास में रहकर पृथ्वी पावन कर रहे हैं । उसी तरह विजय और वैजयंत का जीव देवलोक में से च्यवन करके चंद्रतिलक और सूर्यतिलक नाम का विद्याधर हुआ है ।" इस तरह सागरचंद्र मुनि के पास से अपने पूर्वभवं को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए । बाद में वे मुनि को नमस्कार करके अपने पूर्व जन्म के पिता जो आप हैं, उसे देखने के लिये वे भक्ति से यहां आये हैं । हे स्वामी ! उन्होंने कुतूहल से इस मूर्गे में प्रवेश करके युद्ध करवाया है, वह आपके दर्शन के उपायरूप है । यहाँ से वे भोगवर्द्धन नाम

का गुरु के पास से दीक्षा लेकर कर्म का क्षय करके मोक्षपद को प्राप्त होंगे । इस तरह का वृत्तांत सुनकर पूर्व की तरह अपने पुत्र की तरह माननेवाले वे विद्याधर प्रगट होकर घनरथ राजा के सामने झुककर अपने घर की ओर चले ।

यह वृत्तांत सुनकर वे मुर्गे जातिस्मरणज्ञान पाकर विचार करने लगे कि “अहो ! यह संसार ऐसे कलेशो का कारण है । पूर्व जन्म मे वणिक होकर हमने कुछ भी पुण्य उपार्जन नहीं किया । दुसरा सब कुछ दूर रहा, लेकिन जो मनुष्य जन्म पुनः मिलना अति दुर्लभ है वह हमने निष्फल गवा दिया । अहा ! यह जन्म लुब्धक की तरह अनेक उपायो से हमने लोगो और प्राणीयों के साथ छल किया । चिरकाल असंतोषी होकर झुठे मान सन्मान, खोटे माप तौल इत्यादि से लोगो को ठग कर अन्त मे भीतर ही भीतर कलह करनेवालो हमे धिक्कार है ! उसके परिणाम स्वरूप आर्तध्यान मे पड़े आपस मे एक दुसरे को मारकर मृत्यु को प्राप्त हुऐ और अनेक बार तिर्यचयोनि मे उत्पन्न होकर पाप का फल प्राप्त किया” ऐसा सोचकर राजा को प्रणाम करते हुऐ अपनी भाषा मे बोले ‘हे देव ! आज्ञा करे । अब हम हमारी आत्मा का हित किस तरह करें ? घनरथ राजा ने अवधिज्ञान से जानकर कहा- ‘तुम्हे अर्हत् देव, साधु गुरु और जीवदयारूपी धर्म की शरण मिले’ घनरथ का यह वचन स्वीकार करके वे दोनो मुर्गे तुरंत अणसण अंगीकार करके मृत्यु पाये । वहां से मृत्यु पाकर वे भूरत्ना नाम की बडी घाटी मे ताम्रचूल और स्वर्णचूल नाम के दो महर्दिक भूतनायक देव हुऐ । बाद मे अवधिज्ञान से पूर्व जन्म को जानकर विमान बनवाकर वे अपने पूर्व जन्म के उपकारी मेघरथ के पास आये और भक्ति से मेघरथ को प्रणाम करके वे बोले- ‘हे स्वामी ! आपके प्रसाद से हम हाल व्यंतरेश्वर हुऐ है । हमने हमारे किये पापकर्म से मनुष्य मे से हाथी, महिष, भेडीया और बाद मे मुर्गे की तरह उत्पन्न होकर हाल मे हम उत्कृष्ट जन्मवाले देव हुऐ है । हे नाथ ! यदि आप मुर्गे के जन्म मे हमे शरणरूप न हुऐ होते हुऐ तो प्रतिदिन असंख्य कीडो का भोजन करनेवाले हम कौन सी गति मे जाते ? अब प्रसन्न हो, हमारे पर अनुग्रह करें और आपने ज्ञान से पूर्व का जाना है तथापि इस विमान पर आरुढ होकर सम्पूर्ण पृथ्वी का अवलोकन करें ।” इस तरह उन्होंने प्रार्थना की, इसलिये दाक्षिण्यात के क्षीरसागर जैसे मेघरथ परिवार सहित उनके विमान पर आरुढ हुऐ । विमान आकाशमार्ग से मन के वेग की तरह चलने लगा, उस समय वे पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ दर्शनीय वस्तु आती है वह वह उंगलि से दिखाकर कहने लगे ।-

“देखे, यह अपनी वैदुर्य मणिमय प्रभा से दिशाओ के मुख को दुर्वाकुरित करती दिखाई दे रही है वह चालीस योजन ऊँची मेरुगिरि की चूलिका है । उसकी चारो दिशाओ मे जो यह चंद्राकार शिला है वह अर्हत् के जन्माभिषेक से पवित्र और सिंहासन से अंकित हुई । यह शाश्वत अर्हत् के ऊँचे चैत्य है और उसमे रहे अर्हत्बिंब के पूजन मे जिनके पुष्प कृतार्थ होते है वह यह पांडुक नाम का वन है । यह छै वर्षधर पर्वत है । उसके ऊपर यह छै पवित्र जलवाले द्रह है जिसमे से निकली पृथ्वीतल के माथे के सिंदुर की तरह जैसी चौदह यह महानदीयां है । विद्याधरो की समृद्धि द्वारा भरपूर और अपने-अपने क्षेत्रार्थ की मर्यादा के शिलाभीत जैसे यह वैताढ्य पर्वत है । उनके कूट ऊपर शाश्वत प्रभु की प्रतिमा सहित यह सिद्धचैत्य है । ऊँचे जालकटक द्वारा शोभा देती विद्याधरो की विलासभूमि यह जंबूद्विप की

वल्याकर मे रही जगती है मगरमच्छ और झुंड वगेरेह जलचर जीवो का बडा निवासस्थान यह लवणौदधि है । काले समुद्र से लिप्त यह घातकीखंड नाम का द्विप है । उसमे अर्हत के स्नात्र की शिलाओ से अंकित यह दो क्षुद्र मेरुगिरि है । शाश्वत अर्हत द्वारा पवित्र यह इष्वाकार नाम के दो पर्वत है । घातकीखंड के जैसा यह अर्ध पुष्कर द्वीप है, उसके बाद मानुषोतर पर्वत है । उसके आगे मनुष्य भूमि नहीं है” इस तरह आख्यानपूर्वक पृथ्वी को दिखाकर मेघरथ को वापस पुंडरीकिणी नगरी मे वापस लाये । बाद मे उन्हें राजमंदिर मे छोडकर प्रणामपूर्वक रत्नवृष्टि करके वे अपने स्थान पर लौट गये ।

अन्यदा लोकांतिक देवताओ ने आकर घनरथ राजा से कहा ‘हे स्वामी ! तीर्थ मे पधारे’ यह सुनते ही स्वयंबुद्ध होने पर भी बोध पाये, तब राज्य ऊपर मेघरथ और यौवराज्य पद पर दृढरथ को बैठाकर वार्षिक दान देकर तुरंत उन्होंने दीक्षा ग्रहण की । थोडे काल मे उन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । भावि प्राणीयों को बोध करते तीर्थकर अनुक्रम मे पृथ्वी पर विहार करके आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष मे जायेंगे ।

निरंतर अनेक राजाओं के मुगुट द्वारा जिसके चरणकमलो की पीठ घिस जाती है ऐसा मेघरथ राजा दृढरथ के साथ पृथ्वी पर राज्य करने लगे । एक बार पौरजनो के आग्रह से राजा मेघरथ क्रीडा करने की इच्छा से देवमरण उद्यान मे आये । वहाँ एक अशोकवृक्ष के नीचे अपनी प्रियमित्रा प्रिया सहित बैठकर उन्होंने मधुर संगीत आरंभ किया । उस समय उनके आगे हजारो भूत अपूर्व संगीत करने की इच्छा से प्रगट हुऐ । कोई विशाल उदर द्वारा लंबोदर (गणेश) जैसे लगते थे, कोई कृश उदर से मानो पाताल को धारण करते हो ऐसे दिखाई दे रहे थे, कोई लंबे और कठोर चरण से ताड पर चढे हो ऐसे लगते थे, कोई लंबी भुजाओं से अजगर सहित वृक्ष जैसे लगते थे, किसीने सर्प के आभूषण पहने थे, किसीने नेवले के आभूषण धारण किये थे, किसीने चिते के चर्म ओढे थे, किसीने व्याघ्र चर्म के वस्त्र धारण किये थे, किसीने अंगराग लगाया था, किसीने रुधिर के विलेपन किये थे, किसीने उल्लू के कर्णाभरण पहने थे, किसीने गिद्ध के मुगट पहने थे । किसीने चूहों की माला, किसीने गिरगिट की माला और किसीने मुंडमाल पहनी थी । किसीने हाथ मे खोपडीयां रखी थी, कोई ठहाके मारकर हंस रहे थे, कोई कोलाहल कर रहे थे, कोई घोडे जैसा आवाज करते थे, कोई हाथी जैसी गर्जना कर रहे थे, कोई भुजा के आस्फोट कर रहे थे, कोई ताल दे रहे थे, कोई मुखवाद्य बजा रहे थे, कोई कक्षा बजा रहे थे, इस तरह सभी भूत एकत्रित होकर मानो पृथ्वी को फोडते हो और आकाश तोडते हो ऐसे बडे आंडबर से प्रचंड तांडव करने लगे । इस तरह राजा को संतोष दिलाने के लिये तांडव कर रहे थे, उसी समय आकाश मे एक विमान प्रगट हुआ । उसमे रति के साथ कामदेव हो ऐसा सुंदर आकृतिवाला पुरुष अेक युवती के साथ रहा हुआ दिखाई दिया । उसे देखकर प्रियमित्रा देवी ने राजा से पुछा-‘प्रभो ! यह पुरुष और स्त्रि कौन है और यहाँ किस लिये आये है ? मेघरथ ने कहा-

“इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र के बारे मे वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी मे अलका नाम की उत्तम नगरी है, वहाँ विद्युद्रथ नाम का विद्याधरो का राजा था । उसे मानसवेगा नाम की प्रियवृन्दा देवी है । सिंह के रथ के स्वप्न से सूचित सिंहरथ नाम का उसे एक पराक्रम द्वारा प्रफुल्लित भुजावक्षवाला पुत्र

हुआ और उस रोहिणी के चन्द्र तरह उत्कृष्ट कुल में जन्मी स्वानुरुपा वेगवती नाम की एक कन्या से विवाह किया। राजा विद्युद्रथ ने उसे युवराज पद दिया। 'जब पुत्र कवचधारी होता है तब राजाओं को इस तरह करना उचित है' राजा सिंहरथ लीलोधान और क्रीडावापिका वगैरेह स्थानों में ललना को साथ में रखकर वन में सिंह की भांति स्वेच्छा से सुख में रहने लगा।

अकदा विद्युद्रथ राजा संसार में सर्व पदार्थ विद्युत के जैसे चलित है ऐसा धार परम वैराग्य को प्राप्त हुए। तब तुरंत सिंहरथ को राज्य पर बैठाकर उन्होंने गुरु के पास से 'सर्व सावद्य विरति' ग्रहण की। अनुक्रम में अति संवेग को पाकर नियम और ध्यान द्वारा अष्टकर्म का क्षय करके वे मोक्ष में गये। बाद में सूर्य जैसे प्रतापी राजा सिंहरथ ने अति मुश्किल से मिलता है ऐसा विद्याधरो का चक्रवर्तीपन प्राप्त करके। एक बार रात्रि में योगी की तरह निद्रारहित होकर सिंहरथ विचार करने लगा- 'अहो ! अरण्य में मालती के पुष्पो की तरह मैंने अपना जीवन व्यर्थ गवाया। केवलज्ञानधारी संसारसागर से तैरने में नौकारूपी समवसरे हुए प्रभुओं के दर्शन मैं कर नहीं पाया और उनकी पूजा भी नहीं की, अब साक्षात् श्री जिनेश्वर को देखकर मेरी आत्मा को पवित्र कर लु। अक बार भी उनका दर्शन अच्छे स्वप्न की तरह इच्छित मनोरथ देता है' इस तरह सोचकर सिंहरथ राजा पत्नि सहित घातकीखंड द्वीप के पश्चिम विदेह में सीता नदी के उत्तरीय तट पर आये हुए सूत्र नाम के विजय में खड्गपुर नाम की नगर में गये वहाँ श्री अमित वाहन तीर्थकर के दर्शन किये। भगवंत को प्रणाम करके राजा ने संसारसागर में नाविका जैसी धर्मदेशना सुनी। दुःस्वरूप अग्नि में जल के छिड़काव जैसी देशना सुनकर अर्हत प्रभु को झुककर वापस अपनी नगरी की ओर मुड़ गये। उस समय गाढ बरु के वृक्ष द्वारा जिसका भाग व्याप्त है ऐसे समुद्र में जहाज की तरह गगनपथ में उसकी गति स्खलित हो गई। 'इस मेरी गति को किसने स्खलित किया ? यह जानने के लिये उसने नीची दृष्टि की, उसी समय वहाँ रहा हुआ मैं उसके देखने में आया। तब कोप से उठाकर मुझे उड़ाने के लिये मेरे पास आया, तब मैंने बाये हाथ से उसके बाये हाथ पर आक्रमण किया। उससे वह सिंहकी तरह आक्रांत करते हुए हाथी की तरह अति विरस चिल्लाने लगा। अपने पति को कष्ट में देखकर उसकी भार्या परिवार सहित मेरी शरण में आयी तब मैंने उसे छोड़ दिया। मेरे छोड़ देने पर ऐसे विविधरूप धारण करके मेरे पास आकर संगीत करने लगा।'।

प्रियमित्रा ने फिर से पूछा- 'प्रिय ! पूर्व भव में इसने क्या शुभ कर्म किये हैं, जिससे इसे इतनी बड़ी समृद्धि उपलब्ध हुई है ? तब मेघरथ बोले-

“पुष्करार्ध द्वीप में पूर्व भरतक्षेत्र के बारे में संघपुर नाम का एक बड़ा नगर है उस नगर में राज्यगुप्त नाम का एक गरीब कुलपुत्र रहता था। वह दुसरो के काम करके अपना भोजन निर्वाह करता था। उसे शंखिका नाम की एक अनुरागी और पतिभक्ता स्त्रि थी। दोनों दंपति हमेशा दुसरो के घर के काम करते थे। अक दिन वे स्त्रि-पुरुष साथ में फल लेने के लिये विविध वृक्षों से व्याप्त संधगिरि नाम के बड़े पर्वत पर गये। वहाँ पर वे पके हुए फल के लिये घूम रहे थे, ऐसे समय में सर्वगुप्त नाम के एक महामुनि को देशना देते हुए उन्होंने देखा। विद्याधरो की सभा के बीच में बैठे उन मुनि के पास आकर उन्हें भक्ति से नमस्कार करके बैठे। मुनीश्वर ने उन्हें विशेष धर्मदेशना दी। दुःखी जीवों पर

महान पुरुषो का अधिक वात्सल्य होता है । देशना के अंत में बोले-

‘हे प्रभु ! हम पापी हैं फिर भी हमारा कोई पूर्व पुण्य होगा, जिससे हमें आपके दर्शन हों । हे जगत्पूज्य ! आप विश्व के हितकारी हैं, तथापि हमारी पीड़ा के लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे उद्धार के लिये हमें कोई भी तप बतलाईये’ उनकी योग्यता देखकर महामुनि सर्वगुप्त ने ‘बत्तीस कल्याणक’ नाम का एक तप उन्हें बतलाया । उस तप को अंगीकार करके अपने घर आये और बत्तीस दिन बत्तीस उपवास द्वारा तप किया, पारणा करने के समय द्वार पर दृष्टि लगाकर किसी अतिथि मुनि की राह देख रहे हैं उसी समय धृतिधर नाम के एक साधु को अपने घर में प्रवेश करते हुये देखा । उन्हें दोनों ने भक्ति से भातपानी द्वारा प्रतिलाभित किया । अन्यथा वे सर्वगुप्त मुनि विहार करते-करते पुनः वहाँ पहुँच गये । तब वे उनके पास आकर धर्म सुनने लगे । देशना के अन्त में वे विवेकपरायण पतिपत्नी मनुष्य जन्मरूपी वृक्ष के फलरूप दीक्षा ग्रहण की । बाद में राज्यगुप्त मुनि ने गुरु आज्ञा से आचाम्लवर्द्धमान नाम का दुस्तप तप करने लगे । अन्त में अनशन करके चारशरणों का आश्रय ले कर, मृत्यु प्राप्त करके ब्रह्मदेवलोक में दस सागरोपम के आयुष्य से देवता हुये । वहाँ से च्यवन करके विद्युत्प्रथ राजा का पुत्र विद्याधर पति यह सिंहस्थ हुआ है । उसकी पत्नी शंखिका भी विविध तपस्या करके ब्रह्मलोक में देवता हुई थी । वह वहाँ से च्यवन करके यहाँ उसकी पत्नी बनी हुई है । अब यहाँ से अपने नगर में जाकर पुत्र को राज्य सौंपकर वह सद्बुद्धिमान पुरुष मेरे पिता के पास से दीक्षा ग्रहण करेगा और तप ध्यानादिक से आठ कर्म का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धिपद को पायेंगे ।

उनके ऐसे वचन सुनकर मेघरथ ने भक्ति से नमस्कार करके राजा सिंहस्थ अपने नगर में गया और पुत्र को राज्य सौंपकर मन का दमन करनेवाला सिंहस्थ राजा श्री घनरथ स्वामी के पास से व्रत लेकर तपस्या करके सिद्धिपद को प्राप्त हुआ । राजा मेघरथ परिवार सहित देवमरण उद्यान में से वापस आकर पुंडरीकिणी नगरी में प्रवेश किया । एक बार विद्वानों में मुख्य ऐसा मेघरथ ने पौषधागार में पौषध अंगीकार करके श्री भगवंत भाषित धर्म का व्याख्यान करने लगा । उस समय भय से कंपित और मरणोन्मुख हो उस तरह दिन दृष्टि फैलाता-एक पारावत पक्षी उसके उत्संग में आकर गिरा । उसने मानुषी भाषा में मेघरथ से अभय की याचना की, तब राजाने कहा ‘भयभीत न हो, भय न रखो ।’ ऐसे आश्वासन से वह पक्षी पिता के उत्संग की तरह बालक की तरह वह कारुण्यसागर राजा के उत्संग में स्वस्थ होकर बैठा । थोड़ी देर बाद हे राजन् ! यह मेरा भक्ष्य है, जल्दी से इसे दे दो, इस तरह कहता हुआ एक बाज पक्षी सर्प के पिछे गरुड पड़ता है उस तरह उसके पिछे आया । राजाने बाज पक्षी से कहा-“तुम्हें यह पक्षी मैं कदापि नहीं दूंगा क्योंकि शरणागत में आये को वापस सौंप देना यह क्षत्रिय धर्म नहीं है । और अरे पक्षी ! तेरे जैसे बुद्धिमान को दुसरे के प्राणों से अपने प्राणों का पोषण करना योग्य नहीं है, उचित नहीं है । तुम्हारे शरीर पर से एक पंख उखाड़ने में से जो वेदना पीड़ा होती है वैसी पीड़ा दुसरे को भी होती है । तो उसे मार डालने से कितनी पीड़ा होगी उसका तुम विचार करो । और इस पक्षी के भक्षण से तुम्हें मात्र क्षणभर की तृप्ति होगी लेकिन इस बिचारे पक्षी का पूरे जन्म का विनाश हो जायेगा । पंचेन्द्रिय प्राणीयों के वध करने से और उसका मांस खाने से वे नरक में जाते हैं,

वहाँ दुःसह पीडा को भोगते हैं। जो परलोक में अनंत दुःख के लिये और इस लोक में छणभर सुख के लिये प्राणी हिंसा हो कौन सा विवेकी पुरुष क्षुधातुर होगा, तो ऐसा करेगा क्या ? दूसरे भोजन से भी क्षुधा शांत होती है। जो पिताम्नि शक्कर से शमन होती है वह दूध से किस तरह शांत होगी। जीवहिंसा से प्राप्त हुई नरक की व्यथा सहन किये बिना किसी भी प्रकार से शांत नहीं होता है, इसलिये हे पक्षी ! तुम प्राणीवध छोड़कर और धर्म का आचरण करो, जिससे कई भव तक सुख प्राप्त करेंगे। इस बारे में तुम स्वयं विचार करो।” तब बाजपक्षी मनुष्य भाषा में राजा के बारे में बोला- “हे राजन् ! यह कपोत मेरे भय से तुम्हारी शरण में आया है। वैसे मैं भी क्षुधा से पिडित हूँ तो मैं भी किसकी शरण में जाऊँ वह कहे। करुणाधनवाले महापुरुष सभी के अनुकूल होते हैं। हे नृपति ! जिस तरह आप पारावत का रक्षण कर रहे हैं उसी तरह मेरा भी रक्षण करें, क्षुधा पाडित ऐसे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। जब प्राणी स्वस्थ हो तब वह धर्माधर्म का विचार करता है। धर्मप्रिय पुरुष भी क्षुधातुर होता है तब वह क्या पाप नहीं करता है ? तब अब धर्म की बात पुरी हुई। मेरे भक्ष्यरूप यह पक्षी मुझे दे दो। अंक को मारना और एक को बचाना, यह कैसा धर्म कहलाता है। हे महिपाल ! अपने द्वारा मारे हुये प्राणी के ताजे मांस से ही मेरी तृप्ति होती है, दूसरे भोजन से तृप्ति नहीं होती है। मैं मांस खानेवाला हूँ” तब राजा बोले- ‘अरे पक्षी ! सावधान हो जाओ, मृत्यु को प्राप्त मत होना। इस कपोत के साथ तौलकर मैं मेरे देह का मांस तुम्हें मैं दूंगा।’

बाजपक्षी ने इस तरह मान्य किया, तब राजाने तराजु मंगावाकर एक ओर कपोत को रखकर और दूसरी ओर अपने शरीर का मांस छेदकर उसके टूकड़े रखने लगा। ज्यो-ज्यो मांस को काटकर तराजु में रखने लगा त्यों-त्यों कपोत का भार बढ़ने लगा। कपोत के भार को बढ़ता देखकर अतुल साहसवाला राजा अपना पुरा शरीर लेकर तराजु में बैठा। जब राजा तुला पर आरुढ़ हुये तब यह देखकर सारा परिवार हाहाकार शब्द से आकुल-व्याकुल होकर शंसयरूप तुला पर आरुढ़ हो गया। सामंत, अमात्य और मित्र राजा के पास आकर कहने लगे - “अरे प्रभु ! हमारे दुर्भाग्य से आप यह क्या कर रहे हैं ? इस शरीर द्वारा आपको इस पृथ्वी का रक्षण करना चाहिये, क्या आप अंक पक्षी के रक्षण के लिये अपने शरीर का त्याग क्यों कर रहे हो ? अथवा यह पक्षी कोई मायावी देव या दानव होना चाहिए। क्योंकि सामान्य पक्षी में इतना भार संभव नहीं है” इस प्रकार वे कह रहे थे उसी समय मुगट और कुंडल और माला धारण किये हुये देव मानो तेज राशि हो ऐसा प्रगट हुआ और बोला- “हे नृदेव ! पुरुषों में आप एक ही पुरुष हैं जो स्वस्थान से मेरुपर्वत की तरह अपने पुरषार्थ से चलित नहीं हुये हैं। ईशानेंद्र ने अपनी सभा में आपकी प्रशंसा कर रहे थे वह मुझसे सहन न हो सकी, इसलिये आपकी परीक्षा करने के लिये मैं आ रहा था उस समय में पूर्वजन्म के बैर से इन दो पक्षियों को युद्ध करते देखा, तब मैं उसमें अधिष्ठित हो गया, इसलिए यह सब अपराध मेरा है क्षमा करें” इस प्रकार कहकर राजा को पूर्ववत् सज्ज करके वह देव स्वर्ग में चला गया। उस समय सामंत इत्यादि विस्मय में पड़े गये और राजा से पुछने लगे- ‘यह बाजपक्षी और पारावत पक्षी पूर्वजन्म में कौन थे ? उनमें बैर होने का कारण क्या था, हेतू क्या था ? और यह देव पूर्व भव में कौन था। वह बतलाईये। तब अवधिज्ञान द्वारा जानकर

उनका वृत्तांत कहने लगे-

“इस जंबूद्विप मे औरावत क्षेत्र के मंडनरूप-पद्मखंड जैसा पद्मनीखंड नाम का एक नगर था । उस नगर मे संपत्ति के सागर जैसा सागरदत्त नाम का श्रेष्ठी रहता था । उसे विजयसेना नाम की अेक निर्दोष स्त्री थी । उन्हें धन और नंदन नाम के दो पुत्र हुऐ । अनुक्रम मे वृद्धि पाकर वे युवावस्था मे आऐ । पिता की समृद्धि से उद्धत ऐसे वे विविध क्रीडा द्वारा विहार करते हुऐ काल निर्गमन हुऐ । एक बार उन्होंने अपने पिता सागरदत्त से कहा- ‘हे तात् ! हमे व्यापार करने के लिये देशांतर मे जाने की आप आझा दे’ हर्षित पिता ने उन्हें आझा दि । ‘पुत्र का प्रथम उद्योग पिता को खुश रहना है’ विविध पंसारि (गृहवस्तु) की वस्तुओं को लेकर बडे उत्साह से चले । अनुक्रम मे नागपुर नाम के अेक बडे नगर मे आये । वहाँ व्यापार करते हुऐ, दो श्वान के बीच एक भक्ष्य की तरह, एक बडा मूल्य रत्न प्राप्त हुआ । वे रत्न के लिये वे क्रोधित होकर दुर्दांत वृषभ की तरह शंखनदी के तट पर आकर आपस मे युद्ध करने लगे । युद्ध करते-करते वे एक अगाध खाई मे गिरकर मृत्यु प्राप्त हुऐ लोभ किसके लिये मृत्यु न बने ? वहाँ से मरकर वे दोनो बंधु यहाँ पक्षीरूप मे उत्पन्न हुऐं पूर्व जन्म के बैर के कारण इस भव मे भी परस्पर बैर धारण करते है । अब देवता के पूर्वभव को सुने-

इस जंबूद्विप मे पूर्व विदेह के आभूषण तुल्य सीता नदी के दक्षिणी तट पर रमणीय नाम का विजय है उसके बारे मे शुभा (सुभगा) नाम की नगरी है । उसमे स्तिमितसागर नाम का एक राजा थे । आज से पांचवे भव मे उसका अपराजित नाम का मैं पुत्र हुआ था । उस समय मैं बलदेव था और यह जो दृढरथ है यह मेरा अनुज बंधु अनंतवीर्य नाम का वासुदेव था । उस समय मे महाभुज दमितारि नाम का प्रतिवासुदेव था, उसे कनकश्री कन्या के लिये हमने युद्ध मे उसे मार डाला था । वह संसाररूपी अरण्य मे भटक करके जंबूद्विप के भरतक्षेत्र मे आये हुऐ अष्टापदगिरि के मूल मे निकृति नामक सरिता के तट पर सोमप्रभ नाम का तापस का पुत्र हुआ । आयु बढने पर बालतप का आचरण करके वह सुरुप नाम का देवता बना । उस देवने जब ईशानेंद्र ने मेरी प्रशंसा की तब सहन न हो सकने के कारण यहाँ आया और इन पक्षीयो मे अधिष्ठित होकर उसने मेरी परीक्षा ली”

राजा के ऐसे वचन सुनकर उस कपोत और बाज को अपना जातिस्मरण ज्ञान हुआ । तुरंत वे दोनो पक्षी मुर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे । राजा के सेवको ने उन्हे पंखे से हवा के झोंके डाले और जल का छिंडकाव किया । तब वे सो कर उठे हो उस तरह वे संझा पाये । बाद मे वे अपनी भाषा मे बोले- “हे स्वामी ! आपने हमे अच्छा बोध दिया । हमे पूर्व जन्म का दुष्कृत ऐसी अधम योनि के कारणभूत बना है । हे नाथ ! उस समय अति लोभ से पराभव पाये हमने युद्ध करके केवल रत्न खोया है साथ ही साथ मनुष्य जन्म भी व्यर्थ गवाया है । अभी भी हमे तो नारकी जन्म ही प्राप्त हुआ था, लेकिन आपने कुरें मे गिरते अंध की तरह हमे नरक मे गिरते हुऐ बचा लिया है । हे स्वामी ! अब उन्मार्ग से हमारी रक्षा करो और सन्मार्ग बताये जिससे हमे शुभ स्थान प्राप्त हो” तब अवधिज्ञानरूपी तरंग के समुद्र मेघरथराजा को उनकी योग्यता के बारे मे विचार करके यथाकाल मे प्राप्त हुऐ अनशन अंगीकार करने की आझा दि । उस तरह अनशन अंगीकार करके शुभ चितवाले वे मृत्यु पाकर भुवनवासी देवताओ मे देवपन मे

उत्पन्न हुए।

बाद मे राजा मेघरथ पोसह पारर कर मानो मूर्तिमान न्याय हो उस तरह पृथ्वी का यथायोग्य तरीके से पालन करने लगे। अन्यदा कपोत और बाज पक्षी का वृत्तांत स्मरण करके राजा समतारुप वृक्ष के बीजभूत परम वैराग्य को प्राप्त हुए, तब अष्टम तप करके उपसर्ग और परिषहो को सहन करने के लिये शैल की तरह सर्वांग निश्चल होकर कायोत्सर्ग मे स्थित हुए। उस समय ईशानेंद्र ने अंतःपुर मे बैठे-बैठे-“नमो भगवते तुभ्यं” इस तरह बोलकर उन्हे नमस्कार किया। उस समय उनकी इंद्राणीयो ने पुछा की ‘हे स्वामी ! आप तो सभी जगत को नमन करने योग्य है, फिर भी अभी अति भक्ति से किसे नमस्कार किया ? तब ईशानेंद्र बोले-“अहो देवीयो ! मानवलोक मे सरसी मे कमल की तरह पुंडरीकिणी नगरी मे के घनरथ के पुत्र मेघरथ नाम का अष्टमतप करके शुद्धध्यान मे लीन होकर महाप्रतिमा धारण करके रहे हैं। वे इस भरतक्षेत्र के आभूषणरूपी तीर्थकर होनेवाले हैं इसलिये उन्हे देखकर मैंने यहां से बैठे-बैठे उन्हे नमस्कार किया है। उस धीर महात्मा को इस ध्यान मे से चलित करने को इंद्र सहित सुर-असुर का समूह भी समर्थ नहीं है, तो मनुष्य मात्र क्या है ?”

यह सुनकर ईशानेंद्र की सुरुपा और अतिरुपा नाम की दो मुख्य इंद्राणीयो से वह प्रशंसा सहन न होने पर मेघरथ राजा को क्षोभ करने के लिये उनके पास आयी। उन्होंने पहले लावण्यजल की सरिता के भांति और जगत को जीतनेवाले कामदेव के किल्ले के जैसी उसी तरह विजय करनेवाले अस्त्र जैसी कुछ स्त्रियां निर्माण की गई। बाद मे कामदेव को उत्पन्न करनेवाली औषधिरुप विविध विकारो से अनुकूल उपसर्ग करने लगी। कोई रमणी मिथ्या छोड़े हुए केशपाश को बांधने के उद्देश्य से कामदेव के स्थानरुप भुजामूल दिखाने लगी। कोई अधोवस्त्र ढीले करके गलेफ मे से निकाला हुआ दर्पण हो ऐसा जघन दिखाने लगी। कोई सरवीजन को बुलाने के बहाने से बारंबार कामदेव के अस्त्र की तरह उपर उठाकर भूलता का उत्क्षेप करने लगी। कोई बाला अनुरागिणी बनकर गांधारग्राम के साथ मुखदृष्टि के विकार करके क्कामदेव के वृत्तांत को मधुरालाप मे गाने लगी। कोई लीलावती सुंदरी वारंवार अनुभव कि हुई संभोग क्रीडा का बखान करना और कामशास्त्र की कथा का आलाप करने लगी। कोई कामिनी पित्तादिक प्रकृतियों के योग्य ऐसी रति संबंधी साधन धातुरस से आलेखन करने लगी। कोई बारंबार आलाप, कोई स्पर्श, कोई दृष्टिप्रसाद, कोई आलिंगन की याचना करने लगी। उसके अलावा दुसरे विविध प्रकार के कलाकलाप वे प्रकाशित करने लगी। इस तरह उन देवीयों ने राजा के साथ रात्रि को लेकर प्रातःकाल तक विकृतियां की, लेकिन वे वज्र के उपर टाकने के प्रहार की तरह वे राजा पर निष्फल हुई। बाद मे देवीयो ने सभी विकृतियां समेट ली और मेघरथ को धन्यवाद देकर नमस्कार करके पश्चाताप करती हुई वे ईशानेंद्र की दोनो इंद्राणीयां अपने स्थान पर लौट गई।

प्रातःकाल मे मेघरथ प्रसन्न होकर प्रतिमा पार कर पोसह भी पारकर और रात्रि का वृत्तांत सुनकर परम संवेग को प्राप्त हुए। प्रियमित्रा देवी भी अपने प्रिय को संवेग जानकर खुद भी संवेग को पाया। सती स्त्रियां पति के मार्ग को अपनाती है। अेक बार अर्हत श्री घनरथ प्रभु विहार करते-

करते वहाँ आकर पूर्वोत्तर मे (ईशान) दिशा मे पधारें सेवकों ने आकर राजा से प्रभु के आगमन की जानकारी दि। उन्होंने पारितोषिक देकर मेघरथ राजा दृढरथ सहित प्रभु के पास आये। अक योजन तक फैलती सग्रामरागी सर्वभाषानुसार वाणी द्वारा प्रभु ने देशाना दि। देशाने के अंत मे राजा प्रभु को नमस्कार करके बोले-“हे नाथ ! आप विश्व के रक्षण के लिये उद्यकृत हुऐ , तो आप मेरा भी रक्षण करे। हे जगत्पति ! आप सभी को जानते है और सर्व के हितकारी हो, तथापि मै अक प्रार्थना करता हुं, क्योकि स्वार्थ मे कौन उत्सुक नहीं होता है ?” हे नाथ ! जहाँ तक मै घर जाकर वापस नहीं लौटता हुँ तब तक आप यही बिराजीइये” तब प्रभु बोले-‘प्रमाद करना अच्छा नहीं है’ ऐसी अर्हत की शिक्षा लेकर मेघरथ अपने घर आये परिभ्रमण करके राहगीर की तरह मै निर्वेद पा गया हुँ’ यह सुनकर दृढरथ ने हाथ जोडकर कहा-“पूज्य बंधु ! यह संसार दुःस्वरुप ही है और विवेकी जनो ने उनका त्याग करना चाहिए तो ऐसे सागर जैसे दुस्तर और अपार संसार समुद्र मे मेरे सिर पर आप इस पृथ्वी का भार क्यो रखकर जा रहे है ? हे ईश ! आज तक आत्मा से अभेद दृष्टि से मुझे देखकर अभी मुझे अलग क्यो कर रहे हो ? मेरे पर प्रसन्न बने और आत्मवत् मेरी भी उद्धार करें। हे स्वामी ! आज आपके साथ मै भी प्रभु के पास से दीक्षा लूंगा, यह पृथ्वी ओर किसी को दे।”

इस प्रकार उसका कहना सुनकर मेघरथ ने अपने छोटे पुत्र मेघसेन को राज्य और दृढरथ के पुत्र रथसेन को युवराजपद सौंप दिया। बाद मे मेघसेन ने निष्क्रमणोत्सव किया है ऐसे राजा मेघरथ और दृढरथ इत्यादि सातसौ पुत्र और चार हजार राजाओ के साथ भगवंत के पास आये सर्वसावद्यविरति ग्रहण करके। दुःसह परिषह और उपसर्गों को सहन करते, तीन गुप्ति तथा पंच समिति को धारण करके, अपने शरीर मे भी आकांक्षा नहीं रखते, विविध अभिग्रह तथा तप का आचरण और अेकादश अंग को धारण करके मेघरथ मुनि दृढरथ के साथ पृथ्वी पर विहार करने लगे। अनुक्रम मे अर्हद् भक्ति इत्यादि शुभ बीस स्थानको के आराधन से उन्होंने अति दुष्कर ऐसा अर्हन्नामगोत्रकर्म उपार्जित किया। वे महात्मा मेघरथ मुनि ने सिंहनिष्क्रीडित नाम का दुस्तप तप करके एक लाख पूर्व तक अस्वंडित साधुपन पालकर, अंबर तिलक नाम के पर्वत पर गये, पर्वत पर पर्वत की तरह स्थिर रहकर, अनशन धारण किया। अनुक्रम मे आयुष्य पूर्ण करके मेघरथ मुनि सर्वाथसिद्ध नाम के विमान मे आये और उनके लघु भ्राता दृढरथ भी वही आये। वहाँ वे दोनो तैतीस सागरोपम तक अव्ययपद पाने के विश्रामरुप महासुख मे व्यतीत किया।

इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये पंचमपर्वणि

श्री शांतिनाथदेवस्यदशमैकादश भववर्णनो नामः चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पंचम सर्ग

श्री शांतिनाथ चरम भव वर्णन

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र मे ऋद्धिवान कुरुदेश के बार मे हस्तिनापुर नाम का नगर है। उस नगर मे आये हुऐ महलो के सिर पर रखे हुऐ कनककुंभ नये उत्पन्न हुऐ स्थलकमल वन की शोभा को धारण करते है। वहाँ आसपास वलयाकार मे रही हुई वापिकाऐं उसके स्वच्छ और निर्मल जल मे किल्ले का प्रतिबिंब पडने के कारण मानो नगर के किल्ले का दर्पण हो ऐसी शोभा देती है। उद्यानो मे बहती नीको के किनारे पर रहे हुऐ स्निग्ध द्रुमो जल लेने के लिये उतरे हुऐ मेघ हो ऐसा दिखाई देता था। धनाढ्यो के मंदिर मे रत्नमय भीतों (दिवारों) ने रात्रि को प्रतिबिंबरूप मे पडे हुऐ चंद्र मार्जरो दधिपिंड समजकर चाट रहे है। जिनचैत्यो मे जलती हुई अगरुधूप की लताओं (धुमशिखाऐ) स्वेचरीयों के प्रयत्न बिना पटवास की शोभा दे रही है। चौट के दुकानो की श्रेणीयो में लटकती हुई रत्नमालासे मानो रत्नाकर मे से रत्नसर्वस्व यहाँ लाया गया है। हवा से चलती चैत्यो की ध्वजाओं की पृथ्वी पर गिरती हुई चपल छाया मानो धर्मनिधान की रक्षा करनेवाला सर्प हो ऐसी दिखाई दे रही है और जिसकी भूमि इंद्रानील मणियों से जडी हुई है ऐसे निवासगृह जलपूर्ण क्रीडा वापिका के जैसे दिखाई दे रहे है।

उस नगरी मे इक्ष्वाकुवंशरूपी सागर मे चंद्ररूपी होने से नेत्र उत्सव देनेवाले और कीर्तिरूपी चंद्रिका से जगत का प्रक्षालन करनेवाला विश्वसेन नाम का राजा था। वह राजा शरण्यजन को वज्रमंदिर जैसा, याचको को कल्पवृक्ष जैसा और लक्ष्मी तथा सरस्वती को मित्रता की संकेतभूमि जैसा था। मानो दुसरा समुद्र हो ऐसा उसकी यशोराशि नदीयों की तरह शत्रुओं की कीर्ति को निगल जाती थी। प्रभाव से शत्रुओं को साध्य करनेवाले उस राजा के अस्त्र निधानरूप से किये हुऐ वित्त की तरह बिना उपयोग पडे रहते थे। मानो दोनो मे बराबर तरीके से बर्ताव करता हो ऐसा वह युद्ध करनेवाले के गले के ऊपर चरण और शरणार्थी के पृष्ठभाग पर हाथ रखता था। उसने रणांगण मे म्यान से खिंची हुई तलवार स्वेच्छा से आयी विजयलक्ष्मी सहित वापस कोश मे प्रवेश होती थी। उसके लिये न्याय बंधु था, कीर्ति प्रिया थी, निर्मल गुण सुहृद (मित्रो) थे और प्रताप पैदल था। इत्यादि सर्व परिवार उसके उसके अंगो मे उत्पन्न हुआ था। उन्नति को पाये और जगत को आनंद देनेवाला उस राजा को मेघ की विद्युत की जैसी अचिरा नाम की एक पत्नि थी, उस तरह से उसके विनयादिक गुणो मे और शील मे भी शिरोमणि थी। वह श्रेष्ठ सती हृदय के अंतरंग आभूषणरूपी थी। वह कुलीन रमणी लज्जा से गरदन झुकाकर 'इस पृथ्वी पर मेरे पति को पालनीय है' ऐसी प्रीति से ही उस तरह पृथ्वी पर ही दृष्टि रखती थी, जिस तरह सौमनस वन की पुष्पवाटिका मे पुष्पों की जाति खिलती रहती है उस तरह उसमे स्त्रीजाति योग्य सर्व गुण उज्ज्वलता से खिली रहती है।

इस तरह सदा साम्राज्यसुख मे लीन ऐसे विश्वसेन और अचिरा देवी कुछ समय तक का काल इंद्र और इंद्राणि की तरह सुख मे व्यतीत किया। उस समय मे अनुत्तर विमान मे मुख्य सर्वार्थ सिद्धि

नाम के विमान मे मेघरथ के जीव ने सुखमग्न मे अपना आयुष्य पूर्ण किया । वहां से च्यवन करके भाद्रपद मास की कृष्ण सप्तमी के चंद्र भरणी नक्षत्र मे आने पर वह अचिरादेवी की कोख मे अवतरित हुऐ । उस समय सोयी हुई देवी ने रात्रि के शेषभाग मे अनुक्रम मे मुख मे प्रवेश करते हुऐ चौदह महास्वप्न देखे । प्रथम स्वप्न मे झरते हुऐ मदजल के सुगंध से मत्त हुऐ भ्रमरो के शब्दो द्वारा मानो मुख प्रवेश की आझा मांगता हो ऐसे गजेंद्र का अवलोकन किया । दुसरे स्वप्न मे कैलाश पर्वत का एक अलग हुआ शिलाभाग हो ऐसा निर्मल और शरीर की कांति से पुंडरीकगिरि की उत्कृष्ट समृद्धि को लूटनेवाला वृषभ देखा । तीसरे स्वप्न मे ऊँची मालवाली कलियुक्त लाल कमल जैसा ऊँची पुछ द्वारा शोभा देता केशरीसिंह देखा । चौथे स्वप्न मे दोनो बाजूओ मे दो दो हाथी अभिषेक कर रहे हैं । ऐसा दिव्यरूपवाला महालक्ष्मी मानो अपना दुसरा रूप हो ऐसा देखा । पांचवे स्वप्न मे आकाशलक्ष्मी के आभूषण जैसी ऋतुरोहित जाति के धनुष्य समान पंचवर्णी दिव्य पुष्पों से पिरोयी हुई विस्तारवाली मालाओ का अवलोकन किया । छठवे स्वप्न मे अखंड आकाश मंडल मे से उद्योत करता हुआ पूर्णिमा का चांद मानो दिशाओ का निर्मल रूप का दर्पण हो ऐसा दिखाई दे रहा था । सातवे स्वप्न मे रात्रि होने पर भी दिन की शोभा दिखाता हुआ किरणरूप अंकुर के उद्भव मे कंदरूप सूर्य देखा । आठवे स्वप्न मे नर्तकीयोरुपी पताकाओ के नृत्यमंदिर जैसा दृष्टि के विश्रामगृह जैसा महाध्वज दिखाई दिया । नौवे स्वप्न मे कमल द्वारा ढका हुआ मुखवाला विशाल पूर्णकुंभ देखा । दसवे स्वप्न मे मानो पद्मद्रह हो ऐसा विकसित सुगंधी कमलो से मनोहर जलपूर्ण सरोवर देखा । इग्यारहवे स्वप्न मे आकाश की अभ्रमाला के आलिंगन करने के इच्छुक हो ऐसा तरंगरूप करको उछालता हुआ अगाध सागर देखा । बारहवे स्वप्न मे आकाश मे रहे हुऐ महल हो ऐसा विचित्र रत्नमय कलशवाला और पताका के समूह से शोभित अप्रतिम विमान देखा । तेरहवे स्वप्न मे प्रकाशमय किरणो से आकाश की पुताई करता हो ऐसा और सूर्यादि ज्योतिष का बनाने के पुद्गलो का समूह हो ऐसा रत्नपुंज देखने मे आया । चौदहवे स्वप्न मे मानो बहुत सी जिह्वा हो ऐसी आकाश को चाटती ज्वालाओं से अंधकार की बाढ को ग्रस्त करनेवाला निर्धूम अग्नि देखा ।

इस तरह चौदह महास्वप्न देखकर अचिरोदवी जाग्रत हो गई शय्या से उठकर विश्वसेन राजा को कहा । वह सुनकर राजा ने कहा- 'हे महादेवी ! इस स्वप्न से लोकोत्तर गुणवाला और तीनों लोक का रक्षण करनेमे तत्पर ऐसा आपको पुत्र होगा' । प्रातःकाल मे निमित्तियाओ को बुलाने पर उनसे पुछने पर उन्होंने भी कहा कि 'इन स्वप्नो से आपको चक्री या अर्धचक्री पुत्र होगा' । राजा ने उस स्वप्नार्थ जाननेवाले निमित्तियो का सत्कार करके बिदा किया । उस दिन से देवी ने रत्नगर्भ की तरह वह रत्नगर्भ को धारण किया । उस समय मे प्रथम से कुरुदेश मे उद्वेग और महामारी वगेरेह अनेक अशिव उत्पात प्रवृत्त थे, उनकी शांति के लिये उपाय जानकर लोगो ने अनेक उपाय किये, तथापि जलद्वारा वडवानल की तरह वे जरा भी शांत हुऐ नहीं, लेकिन जब भगवंत अचिरादेवी के उदर मे गर्भरूप मे आये, उसी समय से वे सर्व अशिवकारी उत्पात शांत हो गये । अर्हत प्रभु का प्रभाव निरवधि है ।

नौ मास और साडे सात दिन होने पर जेयष्ठ मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन चंद्र भरणी नक्षत्र में आने पर सर्व ग्रह उच्च स्थान पर थे उस समय मृगांक को पूर्व दिशा फैलाता है उस तरह अचिरादेवी ने मृग के अंकवाला कनकवर्णी ऐसे कुमार को जन्म दिया। उस समय तीन जगत में उद्योत हुआ, नाट्यकी जीवों भी को भी अपूर्व सुख मिला और दिक्कुमारीयों के आसन कंपित हुये, तब वे अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म हुआ है यह जानकर हर्षित होकर प्रथम अधोलोक से आठ दिक्कुमारीया विश्वसेन राजा के मंदिरों में आयी और विधि से प्रभु को और उनकी माता को प्रणाम किया। उन्होंने अचिरादेवी को अपनी आत्मा की पहचान करवा के 'आप डरे नहीं' ऐसा कहा और संवर्तक पवन प्रवाहित करके एक योजन पर्यंत पृथ्वी के रजकण दूर किये। बाद में प्रभु की माताजी से नजदीक भी नहीं और दूर भी न रहकर ऐसे गायन करनेवालीयों की तरह वे प्रभु के गुणगान करने लगी। बाद में ऊर्ध्वलोक में से आठ दिक्कुमारीयां आकर। उन्होंने विधिपूर्वक पूर्ववत् सभी करने के पश्चात् मेघ की रचना करके योजन तक पृथ्वी पर जलसिंचन करके प्रभु के गुण गाती खड़ी रही। पूर्व रुचक से हाथ में दर्पण लेकर आठ दिक्कुमारीयां आयी, वे प्रभु और उनकी माता को प्रणाम करके गुणगान करती हुई पूर्व दिशा में खड़ी रही। दक्षिण रुचक से हाथ में झरीयां लेकर आठ दिक्कुमारीयां आयी और प्रभु तथा उनकी माता को झुककर प्रभु के गुणगान गाती हुई दक्षिणदिशा में खड़ी रही। पश्चिम रुचक में रहनेवाली आठ दिक्कुमारीयां हाथ में पंखे लेकर आयी, वे प्रभु को और अचिरादेवी को झुककर, प्रभु के गुणगान करती हुई पश्चिम दिशा में खड़ी रही। उत्तर रुचक में से हाथ में चामर लेकर आठ दिक्कुमारीयां आयी, वे पूर्ववत् प्रणाम करके प्रभु के गुणगान करती हुई उत्तर दिशा में खड़ी रही। चार विदिशाओं के रुचक गिरि से चार दिक्कुमारीयां हाथ में दीपक लेकर आकर पूर्ववत् प्रणाम करके प्रभु के गुणगान करती हुई विदिशाओं में खड़ी रही रुचक द्वीप में से दुसरी चार दिक्कुमारीयो ने आकर प्रभु तथा उनकी माता को प्रणाम करके प्रभु की चार अंगुल उपरांत की नाल का छेदन किया, बाद में एक गढ़ा खोदकर उसमें द्रव्यनिधि की तरह नाल उसमें छोड़कर रत्न और हिरे द्वारा उस गढ़े को पार दिया और उस पर दुर्वा से पीठ बांध दि। बाद में पूर्व उत्तर और दक्षिण दिशाओं में उन्होंने चतुःशाल सहित तीन कदलीगृह का निर्माण किया प्रथम दक्षिण दिशा के कदलीगृह में प्रभु को और उनकी माता को लाकर चतुःशाल (बाजोठ) के मध्यभाग में रचे हुये रत्नसिंहासन पर बैठाया, बाद में आभियोगिक देवता के पास क्षुद्र हिमालय पर्वत से गोशीर्ष चंदन मंगवाकर उसे जलाकर उसकी राख द्वारा दोनों को रक्षाग्रंथि बांधी। 'आपका पर्वत जितना लंबा आयुष्य हो' ऐसा प्रभु के कान में कहकर दो रत्नमय पाषणों के गोलों को आस्फालन किया। बाद में प्रभु को और उनकी माता को वापस सूतिकागृह में ले जाकर पलंग पर बैठाकर भगवंत के गुणगान गाती हुई वे खड़ी रही।

उस समय सौधर्म इंद्र का आसन कंपित होने से प्रभु का जन्म हुआ है ऐसा मानकर वे पालक विमान में बैठकर परिवार सहित वे प्रभु के पास आये। 'कुक्षी में रत्न को धारण करनेवाली हे देवी! तुम्हें नमस्कार है ऐसा कहकर अचिरादेवी पर अवस्वापिनी निद्रा रखकर, तथा उनके पास प्रभु के प्रतिबिंब रखकर स्वयं चार दर्पण की तरह पांच रूप में हुये। उसमें से एक रूप ने प्रभु को दो हाथों में

धारण किये दो रूपो ने दोनो ओर चामर झुलाने लगे, एक रूप सिरपर उज्जवल क्षत्र धारण किया और एक रूप ने वज्र उछालते हुऐ आगे चलने लगे । क्षणभर मे मेरुपर्वत पर जाकर अतिपांडुकबला नाम की शिला पर आये, वहाँ प्रभु को उत्संग मे लेकर वे सिंहासन पर बैठे । उस समय आसन प्रकंप से प्रभु का जन्म जानकर अच्युत वगेरेह तीरसठ इंद्र भी मानो अग्रिम सूचनानुसार वहाँ पर उपस्थित हो गये । समुद्र, नदीया और द्रहो वगेरेह मे से लाये हुऐ जलद्वारा भरे कुंभो से प्रथम अच्युतेन्द्र ने प्रभु को स्नान करवाया बाद मे ईशानेन्द्र पांचरुप मे हुऐ, अेक रूप ने प्रभु को गोद मे लिया, एक रूप ने छत्र, दो रूप ने चामर धारण किया, एक रूप त्रिशुल लेकर आगे खडे रहे । बाद मे शक्रेंद्र ने प्रभु के चारो ओर चारो दिशाओं मे निर्मल हास्य हो ऐसे स्फटिकमय चार वृषभो की रचना की और धारायंत्र की तरह आठ सिंगो के अग्रभाग से निकलते जल से प्रभु को स्नान करवाया । बाद मे इंद्र ने देवदुष्य वस्त्र से अंग को पोछकर, गोशीर्षचंदन का विलेपन करके, दिव्य अलंकारो से और पुष्पमालाओ से प्रभु का अर्चन करके, बाद मे विधिपूर्वक स्वामी की आरती उतारी बाद मे इंद्र हर्ष से गद्गद गिरा द्वारा प्रभु की स्तुति करने लगे ।

“हे भगवन् ! विश्वजन के हितकारी, अद्भूत समृद्धिवाले और इस संसार के मरुदेश के मार्ग मे छायावाले वृक्ष के जैसे तुम्हे नमस्कार है । हे परमेश्वर ! आज अच्छे भाग्य से आपका दर्शन होने से पूर्वसंचित पापरूपी रात्रि का प्रभात समय हुआ है । हे जगत्पति ! जिसके द्वारा आपके दर्शन हुऐ वे नेत्र धन्य है । हे प्रभु ! आप कभी विद्याधरो की बडी ऋद्धिवाले चक्रवर्ती बने है, कभी उत्कृष्ट बलवाले बलदेव बने हो, कभी अच्युतेन्द्र हुऐ है, कभी महाज्ञानी चक्रवर्ती बने है, कभी ग्रैवेयक के आभूषणभूत अहमिन्द्र हुऐ है, कभी महासत्ववान् और अवधिज्ञानी हुऐ हो, कभी सर्वार्थसिद्ध विमान के अलंकार रूप अहमिन्द्र हुऐ है । हे परमेश्वर ! आप कौन-कौन से जन्म मे उत्कृष्ट नहीं हुऐ है । अंत मे आज तीर्थंकर के जन्म से आपके वर्णन की वाणी परिपूर्ण हो गई है । आपके गुणो का वर्णन करने मे मै समर्थ नहीं हूँ, इसलिये मै मात्र मेरे स्वार्थ ही कह रहा हूँ हे नाथ ! प्रत्येक भव के बारे मे आपके चरणकमल मे मेरी भक्ति हो” ।

इस तरह स्तुति करने के बाद शक्रेंद्र ईशानपति के पास से प्रभु को लेकर जल्दी से अचिरादेवी के पास योग्य तरह से प्रभु को वापस रख दिया । प्रभु को दृष्टि विनोद देने के लिये चंद्रवा के उपर श्रीदामगंडक और प्रभु को तकिये पर देवदुष्य वस्त्र और दो कुंडल रखे । बाद मे इंद्रने अमोघ वाणी से देवता के पास से यह अमोघ घोषणा करवाई की ‘देवताओ मे से, दैत्यो मे से, मनुष्यो मे से जो कोई अर्हत् प्रभु या उनकी माता का अशुभ चिंतन करेगा उसका मस्तक अर्जक वृक्ष की मंजरी की तरह सात प्रकार से छेद डाला जायेगा । अर्थात् सात टूकडे हो जायेंगे’ । बाद मे इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने हस्तिनापुर नगर मे रत्न तथा सुवर्ण की महावृष्टि करके बाद मे पद्मिनी की निद्रा की तरह सूर्य हरण करता है उस तरह इंद्र ने अचिरादेवी की अवस्वापिनी निद्रा और अर्हत् का प्रतिबिंब हरण कर लिया । बाद मे प्रभु के लिये पांच अप्सराओं को धात्रीरूप रहने की आज्ञा करके शक्रेंद्र वहाँ से दुसरे इन्द्र मेरुपर्वत पर से नंदीश्वर द्विप मे गये, वहाँ शाश्वत अर्हत् का विधिपूर्वक अष्टाई महोत्सव करके प्रसन्न होकर सभी अपने अपने स्थानो पर लौट गये ।

अचिरादेवी निद्रा रहित हुये तब उन्हें दिव्य वस्त्रालंकार तथा, दिव्य अंगराग द्वारा युक्त और तेज का प्रसार करता हुआ पुत्र अपने पास दिखाई दिया। देवी के परिजन आनंद से संभ्रम पाकर राजा के पास आकर दिककुमारीयों का सर्वकृत्य निवेदन किया। राजा ने हर्ष से उन्हें पारितोषिक दिया और बड़ी समृद्धि से पुत्र का जन्ममहोत्सव मनाया। जब वह माता के उदर में आया तब देश में सर्व अशिव उत्पत्ति शांत हुये थे। ऐसा मानकर राजाने पुत्र का नाम शांतिनाथ ऐसा रख दिया। बाद में इंद्र ने जिसमें अमृत संक्रमाया है, ऐसे अपने अंगूठे को चुसकर क्षुधा समाने लगे और धात्रीयो से लालायित हुये प्रभु अनुक्रम में वृद्धि पाने लगे। प्रभु जन्म से ही ज्ञानवृद्ध है, तथापि विविध प्रकार की बालक्रीडा करने लगे, क्योंकि सर्वत्र समयोचित ही शोभा देता है। प्रभु के साथ रज क्रीडा करके अपनी आत्मा को महामूल्य करने के इच्छुक देवता आशातना से डरते-डरते प्रभु से खेलते थे। क्रीडा में भी प्रभु उन्हें निःशंक पाद प्रहार करते नहीं, कारण कि महात्माएँ कभी भी किसी अवसर पर भी दयावीर होते हैं। इस तरह विविध क्रीडाओं से क्रीडा करते शांतिनाथ प्रभु चालीस धनुष्य प्रमाण शरीर से लक्ष्मी के क्रीडा गृहरूप यौवनमय को प्राप्त हुये। बाद में विश्वसेन राजा ने शांतिकुमार का अनेक कन्याओं के साथ विवाह करवाया। 'बड़ी समृद्धिवाले पिता पुत्र के विवाहोत्सव बिना तृप्त नहीं होते हैं।' पचीस हजार वर्ष की आयु में शांतिकुमार को राज्य पर बैठाकर विश्वसेन राजा अपना कार्य साध्य करने लगे। महात्माओं का अवतार विश्वपालन के लिये ही होता है।

अचिरादेवी के कुमार शांतिनाथ अपनी विवाहित स्त्रीयो के साथ क्रीडा करने लगे। अर्हत् प्रभु को निकाचित भोगनीय कर्म अवश्य भोगना पड़ता है। सर्व अंतःपुर में मुख्य यशोमती नाम की उनकी पट्टरानी थी। एक बार उसने स्वप्न में अभ्र में सूर्य की तरह मुख में प्रवेश करता हुआ एक चक्र देखा उस समय दृढरथ मुनि का जीव सर्वार्थसिद्धि विमान में से आयुष्य पूर्ण करके च्यवन करके यशोमती के उदर में उत्पन्न हुआ। निद्रा में से जाग्रत होकर यशोमती ने उस स्वप्न की बात अपने स्वामी से कही तीन ज्ञान धारण करनेवाले शांतिनाथ प्रभुने कहा कि- 'हे देवी! पूर्व जन्म में दृढरथ नाम का मेरा एक अनुज बंधु था। वह सर्वार्थसिद्धि विमान में से च्यवन करके तुम्हारे उदर में अवतरित हुआ है। समय आने पर उस पुत्र को आप जन्म देंगी।' प्रातःकाल में मेघ की गर्जना जैसा पति का अमोघ वचन सुनकर देवी यशोमती हर्षित हुई और तब से उन्होंने गर्भ धारण किया। समय आने पर मानो पति के मुख का प्रतिबिंब हो ऐसा सर्वलक्षण संपन्न पुत्र को जन्म दिया। वह गर्भ में आया तब उस समय देवी यशोमती ने एक चक्र देखा था, इसलिए पिता ने उसका चक्रायुध ऐसा नाम रखा। तीनों लोक में तिलकरूप वह चक्रायुध धात्रीयो से ललित होकर हाथी के शिशु की भांति वृद्धि पाने लगा। अनुक्रम में युवती वर्ग के लोचन को मोहकारी और कामदेव के क्रीडोद्धाररूप यौवनमय को प्राप्त हुआ। पिता शांतिनाथ ने स्वयंवरा होकर आयी लक्ष्मी जैसी लावण्यद्वारा मनोहर अनेक राजपुत्रीयों के साथ विवाह करवाया।

नीति से राज्य पालन करते श्रीमान शांतिनाथ के पचीस हजार वर्ष बीत गये। अकदा उपपाद शय्या में देव उत्पन्न होते हैं, उसी तरह शांतिनाथ की अस्त्रशाला में विशाल ज्योतियो से व्याप्त ऐसा

चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। प्रभु ने उसका अट्टाई महोत्सव किया। पूज्य महाशय भी जिस आचार से पूज्य होते हैं उसकी पूजा करते हैं। बाद में सागर में सूर्य की तरह दिग्विजय की लक्ष्मी के मुखरूप वह चक्र अस्त्रशाला में से निकल कर पूर्व दिशा की सन्मुख चला। हजारों आरो से सहस्र यक्षों से अधिष्ठित ऐसे उस चक्र के पिछे, सैन्य द्वारा भूतल को आच्छादित करते हुए शांतिनाथ राजा वेग से चला। प्रतिदिन एक योजन चलकर वह चक्र स्थिर रहता, तब प्रभु वहाँ बारह योजन विस्तारवाली छावनी डालकर विश्राम करते थे। इस तरह दिनो दिन खेद रहित प्रयाण करते हुए विश्वसेन के कुमार पूर्व दिशा के मुख के मंडनरूप मागध तीर्थ समीप आये। जिसका मध्यभाग लब्ध होता नहीं है ऐसा समुद्र जैसा अपना स्कंधावार उसके तट पर स्थापित किया बाद में मागध तीर्थ के सन्मुख विजयेच्छु ऐसे प्रभु निर्विकारपन से उत्तम सिंहासन पर बैठे। उस समय समुद्र के तट से द्वादश योजन उपर दूर रहे मागधपति का सिंहासन डोलके कंपायमान होने लगा। तब मागधपति विचार में पड़ा कि 'ऐसा अपूर्व क्या हुआ कि जिससे मेरा दृढ आसन चलित हुआ? अथवा क्या मेरे च्यवन करके का समय आ गया या कोई मेरी समृद्धि को सहन नहीं कर सकनेवाले ने मेरे आसन को कंपित किया? इस प्रकार का संदेह उत्पन्न होने पर उसने अवधिज्ञान से देखा, तब धर्मचक्री और चक्रवर्ती शांतिनाथ प्रभु वहाँ आये हुए उसे दिखाई दिये। तब मागधपति ने सोचा की 'अहो! बालक की तरह मैं ऐसे अज्ञान भरे विचार करने लगा मुझे धिक्कार है। यह सोलहवे तीर्थकर और पाचवे चक्रवर्ती मेरे उपर अनुकंपा लाकर बैठे हैं। तीन जगत की रक्षा और संहार करने के लिये जिनकी भुजा समर्थ है ऐसे वे प्रभु के पास मैं सूर्य के पास खद्योत जैसा हूँ। अच्युतेंद्र वगेरेह इंद्रो जिसकी पदाति की तरह सेवा करते हैं वे प्रभु की मैं किस तरह से प्रार्थना करूंगा? तथापि यहां आये इस जगन्नाथ की वस्त्र के बदले में तंतुओं से चंद्र की तरह मैं मेरी संपत्ति द्वारा पूजा करूँ।' ऐसा मन में निश्चय करके बड़ी भेंट लेकर मागधपति शांतिनाथ के पास आये। बाद में आकाश में रहकर प्रणाम करके वे बोले- 'हे नाथ! ओक पति मात्र ऐसा मेरे उपर अच्छे भाग्य से आपने अनुग्रह किया है। हे स्वामी! मैं आपका पूर्व दिशा का दिक्पाल आपकी आज्ञा को धारण करनेवाला हूँ इसलिये दुर्गपाल की तरह अहर्निश मुझे आज्ञा करें।' इस प्रकार से कहकर नमस्कार करके उसने शय्यापाल की तरह प्रभु को भक्ति से दिव्य वस्त्रालंकार अर्पण किये। श्री शांतिनाथ ने भी सत्कार करके उस देव का बिदा किया।

वहाँ से चक्ररत्न दक्षिण दिशा की ओर चला। अगाध भुजपराक्रमी प्रभु चक्र के मार्ग का अनुकरण करते अप्रतिरुद्ध वेग से दक्षिण समुद्र के किनारे के पास आये। वहाँ आक्षेप रहित वरदाम देव को उद्देश से समुद्र तट पर रत्नसिंहासन पर बैठा। वरदामपति अवधिज्ञान से प्रभु आये हैं ऐसा जानकर अपनी रक्षा के उपायरूप भेंट लेकर सामने आया। उसने प्रभु को झुककर सेवा का स्वीकार करके दिव्य अलंकार आदि भेंट सन्मुख रखी। प्रभु ने प्रसन्नता से उसे बुलाकर बिदा किया। बाद में चक्ररत्न वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर चला। शांतिनाथजी उसके पीछे चले। अनुक्रममें नागरवेल के वन के साथ सुपारी के वृक्ष जिसमें मिले हैं ऐसे पश्चिम समुद्र के तटपर प्रभु ने छावनी डाली। आसन चलित होने पर प्रभासपति वहाँ आकर शांतिनाथ प्रभु की सेवा करके उनके शासन को अंगीकार

किया। वहाँ से सिंधुदेवी के उद्देश्य से चक्ररत्न पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशा के मार्ग में चला। शांतिनाथजी उसके मार्ग के अनुसार उसके पीछे चले। सिंधुदेवी को मन में धारण करके योगी की तरह जिनका आकर्षण करने में तत्पर ऐसे प्रभु उसके सन्मुख सिंहासन पर बैठे। अवधिज्ञान से प्रभु आये हैं यह जानकर सिंधुदेवी भेट लेकर भक्ति से तत्काल उनके पास आयी। शांतिनाथ को झुककर हाथ जोड़कर बोली-‘हे स्वामी ! इस देश में सेनानी की तरह मैं आपकी आज्ञाकारी बनकर रही हूँ’ इस प्रकार कहकर वह भक्ति द्वारा नम्र देवी ने रत्नसुवर्णमय स्नानपीठ और कलश तथा आभूषणादिक प्रभु को भेट किये। वहाँ से सेना सहित चक्ररत्न के पीछे चक्रवर्ती चले। वे उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में चलते वैताढ्य पर्वत के समीप की भूमि पर आये, वहाँ वैताढ्याद्रिकुमार नाम के देव ने प्रभु के पास आकर भेट दी और स्वयं वश में रहा। वहाँ से चक्र का अनुकरण करके प्रभु तमिश्रा गुफा के नजदीक आये, वहाँ रहे हुए कृतमाल देव को तत्काल वश में कर लिया। वहाँ से आकर सेनापति ने अमोघ शक्तिवाला दंड रत्न से उसके कपाट (दरवाजे) को ताड़न करके तमिश्रा गुफा खोलकर। प्रौढ पराक्रमी प्रभु ने गजरत्न पर चढ़कर सिंह की तरह उस गुफा में सैन्य सहित प्रवेश किया। विश्वसेन के कुमार शांतिनाथ ने गुफा में रहे अंधकार को दूर करने के लिये उदयगिरि पर सूर्य की तरह गजेंद्र के दक्षिण कुंभपर मणिरत्न स्थापित किया और हाथ में काकिणीरत्न लेकर गुफा की दोनों ओर अनुक्रम में उन्पचास मांडण रखकर चले। आगे चलते गुफा के मध्यभाग में उन्मद्या और निम्नद्या नाम की नदी उपर प्रभु वर्धकिरत्न के पास एक पद्मा (सेतु) बांधकर, उस सेतुद्वारा शांतिनाथ प्रभु सैन्य सहित वे दुस्तर नदीयां उतरे। भुजपराक्रमी पुरुषों को सभी कार्य सरल होते हैं। प्रातःकाल में सूर्य के दर्शन से कमलकोश की तरह प्रभु के दर्शन से गुफा का उत्तरी द्वार अपने आप खुल गया। तत्काल उस द्वार से प्रभु सैन्य सहित बाहर निकल गये। प्रवाह की तरह महात्माओं के सभी जगह अस्खलित मार्ग मिलता है।

गुफा में से चक्रवर्ती को सैन्य सहित निकलते देखकर वहाँ रहनेवाले म्लेच्छ उपहास से इस प्रकार कहने लगे-‘अरे देखो ! सिंहो यूथ से भरे अरण्य में जिस तरह हाथी आते हैं उस तरह अपने देश में अप्रार्थित (मृत्यु) ने प्रार्थना करनेवाला कौन आया है ? कुछ वृक्ष पर वानरो कि तरह हाथी पर चढ़ बैठे, कुछ तरंग पर रहे जहाज की तरह घोड़े पर चढ़े और कुछ अपंग जैसे रथ पर आरुढ़ हुए सभी कौन हैं ? यह अंगारे की सिगड़ी जैसा लोहे का खंड जैसा क्या होगा ? अहा ! यह बुद्धि बिना के लोगों का कैसा अविचारि काम है जिन्होंने शर्दी की ऋतु की तरह सभी एकत्रित होकर जागरण आरंभ किया है ? अब हमें इनकी उपेक्षा करना योग्य नहीं है। उपेक्षा किया हुआ शत्रु विषरूप होता है, इसलिये का कोल पक्षी जिस तरह तीडो का हनन करता है उसी तरह हम भी इन्हें हनन कर दें।’ इस प्रकार कहकर परस्पर हाथ में विविध हथियार लेकर वे शांतिनाथ चक्री के अग्र सैन्य के साथ युद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए। कोई मुदगलो से झुंड की तरह हाथियों को मारने लगे, कोई गदा से घड़े के तरह रथों को तोड़ने लगे, कोई मंत्र द्वारा शब की तरह शल्य से पैदल को खिली लेने लगे। इस तरह विचित्र तरीके से मारते और बड़ा युद्ध बढ़ाते वे सभी वीर सिंहनाद की तरह उछलते चक्रवर्ती के अग्रसैन्य को वन की तरह तोड़ डाला।

अपने अग्रसैन्य का भंग देखकर शांतिनाथ का सेनापति आहुति द्वारा अग्नि की तरह भयंकर ज्वलित हुआ। तत्काल यमराज की तरह तुरंत तैयार होकर हाथ में खड्ग रत्न धारण करके, अश्वरत्न पर बैठकर वह किरात लोगों के सामने दौड़ा। उस समय संयुक्त हुए सेनापति रत्न, अश्वरत्न और खड्ग रत्न ये तीन रत्नो मानो तीन अग्नि अेकत्र मिले हो ऐसा दिखाई दिया। पादचारी गरुड की तरह पृथ्वी को फाड़ता हुआ अश्वरत्न सेनापति के मन के साथ किरात सैन्य में घुसा। उस समय नदी के ओघ के पास वृक्षों की तरह सवार पैदल कोई भी किरात उसके आगे खड़े रहने को समर्थ नहीं था। कोई गढ़ में गिरने लगे, कोई वन के कुंज में छिप गये, कोई गिरियों को गुफा में घुस गये, कोई पानी में डूब गये, किसीने हथियार छोड़ दिये, किसीने कपड़े उतार डाले और कोई मुर्दे की तरह निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर लोटने लगे। वृक्षों की शाखा की तरह किसी का हाथ, फल की तरह मस्तक और पत्र की तरह हाथ के जोड़ पृथ्वी पर टूट गये। किसी के दांत, किसी के पैर, किसी के तंबुपात्र की तरह सिर की खोपड़ी तूटी पड़ी है, सेनापति अश्वरत्न द्वारा रणसागर में प्रवेश करते जल जंतुओं की तरह शत्रुओं को क्या-क्या विपत्ति प्राप्त नहीं हुई? इस तरह सेनापति से क्षोभ पाये किरात लोग क्षण भर में हवा में उड़ाए हुए रुई की तरह वे दसों दिशाओं में भाग गये।

वे बहुत योजन तक दूर जाने के बाद अेक जगह एकत्रित होकर क्रोध और लज्जा से पीड़ित होकर सोचने लगे- “अहो! हमें अचानक क्या हुआ की जिससे यह कोई वैताढ्य पर्वत को पार उल्लंघन करके यहाँ आया। उसमें भी उस आसमान पुरुष ने उद्वेल समुद्र की तरह पृथ्वी को आच्छादित करता है उस तरह सैन्य से अपनी पृथ्वी को आच्छादित कर डाला। और उसकी सेना के अंगरूप मात्र किसी एक पैदल जैसा लडाकू पुरुष ने अपने जैसे लडाकू का क्षणभर में कूट डाले! हम जिनकी भुजाएँ पराक्रम से उभरी हैं वे एक दूसरे की लज्जा पाकर अब परस्पर भी मुख दिखलाने को समर्थ नहीं हैं। अब क्या जलते हुए अग्नि में प्रवेश करें? ऊँचे पर्वत के शिखर पर से मरने के लिये कूदे अथवा क्या अपने आप ही उग्र कालकूट जहर खा लें? अथवा वृक्ष पर चढ़कर गले फांसी लगाकर झूल जायें? अथवा जिर्ण वस्त्र की तरह अपने पेट को फाड़ें? अथवा ककडी के खंड की तरह दांतों द्वारा जिभ को काटें? इत्यादि किसी भी प्रकार से अपना मरण ही अपनी शरण है ऐसा पराभव होता है तब कौन सा मनुष्य जीने के लिये समर्थ होगा? परंतु शत्रुओं को साध्य करने का एक उपाय है। हम हमारे कुलदेवता मेघकुमारों को बुलायें, क्योंकि जिनके सभी उपाय क्षीण हो गये हैं, पुरुषार्थ की संपत्ति क्षय हो गयी है और जो शत्रुओं से दब गये हैं उन्हें कुलदेवता की शरण है।”

ऐसा निश्चय करके सर्व किरातलोग चक्रवर्ती के प्रताप से तप्त होकर जल में मग्न होने के इच्छुक हो ऐसे सिंधु के तीर पर आये। वहाँ सर्वस्व हार गये द्युतकार की तरह वे सर्व दीन और दिशामात्र वस्त्रवाले (नग्न) हो चुके सीधे सो गये। इस तरह इकठा होकर मेघकुमार को प्रसन्न करने के लिये अष्टम तप का आचरण किया, देवता तप और भक्ति से वश में हैं। अष्टम तप के अंत में मेघकुमार प्रगट हुए और कहा की “वत्सो! डरो मत, तुम्हें क्या पीडा है वह मुझे कहे म्लेच्छ बोले- ‘कोई चक्रवर्ती हमें मार डाल रहा है। उसके भय से हम कौएँ की तरह भागकर यहाँ आये हैं। हे भगवंत मेघकुमारो! हमारी

रक्षा करें, हमारे तात आप ही हैं, क्योंकि वापस गई हुई छीकवाले के लिये एक सूर्य ही उसका सहारा होता है।' मेघकुमारो ने कहा किरतारो से कहा - "आज ही हम तुम्हारे शत्रुओं को जल में डुबोकर शीतल मृत्यु से मार डालेंगे।" बाद में वे मेघकुमार मानो पृथ्वी का अंकुश करने की इच्छा से वे लोहे के मुशाल जैसी जलधाराओं से शांतिनाथ के सैन्य पर बरसने लगी। जब सब छावनी जलद्वारा व्याप्त देखने में आयी, तब वे पांचवे चक्रवर्ती के द्वारा चर्मरत्न का स्पर्श करके उससे पानी में काई, जाल और फेंस के पिंड बढ़ते हैं उस तरह चर्मरत्न बारह योजन तक का विस्तार पाया। श्री शांतिनाथ की आज्ञा से लंगर डाले हुए जहाज की तरह स्थिर जहाज हो ऐसे वे चर्मरत्न के उपर सब सैन्य चढ़ गया। बाद में चर्मरत्न की तरह छत्ररत्न हाथ का स्पर्श करके उसे बारह योजन तक बढ़ाया। पुरुषों में शिरोमणि प्रभु ने छत्ररत्न के दंड के मूल में गोख में दीपक की तरह अंधकार का नाश करने के लिये मणिरत्न की स्थापना की। बाद में उसमें रहकर सभी सैन्य प्रातःकाल में बोये हुए और मध्याह्न में पक कर तैयार हुये चावल वगैरह खाने लगे। उन गृहीरत्नों का महिमा है जिस तरह समुद्र में नाविक रहते हैं उस तरह शांतिनाथ चक्री सैन्य के बीच में पानी में सात दिन रहे।

बाद में प्रभु के सेवक देवताओं कोप करके शस्त्र धारण करके मेघकुमारो को कहने लगे - "अरे मेघकुमार ! तुमने बिना सोचे यह क्या आरंभ किया है ? हे अभागीयों ! तुम परशक्ति या आत्मशक्ति को जानते नहीं हो। जिनके शिखर आकाश तक ऊँचे हैं ऐसा सुवर्ण का मेरुगिरि कहा और मृत्तिका का बालु के बने टिले बिचारे कहा ? इसलिए अब तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ, नहीं तो तुम्हारा अपराध हम सहन नहीं करेंगे" इस तरह उन्होंने आडंबर से कहा, तब वे मेघकुमारो ने किरतारो को समझाया की ये शांतिनाथ प्रभु की शरण ही तुम्हारा आसरा है' मेघकुमार की शिक्षा से वे म्लेच्छों ने निःश्वास छोड़कर मद रहित हाथियों की तरह क्रोध छोड़कर शांत हो गये। बाद में विचित्र वाहनो में, अद्भूत आभूषण और बहुत मूल्यवान वस्त्रों तथा सुवर्ण और रूपा की राशि भेंट देने के लिये भेंट अर्पण करके झुककर बोले - हे प्रभु ! अरण्य के वृषभ की भांति हम सदा उन्मत्त हैं, इसलिये आप हमारे स्वामी यहां पधारे हैं ऐसा हम नहीं जानते थे। ऐसे हमने साहस में कोई अपराध किया हो तो उसे क्षमा कर दे। और हमारे पर प्रसन्न हो। आज से इस पृथ्वी को साध्य करनेवाले ऐसे आप ही हमारे स्वामी हैं, हमें आज्ञा करें। अधिक क्या कहे ? अब से हम आपके सेवक हैं और रहेंगे।"

इस तरह बोलते उन म्लेच्छों का सत्कार करके, भेंट स्वीकार करके प्रभु ने उन्हें अनुग्रह किया। बाद में शांतिनाथ ने सेनापति से सिंधु का निष्कृत साध्य किया। वहाँ से बड़ी सेवावाले प्रभु अपनी बड़ी सेना से गंगा और सिंधु नदी के अंतर को आच्छादित करते हुए वहाँ से क्षुद्र हिमालय पर्वत के पास आये। वहाँ उन पर्वतों के अधिष्ठातक हिमवंत कुमार ने गोशीर्षचंदन से, पद्महृद के जल से और दुसरे रत्नों से शांतिनाथ का पूजन किया वहाँ से ऋषभकूटाद्रि में जाकर काकिणी रत्न हाथ में लेकर चक्रवर्ती के कल्प तरीके से पांचवे चक्रवर्ती शांतिनाथ ऐसे अक्षरो से लिखा। शत्रुओं के पराक्रम को शांत करनेवाले शांतिनाथ वहाँ से वापस लौटकर अनुक्रम में वैताढ्य पर्वत के पास की भूमि पर आये। वहाँ दोनों श्रेणी में रहनेवाले विद्याधर राजाओं ने इस लोक और परलोक के सुख के लिये

चक्रवर्ती का सत्कार किया। वहाँ से गंगातट पर जाकर गंगादेवी को साध्य किया और सेनापति के पास से उत्तर गंगा निष्कृत साध्य करवाया। वहाँ से वैताढ्य के नीचे खंडप्रपाता नाम की गुफा के पास आये और वहाँ रहे हुऐ नाट्यमाल देव को वश मे किया। सेनानीयों ने दंडरत्न से उस गुफा के द्वार खोले, तब शांतिनाथ चक्री ने चक्ररत्न का अनुकरण करके उसमे प्रवेश किया और पूर्व की तरह मणिरत्न हाथी के कुंभस्थल पर रखकर दीपक की तरह काकिणीरत्न द्वारा मंडल आलेख करके गुहा गृह का अंधकार शांत कर दिया। बाद मे सैन्य सहित प्रभु वर्द्ध की रत्न से की हुई पाज से उन्मग्ना और निमग्ना नदी के जल से उतर गये। पराक्रमी पुरुषो को कुछ भी दुष्कर नहीं है। अपने आप खुले हुऐ दक्षिणद्वार से प्रभु सिंह की तरह सेना सहित बाहर निकल गये। गंगा नदी के तट पर गंगा के तरंग जैसे चपल अश्वो से अलंकृत ऐसी छावनी डाली। वहाँ गंगा के मुख पर निवास करके रहे हुऐ नैसर्प वगैरेह नवनिधि शांतिनाथ प्रभु के पास आकर उनके वश मे हो गई। बाद मे प्रभु ने स्वच्छंदी म्लेच्छ लोगो से भरपुर ऐसा गंगा के दक्षिण निष्कृत एक पाला साध्य करता है उसी तरह सेनापति के पास से साध्य कर लिया।

इस तरह शांतिनाथ चक्रवर्ती षड् अरिवर्ग की तरह षट् खंड भरत को साध्य कर आठ सौ वर्ष के बाद आये। प्रतिदिन अविच्छिन्न प्रयाण द्वारा मार्ग पर चलते उस लक्ष्मी के धाम नरहस्ती प्रभु अनुक्रम मे हस्तिनापुर आ गये। नगर मे प्रवेश करके चिरकाल के उत्कंठित मंत्री गण और पौर जनोंद्वारा देव की तरह अनिमेष दृष्टि से देखे हुऐ प्रभु अपने महल मे आये। वहाँ देवताओ ने और दुसरे मुगुटबद्ध राजाओने शांतिनाथ का चक्रवर्ती अभिषेक किया। उस अभिषेक में उत्सव किसी भी प्रकार के दंड, कर और लडाकूओ के बिना बारा वर्ष तक हस्तिनापुर प्रवृत्त था।

चक्रवर्ती शांतिनाथ, जिसकी हरेक हजार यक्ष रक्षा करते हैं ऐसे चौदा रत्न और नवनिधि द्वारा आश्रित किये हुऐ थे। चौसठ हजार अंतःपुर की स्त्रीयो से प्रवृत्त था। चौर्यासी लाख हाथी, चौर्यासी लाख घोडे उतने ही रथो से विभूषित थे। छियानबे कोटि ग्राम, छियान्वे कोटि पैदल, बत्तीस हजार देश और उतने ही राजाओ का वह स्वामी थे। तीन सौ तिरसठ खाना बनानेवाले रसोईये उनकी सेवा करते थे, अट्टाहर श्रेणी प्रश्रेणी द्वारा उनकी भूमि शोभा देती थी, बहत्तर हजार बडे नगरों के रक्षक थे, निन्यानबे हजार द्रोणमुख पर उनका शासन चलता था, अडत्तालीस हजार पतन और चौबीस हजार कर्बट तथा मंडब के वे अधीश्वर थे। बीस हजार रत्नादिक की खदान और सोलह हजार खेट ग्राम के वे ईश थे। चौदह हजार संबाध के तथा छप्पन अंतर द्विप के वे प्रभु थे और उनचास कुराज्यो के नायक थे। विशेष क्या कहे ? वे षट्खंड भरत को भोग रहे थे। हमेशा गीत, नृत्य, तांडव, नाटक के अभिनय, पुष्पक्रीडा और जलक्रीडा इत्यादि से उत्तम सुख का अनुभव कर रहे थे। चक्रवर्ती के अभिषेक से आरंभ करके आठसौ वर्ष उना (कम) पचीस हजार वर्ष उन्होंने राज्य करने मे निर्गमन किया। उस समय मे ब्रह्मदेवलोक मे रहनेवाले लोकांतिक देवताओ के आसनो को किसी ने चलाये हो उस तरह कंपित हुये। उस समय यह क्या हुआ ? इस तरह सारस्वतादि नव प्रकार के वे देवता संभ्रात होकर सोचने लगे। क्षणभर मे अवधिज्ञान द्वारा उसका कारण जानकर आपस मे कहने लगे-“अरे ! इस

जंबूद्वीप मे भरतार्द्ध मे शांतिनाथ अर्हत का दीक्षा समय नजदीक आया है उसके प्रभाव से मानो सचेतन हूँ हो ऐसे यह आसन हमे उन प्रभु की दीक्षाकाल की उचित क्रिया करने को सूचित करते हैं । भगवंत त्रिविध ज्ञानद्वारा अपने आप जानते हैं, तथापि अपना यह कल्प है इसलिये चले, हम प्रभु के व्रत का समय जान ले” इस तरह परस्पर आलाप संलाप करने के बाद तत्काल विमानमे बैठकर वे सारस्वतादि लोकांतिक देवता भगवान शांतिनाथ के पास आये । प्रभु की तीन प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करके हाथ जोडकर उन्होंने कहा- “हे स्वामी ! तीर्थ मे पधारे” इस तरह कहकर नमस्कार करके लोकांतिक देवता वापस स्वर्ग मे लौट गये ।

बाद मे जृम्भक देवताओ ने भरे हुये द्रव्य से प्रभु ने वार्षिक दान दिया । वर्षात मे अपने जैसे चक्रायुध नाम के पुत्र को राज्य सौंप कर स्वयं संयम साम्राज्य लेने तत्पर हुये । उस समय इंद्र प्रमुख देवताओ और चक्रायुधादि राजाओ ने मिलकर चक्रवर्ती जैसा प्रभु का दीक्षाभिषेक किया । बाद मे सर्वार्थ नाम की शिबिका मे रत्नसिंहासन पर जगत्पति आरुढ हुये । उस शिबिका को प्रथम मनुष्यो ने उठाकर और बाद मे पूर्व तरफ के वैमानिक देवताओ ने, दक्षिण की ओर असुर कुमारो ने, पश्चिम की ओर सुवर्णकुमार देवोने और उत्तर की ओर नागकुमारो ने वहन किया । उस शिबिका मे बैठकर अचिरा के कुमार शांतिनाथ सहस्राम्रवन नाम के उद्यान मे आये । उस मनोहर उद्यान मे दिशाओ के मुख को संध्याकाल के बादल जैसा गुलाब के पुष्पों से रक्तवर्णी कर रहा था । शिरीष के पुष्पो से मानो ग्रीष्म ऋतु की शोभा द्वारा पुलकित हुआ हो ऐसा दिखाई दे रहा था, मानो ग्रीष्म ऋतु की शोभाद्वारा पुलकित हुआ हो ऐसा दिखाई दे रहा था, मानो धर्मजल के बिंदू हो ऐसे मल्लिका के पुष्प उसमे शोभा दे रहे थे । कामदेव के बाणो जैसे सुवर्ण केतकी के कोश से अंकित था । जिसकी नवीन कलीयो मे भ्रमण करके श्रेणी गुंजारव कर रही थी । ऐसे घातकी के वृक्ष मानो ग्रीष्म ऋतु की लक्ष्मी के गायक हो ऐसी शोभा दे रही थी वनलक्ष्मी के स्तनो जैसी पुष्पगुच्छो की संपत्ति द्वारा खजूर के वृक्षो से जर्जरित हुई वसंतलक्ष्मी को वह हंस कर निकाल रहा हो, पके हुये फल पर उड रहे तोते गाढ पंखो से द्विगुण हुई ताम्रपल्लव की समृद्धि द्वारा वह बहुत सुंदर लग रहा था । उसमे रही हुई वापिकाएँ के बारे मे जलक्रीडा करने के रस मे नगरजन अति व्याकुल हो गये थे ।

उस उद्यान मे आकर प्रभु शिबिका पर से उतरे । बाद मे राज्य की तरह पुष्पमाल्य और रत्नालंकारादिक त्याग करके ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र मे दिन के पिछले प्रहर मे सिद्ध को नमस्कार करके छठे तपवाले प्रभु ने अेक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की । उसी समय मे ही उन्हे मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । उसके बाद दुसरे दिन मंदिरपुर मे सुमित्र राजा के घर पर प्रभु ने परम अन्न से पारणा किया । उस समय देवताओ ने राजा के मंदिर मे वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट किये । सुमित्र राजाने प्रभु के चरण स्थान पर अेक रत्नमय पीठ बनवाई ।

आसन और शयन का त्याग करके मूलोत्तर गुण के आधाररूप प्रभु निःसंग और निर्मम होकर पृथ्वी पर विहार करने लगे । अनुक्रम मे अेक वर्ष के अंत मे विहार करते-करते वापस हस्तिनापुर के सहस्राम्रवन मे आये । वहाँ छठ तप करके नंदीवृक्ष के नीचे शुक्लध्यान धारण करने पर घातीकर्म दूट

गये पोष मास की शुक्ल नवमी के चंद्र भरणी नक्षत्र में आने पर शांतिनाथ प्रभु को उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। आसन कंपन से प्रभु के केवलज्ञान की वार्ता जानकर इंद्रादिक देवता प्रभु ने पवित्र किये हुये उस प्रदेश में आये। बुहारी धारण करनेवालों की तरह देवताओं ने संवर्त्तक पवन का निर्माण करके एक योजन तक काष्ठ तृणादिक तथा रज को दूर कर दिया बाद में रज का शमन करने के लिये प्रथम गंधोदक और बाद में पंचवर्णी दिव्य पुष्पों की वृष्टि की बाद में सुवर्ण शिलाओं से उस भूमि के जोड़ से जोड़ मिलाकर बांध दिया और पूर्वादि चारों दिशाओं में रमणीक तोरण बांधे। मध्य में मणिमय पीठ करके चार गोपुर द्वारा सुंदर ऐसे रूप्य, सुवर्ण और रत्न के तीन प्रकार बनवाया। उसके उपर रत्न वप्र के मध्य में चार सौ अस्सी धनुष्य ऊँचा एक चैत्य (अशोक) वृक्ष बनवाया। उसके नीचे देवताओं ने अनुपम देव छंद रचा। उसके उपर पूर्वादि चारों दिशा के सन्मुख चार रत्नमय सिंहासन रहे। चौतीस अतिशयो से प्रकाशित भगवंत शांतिनाथ ने पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश किया और चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके 'तीर्थाय नमः' ऐसा कहा। परंपरा से अर्हतों की यह स्थिति है। बाद में प्रभु पूर्व सिंहासन पर पूर्वाभिमुख में बैठे, तब अन्य तीन दिशाओं में उनके प्रतिबिंब स्थापित किये। बाद में श्री चतुर्विद्य संघ यथायोग्य द्वार से प्रवेश करके प्रभु के सन्मुख देवता हुआ योग्य स्थान पर बैठा। परस्पर विरोधी ऐसे तिर्यच मध्यवप्र में आकर बैठे और नीचे के प्राकार में सभी वाहन रखे गये।

उस समय सहस्राम्रवन के उद्यानपालको ने हर्षित लोचन से नगर में आकर चक्रायुध राजा को खबर सुनाई कि हे महाराज ! आप अभी अच्छे भाग्य से वृद्धि पा रहे हैं, क्योंकि हमारे सहस्राम्रवन में स्थित रहे श्री शांतिनाथ प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है' इस प्रकार सुनकर चक्रायुध राजा हर्षित हुआ। तत्काल उन्हें पारितोषिक देकर विदा किया और प्रभु के पास आया, प्रभु को प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करके विनय से इंद्र के पीछे बैठा। फिर दुबारा प्रभु को झुककर चक्रायुध और इंद्र दोनों हर्ष से गद्गद ऐसी गिरा द्वारा इस तरह से वे स्तुति करने लगे-

“हे जगत्पति ! दिन के उत्सव को कहनेवाले ज्ञानसूर्यरूपी आपके उदय से आज जगत का कल्याणदिशा में प्रवेश हुआ है। हे जगद्गुरु ! हमारे जैसे को पूर्वपुण्य के योग से ही कल्याणप्राप्ति के चिंतामणिरूपी आपके कल्याणक उत्सव प्राप्त होते हैं। हे नाथ ! आपके दर्शनरूपी जल के तरंग सर्व प्राणीयों के कषायादि मल से भरे मन को धो डालते हैं। कर्म को छेदने के लिये बड़ा यत्न करके आपने जो पूर्व में तीर्थकरनामकर्म उपार्जित किया है वही आपका निःस्वार्थ परोपकारीपन है। इस जगत में घोर संसार से भयभीत प्राणीयों को आपके इस समवसरण बड़े किल्ले की तरह शरणरूप है। हे प्रभु ! आप सर्व जीवों के सर्व भावों को जानते हो और सदा हितकारी हो, जिससे आपके पास कुछ भी प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। तथापि इतनी प्रार्थना कर रहा हूँ कि जिस तरह आप पृथ्वी पर विहार करके गाव आकर और नगर वगैरेह को पल-पल में छोड़ देते हो, उसी तरह भी मेरे हृदय को आप कभी भी न छोड़े नहीं, हे भगवन् ! आपके प्रसाद से निरंतर आपके चरण कमलों में मेरा चित्त भ्रमररूप बनकर रहे इस तरह मेरा सर्वकाल निर्गमन हो”।

इस तरह इंद्र और चक्रायुध भगवंत की स्तुति करके मौन रहे, तब भगवंत शांतिनाथ ने देशना

देना आरंभ किया-

“अहो ! यह चार गतिवाला संसार दावानल की तरह अनेक दुःखों की परंपरा का मूल कारण है । बड़े मंदिरों के आधारभूत जिस तरह स्तंभ होते हैं उस तरह संसार के क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय के चार स्तंभ हैं । वे कषाय क्षीण हो जाने पर संसार अपने आप क्षीण हो जाता है, जिस तरह मूल (जड़) सुख जाने पर वृक्ष अपने आप सुख जाता है ।” लेकिन इंद्रियों का जय किये बिना उस कषाय को जीतने के लिये कोई समर्थ नहीं होता है, क्योंकि प्रज्वलित अग्नि बिना सुवर्ण का निरवार (तेज) नहीं आता है । चपल और उन्मार्ग पर चलनेवाले वे इंद्रियरूप अदांत अश्वों प्राणी को खिंचकर तत्काल नरकरूप अरण्य में ले जाते हैं । इंद्रियों से जिता हुआ प्राणी कषायों से पराभव पाता है । ‘वीर पुरुषों ने जिनकी बीच में की ईंट खिंच ली हो तो ऐसा किल्ला फिर किससे खंडित न होगा ? प्राणीयों की नहीं जिती हुई इंद्रियां उसे घात, पात, बंध और वध के लिये ही होती हैं । स्वार्थसे परवश ऐसी इंद्रियों से कौनसा पुरुष परेशान नहीं होता है ? कभी वो शास्त्रार्थ को जानकार हो तथापि इंद्रियों के वश में होने पर वह बालक की तरह वह चेष्टा करता है । इससे अधिक उन इंद्रियों का लज्जा स्थानक कौनसा बताये की जिसके द्वारा भरतराजा ने भी बाहुबलि जैसे बंधु पर चक्र रखा ? बाहुबलि की जय और भरत की पराजय यह जयपराजय के बारे में सर्व इंद्रियों का चेष्टित ही है । चरम भव में रहे पुरुषों भी जिसके द्वारा शास्त्राशस्त्री युद्ध करते हैं । ऐसी इंद्रियों का दुरंत महिमा से लज्जित होने जैसा है । कभी प्रचंड चरित्रवाली इंद्रियों से पशु और सामान्य मानव दंडित होता है, लेकिन जो मोह को शांत करनेवाले और पूर्ववृत्ता भी दंडित होते हैं, वह अति अद्भूत वार्ता है । इंद्रियों ने जीत लिया वे देव, दानव, मनुष्य और तपस्वी भी निंदनीय कर्म करते हैं, यह कैसी खेद की बात है । इंद्रियों के वश में हुआ प्राणी अस्वाद्य वस्तु खाता है, अपेय वस्तु पीता है और अगम्य के साथ गमन करता है । निर्दय इंद्रियों से त्रस्त हुआ प्राणी कुलशील से रहित होकर वेश्याओं के भी नीच कर्म में दासत्व करता है । मोहांध मनवाले पुरुषों की परद्रव्य और परस्त्रि में जो प्रवृत्त होता है वह जाग्रत इंद्रियों का विलास है जो इंद्रियों के वश के कारण हाथ, पैर और इंद्रियों को छेद और उसी तरह मरण भी होता है उन इंद्रियों की बात हो क्या करे ? जो स्वयं इंद्रियों से जीत गये हैं और दूसरों को विनय ग्रहण करवाते हैं ऐसे पुरुषों को देखकर विवेकी पुरुष हाथ से मुख को ढक कर हंसते हैं । श्री वितराग प्रभु बिना इंद्र से लेकर अकेले कीड़े तक जंतुओं इंद्रियों से जीते गये हैं । हथनी के स्पर्श से सुख का आस्वादन करने की इच्छा से सूँढ़ को फैलाता हुआ तत्काल आलान (खील) बंधनरूपी कलेश में आ जाता है । अगाध जल में विचरण करनेवाली मछली गलगतमांस को गलन में वह शिकारी के हाथ में सहजता से दीन बनकर आ जाती है । मत्त मातंग के गंडस्थल के उपर गंध के लोभ में भ्रमण करता भ्रमर कर्णताल के आघात से तत्काल मृत्यु पा जाता है । सुवर्ण के छेद जैसी दीपशिखा के दर्शन से मोहित हुआ पतंग सहज ही दीप पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त कर लेता है । मनोहर गीतों को सुनने का उत्सुक हिरण शिकारी का शिकार विषयसुख के सेवन से पंचत्व प्राप्त होता है तो बाद में एक साथ पांचों इंद्रियों के विषयों के सेवन से पंचत्व क्यों नहीं पाया जा सकता है ? इसके लिये महात्मा पुरुष मनःशुद्धि द्वारा इंद्रियों का जय करे,

क्योंकि उसके बिना यमनियम से काया को कलेश में करना व्यर्थ है। इंद्रियों के ग्राम को जीतता नहीं है वह दुःख से प्रतिबोध पा सकता है, इसलिए सर्व दुःख में से मुक्त होने के लिये पैदा होते रागद्वेष से मुक्त होना चाहिए, जिससे उसकी प्रवृत्ति भी जयरूप हो। इसलिए बुद्धिमान पुरुष जिसमें रागद्वेष पैदा होते हैं उसे त्याग देना चाहिए। सदा संयमी योगीयो की इंद्रियो का हनन होता है। इसलिये जीती हुई इंद्रिया मोक्ष के लिये होती हैं नहीं जीती हुई इंद्रियो संसार के लिये होती हैं, इसमें जो अंतर है उसे समझकर योग्य हो वह करना चाहिए। रुई इत्यादि कोमल स्पर्श में और पाषाण वगैरेह के कठोर की जो प्रीति और अप्रीति होती है वह मिथ्या है ऐसा मानकर उसके त्याग करने के द्वारा स्पर्श इंद्रियो को जय करे। भक्ष्य पदार्थों में स्वादिष्ट रस में और कटु रस में प्रीति और अप्रीति दोनों का त्याग करके जिव्हा इंद्रिय को जीत लेना। वीणादिक श्राव्य-मधुर स्वर में और गंधे इत्यादि के दुःश्राव्य में कटु स्वर में रति और अरति में जुगुप्सा को जीतने के लिये श्रोत्रेन्द्रियो की जय होती है। कोई भी विषय खराब या अच्छा नहीं है लेकिन शुभ विषय अशुभ बन जाता है और अशुभ विषय शुभ बन जाता है, तो इंद्रियो से किसमें राग और किसमें विराग धारण करे? कभी कोई कारण से वह विषय रोचक और अरोचक बन जाता है लेकिन तत्व से देखने पर कभी भी पदार्थों में शुभ अशुभ होता ही नहीं है, इसलिये जो प्राणी मन की शुद्धि से इंद्रियो को जीतकर कषाय को क्षीण करता है वह थोड़े समय में अक्षीण सुखवाला मोक्ष में जाता है।”

इस तरह कानो में अमृतवर्षा जैसी प्रभु की देशना सुनकर चक्रायुध ने संवेगयुक्त होकर भगवंत से कहा-हे स्वामी! मात्र कलेश के ही स्थानरूप ऐसे इस संसार में भयभीत हुआ हूँ। बलवान और विवेकी पुरुष का भी पुरुषाभिमान रहता नहीं है। घर में आग लगने पर और जहाज फूटने पर उस समय उसका नायक उसमें से जो कुछ अच्छा है वह लेकर दुसरी जगह जाता है, उसी तरह जन्म, जरा और मरणादिक विकराल ऐसे इस संसार में से सारभूत ऐसी एक आत्मा को लेकर मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे प्रभु! इस भवसागर में पड़े हुए मेरी उपेक्षा आप न करें। मुझे तो संसार समुद्र से पार उतारने की नावरूपी दीक्षा अभी दे” तब प्रभुने कहा ‘तुम्हारे जैसे विवेकी को यही सही है’। इस तरह कहने पर तुरंत चक्रायुध ने अपना कवचधारी पुत्र कुरुचंद्र को राज्य सौंप दिया और स्वयं दुसरे पैतीस राजाओं के साथ प्रभु के पास से संघ की समक्ष दीक्षा ग्रहण की।

चक्रायुध वगैरेह छत्तीस गणधरो को प्रभु ने उत्पाद, विगम और धौव्य त्रिपदी का उपदेश किया। उन त्रिपदी के अनुसार से उन्होंने द्वादशांगी की रचना की। बाद में प्रभु ने उन्हें अनुयोग-अनुज्ञा और गुणा की आज्ञा दी। उस समय बहुत से नर-नारीयों ने प्रभु से दीक्षा ली, कुछ ने समकितपूर्वक श्रावकपन का स्वीकार कर लिया। प्रथम पौरुषी पूर्ण होने पर प्रभु उठकर मध्य प्राकार के मंडनरूप देवच्छंदा पर विश्राम करने बैठे। बाद में प्रभु के चरणपीठ पर बैठकर मुख्य गणधर चक्रायुध ने संघ के आगे देशना देना आरंभ किया। दुसरी पौरुषी पूर्ण होने पर उन्होंने भी देशना समाप्त की। बाद में देवता वगैरेह सभी प्रभु को झुककर अपने-अपने स्थान पर गये। उनके तीर्थ में सूवर के वाहनवाला, श्यामवर्ण धारण करनेवाला, सूवर के जैसा मुखवाला, दो दक्षिण कर में बिजारु और कमल, दो वाम

कर मे नकुल और अक्षसूत्र को धारण करनेवाला गरुड नाम का शांतिनाथ प्रभु का शासन देवता बना, दो वाम भुजा मे कमंडल और कमल धारण करनेवाली निवार्षी नाम की प्रभु की शासनदेवी बनी । वे दोनो शासनदेवता निरंतर जिनके सान्निध्य मे रहते थे ऐसे शांतिनाथ प्रभुने भव्य प्राणीयों को प्रतिबोध करने के लिये अन्यत्र विहार किया ।

एक बार विहार करते प्रभु वापस हस्तिनापुर नगर मे आये । करुणानिधि भगवान वहाँ पधारे यह खबर सुनकर कुरुचंद्रराजा पुरजन और देशजन को साथ मे लेकर अमावास्या के दिन सूर्य के पास चंद्र आता है उस तरह प्रभु के पास आया । चतुर्विध संघ योग्य स्थान पर बैठा, तब प्रभु ने संसार मे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली देशना दी । देशना के अंत मे प्रभु को झुककर कुरुचंद्र बोला- “हे स्वामी ! पूर्वजन्म के कौन से शुभ कर्मसे मैं यह राज्य पाया हूँ ? प्रतिदिन अद्भूत ऐसे पांच वस्त्र और फलादिक मुझे पूर्व के किस कर्म से भेट मिल रहे है ? और वे भेट वस्तुएँ मैं इष्ट जन को दूंगा ऐसा मानकर मैं किस कर्म से उसका उपभोग करता नहीं हूँ, उसी तरह किसी को देता भी नहीं हूँ ? तब प्रभु बोले-

“तुझे यह राज्यलक्ष्मी मिली है वह प्रतिदिन पांच वस्तुओं की भेट है तुमने पूर्व मे दीये हुऐ मुनिदान के प्रभाव से मिल रही है और उसका दान या उपभोग नहीं हो सकता है वह साधारण पुण्य के लिये है । क्योंकि जो वस्तु बहुत लोगो के आधीन होती है वह एक भोग से भोगी नहीं जा सकती है’ इसलिये ‘यह वस्तु मैं इष्टजन को दूंगा’ ऐसा तुम्हे विचार होता है । प्राणीयों को पूर्व कर्म के अनुसार ही बुद्धि उत्पन्न होती है । अब तुम्हारा विशेष चरित्र सुनो-

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र के बारे मे कोशल नाम का देश मे श्रीपुर नाम का अेक नगर है । उसमे सुधन, धनपति, धनद और धनेश्वर नाम के चार समान आयु के वणिकपुत्र सहोदर की तरह वे मित्र भी थे । एक बार वे चारो मित्र इकठे होकर धन उपार्जन करने के लिये द्रोण नाम के पुरुष के पास बहुत प्रवास भोजन उठाकर रत्नद्विप की ओर चले । मार्ग मे एक महाघाटी आयी । उस घाटी मे बहुत उतर जाने के बाद उस समय साथ का भोजन काफी था फिर भी समाप्त होने आया । आगे चलकर काउसग्ग ध्यान मे रहे हुऐ अेक मुनि उन्हें दिखाई दिये । उस क्षण उन्होंने सोचा की इस मुनि को कुछ भिक्षा दी जाये तो अच्छा है’ बाद मे वे भोजन उठानेवाले द्रोण से कहा हि ‘हे भद्र ! इस महर्षि को कुछ भोजन दो’ तब उसने अधिक श्रद्धा से मुनि को प्रतिलाभ करवाया (दिया) । उससे उसने महा भोगफलकर्म का उपार्जन किया । वहाँ से सब रत्नद्विप मे आये । वहाँ से अच्छा व्यापार करके काफी धन उपार्जन करके वापस अपने नगर मे आये और उस पुण्य के बीज से सभी आनंदीत रहने लगे । स्वाति नक्षत्र का जल एकबार भी मिल जाय तो वह भी मोती बनता है चार श्रेष्ठी पुत्रो मे धनेश्वर और धनपति जरा मायावी थे और द्रोण की वृत्ति उन चारो से शुद्ध थी । वह द्रोण आयुष्य का क्षत्र होने पर वह मृत्यु को प्राप्त होकर मुनिदान के प्रभाव से हस्तिनापुर राजा का पुत्र हुआ । तुम्हारे गर्भ के समय तुम्हारी माता ने स्वप्न मे मुख मे चंद्र प्रवेश करते देखा था । जिससे पिता ने तुम्हारा कुरुचंद्र ऐसा नाम रखा । जो सुधन और धनद थे वे मृत्यु पाकर वणिक पुत्र हुऐ है । उसमे सुधन कांपिल्यपुर मे वसंतदेव नाम का वणिक पुत्र हुआ है और धनद कृतिकापुर मे कामपाल नाम का वणिक पुत्र हुआ है । वे दोनो मायावी धनपति और

धनेश्वर कालयोग से मृत्यु पाकर मदिरा और केसरा नाम की कोई वणिक पुत्री हुई है। धनपति शंखपुर मे मदिरा नाम की और धनेश्वर जयंती नगरी मे केसरा नाम की उत्पन्न हुई है।

वे चारो जन अनुक्रम मे बडे होकर शिशुवय का उल्लंघन करके नये यौवन मे आये, उसमे सुधन का जीव जो वसंत देव हुआ है। वह अन्यदा कांपिल्यपुर से व्यापार के लिये जयंती नगरी मे आया, वहाँ उसने धन उपार्जन किया। एकबार अष्टमी का चंद्रोत्सव था, जिससे वसंतदेव रतिनंदन नाम के उद्यान मे आया। वहाँ दैवयोग से धनेश्वर का जीव केसरा हुआ था। वह केसरा वसंतदेव के देखने मे आयी। उसने भी स्निग्ध दृष्टि से वसंतदेवी की ओर देखा, तब वे दोनो को परस्पर पूर्व जन्म का स्नेह प्रगट हुआ। वहाँ जयंतीनगरी का निवासी प्रियंकर नाम का वणिकपुत्र भी था, उसे वसंतदेवने पुछा 'यह स्त्रि कौन है ? किसकी पुत्री है ? प्रियंकर ने कहा कि 'यह पंचनंदी नाम के शेट की पुत्री जयंतदेव की बहन है और इसका नाम केसरा है' तब से वसंतदेव ने केसरा के भाई जयंतदेव के साथ स्नेह बढ़ाया और आपस मे एक दुसरे के यहाँ आने-जाने लगे। एकबार जयंतदेव ने वसंतदेव को भोजन के लिये निमंत्रित किया। इस तरह मैत्रि मे वृद्धि हुई। वहाँ नेत्ररूप कुमुद को कौमुदी समान केसरा पुष्पों द्वारा कामदेव की पूजा करती दिखाई दि और उसी समय जयंतदेव के हाथ मे से पुष्प की माला वसंतदेव को उसने भी सानुराग दृष्टि से अवलोकन किया। उस समय यह अनुकूल शगुन हुआ। इस तरह दोनो हर्षित हुऐ, क्योकि परस्पर जो शुभ चेष्टा होती है वह दोनो को अच्छा परिणाम देती है। उस समय केसरा और वसंतदेव के भाव वहाँ रही प्रियंकरा नाम की धात्रीपुत्रीयों के जानने मे आयी। चेष्टा पर से दुसरे के हृदयगत भाव जाननेवाले मनुष्य को परहृदय को जानना सरल है। बाद मे केसरा के भाई ने वसंत की तरह कामदेव की पूजा करते है उस तरह अपने मित्र वसंतदेव की पूजा की। उस समय मे धात्रीसुता प्रियंकरा ने केसरा से कहा- 'केसरा ! तुम्हारे भाई मित्र की पूजा कर रहे है, तो तुम भी कुछ योग्य लगे वैसा करो' उसके ऐसे वचन सुनकर एक साथ लज्जा, भय और हर्ष को धारण कर केसरा बोली- 'तुम उचित समझती हो, तो जो योग्य लगे उसे तुम्ही करो' बाद मे प्रियंकरा उसके आंगन मे रही हुई प्रियंगु वृक्ष की मंजरी और कंकोल वगैरेह लेकर वसंतदेव के लिये बोली- 'हे सुंदर ! ले यह मेरी स्वामीनी के हाथोंसे चूनकर इष्ट को देने लायक पुष्प और फल तुम्हे देती है' 'मै इस बाला से सहमत हूँ' इस तरह सोचता और हर्षित वसंतदेव ने अपने हाथो से वे पुष्प और फलो को ग्रहण किया। बाद मे अपने नाम की मुद्रिका उसे दी वसंतदेव ने कहा 'आप उसे कहे कि यह कार्य आपने बहुत अच्छा किया, अब से सदा इष्ट के अनुकूल बर्ताव करे'। प्रियंकरा ने ऐसा दृढ अनुरागरूप, अंकुर को उत्पन्न करने मे मेघजल जैसा वचन केसराने कहा। उस रात्रि के पिछले प्रहर मे स्वप्न मे अपना पाणिग्रहण करते हुऐ ऐसे वसंतदेव को देखा और वसंतदेव ने उससे विवाह किया। उनका स्वप्न दर्शन भी उन्हे विवाह से अधिक हर्षदायक लगा। तत्काल शरीर रोमांचित करके केसरा ने उस स्वप्न की बात प्रियंकरा को बताई। उसी समय पास रहे पुरोहित ने आकस्मिक कहा कि 'इस तरह अवश्य होगा' यह सुनकर प्रियंकरा ने केसरा से कहा- 'यह स्वप्न और शगुन द्वारा देखते हुऐ वसंतदेव अवश्य तुम्हारे भर्तारि (पति) होंगे। इसलिये यह शगुनग्रंथि बांधे।' बाद मे प्रियंकरा ने जाकर वसंतदेव से स्वप्न की बात

कही, तब उसे स्वप्न में उसी तरह का स्वप्न आया जानकर अपना अर्थ सिद्ध हुआ है ऐसा मानने लगा। बाद में प्रियंकरा बोली- 'मेरी स्वामिनी ने अपनी आत्मा आपको अर्पण की है, तो अब आप संकल्प-विकल्प छोड़कर विवाह की सर्व तैयारीयां करें' वसंतदेव ने कहा जब विधि (दैव) ने तैयारी करके रखी है, क्योंकि मनुष्यघटित कार्य कभी विघटित भी होता है, लेकिन विधि का कार्य कभी असफल नहीं होता है' इस प्रकार कार्यचतुर वसंतदेव ने आलाप और सत्यंकार करके मानो मूर्तिमंत नियति (भवितव्यता) हो वैसी प्रियंकरा को बिदा की। इस तरह प्रतिदिन एक दुसरे को संदेशारूप अमृत का पान करते वे वसंतदेव और केसरा का कुछ काल गया, लेकिन वह शत वर्ष के निर्गमन जैसा हो गया।

एक बार अपने घर में वसंतदेव ने पंचनदी शेट के घर में मांगलीक वाद्यों की झनकार सुनी। तत्काल वसंतदेव ने अपने पुरुषों को जांच करने के लिये भेजे। उन्होंने आकर कहा कि 'कान्यकुब्ज के (कन्नोज देश के) निवासी सुदत्त शेट के परदत्त नाम का पुत्र को पंचनदी शेट ने अपनी पुत्री केसरा दी है, उसकी बधाई के उपलक्ष में यह मांगलिका वाद्य बज रहे हैं। यह खबर सुनते ही मानो मुद्गल से ताड़ित किया हो उस तरह वसंतदेव मुर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय तुरंत प्रियंकरा ने वहां आकर आश्वासन दिया कि 'हे भद्र ! हमारी स्वामिनी केसरा ने आपको संदेशा कहलवाया है कि आप खेद न करें। मेरे बुजुर्गों को उपक्रम सुनकर भी मुझे जो प्रिय होगा उसके साथ ही मैं विवाह करूंगी। मातापिता मेरे अभिप्राय के जाने बिना यह कार्य कर रहे हैं तो करे, मैं तो मेरी इच्छा से ही करूंगी। हे नाथ ! या तो आप मेरे स्वामी बनेंगे अथवा मेरी मृत्यु होगी, दुसरा कुछ भी नहीं होगा। कुलीन की वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होती है। यह सुनकर संतोष पाकर वसंतदेव ने कहा- 'पूर्वोक्त प्रकार के हम दोनों का स्वप्न आया था उससे कुलीन की प्रतिज्ञा कभी भी व्यर्थ नहीं होती है इसलिये मेरी प्रतिज्ञा है कि किसी भी उपाय से केसरा से ही विवाह करूंगा या यमराज के द्वार जाऊंगा' इस प्रकार कहकर प्रियंकरा को विदा किया। तब उसने केसरा के पास आकर सारा वृत्तांत उसे सुनाया वह यह सुनकर खुश हुई। इस तरह परस्पर संबंध बनाये रखने के उपाय की चिंता करते वे दोनों चातक पक्षी की रात्रि की तरह कुछ समय दुःख में व्यतीत किया। परंतु अनेक उपाय करने पर भी उनका इरादा सफल नहीं हुआ।

उसी समय में केसरा के विवाह के लिये एक दिन सुबह बारात आई। यह सुनकर वसंतदेव पवन के वेग की तरह जल्द नगर के बाहर के उद्यान में गया। वहां जाकर सोचने लगा 'अंगुली द्वारा दिखलाने से वह कदू की तरह वह केसरा दुसरे के साथ विवाह हो जाने से मृत्यु हो जायेगी अथवा यथायोग्य कृत्य को नहीं समझनेवाले उसके मातापिता से बहुत समय से खेद पायी और मेरे साथ विवाह से निराश हुई वह बाला शादी बिना ही पंचतत्व को प्राप्त हो जायेगी। इसलिये मैं उससे पहले ही मृत्यु पाकर मेरे दुःख को शांत कर दूं। क्योंकि जले हुए पर फफोले हो उसके जैसा प्रिया के मरण सुनने के लिये कौन इच्छा करेगा ? इस प्रकार सोचकर वसंतदेव एक अशोक वृक्ष के उपर चढ़कर अपने भाथे की तरह गले से फांसी खाने की तैयारी करने लगा पाश को बांधा तभी लतागृह में से कोई

पुरुष 'अरे ! 'साहस मत कर' इस तरह बोलते-बोलते निकल गया और अशोक वृक्ष पर चढ़कर गले के फांस की गांठ तोड़ डाली । बाद में कहा कि 'तुने यह कार्य तुम्हारी आकृति से विरुद्ध किया है' वसंतदेव ने कहा कि हे सुंदर ! इंद्रवरण के रूपवान फिर भी निःसार फल की भांति दैव से दग्ध हुआ ऐसी मेरी आकृति द्वारा आप क्यों भ्रमित होते हो ? हे भद्र ! प्रिया के विरह दुःख का अंत करने के कारणरूप मृत्यु की इच्छा रखनेवाले ऐसे मुझे पाशग्रंथि तोड़कर आपने क्यों विघ्न खड़ा किया ? बाज में पुछने से वसंतने अपना केसरा के साथ विवाह संबंधी सभी वृत्तांत सुनाया । प्रायःदुसरे को कहने से दुःख कुछ शांत होता है ।

तब उस पुरुष ने कहा- 'यदि आपको यह महादुःख प्राप्त हुआ है, तो भी उससे विवेकी पुरुष को प्राणत्याग करना युक्त नहीं है, लेकिन इच्छित अर्थ की प्राप्ति हो ऐसा उपाय करना युक्त है, क्योंकि यह उपाय से तुम्हें मिलता है । इसलिये तुम पशु की तरह व्यर्थ क्यों मरते हो ? कभी किसी उपादेय वस्तु में उपाय चले ऐसा न हो तो भी उससे मरना उचित नहीं है, कारण कि मरने से वस्तु प्राप्त नहीं होती है । मरने के बाद तो मात्र अपने कर्म की उचित ऐसी गति में ही जाना पड़ता है । मैं स्वयं इष्ट वस्तु प्राप्य होनेपर भी उसके उपाय के अभाव में इस जगत में पर्यटन करके जी रहा हूँ, क्योंकि जींदा नर कभी भी भद्र देखता है । मैं कृत्तिकापुर का निवासी हूँ मेरा नाम कामपाल है मेरे यौवनमय में उन्मत्त होकर मैं देशांतर देखने के लिये निकला था । घूमता-घूमता शंखपुर नगर में पहुंचा, वहाँ शंखपाल नाम का यक्ष का महोत्सव हो रहा था वह देखने में आया । वहाँ कामदेव के अंतःपुर जैसा आम्रकुंज में अंकांत शुभ दर्शिनवाली एक सुंदर कन्या मेरे देखने में आयी, उसे देखकर उस पर अनुरागी बना । उसने भी मुझे अनुरागी से देखा । उसके प्रेमपाश से बद्ध हुआ मैं बहुत देर तक वहाँ खड़ा रहा । वह अनिदिता बाला ने मुझे सखी द्वारा तांबुल दिया, जो होठ के राग की तरह उस पर मनोराग का भी कारण बना । तांबुल लेने से उसके बदले में कुछ देना चाहिये ऐसी इच्छा से मैं सोच रहा था, उसी समय आलान स्तंभ को उखाड़कर लोहे की शृंखला को तोड़कर कोई बलवान हाथी छुटकर हमारी ओर आता हुआ दिखाई दिया । प्रतिकार न चलने पर छोड़ दिया हुआ, अति व्याकुल हुये जिसके पिछे महावत दौड़ रहे हैं । ऐसा और उपर चढ़ा हुआ भयभीत महावतो को क्षोभ दिलाता हुआ वह हाथी एक क्षण में वह निकुंज के पास आया । उस समय कन्या का परिवार पलायन हो गया था । प्रायःभय प्राप्त होते ही अपनी आत्मा सर्वोपरी होती है । तब हाथी नजदीक आ गया, उससे वह भाग न सकी । इसलिये सिंह के पास हिरणी की तरह कांपती खड़ी रही । जैसे हाथी ने सूंड से उसे पकड़ना चाहा उसी समय मैंने लकड़ी द्वारा हाथी के पंचक में आघात किया । तब पुच्छ पर सर्प के स्पर्श की भांति हाथी कन्या को छोड़कर मेरे उपर आया । परंतु मैं तत्काल हाथी को छलकर उस कन्या को लेकर दूसरी ओर भाग गया और उपद्रव न हो ऐसे प्रदेश में मैंने उसे रख दिया, लेकिन उस सती स्त्रिने अपने हृदय में से मुझे छोड़ा नहीं । थोड़ी देर में उसका परिवार वहाँ आया । मदिरा को मैंने बचाया है ऐसा जानकर उस परिवार ने चारणभाट की तरह मेरी स्तुति करने लगा । सखीयां उसे वापस आम्रवन में ले गईं, लेकिन दैवयोग के पवन से खिंचे हुए उस हाथी के जलकण उस दिशा में आकर गिरे । तब वह मदिरा और उसकी सखीयां दशो दिशा में

भाग गई। मदिरा कहीं गई, वह दिखाई नहीं दी, मैं उसे देखने की इच्छा से इधर-उधर घूमने लगा। कई स्थानों पर घूमने के बाद भी वह दिखाई नहीं दी। लंबे समय तक उसे देखा वह दिखाई नहीं दी। तब मैं शून्य हृदय से घूमता हुआ यहाँ आया हूँ उसे प्राप्त करने में निरुपाय हूँ, तथापि मैं मरता भी नहीं हूँ, देखो मैं जिन्दा हूँ। केसरा की प्राप्ति में तो उपाय भी है, इसलिये तुझे सम दुःखी मित्र समझकर मैं कहता हूँ की तुम अज्ञान से मरना मत प्रातःकाल में विवाह होनेवाला है इसलिये वह केसरा अकेली आकर रति सहित कामदेव की पूजा करेगी, क्योंकि ऐसा आचार है, इसलिये वह आये उससे पहले हम दोनों कामदेव के मंदिर में जाकर साधक की तरह प्रवेश करके गुप्तरूप से रहे। जब केसरा मंदिर में आयेगी, उस समय मैं उसका वेष पहनकर उसके परिवार को फुसलाकर उसके घर जाऊंगा। मैं जब दूर निकल जाऊंगा तब उसे लेकर तुम यहां से स्वच्छंद होकर दुसरी किसी जगह पर चले जाना, इस तरह करने से तुम्हारी इच्छा अखंडित सिद्ध हो जायेगी।'

वसंतदेव उसके वचन से हर्ष पाकर बोला- 'मित्र ! इस तरह करने में मुझे योग और क्षेम दोनों दिखाई दे रहे हैं, लेकिन तुझे कष्ट में देख रहा हूँ।' उस समय इष्ट देव की तरह कोई ब्राह्मणी ने छिक खाई। उसे सुनकर उसे छिक को कार्य साधक मानकर कामपाल ने कहा कि 'इसमें मुझे कुछ भी कष्ट नहीं होगा, लेकिन तुम्हारे कार्य में साथ देने से मेरा अभ्युदय होने का संभव है।' सात्विक पुरुषों को देव भी अनुकूल होते हैं। उस समय एक वृद्ध ब्राह्मण ने मन में हर्षित होकर आक्समिक उसके वचन स्वार्थ के अनुकूल वचन कहा कि 'आप कहते हैं वैसा ही है' बाद में वह शगुन ग्रंथि बांध, उसका वचन स्वीकार करके वसंतदेव उसके साथ नगरी में प्रवेश किया। दोनों संध्याकाल में घर से निकले और कामदेव के मंदिर में आकर कामदेव की मूर्ति के पीछे छुप गये। वहाँ रहे उन्होंने मांगलिक वाजिंत्रो की ध्वनि सुनी, तब केसरा जरूर आयेगी, ऐसा जानकर वे हर्षित हुए। केसरा भी स्मरण मात्र से साध्य ऐसे प्रियसमागमरूप साध्यमंत्र का बारंबार स्मरण करती हुई वहाँ आयी। विमान से उतरते हैं उस तरह वह शिबिका से उतरकर केसरा प्रियंकरा के हाथ में से सुवर्णमय पूजा ग्रहण की। बाद में अकेली कामदेव के मंदिर में प्रवेश किया और प्रथा के अनुसार मंदिर के द्वार बंध किये। बाद में कामदेव को उद्देश्य मानकर भूमितल पर पुष्प, पत्र और अर्घ्य डालकर हृदय में कामासक्त होकर हाथ जोड़कर इस तरह बोली- 'हे भगवन् मकरध्वज ! आप सभी के चित्त में उत्पन्न होते हो और उसमें रहते हो तो सभी के भाव आप जानते हो इसलिये हे प्रभु ! आप मेरे सभी भाव जानते हो, फिर भी मुझे यह अनभीष्ट पति के साथ बलात्कार से क्यों जोड़ते हो ? क्या ये आपको घटित है ? वसंतदेव के अलावा किसी भी पुरुष में मेरा मन रमता नहीं है, इसलिये विष कन्या के पति की तरह दुसरा पति मेरे मरण समान है। इसलिये अब दुसरी बार जन्मांतर में वे वसंतदेव ही मेरे पति बने। मैं आपको चिरकाल से नमस्कार करती हूँ, उसमें यह अंतिम नमस्कार है' ऐसा कहकर जैसे ही अपना मस्तक को तोरण की फांसी में बांधना शुरू किया, उसी समय वसंतदेव दौड़कर आये और पाशग्रंथि को तोड़ डाली। 'यह यहाँ कहाँ से ? यह जानकर केसरा आश्चर्य चकित लज्जा और भयभीत हो गई। बाद में वसंतदेव ने उस कुमुदेक्षणा केसरा से कहा- 'हे प्रिये ! मैं तुम्हारा प्राणप्रिय वसंतदेव हूँ, जिसकी आपने कामदेव से परलोक में भी स्वामी के

तौर पर याचना की। हे कृशोदरी ! यह मेरे निष्कारण मित्र महात्मा की बुद्धि से तुम्हें हरण करने की इच्छा से यहाँ अग्रिम आकर बैठे थे। आपका जो वेष है वह मेरे मित्र को दे। उस वेष को पहनकर तुम्हारे परिजनो को मोहित करता हुआ वह तुम्हारे घर जायेगा और हे श्याम केशवाली कांता ! यह मित्र तुम्हारे परिवार के साथ कुछ आगे जाने पर हम दुसरे देश में चले जायेंगे। वसंतदेव के ऐसे वचन सुनकर उस स्त्रिने अपना वेष उतारकर कामपाल को दे दिया। वसंतदेव कामदेव की पीछे छुपकर रहा। कामपाल ने कामदेव की पूजा पुष्पादिक से करके केसरा का वेष धारण करके लज्जा से मुख को ढक दिया। वह स्त्रिवेशी कामपाल कामदेव के मंदिर के द्वार खोलकर, प्रियंकरा के सहारे वह शिबिका पर चढ़ा और उठानेवालों ने शिबिका का वहन किया, तब कामपाल परिजन से अलक्षित पंचनंदी शोठ के घर आया। अच्छी तरह से योजित दंभ के अन्त को ब्रह्मा भी नहीं जान पाते हैं। प्रियंकराने उसे वाहन पर से उतारकर वधूगृह में लाकर, एक सुवर्णमय वेत्रासन पर बैठाया। और हे केसरा ! प्रिय समागम के मंत्र का स्मरण करते रहना' ऐसा कहकर उसका प्रिय करनेवाली प्रियंकरा अन्यत्र चली गई। प्रियंकरा के वाक्यों का भावार्थ जानकर महामति कामपाल बारंबार कामरति समागम के मंत्र का स्मरण करने लगा।

उस समय शंखपुर निवासी मदिरा जो केसरा के मामा की लड़की थी वह भी निमंत्रण से बारात के साथ आयी थी, वह कामपाल के पास बैठकर, कुछ निःश्वास छोड़कर बोली- 'बहन केसरा ! वांछित सिद्धि देव के आधीन है तो उसमें तुम क्यों खेद करती हो ? हे सुंदरी ! तुम्हारी इच्छा वसंतदेव के साथ संगम करने की थी, ऐसा मैंने शंखपुर में सुना था। हे सरखी ! मैं मेरे अनुभव से प्रियपति के विरह की वेदना को जानती हूँ, इसलिये तुम्हें आश्वासन देने के लिये कहती हूँ कि प्रतिकूल विधि अनभीष्ट करती है, उसी तरह भाग्यदशा के वश से वह अनुकूल होती है तो अभिष्ट भी वही करता है। प्रिय सरखी ! तुम धन्य हो, तुम्हें तुम्हारे प्यारे के साथ दर्शन, आलाप इत्यादि का बारंबार लाभ मिला। लेकिन मेरा भयंकर वृत्तांत तो सुनने लायक है। वह सुनो-एकबार मैं शंखपाल यक्ष का उत्सव देखने परिवार के साथ उद्यान में गयी। वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे मानो प्रत्यक्ष कामदेव हो ऐसा हृदय का सर्वस्व चुरानेवाला एक युवान पुरुष मेरे देखने में आया। मैंने सरखी के साथ तांबुल भेजा। थोड़ी देर में वहाँ एक तूफानी हाथी वहाँ पर आया। यमराज की तरह उस हाथी के पास से उसने मुझे बचाया। दुबारा उस हाथी को शंका आने पर वह परिवारजन के साथ त्रस्त होकर इधर-उधर चली गई, इतने में वह नर कहीं चला गया वह वापस ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। तब से भ्रमर के देश से बन्दरी की तरह सभी जगह जिसे अप्रीति मिलती है ऐसी मैं किसी भी तरह दीन की तरह जी रही हूँ। कालरात वह मनोहर युवान मेरे स्वप्न में दिखाई दिया, यदि दैव अनुकूल होगा तो वह प्रत्यक्ष होगा। प्रिय बहन ! तुम्हारा दर्द कम करने के लिये यह मैंने रहस्यमय कहानी सुनाई है क्योंकि दुसरे को दुःखी देखकर दुःखी मनुष्य आश्वासन देता है। हे सरखी ! अब खेद न करे, जब विधि अनुकूल होगी तब स्वयमेव प्रियसमागम हो जायेगा। इसलिये कायर न बनकर धीरजवान बन।'

मदिरा का यह वृत्तांत सुनकर कामपाल ने मुखपर से नीरंगी दूर करके कहा कि- 'शंखपाल

यक्ष के उत्सव मे आपने जो पुरुष देखा था वह तुम्हारा प्रिय मैं ही हूँ हे कांते ! दैव अनुकूलता से हमारा अभी समागम हो गया है, उसी तरह वसंतदेव और केसरा का भी समागम हुआ है, हे सुदर्शना ! अब आलापरुपी विघ्न ना करें, विघ्नकारी भय को छोडो और मुझे यहाँ से निकलने का मार्ग बतलाईये । इस तरह कहने से मदिरा ने गृहोद्यान के पश्चिम की ओर का मार्ग बतलाया, तब कामपाल के साथ मदिरा भी वहाँ से निकल गई और जिस नगर मे वसंतदेव और केसरा रहते थे वहाँ वे दोनो पहुँच गये ।

“हे राजन् ! वे पूर्व के स्नेह से नित्य आकर आपको पांच अद्भूत वस्तुएँ भेंट करते हैं वह तत्व से जान ले । वे सभी वस्तु आप इष्टजनों के साथ भोगने के लिये समर्थ हो जायेंगे । अब तक वे अभीष्ट जनो को नहीं जानने के कारण आप भोग कर सके नहीं हैं ।”

प्रभु के ऐसे वचन सुनकर राजा को और उन्हें पूर्व स्नेह का उद्योत करने मे दीपक समान जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । बाद मे कुरुचंद्र राजा भगवंत को झुककर उन्हे सहोदर की तरह स्नेह से अपने घर ले गये । देवता भी झुककर नमन करके अपने स्थानो पर लौट गये और भगवंत ने विश्व का अनुग्रह करने के लिये वहाँ से अन्यत्र विहार किया ।

बासठ हजार आत्मनैष्ठिक मुनि, इक्सठ हजार छ सौ साध्वी, आठसौ चौद पूर्वधारी महात्मा, तीन हजार अवधिज्ञानी, चार हजार मनःपर्यवज्ञानी, चार हजार तीन सौ केवलज्ञानी, छै हजार वैक्रयलब्धिवाले, दो हजार चारसौ वादलब्धिवाले, दो लाख नब्बे हजार श्रावक और तीन लाख तीरानबे हजार श्राविकाएँ-इसी तरह केवलज्ञान से आरंभ कर चौबीस हजार नौसो निन्यानबे वर्ष तक विहार करते प्रभु का परिवार बना । अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर शांतिनाथ प्रभु समेत शिखर पधारे । वहाँ नौसो मुनियो के साथ अनशन ग्रहण करके । अेक मास के अंत मे ज्येष्ठ मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन चंद्र भरणी नक्षत्र मे आने पर शांतिनाथ भगवान उन मुनियो के साथ मोक्ष मे गये । कुमारपन मे, मांडलिक मे, चक्रवर्त्ती मे और व्रत मे प्रत्येक मे पचीस-पचीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर शांतिनाथ प्रभु का एक लक्ष्य वर्ष का आयुष्य पूर्ण हुआ । श्री धर्मनाथ स्वामी के निर्वाण बाद श्री शांतिनाथ प्रभु का निर्वाणकाल पौने पल्योपम उने तीन सागरोपम जाने के बाद हुआ है । बाद मे इंद्रादिक देवो ने आकर शांतीनाथ प्रभु के निर्वाण महिमा किया । कुछ समय पश्चात् चक्रायुध गणधर केवलज्ञान प्राप्त करके भवि प्राणीयों को बोध करवाने के लिये विहार करके आयुष्य का क्षय होने पर कोटिशिला नाम के तीर्थ पर बहुत साधुओं के साथ मोक्ष मे गये ।

षट्खंड पृथ्वीतल का जय करने मे भी जिसे प्रयास नहीं करना पडा है, तिनके की तरह राज्य लक्ष्मी को छोड कर जिन्होने व्रत ग्रहण किया है और चक्रवर्त्ती तथा तीर्थकर से जिनका यश जग मे प्रसिद्ध है ऐसे श्री शांतिनाथ भगवंत का धीरोदांत और धीरशांत चरित्र सदा जय पाता है ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये पंचमपर्वणि

श्रीशांतिनाथचरमभववर्णनो नामः पंचमः सर्गः ॥५॥

॥ समाप्तं चेदं पंचम पर्व ॥

पर्व-६

प्रथम सर्ग

श्री कुंथुनाथ चरित्र

जगत मे जयवंत ऐसे श्री कुंथुनाथ स्वामी की देशनावाणी की जय हो, जो वाणी महामोहरूपी पाषाण को भेदने मे सरिता (नदी) की बाढ जैसी है। संसार सागर के मंथन करने मे मंदराचल जैसा त्रैलोक्यपति श्री कुंथुनाथस्वामी का पवित्र चरित्र अब मै कहता हूँ।

इस जंबूद्विप के पूर्वविदेह क्षेत्र मे शोभा से स्वर्ग का भी विजय करनेवाला आवर्त्त नाम का विजय है उसमे स्वर्दिग नाम की एक बडी नगरी है। वहाँ सर्वगुणो का पात्र और धर्मधुरंधर जनो की सीमा जैसा सिंहावह नाम का राजा था। वह धर्म का आधार, पाप का कुठार, न्याय का कुलग्रह और सदबुद्धियों की जन्मभूमि जैसा था। उसका विचार मन की तरह विद्वानो को भी दुर्लक्ष था। उसका प्रभुपन इंद्र जैसा था और उत्साह मे विष्णु जैसा था। समुद्र की तरह वह उसकी मर्यादा का कभी भी उल्लंघन नहीं करता था। परंतु वह शक्तिमान राजा स्वयंमेव इस जगत को मर्यादा मे रखता था। उसके धनुष्य की ध्वनि लक्ष्मीयो का आकर्षण मंत्र, शत्रुओं को भेद मंत्र और पृथ्वी का रक्षामंत्र हो ऐसा शोभा देता था। वह धर्म के लिये ही पृथ्वी का राज्य करता था, द्रव्य के लिये नहीं, सर्वदा धर्मनिष्ठ पुरुषों को द्रव्यप्राप्ति वह अनुषंगिक (अवांतर) फलरूप होती है। तत्त्ववेत्ताओ मे अग्रसर वह सिंहावह राजा भोजन को योगी की तरह अनासक्त भोगते है उस तरह भोगता हुआ कुछ काल तक निर्गमन किया।

एक बार समुद्र की लहरो (भरती) की तरह अधिक वैराग्य धारण करके उसने संवराचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। तीव्र व्रत के पालन करते अर्हत सिद्धादि कितने स्थानको की आराधना द्वारा उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। कालयोग मे मृत्यु पाकर वे समदृष्टि और समाधिस्थ महाशय सर्वार्थसिद्ध नाम के अनुत्तर विमान मे देवता बने।

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र मे हस्तिनापुर नाम का एक बडा नगर है। उसमे आये हुऐ चैत्यो की उज्ज्वल पताका से मानो धर्म नित्य नृत्य करता हो उस तरह मालुम पडता है। सभी गृहो मे चारो ओर से बंधी रत्नो से बंधी हुई आंगन की भूमि मे कर्दम का नाम सिर्फ यक्षकर्दम मे था। रत्नो से जडित उस नगरी के किल्ले मे पडे हुऐ अपने प्रतिबिंबो के उपर मंदगंधी हाथी दुसरे हाथी की बुद्धि से दंतघात करता है। राजमंदिरो मे, प्रजा के गृहो मे, द्वार पर और अन्य स्थानो मे आकाश मे ग्रहो की तरह, अर्हत के प्रतिबिंब व्याप्त हो रहे थे। उस नगरी की अलकापुरी मे कुबेर की तरह तेज द्वारा नये सूर्य के जैसा शूर नाम का राजा था। उसके हृदय मे दुसरी आत्मा की तरह उसमे धर्म बसा हुआ था और अर्थ तथा काम ये बहिरात्मा की तरह बाहर ही रहते थे। प्रताप से दिशाओ को दबाता हुआ ऐसा वह राजा सर्व शस्त्रो को बाजुबंध और कडे वगेरेह की तरह भुजाओ मे आभूषणो के तौर पर थे। वह कभी भी कोप नहीं करता था, तथापि पृथ्वी को अच्छी तरह पालन करता था। चंद्र तीव्रता के बिना विश्व को प्रकाशित करता है। रुपलावण्य से सुंदर अंगोवाली और निर्मल शील द्वारा शोभित हरि की लक्ष्मी जैसी श्रीदेवी नाम की उसकी पत्नि थी। मानो अमृत की नीक हो अथवा चंद्र की अधिदेवता हो ऐसी वचन द्वारा अमृत को

बरसाती वह सुंदरमुखी रमणी अतिशय शोभा देती थी । निर्दोष अंगवाली वह श्रीदेवी मंद मंद चलती थी और मंद स्वर में बोलती थी । राजहंस को हंसनी की तरह शूर राजा की वह प्राणवल्लभा थी । वैमानिक देव की तरह ज्यो शूरराज निर्विघ्न सुख में मग्न होकर उसके साथ उत्तम भोग भोग रहा था ।

यहाँ सर्वार्थसिद्ध विमान से तेतीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके सिंहावह राजा का जीव श्रावणमास की कृष्ण नवमी को चंद्र कृतिका नक्षत्र में आने पर वहाँ से च्यवन करके श्रीदेवी के उदर में अवतरित हुआ । उस समय चार दांतवाला श्वेत हाथी, कुमुद के पुष्पो जैसी कांतिवाली वृषभ ऊँची केशरावाला केशरी, अभिषेक द्वारा मनोहरालक्ष्मी । पंचवर्णी पुष्पो की माला, पूर्णिमा का चंद्र, उद्योत करता सूर्य, पताका सहित महाध्वज, सुवर्ण का पूर्ण कुंभ, कमलो से भरा सरोवर, तरंगों से उछलता समुद्र, रत्नमय विमान, आकाश तक ऊँचा रत्नपुंज और निर्धूम अग्नि-इस तरह चौदह महास्वप्न श्रीदेवी ने देखे । उसने राजा से स्वप्न की बात कही । राजाने कहा-‘देवी ! इस स्वप्न के प्रभाव से आपको चक्रवर्ती और तीर्थंकर पुत्र होगा’ अनुक्रम में नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर बैशाख मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन चंद्र कृतिका नक्षत्र में आने पर अन्य ग्रह योग्य स्थान उच्च होने पर छाग के चिन्हे से अंकित सुवर्ण जैसी कांतिवाले और सर्व लक्षणों से पूर्ण ऐसे अक राजपुत्र को श्रीदेवी ने जन्म दिया । उस समय में क्षणभर के लिये नारकी जिवों को भी सुख मिला । तीनों जगत में उद्योत हो रहा है और इंद्रादिक के आसन कंपित हुए । प्रथम आसन कंपन से आयी दासीयों की तरह छप्पन दिक्कुमारीयों ने सूतिकर्म किया । बाद में शक्रेंद्र पांचरूप होकर प्रभु को मेरुगिरि पर ले गये । वहाँ तिरसठ इंद्रोंने तीर्थजल से प्रभु को बिठाकर शक्रेंद्र ने स्नान करवाया और पूजादि विधि करके इस प्रकार स्तुति करने लगे-

हे जगत्पति ! आज क्षीरसागर प्रमुख जलाशयों का जल पद्म वगैरेह के द्रव का जल और कमल, शुद्र हिमालय वगैरेह पर्वतों की औषधियाँ, भद्रशाल प्रमुख वन के पुष्प और मलयाचल की आस-पास की भूमि के चंदन वे सब आपके स्नान में उपयोगी होने से कृतार्थ हुए हैं और हे देव ! आपके जन्मकल्याणकों के महोत्सव करने से इन सब देवताओं के औश्वर्य भी कृतार्थ हुआ है । आपके बिंब से अलंकृत हुआ यह मेरुगिरि आज आपके महल की तहल सभी पर्वतों में उत्कृष्ट और तीर्थरूप बना है । हे भूवनेश्वर ! आपके दर्शन और स्पर्श से आज हमारे नेत्र और हाथ सही अर्थ में सार्थक हुए हैं । हे नाथ ! आज आपका स्वाभाविक अवधिज्ञान भी सफल हुआ है । जिसके द्वारा हे प्रभु ! आपका जन्म जानकर हमने जन्मोत्सव किया है । हे प्रभु ! जिस तरह अभी स्नान काल में मेरे हृदय पर रहे हो उसी तरह हृदय के भीतर चिरकाल तक रहना” इस तरह प्रभु की स्तुति करके उन्हें लेकर इंद्र हस्तिनापुर में गये और वहाँ श्रीदेवी के पास वापस प्रभु को स्थापित किया ।

प्रातःकाल में शूर राजा ने पुत्र का जन्मोत्सव किया । जब तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं तब संपूर्ण जगत उत्सवमय हो गया था । प्रभु गर्भ में थे, तब उनकी माता ने कुंथु नाम का रत्नसंचय देखा था, जिससे पिता ने उनका कुंथु ऐसा नाम रखा । इंद्र ने अगूँठे में संक्रमित अमृत पान करता प्रभु अनुक्रम में वृद्धि पाने पर पैतीस धनुष्य ऊँचे कायावाले हुए । पिता की आज्ञा से योग्य समय में कई कन्याओं से विवाह किया । ‘भोगफलकर्म दुसरी तरह से छेदा नहीं जाता है’ जन्म से तेईस हजार साढ़े सातसौ वर्ष बीत जाने पर प्रभु ने पिता की आज्ञा से राज्य ग्रहण किया । उतने ही मांडलीकपन में गये बाद में

शस्त्रागार मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । जगत को पूजनीय ऐसे शूर राजा के पुत्र ने चक्ररत्न की पूजा की । महात्मा सेवक जनो का भी सत्कार करते हैं बाद मे चक्ररत्न का अनुकरण से प्रयाण करके अनुक्रम मे मागधपति, वरदामपति, प्रभासपति, सिंधुदेवी, वैताढ्याद्रि कुमारदेव और कृतमालदेव को अपने तरह से साध्य कर लिया, सिंधु निष्कूट को सेनापति से साध्य करवाया । बाद मे सेनापति ने जिसके द्वार खोले हैं ऐसी तमिस्रा गुफा मे प्रवेश करके सामने की ओर निकल कर आपात जाति के म्लेच्छो को साध लिया । बाद मे सेनापति के पास से सिंधु के दुसरे निष्कूट को साध्य करवाया । वहाँ से शुद्र हिमालय पर्वत समीप जाकर क्षुद्रहिमवंत कुमारदेव को साध्य किया । बाद मे ऋषभकूट पर 'अपना आचार है' ऐसा मानकर अपना नाम लिखा । वहाँ से चक्ररत्न का अनुकरण करके चक्रवर्ती वापस लौटे । अनुक्रम मे वैताढ्य पर्वत के पास आये, वहाँ दोनो श्रेणीयो मे रहनेवाले विद्याधरो ने विविध भेट देकर प्रभु की पूजा की । गंगादेवी और नाट्यमाल देव को साधकर गंगा के म्लेच्छ लोकोद्वारा भरपूर ऐसे उत्तर निष्कूट सेनापति के पास से साध्य करवाया । बाद मे सेनापति ने खोले खंड प्रपाता गुफा के द्वार द्वारा वैताढ्य गिरि मे प्रवेश करके परिवार सहित सामने की ओर निकल गये । वहाँ गंगा के मुख उपर रहनेवाले नैसर्प वगेरेह नवनिधियां प्रभु को अपने आप सिद्ध हो गई । गंगा का दुसरा निष्कूट सेनापति के पास से साध्य करवाया । इस तरह संपूर्ण भरतक्षेत्र को कुंथुनाथ प्रभु ने छैसौ वर्ष मे साध लिया । चक्रवर्ती की संपत्ति से संपूर्ण मनुष्य तथा देवताओके सानिध्य मे कुंथुनाथ भगवान दिग्विजय करके वापस हस्तिनापुर मे आये । बाद मे मनुष्य और देवोने आकर प्रभु के चक्रवर्तीपन का अभिषेक किया । उसका महोत्सव उस नगर मे बारह वर्ष तक प्रवृत्त था । कुंथुनाथ स्वामी के चक्रवर्तीपन का वैभव मे तेईस हजार साढे सातसौ वर्ष निर्गमन हुआ । बाद मे लोकांतिक देवताओ ने आकर कहा की 'स्वामी ! तीर्थ पधारे' (करे) उस विज्ञप्ति सुनते ही प्रभु ने पुत्र को राज्य सौंपकर वार्षिक दान देना आरंभ किया । बाद मे राजाओ और देवो ने जिनका निष्क्रमणोत्सव किया है ऐसे प्रभु विजया नाम की शिबिका में बैठकर सहस्राश्रवण मे पधारे ।

जिस मनोहर वन मे युवान पुरुष की तरह चंपकलता को चुंबन करता, आम्रयष्टि को कंपन कराता, वासंतीलता को नचाता हुआ निर्गुंडी को मर्दन करता, चारोली को आलिंगन करता, नवमल्लिका को स्पर्श करता, गुलाब को चतुर करता, कमलिनी के पास जानेवाला, अशोकलता को दबाता हुआ और कदली पर अनुग्रह करता ऐसा युवा पुरुष जैसा दक्षिणी पवन बह रहा था, जिसमे ललित ललनाएँ झुला झुलने मे आसक्त थी, जिसमे नगर के धनाढ्य श्रेष्ठीकुमार पुष्प चुनने की क्रीडा मे व्यस्त थे उन्मत कोकिला के मधुर आलाप से उसी तरह भ्रमरो के गुंजन से मानो आगमन का न्योता देता हो ऐसा मालुम पड रहा था । ऐसे सुंदर उद्यान मे प्रभु ने प्रवेश किया । बाद मे शिबिका से उतरकर, अलंकारादिक का त्याग करके वैशाख मास की कृष्ण पंचमी को कृत्तिका नक्षत्र के दिन पिछले प्रहर मे एक हजार राजाओं के साथ छठ का तपयुक्त प्रभुने दीक्षा अंगीकार की । तत्काल मनःपर्यवज्ञान प्रभु को प्राप्त हुआ दुसरे दिन चक्रपुर मे व्याघ्र सिंह राजा के घर प्रभुने परमान्न द्वारा पारणा किया । देवताओ ने वहाँ वसुंधरादि पांच दिव्य किये । व्याघ्रसिंह ने प्रभु के चरणस्थान पर रत्नमय पीठ बनवाई । पवन की तरह निःसंग और प्रतिबंध रहित ऐसे प्रभुने छद्मस्थ मे सोलह साल पृथ्वी पर विहार किया ।

अन्यदा कुंथुनाथ स्वामी विहार करते-करते वापस सहस्राग्र वन में आये। वहाँ तिलक के वृक्ष के नीचे छत्र तप करके प्रभु काउसग्न ध्यान में रहे। चैत्र मास की शुक्ल तृतीया के दिन चंद्र कृत्तिका नक्षत्र में आने पर घातीकर्म का क्षय होने से प्रभु को केवलज्ञान हुआ। तत्काल इंद्रसहित चतुर्विध देवनिकाये आयी तीन प्रकार से मंडित ऐसा समवसरण रचा, देवताओं ने संचार किये हुये सुवर्ण के कमल पर चरण रखकर प्रभु पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश किया। वहाँ धर्मचक्री और जगद्गुरु ऐसे कुंथुनाथ स्वामी ने चारसौ बीस धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके और उसके नीचे देवछंदक पर रहे पूर्व सिंहासन पर 'तीर्थाय नमः' ऐसा कहकर पूर्वाभिमुख से वे बैठे, तब व्यंतर देवताओं ने प्रभु के प्रभाव से दुसरी तीन दिशाओं में प्रभु के जैसे ही उनके प्रतिबिंब तैयार किये। बाद में योग्य स्थान पर चतुर्विध संघ बैठा, मध्य वप्र में तिर्यच बैठे और नीचे के वप्र में सर्व वाहन रखे। प्रभु को समवसरेण जानकर कुरुवंशी राजा वहाँ आये और प्रभु को नमस्कार करके इंद्र के पीछे अंजली जोड़कर बैठे। बाद में सौधर्मेद्र और कुरुवंशी राजा दुबारा प्रभु को झुककर हृदय में हर्ष धारण करते हुये इस प्रकार से स्तुति करने लगे-

“चतुर्विध धर्म का उपदेश करनेवाले, चार शरीरवाले, चार मुखवाले और चौथे पुरुषार्थ (मोक्ष) के स्वामी ऐसे आपकी स्तुति कर रहे हैं। हे जगदीश्वर! आप निःसंगपन से चौदा महारत्नों का त्याग करके तीन निर्दोष रत्नों को धारण कर रहे हैं। हे नाथ! आप पुरे विश्व के मन हरनेवाले हो, फिर भी आप मन रहित हैं और उत्तम सुवर्ण जैसे वर्णवाले फिर भी चंद्र जैसा शीतल तुम्हारे स्वरूप का ध्यान होता है। हे प्रभु! आप निःसंग फिर भी बड़ी ऋद्धिवाले हैं, ध्यान करने योग्य फिर भी ध्याता हैं, कोटि देवताओं से आप घिरे हुये हैं फिर भी कैवल्य को भजते हैं। स्वयं वीतराग फिर भी विश्व का आप पर राग अधिक है और अकिंचन फिर भी जगत को परम समृद्धि के लिये होते हैं। हे राजन्! जिसका प्रभाव जान नहीं सकते हैं और जिनका रूप समझने में नहीं आता है ऐसे आप दयालु सत्तहरवे भगवंत को हमारा नमस्कार है। हे विभु! आपको प्रणाम करना वह भी मनुष्यों को अर्चित्य चिंतामणिरूप होता है, तो आपका मन से ध्यान करते और वचन से स्तवन करते हुये क्या प्राप्त नहीं हो सकता है? हे प्रभु! आपके स्तवन में, प्रणाम में, ध्यान में और आपके विषय में हमारी प्रवृत्ति सदा बनी रहे, दुसरे किसी भी मनोहर पदार्थों की हमें कोई जरूरत नहीं है।”

इस तरह इंद्र और कुरुराज स्तुति कर रहे हैं बाद में श्री कुंथुनाथ भगवंतने धर्मदेशना देना आरंभ किया-“महान दुःख का कारण यह संसाररूपी सागर चौर्यासी लाख जीवायोनिरूपी जलभ्रमरीयो में पड़ने से भी अधिक भयंकर है। उस भवसागर को तैरने में समर्थ ऐसी नाविका, विवेकी जनो को इंद्रियरूपी उर्मियों का जय के साथ मनःशुद्धि करना है। विद्वानों ने मनःशुद्धि को निर्वाणमार्ग को बतानेवाली और कभी भी नहीं बुझनेवाली एक दीपिका कही है। मनःशुद्धि है तो ही छिपे हुये गुण भी प्रगट हो जाते हैं फिर गुण कभी कम नहीं होते हैं, इसलिये प्राज्ञ पुरुषों ने सदा मनःशुद्धि करना। जो मनःशुद्धि के बिना मुक्ति के लिये तपस्या करते हैं वे नाव छोड़कर महासागर को दो भुजाओं द्वारा तैरने की इच्छा रखते हैं। तपस्वीयों की मनःशुद्धि बिना की सर्व क्रिया अंध को दर्पण की तरह निष्फल है। मुक्ति में जाने की इच्छा से तप करनेवाले प्राणीयो को चक्रवात की तरह चपल चित किसी दुसरी

ओर डाल देता है, अर्थात् मुक्ति मे न ले जाकर दुसरी अन्य गति मे ले जाता है । निरकुंश होकर निःशंक घूमता मनरूपी निशाचर यह इन तीन लोगो को संसार के गहरे गह्वे मे गिरा देता है । मनका रोध किये बिना जो मनुष्य योग पर श्रद्धा रखता है, वह पैर द्वारा गाव मे जाने का इच्छुक पंगु मनुष्य की तरह उपहास्य को पाता है मन का निरोध करने से सभी कर्म का भी निरोध होता है और मन को नहीं रोधक बनानेवाले के सभी कर्म फैल जाते है । यह मनरूपी कपि विश्व मे परिभ्रमण करने मे लंपट है, जिससे उसे मुक्ति की इच्छावाले प्राणीयो के यत्न से अपने अधिकार मे रखें । सिद्धि की इच्छा रखनेवाले प्राणीयो को अवश्य मन की शुद्धि करनी ही चाहिये । उसके बिना तप, श्रुत और यम नियम द्वारा काया को दंड देना कुछ कम नहीं है । मन की शुद्धि द्वारा राग द्वेष की जय करना जिससे आत्मा भावमलिनता छोडकर स्वस्वरूप मे स्थिर हो जाय'

इस तरह की प्रभु की देशना सुनकर बहुत से लोगो ने दीक्षा ले ली और स्वयंभू वगेरेह ने प्रभु के पैतीस गणधर हुऐ । प्रथम पौरुषी पूर्ण होने पर प्रभु देशना से विराम पाये, तब स्वयंभू गणधर ने प्रभु के चरणपीठ पर बैठकर देशना दी । दुसरी पौरुषी पूर्ण होने पर गणधर ने भी देशना समाप्त की, तब सभी मनुष्य, देवता और कुंथुस्वामी को झुककर अपने स्थान पर लौट गये । कुंथुस्वामी के तीर्थ में रथ का वाहनवाला, श्यामवर्ण धारण करनेवाला, दो दक्षिण भुजा मे वरद और पास और दो वाम भुजाओ मे बिजोरु और अंकुश रखनेवाला गंधर्व नाम का यक्ष शासनदेवता हुआ और गौर वर्णवाली मयूर के वाहनपर बैठनेवाली दो दक्षिण भुजा मे बिजोरु और त्रिशुल तथा दो वाम भुजाओ मे मुषंडी और कमल को धारण करनेवाली बलादेवी नाम की प्रभु के सदा पास मे रहनेवाली शासनदेवी हुई वे दोनो शासनदेवता निरंतर जिनके सान्निध्य मे रहे है ऐसे प्रभु भव्य प्राणीयो के उपकार के लिये वहाँ से अन्यत्र विहार करने चले गये ।

साठ हजार साधु, साठ हजार छैसौ साध्वी, छैसौ सत्तर चौदपूर्वधारी, ढाई हजार अवधिज्ञानी, तीन हजार तीन सौ चालीस मनःपर्यवज्ञानी, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी, पांच हजार एक सौ वैक्रयलब्धिवाले, दो हजार वालब्धिवाले, एक लाख नेव्यासी हजार श्रावक और तीन लाख इक्यासी हजार श्राविकाएँ-इतना परिवार केवलज्ञान हो जाने के बाद विहार करते हुऐ हुआ था । केवलज्ञान के पश्चात् तेईस हजार सातसौ चौतीस हजार चौतीस वर्ष बितने पर अपना निर्वाण समय नजदीक आने पर जानकर प्रभु समेतशिवर पर पधारे और वहाँ एक हजार मुनियों के सान्निध्य मे अनशन किया । मास के अंत मे बैशाख मास की कृष्ण प्रतिपदा के दिन कृत्तिका नक्षत्र मे सर्व मुनियों के साथ कुंथुनाथ प्रभु मोक्ष मे गये । कुमारपन मे, राज्य करने मे, चक्रवर्त्तीपन मे और व्रत मे समान भाग मे आयुष्य बीता कर पिनच्यान्बे हजार वर्ष का आयुष्य उन्होंने पूर्ण किया था । श्री शांतिनाथ प्रभु के निर्वाण बाद आधा पत्योपम जाने के बाद श्री कुंथुनाथ का निर्वाण हुआ । उस अवसर पर इंद्रोने देवता सहित आकर प्रभु का निर्वाण महोत्सव किया और प्रभु की दाढ तथा दांत वगेरेह पवित्र वस्तु पूजन करने के लिये क्रमशः अपने स्थान मे ले गये ।

**इत्याचार्य श्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि
श्री कुंथुनाथ चरितवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥**

द्वितीय सर्ग

श्री अरनाथ चरित्र

इक्ष्वांकु वंश मे तिलकरूप, गोरोचन चंदन जैसी सुंदर कांतिवाले और चौथे आरारूप सरोवर मे हंस समान ऐसे श्री अरनाथ प्रभु आपका रक्षण करें। तीन जगतरूप कुमुद को आनंद देने मे चंद्र समान ऐसे परमेष्ठी श्री अरनाथ अर्हत के उज्ज्वल चरित्र का वर्णन करता हूँ-

इस जंबूद्विप के पूर्वविदेहक्षेत्र मे सीता नदी के विशाल तट पर वत्स नाम का विजय है उसमे सुसीमा नाम की महानगरी मे शौर्यसंपत्ति की सीमारूप धर्म और कीर्तिरूप धनवान धनपति नाम का राजा था। वह राजा सारभूत आज्ञा से पृथ्वी पर राज्य करते-करते साथ मे किसी को बंधन, ताडन, अंगखंडन या दंड कुछ भी नहीं होता था। परस्पर राज्यकलह बिना और वात्सल्यभाव से बर्ताव से लोगो से पृथ्वी मुनियों के आश्रम सी जान पडती थी। उसके दयारूप जलतरंगवाले मनरूप सरोवर मे यह असार संसार से विरक्त होकर सारग्रहण बुद्धिवालो ने संवर का ग्रहण करके संवर मुनि के पास दीक्षा ली। विविध अभिगह को धारण करके राजमुनि व्रत का पालन करते, तीव्र तपस्या करते पृथ्वी पर विहार करने लगे। एक बार उन्होंने चार्तुमास में उपवास किये। पारणा के दिन जिनदास नाम का श्रेष्ठीपुत्र ने श्रद्धा से प्रतिलाभित किया। अनुक्रम मे अर्हत आराधनादि कितने स्थानो की आराधना द्वारा वे धनपति मुनि ने कर्म का नाश करके तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। कालयोग मे मनःसमाधि मे पंचत्व पाकर वे धनपति मुनि नौव्हे ग्रैवेयक मे परम महर्द्धिक देवता हुऐ।

जंबूद्विप के भरतक्षेत्र मे परम समृद्धिवाला हस्तिनापुर नाम का नगर है वहाँ सेवा के लिये आये हुऐ राजा प्रजा जैसे लगते हैं और दिव्य वाहन और वेष पहननेवाली प्रजा राजा जैसी लगती है। नगर के आसपास आयी वलयाकार खाई, मानो लक्ष्मी को स्थिर रखने के लिये विधाता ने उसे आज्ञा लेख (आन) दी हुई ऐसी मालुम पड रही है। उस नगरी मे सुवर्ण, स्फटिक और नीलमणि के अनेक चैत्य हैं। वह मेरु, कैलाश और अंजनगिरि के शिखरो के जैसे दिखाई देते हैं। उस नगर मे देवताओ मे इंद्र जैसा श्रेष्ठ और चंद्र की तरह अच्छे दर्शनवाला सुदर्शन नाम का राजा था। उसके आसन मे, शयनगृह मे और बाहर मे निरंतर सान्निध्य मे रहता धर्म मानो उसका प्रियमित्र हो ऐसा लगता था। सिद्धमंत्र की तरह उसका प्रताप ऐसा फैल रहा था कि उसकी चतुरंग सेना मात्र आचार के तौर पर रखी थी। राजाओ के भेट दिये हुऐ गजेंद्रो के गाढ मदजल की धाराओ से उसके घर के आंगन की रज हमेशा शम जाती थी। उसके अंतःपुर मे शिरोमणि मानो कोई देवी आई हो ऐसी महादेवी नाम की एक प्रिया थी। वह कभी भी पति के साथ प्रणयकोप नहीं करती थी। और प्रकृति से आर्या ऐसी वह रमणी सपत्नीयो मे भी ईर्ष्या नहीं करती थी। उसमे रहा हुआ पति का प्रसाद और उत्तम सौभाग्य उसे जरा भी मद उत्पन्न नहीं कराते थे, तथापि वह प्रमदाओ मे शिरोमणि कहलाती थी। निर्दोष अंगवाली और लावण्य की सरितारूपी उस देवी के जैसी सिर्फ प्रतिमा दर्पण मे ही दिखाई देती थी, दुसरी किसी जगह दिखाई



श्री अरनाथ भगवान

जीरालापाडो तीर्थ, खंभात, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

शाह नवनीतलाल छोटालाल अंबालाल तेजपुरवाले

गाम : अहमदाबाद, गुजरात

नहीं देती थी। उसके साथ भोग भोगते हुए बलवान सुदर्शन राजा स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं की तरह काल निर्गमन कर रहा था।

नौव्हे ग्रैवेयक देवलोक में और अेकांत सुख में मग्न ऐसा धनपति का जीव वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके और फाल्गुन मास की शुक्ल द्वितीया के दिन चंद्र रेवती नक्षत्र में आने पर वहाँसे च्यवन करके उस महादेवी के उदर में अवतरित हुआ। सुख से सो रहे महादेवी ने रात्रि के शेषभाग में तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदह महास्वप्न देखे। माता को पीडा ने देते, शोभा को बढ़ाता हुआ और तीन ज्ञान को धारण करनेवाला वह गर्भ गूढ़ तरीके से बढ़ने लगा। अनुक्रम में मार्गशीर्ष मास की शुक्ल दसमी के दिन चंद्र रेवती नक्षत्र में आने पर नंदावर्त के लांछनवाला और सर्व लक्षणों से परिपूर्ण ऐसे एक कनकवर्णी पुत्र को जन्म दिया। उस समय छप्पन दिक्कुमारीयों ने आकर सूतिकर्म किया और चौसठ इंद्रों ने मेरु उपर ले जाकर जन्माभिषेक किया। बाद में चंदन विलेपनादिक से पूजा करके आरती उतार के सौधर्मेन्द्र ने इस तरह स्तुति की-अठारह दोष रहित और अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले पुरुषों के ध्यान करने योग्य ऐसे अठारहवे तीर्थंकर को मेरा नमस्कार है। हे तीर्थनाथ ! जिस तरह आप गर्भ में से तीन ज्ञान धारण कर रहे हो, उसी तरह तीनों जगत को भी धारण करते हैं। हे स्वामी ! रागद्वेषादि तस्करो मोहरूपी अवस्वापिनी निद्रा में रखकर तीन जगत को लंबे समय से लुट रहे हैं, इसलिये अब जल्द उसकी रक्षा करें। हे नाथ ! ज्यो श्रान्त ले गये रथों को, तृषातुरों नदी को, ताप से तप्त वृक्ष की छाया को, डूबनेवाले जहाज को, रोगी औषध को, अंधकार से अंध हुए दीपक से, हिम से पीडित हुए सूर्य से, मार्ग भूले हुए राहगीरों से और व्याघ्र से भय पाये अग्नि प्राप्त करके, उसी तरह अनाथ हुए बहुत समय से विधुर बने हुए हमने अभी आपके जैसे तीर्थपति नाथ को प्राप्त किया है। आपके जैसे स्वामी को प्राप्त करके यह सुर, असुर और मनुष्य हर्ष से न समाते हो उस तरह वे अपने-अपने स्थान से यहाँ आते हैं। हे नाथ ! मैं आपके पास से कुछ भी नहीं मांगता हूँ, मात्र इतना ही मांगता हूँ कि आप जन्म जन्मान्तर तक मेरे नाथ बने रहे।”

इस तरह की स्तुति करके प्रभु को लेकर इंद्र अचलपुर (हस्तिनापुर) में आये और वहाँ देवी की बगल में प्रभु को रखा। प्रभात में राजा सुदर्शन ने प्रभु का जन्मोत्सव किया और स्वप्न में देवी ने उर (चक्र के आरे) देखे थे इसलिये प्रभु का अर ऐसा नाम रखा। देवांगना रूप धात्रीयों से समान वय के होकर आये देवताओं से और क्रीडा के साधन (खिलौने) से क्रीडा करते प्रभु अनुक्रम में बड़े हुए। तीस धनुष्यवाली कायावाले अरनाथ प्रभु पिता के शासन की गौरवता के लिये योग्य समय में अनेक राजकन्याओं से विवाह किया और जन्म से इक्यास हजार वर्ष बित जाने पर प्रभु ने पिता की आज्ञा से राज्यधुरा धारण की। प्रभु को मांडलिक में भी उतने ही वर्ष गये। बाद में शस्त्रागार में गगनचारी चक्ररत्न के पीछे दिग्विजय करने निकल पड़े। चारसौ वर्ष तक घूमकर पुरे भरतक्षेत्र पर अपना शासन प्रवृत्त किया। चक्रवर्ती में भी उतना सगय काल (२१००० वर्ष) गया। तब लोकांतिक देवताओं ने आकर कहा कि ‘हे स्वामी ! तीर्थ पधारें’ तब प्रभु वार्षिकदान देकर अपने पुत्र अरविंद को राज्य सौंपकर, वैजयंती शिबिका में बैठकर सहस्राग्र वन में आये। मुनियों की तरह मौन रहे कोकिल पक्षीयों

ने उस वन में वृक्षों का आश्रय किया था। उसमें आयी कृष्णवर्णी शैली (गन्ने) की बाढ़ का रक्षण करनेवाली स्त्रियों के मधुर गीत सुनकर राहगीर खड़े रह जाते थे। वहाँ क्रीड़ा करती नगर स्त्रियों के केशपाश को देखते मयूर के अलग पड़े हुए पंखों की तरह उसकी शरण कि हो ऐसा जान पड़ता था। पुन्नाग के पुष्पों की खुशबू से मधूकर प्रमोद धरते थे। बेर और नारंगी के फलों से आकाश पीला हो गया था। मानो हेमन्त का हास्य है ऐसी चारोली, फली, डोलर और मचकुंद की कलीयों से वह शोभा दे रहा था और रोहडा के पुष्पों की रज से उसने दिशाओं को निर्मल की थी। ऐसे सुंदर उद्यान में नंद्यावर्त से लांछित ऐसे अरनाथ प्रभु ने प्रवेश किया।

बाद में उस वन में वैजयंती शिबिका में से उतरकर मार्गशीर्ष मास की शुक्ल अष्टमि के दिन चंद्र रेवती नक्षत्र में आने पर दिन के पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने छह तप करके दीक्षा ली। तत्काल उन्हें मनःपर्यवज्ञान प्राप्त हुआ। दूसरे दिन राजपुर नगर में अपराजित राजा के घर प्रभु ने परम अन्न से पारणा किया। देवताओं ने वहाँ वसुधारादि पांच दिव्य किये और प्रभु के चरण के स्थान पर रत्नपीठ की रचना की। आसन और शयन का त्याग करके विविध अभिग्रह को धारण करते हुए प्रभु ने छद्मस्थ में तीन वर्ष तक पृथ्वी पर विहार किया। एक बार वापस उसी सहस्राम्र वन में आकर आम्रवृक्ष के नीचे प्रतिमा धरकर खड़े रहे। वहाँ कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के दिन चंद्र रेवती नक्षत्र में आने पर प्रभु ने धातीकर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवताओं ने आकर तत्काल समवसरण रचा, उसमें प्रभु ने पूर्व द्वार से प्रवेश किया और तीनों साठ धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके 'तीर्थय नमः' ऐसा बोलकर पूर्वाभिमुख से पूर्व सिंहासन पर आरुढ़ हुए। व्यंतरो ने तुरंत अन्य तीन दिशाओं में उनके प्रतिबिंब स्थापित किये। चतुर्विध संघ भी आकर योग्य स्थान पर बैठा। प्रभु पधारे हैं ऐसा जानकर राजा कुरुद्वह भी तुरंत वहाँ आया और भगवंत को झुककर इंद्र के पीछे जाकर बैठा। बाद में इंद्र और कुरुद्वह राजा खड़े होकर इस प्रकार से स्तुति करने लगे-

“तीन भुवन के अधीश, सर्व विश्व पर वात्सल्य भाव धरनेवाले, करुणा के सागर और अतिशयो से शोभित ऐसे हे प्रभु! आपकी जय हो। हे नाथ! जिस तरह निष्कारण जगत के उपकार के लिये सूर्य अपने सफल किरणों से विश्व को प्रकाशित करता है, जिस तरह चंद्र अपनी ज्योत्स्ना से विश्व का संताप हर लेता है, जिस तरह वर्षाऋतु मेघ के जल से जगत को जीवन देती है, जिस तरह वायु अपनी निरंतर की गति से जगत को आश्वासन कराता है, उसी तरह निष्कारण तीन लोक के उपकार के लिये आपकी प्रवृत्ति जय प्राप्त करें। हे स्वामी! जो यह जगत अब तक अंधकारमय और अंध हो रहा था, वह अब आपसे प्रकाशमय और नेत्रवाला बना है। हे नाथ! अब से नरक का मार्ग बंध हो जायेगा, तिर्यच योनि में थोड़ी गति प्रवृत्त होगी, स्वर्ग लोक अंक गाव की सीमा दूसरे गांव की सीमा जैसा होगा और मुक्ति जो बहुत दूर है वह भी नजदीक होगी। हे प्रभु! विश्व के उपकार के लिये आप विहार करते प्राणीयों को असंभवित कल्याण में भी क्या-क्या प्राप्त नहीं होगा? अर्थात् सर्व कल्याण प्राप्त होगा”

इस तरह इंद्र और कुरुराज स्तुति करने के पश्चात् अरनाथ भगवान ने धर्मदिशना देना आरंभ किया-

“धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-ये चार पुरुषार्थ मे अंकांत सुख का सागर ऐसा मोक्ष पुरुषार्थ मुख्य है, उसे साधनेवाला ध्यान है, वह सदा मन के आधीन है। उस मन को योगी आत्माधीन करते हैं लेकिन रागादि शत्रु वापस दबाकर उस मन को पराधीन कर देते हैं। उस मन को अच्छी तरह से रक्षण करके रखा हो तो भी सहज मात्र से पाकर पिशाच की तरह रागादि उसे बारंबार छलते हैं। रागादिरूप तिमिर से ज्ञान का नाश करनेवाला अज्ञान अंध की तरह खींचकर प्राणी को नरक के गढ़े में गिरा देता है। द्रव्यादिक में जिस तरह रति और प्रीति वही राग और उसी में जो अरति और अप्रीति वही द्वेष है ऐसा विद्वान कहते हैं। वे राग और द्वेष सर्व प्राणीयों के दृढ बंधनरूप हैं और सर्व दुःस्वरूप वृक्षों के मूल अंकुर हैं। यदि रागद्वेष जगत में नहीं होते तो सुख में कौन विस्मय पाता ? दुःख में कौन दुःखी होता ? और मोक्ष कौन नहीं पाता ? राग बिना द्वेष और द्वेष बिना राग रहता नहीं है। उन दोनों में से एक का त्याग करने पर दोनों को त्याग होता है। कामादि सर्व दोष राग का परिवार हैं और मिथ्याभिमान प्रमुख द्वेष का परिवार है। वह राग द्वेष का पिता, बीज, नायक या परमेश्वर मोह है और वह उससे अभिन्न है। इसलिए सर्व दोषों का पितामह ऐसा वह मोह से बहुत ही संभाल के रहना योग्य है। संसार में यह तीन (राग, द्वेष और मोह) दोष ही हैं, उसके बिना दुसरा कोई दोष नहीं है। उन तीन दोषों के कारण संसारवारिधि में सर्व प्राणी भटकते हैं। जीव स्वभाव से स्फटिक मणि जैसा निर्मल है लेकिन वह भी तीन दोषों की समस्या से तदरूप जानता पड़ता है। अहा ! यह विश्व राजा बिना का है जिसमें रहे प्राणीयों का ज्ञानसर्वस्व और स्वरूप वे लुटेरे देखते-देखते उसे लूट लेते हैं। जो प्राणी निगोदे में हैं और वे नजदीक में जानेवाले हैं वे सभी के उपर उनकी निर्दय सेना आती है। क्या उन्हें मुक्ति के साथ बैर है या मुमुक्षु के साथ बैर है कि जिससे उन दोनों को होनेवाले योग के वे रोकता है क्या ?

उत्तम मुनि दोनों लोक में अपकार करनेवाले उन तीन दोषों जैसा भय पाते हैं, जैसे व्याघ्र, सर्प, जल और अग्नि से भय नहीं पाते हैं। ऐसा यह महा संकटवाला मार्ग महायोगीयों ने आश्रित किया हुआ है, जिसके दोनों ओर रागद्वेष के व्याघ्र और सिंह खड़े हैं। निर्वाणपद की इच्छा करनेवाले प्रमाद रहित पुरुषोंने समभाव को अंगीकार करके वह रागद्वेष रूपी शत्रु का जय करें।”

इस तरह प्रभु की देशना सुनकर बहुत लोगों ने तत्काल दीक्षा ले ली। प्रभु के कुंभ वगैरेह तैत्तिरीय गणधर हुए। प्रथम पौरुषी पूर्ण होने पर प्रभुने देशना समाप्त की। बाद में उनकी चरणपीठ पर बैठकर कुंभ गणधर ने देशना देना आरंभ किया। दूसरी पौरुषी पूर्ण होने पर उन्होंने भी देशना समाप्त करके इंद्रादिक देवता प्रभु को झुककर अपने-अपने स्थान पर गये। उस प्रभु के तीर्थ में तीन नेत्रोवाला, श्यामवर्णी, शंख के वाहन पर बैठनेवाला, छै दक्षिण भुजाओं में बिजोरु, बाण, खड्ग, मुदगर, पाश और अभय तथा छै वाम भुजाओं में नकुल, धनुष्य, ढाल, शूल, अंकुश और अक्षसूत्र को धारण करनेवाला षण्मुख नाम का यक्ष शासनदेवता बना और नीलवर्णवाली, कमल पर बैठनेवाली, दो दक्षिण भुजा में बिजोरु और कमल तथा दो वाम भुजा में पद्म और अक्षसूत्र धारण करनेवाली धारिणी नाम की शासनदेवी बनी। ये दोनों शासनदेवता निरंतर अरनाथ भगवंत के समीप ही रहते थे।

उन शासन देवताओं से अधिष्ठित अरनाथ प्रभु पृथ्वी पर विहार करते अन्यदा पद्मिनीखंड

नाम की नगर के बाहर पधारे । वहाँ प्रभु देशना देने के बाद विराम के पश्चात् कुंभ गणधरने संशय का छेद करनेवाली देशना दी । उसी समय एक वामन पुरुष वहाँ आकर धर्म सुनने बैठा था । देशना के अंत में सागरदत्त नाम के अेक शोठ ने कुंभ गणधर को नमस्कार करके कहा कि- “हे भगवन् ! इस संसार की प्रकृति से ही सभी प्राणी दुःखी तो हैं ही फिर भी उसमें मैं सभी से विशेष दुःखी हूँ, मुझे लेशमात्र भी सुख नहीं है । मुझे जिनमती नाम की स्त्रि है । उसके उदर से रूप द्वारा देवांगना का भी तिरस्कार करनेवाली ऐसी प्रियदर्शना नाम की एक पुत्री हुई है । उस पुत्री ने सभी कलाओं में असमान कुशलता प्राप्त की है और वय, स्वरूप तथा चातुर्य संबंध में विशेष प्रकार की शोभा प्राप्त की है । उसके लिये योग्य वर नहीं मिलने से एकबार मैं दुःखी होकर चिंता कर रहा था, उसी समय मेरी पत्नि जिनमती ने कहा कि, हे नाथ ! क्या चिंता कर रहे हो ? मैंने कहा कि- ‘हे सुंदरी ! पुत्री प्रियदर्शना के योग्य वर ढूँढने पर भी कोई मिल नहीं रहा है उसकी मुझे चिंता हो रही है’ मेरी स्त्रि ने कहा-हे प्रिय ! उसके लिये तुम्हें कोई कष्ट करके श्रेष्ठ वर ढूँढना है जिससे हमें बाद में कोई पश्चाताप नहीं हो ।’ मैंने कहा- ‘प्रिये ! उसके बारे में भगवान ही जाने । क्योंकि सभी लोग अपने सुख में तत्पर रहते हैं, कोई अपने लिये थोड़े भी दुःख की इच्छा नहीं करता है, परंतु सभी को अपने अपने भाग्य के अनुसार ही सुख मिलता है, अधिक नहीं मिलता है ।’

इस तरह कहकर मैं बाजार में गया । वहाँ मार्ग में ताम्रलिप्ति नगरी से आये ऋषभदत्त नाम का अेक महर्द्धिक सार्थवाह को मैंने देखा । साधर्मि के कारण यह मेरा पूर्व मित्र हुआ था । उस से उसके साथ स्नेह भरा और व्यापार के वृत्तांत में गर्भित ऐसे कुछ वार्तालाप हुए । बाद में अेक दिन किसी कारणावश मेरे घर आया । वहाँ मेरी पुत्री प्रियदर्शना के सामने बहुत समय तक देखता रहा । फिर उसने कहा- ‘यह कन्या किसकी है ? मैंने कहा- ‘वह मेरी कन्या है ? लेकिन आपने उसे बहुत देर तक क्यों देखा ? वह बोला- ‘वीरभद्र नाम का अेक युवान और नीतिमान मेरा पुत्र है । वह रूप से कामदेव को, काव्यशक्ति से कवि (शुक्र) को, वक्तृत्व शक्ति से गुरु को, विज्ञान शक्ति से वर्द्धकि को, गीत से हू हू गंधर्व को, वीणा से तुंबरु को, नाट्यकला से भरत को और विनोदक्रिया से नारद को उल्लंघन करे ऐसा है । गुटिकादि प्रयोग से देव की तरह कामरूपी है । जगत में कोई कला नहीं है कि जिसके बारे में मेरा पुत्र विधाता की तरह जानता नहीं है । आज तक उसके योग्य ऐसी कोई भी कन्या मेरे देखने में नहीं आयी, लेकिन आपकी यह कन्या उसके योग्य है, वह लंबे समय से मुझे दिखाई दि है ।’

यह सुनकर मैं बोला- “यह मेरी कन्या कलाकौशल्य द्वारा शोभित है और उसके योग्य ऐसा वर मिलने के लिये लंबेकाल से मैं भी चिंताग्रस्त हूँ । अनुकूल दैव के योग से अपने दोनों का सुहृद संबंध है, तो यह दोनों अपने अपत्यो का वरवधु के द्वारा संबंध चिरकाल तक बना रहें” बाद में आकर पुत्रवधु के लाभ से हर्षित ऋषभदत्त अपनी नगरी में गया और वहाँ से बड़ी बारात के साथ पुत्र वीरभद्र को विवाह के लिये भेजा । वर के तौर पर आये वीरभद्र ने उसके पिताने कहे हुये सभी रूप गुण वगैरेह देखकर मैं आनंदित हुआ । बाद में शुभ दिन पर कुलीन स्त्रियों के मांगलिक आचारपूर्वक वीरभद्र ने मेरी पुत्री प्रियदर्शना के साथ विवाह किया । कुछ दिनों तक मेरे यहाँ रहा बाद में वधू सहित वह अपनी नगरी में

गया। मानी पुरुष कभी भी ससुर के घर पर अधिक समय तक नहीं रहते हैं। कुछ समय व्यतीत होने पर मेरे सुनने में आया है कि अंक रात्रि के अंतिम प्रहर में प्रियदर्शना को सो हुई छोड़कर वीरभद्र अकाकी कहीं चला गया है। अभी उसकी खबर यह वामन पुरुष लाया है, लेकिन वह स्फूट तरीके से स्पष्ट कह नहीं रहा है। इसलिये हे प्रभु! आप स्पष्ट तरीके से कहें।”

इस तरह सागरदत्त शेट ने भगवान कुंभ गणधर से विज्ञप्ति की, तब कृपालु मुनि बोले-

“हे श्रेष्ठीन्! तुम्हारे दामाद वीरभद्र को उस रात में ऐसा विचार हुआ कि ‘मैं कला का पारदर्शी हूँ, मेरे कई मंत्र सिद्ध किये हैं, मैंने दिव्य गुटिका के विस्मयकारी प्रयोगों की जानकारी प्राप्त की है, सर्व प्रकार के विज्ञान में संपूर्ण चातुर्य प्राप्त किया है, परंतु यह सब चातुर्य अप्रकाशित होने से निरर्थक है, क्योंकि बड़ों के सान्निध्य में लज्जा के कारण मैं नियंत्रित हूँ। कुएं के मेढक की तरह पड़े रहने से मैं कापुरुष जैसा बन गया हूँ, यहाँ से दूसरे किसी अन्य देश में जाकर मेरे गुणों को प्रकाशित करूँ’ इस तरह सोचकर वह खड़ा हो गया। दुबारा उसे विचार आया कि यह प्रियदर्शना यदि कृत्रिम निद्रा लेती होगी तो मेरे गमन में बाधक बनेगी ऐसा सोचकर उसने अपनी प्रिया को क्रीड़ा करने के लिये जगाने लगा उस समय प्रियदर्शना ने कहा-हे प्रिय! मुझे सिर में दर्द हो रहा है, क्यों मुझे परेशान कर रहे हो?’ वीरभद्र ने कहा-किसके दोष से मस्तकपीडा हो रही है?’ प्रियदर्शना ने कहा-‘इस समय में भी आप ऐसी चतुरवाणी बोल रहे हो’ वीरभद्र ने कहा-‘हे कांता! कोप मत करे, अब मैं दुबारा ऐसा नहीं करूंगा’ इस तरह साभिप्राय वचन कहकर उसने प्रियदर्शना के साथ अधिक विषय क्रीड़ा करके बाद में रतिश्रांत हुई और अपने पति की वक्रोक्ति नहीं जानती प्रियदर्शना गाढ निद्रा में सो गई। जब वह सही तर से सो गई तब दृढ़ तरीके से दबा हुआ अंतरीय वस्त्र छोड़े बिना ही उसे सोई हुई छोड़कर वीरभद्र वीर की तरह अपने घर से बाहर निकल आया। बाद में गुटिका के प्रयोग से वह श्यामवर्णी बन गया। वर्ण का बदल काव्य की तरह रूप भी बदल जाता है।

वीरभद्र कुमार विद्याधर की तरह गांव शहर वगैरेह में अपने कलाकल्प और अतिशय विज्ञान को बतलाता हुआ घूमने लगा। पति के चले जाने के पश्चात् प्रियदर्शना सास ससुर की आज्ञा लेकर आपके घर आयी ‘पति के बिना कुलीन स्त्रियों को दूसरे कहीं निवास करना उचित नहीं है’ अनुक्रम में घूमते-घूमते वीरभद्र सिंहलद्वीप में रत्नाकर नाम के राजा से अधिष्ठित ऐसे रत्नपुर नगर में आया वहाँ शंख के जैसा उज्ज्वल गुणवाला शंख नाम के शेट की दुकान पर जाकर बैठा। उसे देखकर हर्षित हुए शेट ने पुछा कि ‘भद्र! आप कहीं से आ रहे हो?’ वीरभद्र ने कहा-“तात! ताम्रलिप्ति नगरी से मेरे घर से रुठकर निकला हूँ और घूमते-घूमते यहाँ आया हूँ’ शंख शेट ने कहा-‘कुमार! आप सुकुमार फिर भी इस तरह विदेश गमन किया वह अच्छा नहीं किया। हे वत्स! तुम बिना तकलिफ के यहाँ मेरे पास आये हो इससे ऐसा मालुम पड़ रहा है कि तुम्हारा वक्र कर्म भी दैव ने सरल कर दिया है। इस तरह कहने के पश्चात् उसे अपने घर ले गये और पुत्र की तरह उसे स्नान-भोजन करवाकर स्नेह से कहा-‘हे पुत्र! मुझे पुत्र नहीं है, तो तुम्हीं मेरे पुत्र हो, इसलिये मेरे इस वैभव को स्वामी बनकर उसका इच्छानुसार भोग करो और दानविलास से देव समान समृद्धि भोगकर। मेरे नेत्रों को प्रसन्न करो।

हे वत्स ! इस जगत मे धन सुलभ है लेकिन उसका भोक्ता पुत्र दुर्लभ है' यह सुनकर वीरभद्र ने नम्रता से कहा- 'पिता के घर से निकलकर वापस पिता के घर मे आया हूँ, मैं आपकी आज्ञा का पालन कर्ता और सर्वदा आपका शिष्य हूँ । औरस पुत्र पापपुत्र कहलाता है और मैं तो आपका धर्मपुत्र हूँ ।'

बाद मे वीरभद्र शंख शोठ के घर पर रहकर अपनी कलाविज्ञान की कुशलता से नगरजनो को आश्चर्य चकित करने लगा । वहाँ के राजा रत्नाकर को सर्व विश्व मे सुंदर अनंगसुंदरी नाम की एक पुरुषद्वेषणी पुत्री थी । उसके पास शंखशोठ की विनय के स्थान जैसी विनयवती नाम की पुत्री प्रतिदिन जाती थी । एक बार विनयवती को वीरभद्र ने पुछा कि बहन ! आप नित्य कहाँ जाती है ? तब विनयवती ने भ्रातस्नेह से जो यथार्थ था वह कह दिया । वीरभद्र ने पुछा- 'बहन ! तुम्हारी सखी कैसे विनोद से समय व्यतीत करती है ? विनयवती बोली- 'वीणा वगेरेह वाजिन्त्रो के विनोद से' वीरभद्र बोला- 'तब मैं भी वहाँ आऊंगा' तब विनयवती ने कहा- 'एक छोटे बालक पुरुषो का भी प्रवेश वहाँ नहीं होता है तो आपका प्रवेश वहाँ कैसे होगा ? वीरभद्र ने कहा मैं स्त्रिवेष ग्रहण कर लूंगा ।' बाद मे विनयवती उससे सहमत हुई । तब वीरभद्र ने सद्य स्त्रिवेष धारण किया । उस तरह अंतःपुर मे जानेपर अनंगसुंदरी ने पुछा- 'सखी ! यह तुम्हारे साथ दुसरी स्त्रि कौन है ? विनयवती बोली- यह मेरी बहन है ।' बाद मे अनंगसुंदरी ने नवीन सुंदर वर्ण से एक फलक पर विरह पीडित हंसनी का चित्र अंकित करने लगी । उस समय स्त्रिरूप वीरभद्र ने कहा- 'आपने यह विरहपिडित हंसनी का चित्र रेखांकन आरंभ किया है लेकिन उसको दृष्टि वगेरेह बराबर चाहिये वैसी नहीं है ।' 'तब लो यह चित्र आप आलेख करे' ऐसा कहकर अनंगसुंदरी ने विविध वर्ण के साथ फलक (बोर्ड) वीरभद्र को सौंप दिया, तब वीरभद्र ने तत्काल बराबर तादृश हंसनी का आलेख करके अनंगसुंदरी को दिया । उसे बराबर देखकर- अनंगसुंदरी बोली- 'अहो ! अंदर के भावो को प्रकाशित करनेवाली कला इस चित्र मे अच्छी कुशलता दिखाई है । देखो, यह उसकी दृष्टि से अश्रुजल के बिंदु बरसा रही है, वदन ग्लानि भरा है, चंचुनाल को शिथिलपन से रखा है, ग्रीवा शिथिल हो गई है और पंख उडने मे असमर्थ से लग रहे है । यह शून्य स्थिति, बिना कहे ही विरह अवस्था को स्पष्ट सूचित कर रही है ।' बाद मे अनंगसुंदरी ने विनयवती से कहा- 'सखी ! ऐसी कला की जानकारी तेरी बहन को आज तक यहाँ पर क्यों नहीं लायी ? घर मे छुपा के क्यों रखा ? वीरभद्र ने कहा- 'गुरुजन की शंका के कारण मेरी बहन मुझे यहाँ नहीं ला रही थी । उसके बिना दुसरा कोई कारण नहीं है ।' अनंगसुंदरी ने विनयवती से कहा- अब प्रतिदिन तुम्हारी बहन को तुम्हारे साथ मे लाया करो । हे सुंदरी ! इनका नाम क्या है ? तब वीरभद्र जल्दी से बोला- 'मेरा नाम वीरमती है ।' राजपुत्री ने फिर से पुछा- 'आप अन्य कौन सी कला जानते हो ?' विनयवती बोली- 'थोडे समय मे ही जो है वह आपके सामने आ जायेगा । दुसरो के कहने से अद्भुत गुणो से प्रतीति नहीं होती है । 'एवमस्तु' ऐसा करके अनंगसुंदरी ने उनका सत्कार करके विनयवती और वीरमती को विदा किया । घर आकर वेष बदलकर पितृभक्ति मे बंधा वीरभद्र शोठ की दुकान पर गया । शोठ ने पुछा, 'वत्स ! इतनी देर कहाँ थे ? यहां तुम्हारे लिये पुछनेवाले लोगो से कंटाल गया हुं' वीरभद्र बोला- पिताजी मैं उद्यान मे गया था ।' शोठ ने कहा- तब तो बहुत अच्छा किया ।'

दुसरे दिन वापस कलानिधि वीरभद्र स्त्रिवेष में अंतःपुर में गया। वहाँ उसने अनंगसुंदरी को वीणा बजाते हुए देखकर वीरभद्र बोला- 'हे सुंदरी ! यह वीणा बराबर स्वर नहीं दे रही है। उसमें किसी पुरुष का बाल उलझ गया है। अनंगसुंदरी ने पुछा-तुमने यह कैसे जाना ? वीरभद्र ने कहा- 'आप उसे बजाती है तब उसमें जो राग का निर्वाह आता है उस पर मुझे समझ में आया है।' बाद में राजपुत्री ने वीणा वीरभद्र को दी, तब तुरंत उसके जानकार वीरभद्र ने उसे खोल डाला और मनुष्य के हृदय में शल्प की तरह उसमें से मनुष्य का बाल निकाल कर दिखाया, तब वह आश्चर्यचकित हो गई। फिर उस वीणा को वापस अच्छी तरह से सजा कर दंड से बांधकर तैयार करके प्रवीणता से तुंबरु गाधर्व को जीतनेवाले वीरभद्र ने वीणा बजाना शुरू किया। सारणी द्वारा श्रुतिओं के स्फूर्ट करनेवाले स्वर धातु तथा व्यंजन स्पष्ट करनेवाले तान उत्पन्न किये। वाद्य के सर्व प्रकार के आश्रयी के श्रवण में अमृतरूप सर्व सकल और निष्कल रागों में वीणा बजाई। यह सुनकर अनंगसुंदरी और सर्व सभा हर्षित हो गई और उसे मृग की भांति की तरह चित्र आलेखित की तरह उसे देखने लगी। वह वीणागीत सुनकर राजपुत्री सोचने लगी कि ऐसा गुणवान मात्र देवताओं को भी दुर्लभ है। इस स्त्रि बिना मेरा जन्म निरर्थक है। 'सकला भी प्रतिमा पुष्पमाल से शोभा देती है।' इस तरह अवसर-अवसर पर दुसरी अन्य कलाएँ वीरभद्र ने अपनी प्रवीणता बतलाकर उसके मनरूप चित्त को हर लिया।

एक बार अनंगसुंदरी को अपने में अनुरक्त हुई जानकर वीरभद्र ने अंकांत में शंख श्रेष्ठी से इस प्रकार से कहा- 'पूज्य पिताजी ! बहन विनयवती के साथ वेष बदलकर स्त्रि वेष में अनंगसुंदरी के पास जाता हूँ, लेकिन आप उसका भय न रखें। मैं जो कुछ करूँगा वह इस तरह करूँगा जिससे किसी भी प्रकार का अनर्थ न हो और आपका सन्मान बढेगा। यदि राजा अपनी कन्या मुझे देने के लिये आपके पास प्रार्थना करेगा तो प्रथम मान्य ना करें। जब वह अधिक आग्रह करें तो आप मान्य करें।' शोठ ने कहा- 'वत्स ! तुम बुद्धि से अधिक हो, जिसे सब समझते हैं। हम तो इतना ही कहते हैं कि तुम सकुशल रहो तुम्हारा शुभ परिणाम हो। बाद में वीरभद्र ने कहा- 'पिताजी ! आप उद्वेग न करें। अब थोड़े ही समय में आपके पुत्र के कार्य का शुभ परिणाम देखेंगे।' शोठ ने कहा- 'वह बात तुम अच्छी तरह जानते हो' ऐसा कहकर शोठ मौन हो गये।

उस समय में रत्नाकर राजा की सभा में बात हुई कि 'ताम्रलिप्ति नगरी से कोई युवान पुरुष शंखशोठ के घर आया है, वह प्रतिदिन नगर में विचित्र कलाएँ दिखाकर सभी को विस्मय में डाल देता है। वह विदेशी है, जिससे उसकी जाति का पता नहीं चलता है, लेकिन उसकी आकृति उच्च कुल की लगती है ऐसा दिखलाई पड़ता है।' राजा सोचने लगा की 'रूप में कामदेव जैसा, सदाचारवाला, अच्छी आकृतिवाला, कलाका रत्नाकर और सद्बुद्धिवाला वह युवा पुरुष यदि मेरी पुत्री को योग्य लगता है तो संबंध जोड़नेवाले विधाता का कार्य दोषित नहीं होगा।'।

यहां एक बार वीरभद्र ने अनंगसुंदरी से अंकांत में पुछा- 'हे सखी आपके पास ऐसी साम्रगी है फिर भी आप भोग से विमुख क्यों हो ? लेकिन मेरे योग्य कुलीन पति मिलना दुर्लभ है। मणि अकेला अच्छा है, लेकिन कांच की मुद्रिका के साथ जडा हुआ अच्छा नहीं लगता है, नदी जलरहित अच्छी है

लेकिन बहुत जलजंतुओ से भरी हुई अच्छी नहीं है, शाला शून्य हो वह अच्छी है लेकिन लुटेरो से भरी अच्छी नहीं है, वाडी वृक्ष बिना की अच्छी लेकिन विषवृक्षवाली अच्छी नहीं, उस तरह रूप यौवनवाली स्त्रि विवाह बिना की अच्छी लेकिन अकुलीन और कला रहित पति से विडंबित हुई अच्छी नहीं। हे सरखी ! इतने समय से अब तक मुझे कोई भी योग्य वर दिखाई नहीं दिया है, तो अल्प गुणवाले पति को धारण करके उपहास का पात्र क्यों बनू ? ऐसा आप बोले नहीं, वीरभद्र बोला-‘सरखी ! योग्य वर मिले तो ही अच्छा है। ‘कोई योग्य वर नहीं है’ ऐसा बोलिये मत, क्योंकि यह पृथ्वी बहुरत्ना है। आपके लिये योग्य वर मैं अभी ढूँढकर लाता हूँ, लेकिन आप अरोचक बन गये हैं, इसलिये आपको भोग रुचेगा नहीं।’ अनंगसुंदरी ने कहा-सरखी ! ऐसी आशा देकर मेरी जिह्वा को आप क्यों खिंच रहे हैं ? ऐसा मिथ्या आप क्यों बोल रहे हो ? जो यदि आपका कहना सच है तो मुझे मेरे योग्य ऐसा वर बतलाओ जिससे मेरा काल, यौवन, रूप वगैरह सर्व सार्थक हो’। इस तरह वीरभद्र ने कहा तब उसने अपना रूप दिखाया। तत्काल अनंगसुंदरी ने कहा-‘अब मैं आपके आधीन हूँ, आप मेरे पति हैं।’ वीरभद्र ने कहा-‘तथास्तु’ परंतु आपको अपवाद न लगे इसलिये अब से मैं यहाँ नहीं आऊंगा। आप अपने पिता से यह बात बतलाईये, जिससे राजा शंख श्रेष्ठी का अपराध न समझे और उसे बुलाकर ‘अनंगसुंदरी के लिये वीरभद्र को ग्रहण करें’। इस तरह आग्रह से कहे।’ अनंगसुंदरी ने उस तरह करने के लिये मान्य किया, तब वीरभद्र अपने घर गया।

बाद में अनंगसुंदरी ने तत्काल अपनी माता को बुलवाकर इस तरह कहा-‘हे माते ! इतने समय तक योग्य वर के अभाव से केवल मातापिता के हृदय में शल्य की तरह खेद के रूप थी। लेकिन अब कला, रूप प्रमुख गुणों से मेरे योग्य ऐसा शंखशेठ का पुत्र वीरभद्र नाम का उत्तम वर मैंने ढूँढ लिया है, इसलिये आज के आज गुणी वर मुझे दे। आप मेरे पिता से विज्ञप्ति करें कि वे मेरे लिये उनके पिता शंखशेठ से प्रार्थना करें’ ऐसे वचन सुनकर रानी खुश हो गयी। तत्काल राजा के पास आकर उन्होंने कहा-‘स्वामी ! बधाई हो, अच्छे भाग्य से अपनी पुत्री के योग्य वर को लाभ हुआ है। अनंगसुंदरी ने अपने आप उसकी परीक्षा करके शंखशेठ के युवान पुत्र वीरभद्र को योग्य वर के तौर पर पसंद किया है।’ राजाने कहा-‘इस विषय के बारे में मैं सोच ही रहा था कि वहाँ चिंतामणि या कामधेनु की तरह आप यहाँ आ पहुँची, अहा ! पुत्री की वर के चुनाव और परीक्षा में कैसा धैर्य और समझदारी से इतना समय उसने धीरज से बिताया और ऐसे योग्य वर को पसंद किया।’

तत्काल राजा के आमंत्रण से बहुत धनाढ्य वणिकोमें श्रेष्ठ शंखशेठ वहाँ आये। उन्होंने राजा को प्रणाम किया। राजा रत्नाकर ने शंखशेठ से कहा-‘ताम्रलिप्ति नगरी से कोई युवान पुरुष आपके घर आया हुआ है, वह सभी कला के सागर से परिपूर्ण, अद्वैत सौंदर्यवाला और गुणज्ञान से उत्तम है, ऐसा मेरे सुनने में आया है।’ शंखशेठ ने कहा-‘हे देव ! उसके गुण सभी लोग जानते हैं’ राजाने कहा-‘वह आपकी आज्ञा में है या नहीं ?’ शंखशेठ ने कहा-‘स्वामी ! उस बारे में मैं आपसे क्या कहूँ ? सर्व जन उसके गुण से खरीद होकर उसके वश में रहते हैं।’ राजाने कहा-शेठजी ! मेरी पुत्री अनंगसुंदरी है, उसे वीरभद्र के लिये आज ही उसे ग्रहण करें, उन दोनों का चिरकाल तक योग बना रहे।’ शेठ

बोले-‘हे प्रभु ! आप हमारे स्वामी हैं और हम आपकी पालक प्रजा योग्य हैं, इसलिये आप कह रहे हो वह संबंध अघटित है, संबंध और मित्रता समान लोगो में शोभा देती है ।’ राजा ने कहा-‘शेठजी ! क्या किस युक्ति द्वारा आप मुझे ना कह रहे हैं ? देखो, मेरी आज्ञा निर्विचार से करें यहां से जाकर आप जल्द सज्ज हो जाओ ।’ राजा की आज्ञा मान्य करके शंखशेठ घर आये और राजा के शासन का सर्व वृत्तान्त वीरभद्र से कहा । बाद में शुभ दिन शुभ लग्न में अनंगसुंदरी और वीरभद्र का बड़ी समृद्धि से विवाहोत्सव हुआ । इस स्वयंवर में वरवधु समान होने से उनकी प्रीति दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ने लगी । वीरभद्र ने नित्य जैन धर्म का उपदेश देकर अनंगसुंदरी को श्राविका बना दिया । सत्पुरुषों का संग इस लोक में क्या, लेकिन परलोक में भी सुख के लिये होता है, एक वस्त्र पर श्री अर्हत की प्रतिमा और चतुर्विध संघ के चित्र आलेख करके वीरभद्र ने राजकुमारी को अर्पण किया और बाद में अच्छी तरह से उसके बारे में जानकारी दी ।

एक बार वीरभद्र को विचार आया की ‘यह स्त्रि मेरे पर स्नेह करती है ऐसा दिख रहा है, लेकिन प्रकृति यह चंचल स्त्रियो की स्थिरता के लिये निश्चय समझना नहि चाहिये । मैं इस स्त्रि का आशय किसी युक्ति से जानूंगा’ ऐसा विचार करके वह चतुर और सुंदर वणिक कुमार ने अनंगसुंदरी से कहा-हे प्रियतमा ! मुझे तुम्हारे बिना और कोई प्यारा नहीं लगता है, तथापि अब स्वदेश में जाने के लिये तुम्हारी आज्ञा ले रहा हूँ कारण कि मेरे मातापिता मेरे वियोग से पीडित होकर अधिक दुःखी हो रहे होंगे, इसलिये मैं जाकर उन्हें आश्वासन देकर आता हूँ । हे सुंदर भ्रुकुटीवाली स्त्रि ! तुम यहीं रहो, मैं जाकर तुरंत वापस लौट आऊंगा, क्योंकि तुम्हारे बिना मैं दुसरे स्थान पर रहने के लिये असमर्थ हूँ’ तब अनंगसुंदरी ग्लान वदन से बोली-‘स्वामी ! आपने बहुत अच्छा कहा, जिसे सुनकर मेरे प्राण मानो जाने के इच्छुक हो ऐसा लग रहा है । आप ऐसा कहने के लिये शक्तिमान बने उस पर से ऐसा लगता है, कि आप कठोर हृदयवाले हो । यदि मैं आप जैसी होती तो आपके ऐसे वचन सुनने के लिये शक्तिमान होती’ इस प्रकार के वचन सुनकर वीरभद्र बोला-‘प्रिये ! कोप न करें, तुम्हें साथ में ले जाने के लिये ही ऐसा उपाय किया है ।’

बाद में वीरभद्र ने अनंगसुंदरी के साथ स्वदेश जाने के लिये रत्नाकर राजा की आग्रहपूर्वक आज्ञा मांगी । राजा प्रिया सहित वीरभद्र को जैसे-तैसे विदाय दी । ‘पुत्री और दामाद के विरह का दुःख किसको दुःसह्य नहीं होता है ? बाद में वह दंपति जहाज में बैठकर जलमार्ग से चले । साहसिक पुरुषों की गति भी जलमार्ग में थलमार्ग में समान होती है । जिस तरह धनुष्य से निकला तीर और घोंसले में से उड़े हुए पक्षी की तरह अनुकूल पवन से प्रेरित जहाज समुद्र में निकल पड़ा । जहाज के कुछ दूर जाने के पश्चात् उसी समय एक कल्पांत काल की तरह एक महापवन बहने लगा । कल्पांत काल की तरह अति भयंकर होकर उछालते हुए समुद्र में हाथी की तरह तिनके के समूह को उछालता है उस तरह जहाज को उछालने लगा । बारंबार उछलता हुआ वह जहाज तीन दिन तक भटक-भटक कर अंत में पत्थर पर पड़े पक्षी के अंडे की तरह टूट गया । तत्काल अनंगसुंदरी को एक जहाज के एक टुकड़े का

सहारा मिला । 'आयुष्य टूटे बिना मृत्यु भी नहीं आती है' इसलिये हंसनी की तरह कल्लोल से उछलती अनंगसुंदरी पांच रातों के पश्चात् अकेले वनवाले समुद्र तट के पर निकली । अपने संबंधियों के वियोग से, विदेशगमन से, प्रिय के वियोग से, जहाज के टूटने से, धन के क्षय से, लहरो के साथ टकराने से और भूख, प्यास से व्याकुल विधुर बन गई अनंगसुंदरी मानो जल से बाहर निकली जलमानुषी हो वैसी संज्ञा रहित होकर मुर्छित हो कर किनारे पर गिर गई । उसे स्वाभाविक दयालु तापसकुमार ने आर्द्र दृष्टि से देखी । बाद में उसे उठाकर बहन की तरह वे अपने आश्रम ले गया । वहाँ उसे कुलपति ने कहा- 'पुत्री ! यहाँ विश्वास धारण करके रहो' बाद में तापसीयो के द्वारा पालन कि हुई कुछ दिनों तक पिता के घर की तरह वहाँ स्वस्थ हुई उसका अतिशय रूप देखकर तापस ने विचार किया कि 'जो यदि यह सुंदर स्त्री नित्य यहाँ रहेगी तो तापसो की समाधि भंग होगी' ऐसा सोचकर वृद्ध तापस ने अनंगसुंदरी से कहा- हे वत्से ! यहाँ से नजदीक अकेले पद्मिनीखंड नाम का शहर है, वहाँ प्रायः धनाढ्य लोग बसते हैं, इससे तुम्हें वहाँ रहने से विशेष स्वस्थता होगी और तुम्हें तुम्हारे भर्तार (पति) का भी समागम भी अवश्य होगा, इसलिये वृद्ध तापस के साथ वहाँ जाओ ।' ऐसी कुलपति की आज्ञा से अनंगसुंदरी वृद्ध तापसो के साथ पद्मिनी खंड नगर के पास आयी । 'हमें नगर में प्रवेश करना योग्य नहीं है' ऐसा मानकर तापस उसे नगरी के पास छोड़कर वापस लौट गये । उस समय दृष्टिपात से आकाश को कुमुदवाली करती हो उसतरह दिशाओं को देखती अनंगसुंदरी झुंड में से भ्रष्ट हुई हिरणी की तरह दिखाई देने लगी । उस समय में देहचिंतार्थ में आती साध्वीयो से प्रवृत्त सुव्रता नाम की गणिनी मानो अपनी माता को देखती हो उस तरह दिखाई दी । उन्हें देखते ही उसे स्मरण हुआ कि 'ऐसी निर्दोष और जगबंध साध्वी मेरे पति वीरभद्र ने पट के चित्रकारी में दिखाया था । बाद में पूर्व विधि के अभ्यास से उनके पास आकर सुव्रता गणिनी को और दूसरी साध्वीयो को उसने वंदना की । बाद में हाथ जोड़कर उसने कहा कि-माते ! मेरे वचन से सिंहलद्वीप के चैत्यों का वंदन करें । वे चैत्य बहुत सुंदर और विस्तृत हैं' सुव्रता गणिनी बोले- 'क्या आप सिंहलद्वीप से आयी हैं ? यहाँ आप अकेले कैसे हैं ? आपकी आकृति परिवार जैसी नहीं लग रही है,' मैं स्वस्थ होने पर सारा वृत्तांत कहूँगी' ऐसा उसने कहा, तब सुव्रता गणिनी उसे साथ में लेकर तुरंत अपने उपाश्रय में गये । वहाँ असाधारण भक्ति से साध्वीयो को वंदना करती अनंगसुंदरी ने आपकी पुत्री प्रियदर्शना देखी । बाद में सुव्रता और प्रियदर्शना के पुछने पर उसने सुव्रता का दर्शन हुआ वहाँ तक का अपना सर्व वृत्तांत कहकर सुनाया । बाद में प्रियदर्शना ने कहा- 'हे सुंदरी ! तुम्हारे पति वीरभद्र के सभी कला और गुण तो मेरे पति वीरभद्र से मिलते हैं, लेकिन उनका वर्णन कैसा है ? अनंगसुंदरी ने कहा- उसका श्याम वर्ण है । 'प्रियदर्शना बोली- 'हे वर्णिनी ! मेरे पति का सिर्फ वर्ण अलग है, बाकी सब मिलता आ रहा है' गणिनी बोले- 'वत्से ! यह प्रियदर्शना तुम्हारी धर्म भगिनी होती है, इसलिये धर्मक्रिया में तत्पर होकर उसके साथ रहो' इस तरह कहने से वह सुव्रता और प्रियदर्शना के कहने से, दर्शन करते ही अतिवात्सल्य दिखाने के कारण अनंगसुंदरी वही

रहने लगी ।

यहाँ वीरभद्र जहाज के बिखर जाने से टूटे हुए जहाज से समुद्र की लहरों के धपेडों से और अनेक प्रकार से ताड़ित होने के बाद भी अटक लकड़ों के तख्त पर पड़ा रहा । सातवें दिन वह रतिवल्लभ नाम के एक विद्याधर के देखने में आया । उससे उस विद्याधर ने उसे तुरंत समुद्र में से निकालकर वैताक्य गिर पर ले गया और स्वयं अपुत्र होने से हर्षित होकर उसने मंदनमजुषा नाम की अपनी प्रिया को पुत्र की तरह अर्पण किया । उनके पुछने से वीरभद्र ने अपनी स्त्रि का और अपना समुद्र में टूटे हुए जहाज का सारा वृत्तांत सुनाया । बाद में उसने कहा-हे पिताजी ! यमराज के मुख में से खिंचकर लाते हैं उस तरह आप समुद्र में से मुझे खिंच लाये हो, लेकिन मेरे साथ डूबी हुई मेरी अनंगसुंदरी का क्या हुआ उसके बारे में बतलाईये' यह सुनकर रतिवल्लभ विद्याधर ने आभोगिनी विद्या से जानकर कहा- 'वत्स ! तुम्हारी प्रिया अनंगसुंदरी और प्रियदर्शना पद्मिनीखंड नगर के बारे में सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में दो बहनें हो उस तरह साथ में रहकर धर्म आचरण कर रही हैं ।' दोनों पत्नियों की ऐसी कल्याणवार्ता सुनकर मानो सर्व अंग में अमृत सिंचन हुआ हो उस तरह वीरभद्र खुश हुआ । समुद्र में से बाहर निकलते ही उसने श्यामवर्ण करनेवाली गुटिका दूर की, तब उसका सहज गौरवर्ण हो गया । बाद में रतिवल्लभ ने वज्रवेगती नाम की अपनी पत्नि के उदर से जन्मी रत्नप्रभा नाम की अपनी पुत्रीसे वीरभद्र के साथ विवाह किया । वीरभद्र अपना बुद्धदास नाम रखकर रत्नप्रभा के साथ विषय सुख का अनुभव करने लगा ।

एक बार विद्याधरों को एकत्रित होकर जाते हुए देखकर वीरभद्र ने रत्नप्रभा से पुछा की-यह सब वेग से कहाँ जा रहे हैं ? रत्नप्रभा ने कहा- 'हे प्रिय ! यह विद्याधर इस गिरि पर रहे शाश्वत अर्हंत की यात्रा करने के लिये वेग से जा रहे हैं' यह सुनते ही श्रावक बुद्धदास रत्नप्रभा के साथ वैताक्य गिरि के शिखर पर गये वहाँ भक्ति से शाश्वत अर्हंत के चैत्यों की वंदना की । रत्नप्रभा ने भी देव के आगे गीत नृत्यादि किया । बुद्धदास ने कहा हे प्रिये ! यह देव तो मुझे अपूर्व लगते हैं, कारण कि मैं सिंहलद्विप का निवासी हूँ, इसलिये मेरे कुल देव तो बुद्ध हैं ।' रत्नप्रभा बोली- 'हे नाथ ! उसी हेतु से मैं इस तरह कह रही हूँ यह देवाधिदेव प्रभु हमारे अपूर्व देव हैं और वे अरिहंत प्रभु सर्वज्ञ, रागादि दोष को जीतनेवाले, त्रिलोक्यपूजित और यथास्थित अर्थ के कहनेवाले हैं । दूसरे जो बुद्ध और ब्रह्मादिक हैं वे देव नहीं हैं । क्योंकि वे संसार के आवर्त में गिरानेवाले हैं और अपने में मोहादि दोष रहे हुए हैं ऐसा सूचन करनेवाले अक्षतसूत्र वगैरे धारण करनेवाले हैं ।' इस तरह प्रतिदिन विचित्र क्रीडाद्वारा क्रीडा करते हुए और रतिसागर में मग्न हुए बुद्धदास और रत्नप्रभा का कुछ समय व्यतीत हुआ ।

एकबार रात्रि के शेष भाग वीरभद्र ने कहा कि- 'हे प्रिये ! चलो, आज दक्षिण भरतार्द्ध में क्रीडा करने के लिये जाते हैं ।' रत्नप्रभा ने कहा हा चले तब वे दोनों दंपति विद्या द्वारा आकाश मार्ग से होकर पद्मिनीखंड नगर में सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में आये । उपाश्रय के द्वार पर खड़े रहकर वीरभद्र ने

रत्नप्रभा से कहा- 'मैं जरा दिशा जाकर आता हूँ वहाँ तक तुम यहाँ खड़ी रहो' ऐसा कहकर कुछ दूर जाकर उसका रक्षण करने के लिये राजा के खबरी की तरह छुपकर खड़ा रहा। क्षणभर पति के बिना अकेली रही उसने चक्रवाकी की तरह तार स्वर से रुदन करने लगी। स्त्रियो का ऐसा स्वभाव है उसके करुण स्वर सुनकर करुणा की सरितारूपी गणिनी सुव्रता ने अपने उपाश्रय के द्वार खोले और उसे रोती देखकर साध्वीने पुछा- 'हे वत्से ! तुम कौन हो ? कहाँ से आयी हो ? अकेली क्यों हो ? और रुदन क्यों कर रही हो ? रत्नप्रभा ने नमस्कार करके कहा- "वैताढ्य पर्वतपर से मेरे पति के साथ यहाँ आयी थी। मेरे पति दिशा जाने के लिये यहाँसे गये हैं उसे बहुत समय बित गया है वे मेरे बिना एक पल भी नहीं रह सकते हैं, इसलिये हे माते ! इस बारे में मैं आतुर होकर, उसमें कोई बड़ा कारण कर रही हूँ। इस समय मेरा मन तप्त स्थान में रहनेवाले नेवले की तरह तलख रहा है, इसलिये अब मैं प्राण धारण करने में समर्थ नहीं हूँ' यह सुनकर सुव्रता गणिनी ने अनुकंपा से कहा- 'हे पतिव्रता ! तुम घबराओ मत, स्वस्थ हो जाओ और जहाँ तक तुम्हारा पति नहीं आते हैं तब तक इस उपाश्रय में रहो।' गणिनी के कहने से रत्नप्रभा उपाश्रय में बैठी। अपनी प्रिया को योग्य स्थान में गयी देखकर गुप्त तरीके से वीरभद्र वहाँ से खिसक गया। बाद में स्वेच्छा से वामनरूप लेकर नगर में क्रीडा करते और विचित्र कला बतलाते हुये उसने सर्व नगरजनों के मन हर लिये, उसी तरह राजा ईशानचंद्र को भी अतिशय रंज हुआ। 'एक कला भी चित हर लेती है तो सर्व कलाओं के बारे में कहना क्या ?'

एक बार ईशानचंद्र राजा सभा में किसी प्रसंग से वार्ता हुई कि 'अपने नगर में सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में तीन रूपवती महात्मा युवतीयां रह रही हैं, वे तीनों स्त्रीरत्न इस पृथ्वी के पवित्रपन का कारण हैं। उत्तम कुलोचित मार्ग से चलनेवाली वे महासतीयो को कोई पुरुष बुलाने में भी कोई समर्थ नहीं हैं' उस समय कपटी वामन वीरभद्र बोला- उन्हें अनुक्रम में बुलाने में मैं समर्थ हूँ। ऐसे दुष्कर कार्य में भी मेरा सामर्थ्य देखें।' बाद में प्रधान राजपुरुषों और मुख्य नगरजनों से घिरा वह सुव्रता गणिनी के उपाश्रय पर गया। प्रथम उपाश्रय के द्वार से साथ में आये हुये लोगों को सिखाया की तुम मुझे ऐसा कहे कि 'आप हमें कथा कहें' बाद में थोड़े परिवार के साथ उपाश्रय में प्रवेश करके वामन वीरभद्र ने निर्मल व्रतवाले सुव्रता गणिनी को और दुसरी साध्वियों को वंदन करके वहाँ से वापस वीरभद्र उपाश्रय के द्वारमंडप में बैठा। उसे देखने के कुतूहल से वे तीनों स्त्रीयां साध्वियों के साथ वहाँ आयी, तब वामन बोले- 'जहाँ तक हमें राजा के पास जाने का अवसर होगा नहीं, तब तक जिसका हृदय विनोद करने की ओर खिंचा रहा हुआ है ऐसे हम यहीं रहेंगे।' उस समय लोगोंने कहा- 'हे राजपुरुष ! कोई कुतूहलवाली कथा कहें।' वामन बोला- 'कथा कहूँ या वितक कहूँ ? तब उन्होंने पुछा कथा और वितक में क्या भेद है ? वामन ने कहा- 'जो अनुभव किया हो वह वितक कहलाता है और प्राचीन पुरुषों की चरित्र वह कथा कहलाती है। तब उन्होंने कहा- 'वीतक कहें' तब वामन ने निम्नलिखित वीतक कहना आरंभ किया-

‘इस भरतक्षेत्र मे ताम्रलिप्ति नाम की बड़ी नगरी है, उसमे गुणो से श्रेष्ठ ऋषभदत्त नाम का अेक शेर रहता है । अेक बार व्यापार निमित्त से पद्मिनीखंड नाम के नगर मे गया । वहाँ सागरदत्त शेर की प्रियदर्शना नाम की कन्या देखी उस कन्या को योग्य जानकर उसके साथ वीरभद्र की शादी की । उसके साथ वीरभद्र विषयसुख भोगने लगा । अेक बार रात्रि मे प्रियदर्शना कपटी निद्रा मे सो रही थी । उसे वीरभद्र ने जगाया उस समय उसने कहा-अब इस समय मुझे परेशान न करें, मेरे मस्तक मे पीडा हो रही है’ वीरभद्र ने कहा-‘किस के दोष से ? उसने कहा-‘आपके दोष से’ वीरभद्र ने पुछा-मेरा इसमे क्या दोष है ? प्रियदर्शना बोली-‘प्रिय ! ऐसे समय मे भी आप ऐसे चातुर्यवचन बोलते है तो’ वीरभद्र - ‘अब वापस दुबारा ऐसा नहीं कहूँगा ।’ ऐसा कहकर उसके साथ विषयक्रीडा करके जब वह सचमुच सो गई तब उसे छोडकर उसका पति विदेश मे चला गया ।’ इस प्रकार कहकर वामन ने कहा-‘अब मुझे मेरे राजद्वार मे राजसेवा का समय हो गया है’ ऐसा कहकर वह खडा हो गया । वामन को खडा होता देखकर प्रियदर्शना आदर से बोली भद्र ! बाद मे वह वीरभद्र कहाँ चला गया ? उसे कहे ।’ वामन बोले- ‘मैं सदा कुलकलक से भयभीत हूँ, इसलिये परस्त्री से बात नहीं करूँगा ।’ प्रियदर्शना ने कहा-‘आपके कुल के लिये योग्य ऐसा कौनसा शील है ? कुलीनो का प्रथम गुण दक्षिण्यता है तो दक्षिण्यता से कहें’ ‘वह आनेवाले कल मे कहूँगा ।’ इस प्रकार कहकर वामन चला गया । राजपुरुषो ने वह वृत्तांत राजा से कहा, यह सुनकर राजा भी विस्मय मे पड गया । दुसरे दिन उसी तरह वीरभद्र गणिनी के उपाश्रय मे आया और उसी तरह शेष रही प्रियकांओ की कथा इस प्रकार से कहने लगा-

‘बाद मे वीरभद्र मंत्रगुटिका द्वारा कृष्णवर्ण होकर नगरी मे से निकला और विविध देशो मे घूम कर सिंहलद्विप मे आया । वहाँ रत्नपुर नगर मे शंखशेर की दुकान पर बैठा शंखशेर उसके वृत्तांत से जानकारी लेकर उसे अपने घर ले गये । शेर ने उसे पुत्र बनाकर रखा । कला द्वारा सर्व को विस्मय मे डालकर वीरभद्र उस नगर मे सुख से रह रहा था । अेक बार शेर की पुत्री विनयवती के साथ स्त्री वेष लेकर वह राजपुत्री अनंगसुंदरी के पास गया । अपनी कला से उसका चित्त हरण करके आत्मस्वरूप बताकर अंत मे उससे विवाह करके उसके साथ चिरकाल तक कालनिर्गमन किया । कुछ दिन वहाँ रहकर बाद मे उसे साथ मे लेकर ताम्रलिप्ति नगरी तरफ जलमार्ग से जाते समय दैवयोग से जहाज तुफान मे टूट गया’ इतनी वार्ता कहकर वामन वीरभद्र ने कहा-‘अब राजसेवा के अवसर का समय हो गया है, इसलिये मैं जाऊँगा । सेवा के कार्य बिना रहने से सेवक की आजिविका टूट जाती है ।’ उस समय अनंगसुंदरी ने आग्रह से कहा-‘भद्र ! वह वीरभद्र कहाँ है उसके हाल क्या है उसके बारे मे कहे ।’ ‘कल उस वृत्तांत के बारे मे कहूँगा ।’ ऐसा कहकर वह राजमंदिर मे गया । राजा के राजपुरुषोंने उस सर्व वृत्तांत को राजा से निवेदन किया ।

फिर तीसरे दिन भी उपाश्रय मे आकर वामन ने उस कहानी को आगे बढाया । ‘समुद्र मे जहाज के डूब जाने पर उस समय दैवयोग से एक लकड़ी का तरवत उस वीरभद्र के हाथ मे आया । सातवे दिन

रतिवल्लभ नाम के एक विद्याधर ने उसे समुद्र में बहते हुए वीरभद्र को देखा, तब उसे बाहर निकालकर वैताढ्य पर्वत पर अपने मकान में ले आया। जब वीरभद्र समुद्र से बाहर आया तब उसने श्याम करनेवाली वह गुटिका उसने मुख में से निकाल दी, तब ताम्रलिप्ति नगरी की तरह गौरवर्णी बन गया। विद्याधर रतिवल्लभ के पुछने पर उसने स्वयं सिंहलद्विप निवासी और बुद्धदास ऐसा नाम बतलाया। वह विद्याधर को अति प्रिय हो गया। बाद में वह विद्याधर की रत्नप्रभा नाम की पुत्री से विवाह किया और विलास उपवनादिक में उसके साथ खेलने लगा। एक बार उसके साथ क्रीडा करने के लिये वह यहाँ आया और आचमन करने के बहाने उसे यहाँ रखकर वह अकेला चला गया' इतनी कहानी कहने पर 'अब मैं यहाँ से जाऊंगा' ऐसा कहकर वह खड़ा हो गया, तब रत्नप्रभा ने पुछा कि-वह बुद्धदास अब कहाँ पर है?' शेष कथा सुबह कहूँगा' ऐसा कहकर वह चला गया। बाद में वे तीनों स्त्रियाँ, अपने तीनों का पति एक है ऐसा मानकर श्रेष्ठ आश्वासन पाया।''

कुंभ गणधर ने इतना वृत्तांत कहने के पश्चात् कहा कि-“हे सागरशेठ ! यह वामन पुरुष तुम्हारा दामाद है। उसने तीन स्त्रियों के पति बनकर अंत में उन्हें मात्र कुतूहल से विरह दिया” उस समय वामन ने कुंभ गणधर को वंदना करके कहा-“आपने ज्ञान दृष्टि से देखकर कहा वह बराबर है उसमें जरा भी गलत नहीं है।” दुसरी पौरुषी समाप्त होने पर तब कुंभ गणधर ने देशना समाप्त की। उनकी देशना वहाँ तक ही होती है। बाद में सागरश्रेष्ठी गणधर को झुककर वे वामन के साथ हर्ष सहित सुव्रता गणिनी के उपाश्रय में आये।

वामन को आया देखकर वे तीनों स्त्रियाँ तत्काल उसके पास आयी। ‘प्रिय की कथा कहनेवाला किसे अच्छा नहीं लगता है?’ सागरदत्त ने कहा-‘हे वत्सो ! तुम्हारे तीनों का पति यही है’ वे बोली-‘किस तरह से’ तब शेठने पूरी कहानी सुनायी। वह सुनकर गणिनी सहित सर्वे परम विस्मय में पड़ गये। भीतर जाकर अपना वामनरूप छोड़ दिया और प्रथम अनंगसुंदरी ने देखा था वैसा ही होकर उसके सामने आकर खड़ा रहा। श्यामपन छोड़कर गौरवर्णी बन गया। सभी स्त्रियों ने उत्कंठापूर्वक उसे पहचान लिया। बाद में गणिनी ने वीरभद्र से पुछा कि-‘आपको ऐसा क्यों करना पड़ा?’ वीरभद्र ने कहा-‘भगवती ! मैं क्रीडा करने के लिये घर से निकला था और क्रीडा के कारण ही स्त्रियों का विरह की ओर मेरी उपेक्षा थी।’ सुव्रता गणिनी तात्त्विक वचन बोली-“दूर, देशांतर में, अरण्य में, पर्वत में, राह में अन्य कहीं भी दुःख के स्थान में भी यदि धार्मिक पुरुष जाते हैं तो वे अपने घर की तरह अतुल सुख प्राप्त करते हैं। ‘सत्पात्र दान के प्रभाव से ही भोग प्राप्त होते हैं’ ऐसा आर्हत वचन है, तो इस वीरभद्र ने किसे ऐसा दान दिया था, वह हम अरनाथ प्रभु के पास जाकर पुछें” ऐसा सभीने विचार किया।

बाद में सुव्रता गणिनी, सागरदत्त शेठ और तिन्ही प्रियंकाओं के साथ वीरभद्र अरनाथ स्वामी के पास आये और यथाविधि प्रभु को नमस्कार किये। सुव्रता गणिनी ने प्रभु से पुछा-‘इस वीरभद्र ने

पूर्व मे भोगफलवाला कौनसा कर्म किया है उसे कहे ।' प्रभु बोले- "इस भव से तीसरे भव मे पूर्व विदेह क्षेत्र मे बडा राज्य छोडकर व्रत लेकर मै पृथ्वी पर विहार कर रहा था । एक बार चार मास के उपवास का पारणा रत्नपुर नगर मे आने पर जिनदास नाम का श्रेष्ठीकुमार ने मुझे भक्तिपूर्वक भिक्षा दी । उस पुण्य से वह जिनदास ब्रह्मदेवलोक मे देवता हुआ । वहाँ से च्यवन करके जंबूद्वीप मे औरावत क्षेत्र मे कांपिल्य नगर के बारे मे वह बडा धनाढ्य श्रेष्ठी हुआ । वहाँ भी परम समृद्धि द्वारा श्रावकपन का पालन करके मृत्यु प्राप्त होने पर अच्युत देवलोक मे देव हुआ । वहाँ से च्यवन करके यह वीरभद्र हुआ है । पूर्व के पुण्य से पुण्यानुबंधी पुण्य से इस भव मे भी वह भोग भोग रहा है । प्राणीयों को यहाँ वहाँ भी पुण्य का अनुकरण कर रहा है" इस तरह कहकर बहुत जनो को बोध करवा के जगत के मोह के हरण करनेवाले भगवान् अरनाथ ने अन्यत्र विहार किया । वीरभद्र चिरकाल तक भोग भोग कर दीक्षा लेकर अनुक्रम मे पुण्य के दृढरथ पर बैठकर देवलोक मे गया ।

पचास हजार महात्मा साधु, साठ हजार तीव्र व्रतधारी साध्वी, छै सौ दस चौदपूर्वधारी, दो हजार छै सौ अवधिज्ञानी, पचीस सौ एकावन मनःपर्यवज्ञानी, दो हजार आठ सौ केवलज्ञानी, सात हजार तीनसौ वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार छै सौ वादललब्धिवाले, एक लाख चौयासी हजार श्रावक और तीन लाख बहत्तर हजार श्राविकाएँ-इतना परिवार केवलज्ञान के बाद तीन वर्ष उना (कम) इक्कीस हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विहार करते हुऐ अरनाथ प्रभु का समय व्यतीत हुआ ।

अपना निर्वाण समय नजदीक आने पर प्रभु समेतशिखर पर पधारे । वहाँ एक हजार मुनि के साथ प्रभु ने अनशन ग्रहण किया । अेक मास के अंत मे मार्गशीर्ष मास की सुदि दसमी के दिन चंद्ररेवती नक्षत्र मे आने पर उन मुनियों के साथ प्रभु अव्ययपद (मोक्ष को) प्राप्त हुऐ । अरनाथ प्रभु ने कौमारपन मे, मांडलिकपन मे, चक्रवर्तीत्व मे और व्रत मे समान भाग से चौयासी हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया था । श्री कुंथुनाथ प्रभु मोक्ष मे जाने के पश्चात् कोटि हजार वर्ष उना पल्योपम के चौथे अंश मे गया तब श्री अरनाथ प्रभु मोक्ष मे गये । हजार मुनियों के साथ श्री अरनाथ प्रभु मोक्ष मे गये हुऐ जानकर इंद्रो ने वहाँ आकर भक्ति द्वारा शरीर संस्कार पूर्वक उनका निर्वाण महोत्सव किया ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि

श्री अरनाथचरितवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीय सर्ग

छहवे आनंद बलभद्र, पुरुषपुंडरीक वासुदेव और बलि प्रतिवासुदेव का चरित्र

अब श्री अरनाथ प्रभु के तीर्थ में हुऐ छहे वासुदेव, बलदेव और बलि नामके प्रतिवासुदेव के चरित्र कह रहे हैं ।

विजयपुर नाम के नगर में चंद्र की तरह सुदर्शन और जगत को आनंद देनेवाले सुदर्शन नाम का राजा था । दमधर नाम के मुनि के पास से जैनधर्म सुनकर विरक्त बुद्धिवाले उस राजा ने दीक्षा ली और बड़ी तपस्या करके सहस्रार देवलोक में देवता हुऐ ।

इस भरतक्षेत्र के बारे में पोतनपुर नाम के नगर में मित्ररूप कमल में मित्र (सूर्य) के उदय जैसा प्रियमित्र नाम का राजा था । उसकी प्रिया को सुकेतु नाम का कोई राजा हरण करके ले गया वह पराभव में विरक्त होकर प्रियमित्र ने वसुभूति मुनि के पास से दीक्षा ली । प्रिया के हरण से हुऐ दुःख द्वारा पीडित ऐसे उसने कष्टदायक तपस्या की । ऐसा निर्णय लिया की 'इस तप के प्रभाव से मैं मेरी पत्नि का हरण करनेवाले का वध करनेवाला बनूँ' ऐसे संकल्प से आलोचना किये बिना अनशन करके मृत्यु प्राप्त करके महेंद्रकल्प में महर्द्धिक देवता हुऐ ।

वैताढ्यगिरि पर अरिंजय नाम के नगर में सुभूम चक्री जिसे दोनो श्रेणीयों का वैभव दिया हुआ है ऐसा मेघनाद नाम का विद्याधरो का राजा था । वह सुभूम चक्रवर्ती की स्त्रि पद्मश्री का पिता हुआ था । वह सुकेतु भवभ्रमण करके अरिंजय नगर में मेघनाद के वंश में बलि नाम का प्रतिवासुदेव हुआ । वह पचास हजार वर्ष की आयुष्यवाला, कृष्णवर्णी और छब्बीस धनुष्य कायावाला त्रिखंड पृथ्वी का भोक्ता हुआ ।

इस जंबूद्विप में दक्षिण भरतार्द्ध में पृथ्वीमंडल के मंडनरूपी चक्रपुर नाम का नगर था । उसमें बड़े मस्तको को नम्र करानेवाला और मानो दुसरा लोकपाल हो ऐसा वह महाशिर नाम का राजा था । अद्भूत चरित्रवाला और सर्व राजाओं में शिरोमणि वह राजा अनुक्रम में बुद्धि और लक्ष्मी विवेक से विभूषित था । स्वयंभूरमण समुद्र में जलजंतु की जाति की तरह कोई भी कला उसे मालुम हो ऐसा राजा था । वह पृथ्वी पर राज्य कर रहा था तब चोर की कहानी भी जानता नहीं था । मात्र वह राजा सत्पुरुषों के मन को चुरा लेता था । अेक को भय और दुसरे को प्रीति करता था । वह राजा अच्छे और बुरे पुरुषों के हृदय से कभी दूर नहीं रहता था । उस राजा को रूप से स्वर्ग के स्त्रियों को जीतनेवाली एक वैजयंती और अपरा लक्ष्मी हो ऐसी दुसरी लक्ष्मीवती नाम की दो पत्नियां थी । सुदर्शन का जीव जो सहस्रार देवलोक में हुआ था, वह वहाँ से च्यवन करके वैजयंती के उदर में अवतरित हुआ । बलभद्र के जन्म को सूचित करनेवाले चार महास्वप्न देखकर हर्षित वैजयंती ने उत्तम गर्भ धारण किया । वह यौवन में आने पर उनतीस धनुष्य कायावाला हुआ ।

प्रियमित्र का जीव चौथे देवलोक में से च्यवन करके महादेवी लक्ष्मीवती के उदर में अवतरित



श्री कुंथुनाथ भगवान

-: सौजन्य दाता :-

रमेश हरिलाल गांधी, बीपीन हरिलाल गांधी

गाम : पार्ला, मुंबई, महाराष्ट्र

वासुदेव के जन्म को सूचित करनेवाले सात महास्वप्न देखकर हर्षित लक्ष्मीवती ने गर्भ धारण किया। प्रसवसमय होने पर **पुरुषपुंडरीक** नाम का एक श्यामवर्णी पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र भी उनत्तीस धनुष्य ऊँचाई कायावाला हुआ। वह गरुड और ताड के वृक्ष के चिन्हवाला और नीले तथा पीलेवस्त्र धारण करनेवाले दोनो भाई माता-पिता के मनोरथ के लिये बड़े हुए। लीलामात्र से वह पृथ्वी पर चलते हुए उसे कंपायमान करते थे और दो बालक फिर भी उन्हें बालधारक (खिलानेवाले) पुरुष तोड़ नहीं पाते थे। अनुक्रम में वे पवित्र यौवनमय को प्राप्त होकर सर्व कलारूप सागर के पारगामी हुए। राजेन्द्रपुर के **उपेन्द्रसेन** नाम का राजा ने **पद्मावती** नाम की अपनी कन्या पुंडरीक वासुदेव को दी। रूपलक्ष्मी से नागकन्या को भी दासी करनेवाली वह पद्मावती रूप संबंधी बात सुनकर **बलि** प्रतिवासुदेव उसका हरण करने आया। सर्व जगत के बलवान पुरुषों की अवज्ञा करनेवाला और भुजा के बल से स्फूर्त बली के सामने आनंद और पुंडरीक तत्काल आ गये। उस समय देवताओं ने शस्त्रागार में नियुक्त पुरुषों की तरह शाङ्ग धनुष्य और हल इत्यादि शस्त्र उन्हें अर्पण किये। प्रथम बलि प्रति वासुदेव की बलवान सेना आनंद और पुंडरीक की सेना को तोड़ डाला और अपने स्वामी की जय को सूचित करे ऐसा लंडाकूओं ने सिंहनाद किया। उस समय आनंद और पुंडरीक रथ में बैठकर हर्ष करते हुए लड़ने के लिये आगे आये। वीर पुरुष युद्ध से हर्षित होते हैं। पुंडरीक ने तार स्वर से पांचजन्य शंख का नाद किया, उससे समुद्र के जीव जंतु समूह की तरह शत्रुओं की सेना भाग गयी। बाद में मानो शंखनाद का अनुवाद करते हुए उन्होंने शाङ्ग धनुष्य का टंकार किया, उसके प्रचंड नाद से शेष शत्रु भी भाग खड़े हुए। उस समय मेघ की तरह जलधारा बरसाते हैं उस तरह बाणों की बरसात करता हुआ तीव्र पराक्रमी योद्धा बलि स्वयं युद्ध करने आया। विष्णु ने उसके बाणों को छेद डाला और बलि ने विष्णु के बाणों को छेद डाला, इस तरह क्रोधित हुआ उस बलिले चक्र धारण किया 'अब तु रहनेवाला नहीं है' ऐसा कहते हुए उस बलवान बलि ने वह चक्र घूमाकर पुंडरीक वासुदेव पर छोड़ा। झापड़ की तरह हृदय पर लगे हुए प्रहार से मूर्छित होकर पलभर में वापस संज्ञा में आकर वासुदेव ने स्वयं धारण करके 'अरे अब तु रहनेवाला नहीं है' ऐसा कहते हुए वासुदेव ने चक्र घूमाकर उस पर छोड़ा जिससे तत्काल उसका मस्तक अलग हो गया।

बाद में पुंडरीक वासुदेव आनंद बलभद्र को साथ लेकर, शत्रुओं के राजाओं का हनन करके, दिग्यात्रा करके अर्द्ध चक्रवर्त्ती हुए। वासुदेव ने मगध देश में रखी हुई कोटिशिला नाम की महाशिला को अकेल तराजु की तरह कोटि शिला को लीला से उठा लिया। पैंसठ हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके पुंडरीक वासुदेव अपने उग्र अशुभ कर्म से छट्टे नरक में गये। पुंडरीक वासुदेव अट्ठाईसौ वर्ष कुमारवस्था में, उतने ही मांडलिक में साठ वर्ष दिग्विजय में और चौसठ हजार चारसौ चालीस वर्ष राज्य में-इस तरह सब मिलकर ६५,००० वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया। पंच्यासी हजार वर्ष के आयुवाले आनंद बलभद्र ने अपने अनुज बंधु बिना निरानंदपन से कुछ काल निर्गमन किया। अन्यदा अपने भाई के वियोग से वैराग्य होने पर सुमित्र मुनि के पास दीक्षा लेकर आनंद बलभद्र आत्माराम होकर केवलज्ञान पाकर सुख के धामरूपी शाश्वत स्थान (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि

आनंदपुरुषपुंडरीकबलिचरितकीर्तनो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थ सर्ग

श्री सुभूम चक्रवर्त्ती चरित्र

अब अरनाथ प्रभु के तीर्थ में ही हुये आठवे चक्रवर्त्ती सुभूम का अनुक्रम में आया चरित्र कह रहे हैं। इस भरतक्षेत्र में आये हुये विशाल नगर के बारे में क्षत्रियव्रत का पालन करनेवाला भूपाल नाम का राजा था। एक बार संग्राम में बहुत शत्रुओं ने मिलकर उसे जीत लिया। 'हमेशा समूह अति बलवान होता है' बैरीयों के पराभव से मलिन मुखवाला होकर उस राजा ने संभूतमुनि के पास से दीक्षा ग्रहण की। चिरकाल तपस्या करके अंतकाल में बहुत भोग विषय की प्राप्ति के लिये संकल्प करके मृत्यु को प्राप्त कर महाशुक्र देवलोक में देवता हुये।

श्री ऋषभदेव को कुरु नाम का एक पुत्र था, जिसके नामसे कुरुदेश प्रसिद्ध हुआ है। उसका पुत्र हस्ती नाम का हुआ था, जिसके नाम से अनेक तीर्थंकर और चक्रवर्त्ती की जन्मभूमि हस्तिनापुर प्रसिद्ध है। उसके वंश में अनंतवीर्य नाम का महापराक्रमी राजा हुआ था। भरतक्षेत्र में आये हुये वसंतपुर नगर में वंश का उच्छेद करनेवाला अग्नि नाम का लड़का था। वह एक बार अपने स्थान से देशांतर में चला गया। आगे चलते हुये सार्ध बिना का वह यहाँ-वहाँ घूमता तापसों के आश्रम में आ पहुँचा। वहाँ के कुलपति (वृद्ध तापस ने) उस अग्नि को पुत्र बनाकर रख लिया। उस लोक में जमदग्नि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उग्र तपस्या से वह प्रत्यक्ष अग्नि की तरह अपने दुःसह तेज से पृथ्वी में विशेष प्रसिद्ध हुआ।

उस समय पूर्व जन्म में श्रावक था ऐसा वैश्वानर नाम का एक देव और तापस का भक्त धन्वंतरि देव उन दोनों में इस तरह परस्पर वाद हुआ। अेक कहता है कि अर्हंत धर्म प्रमाण है और दुसरा कहता है की तापस धर्म प्रमाण है। इस विवाद में उन्होंने ऐसा निर्णय किया की 'अर्हंत धर्म में जो जधन्य हो उसे और तापस धर्म जो उत्कृष्ट है उसकी परीक्षा करें की दोनों में गुणों से अधिक कौन है ?' उस समय अभिनव धर्म पाया पद्मरथ नाम का राजा मिथिला नगरी से निकलकर भावयति बना हुआ, वह श्री वासुपूज्य प्रभु के पास दीक्षा लेने चंपापुरी जा रहा था। उस वैश्वानर और धन्वंतरि देव के देखने में आया। उसकी परीक्षा करने के लिये देवताओं ने उसके पास अन्नपान लाकर रखे। उसे भूख और प्यास बहुत लगी थी, तथापि वह अग्राह्य जानने से उसने अंगीकार किया नहीं। वीर पुरुष कभी भी सत्व से चलित नहीं होते हैं। बाद में देवताओं ने मार्ग में उन्होंने आरी के जैसे कठोर कंकड़ और कांटे बिखेरे वे राजा के कोमल चरणों में पीड़ा देने लगे। ऐसे मार्ग में चलते समय उसके चरणों से रुधिर की धाराएँ बह रही थी। फिर भी वह रुई की तरह कोमल सुंदर पैर से चल रहा था। बाद में उसे क्षोभ करने के लिये देवताओं ने नृत्यगीत होते हुये बतलाये, परंतु गौत्रज में दिव्य अस्त्र की तरह वे सभी निष्फल हो गये। बाद में सिद्धपुत्र का रूप धारण करके उसके आगे जाकर वे बोले- 'हे महाभाग! अभी आपका आयुष्य बहुत बड़ा है आप युवा हो, इसलिये स्वच्छंद भोग भोगे। यौवनमय में तप करना यह कैसी बुद्धि

कहलाती है ? कौनसा उद्योगी पुरुष भी अर्द्धरात्री का काम सुबह से करेगा ? हे तात ! यौवन जाने के बाद देह को दुर्बल करने का क्या कारण और मानो दुसरी वृद्ध आयु हो ऐसा तपचारित्र ग्रहण करने का कारण क्या ?' राजा पद्मरथने कहा-यदि मेरा आयुष्य अधिक होगा तो पुण्य भी अधिक मिलेगा, क्योंकि जल के अनुसार कमलनाल बढ़ती है । जिसमे इंद्रिया चल होती है ऐसे यौवन मे जो तप करना उसी का नाम ही तपस्या है । दारुण अस्त्र युद्ध चलता हो और उस समय रण मे शूरवीर जो दिखाई देता है वह सही शुरुवीर है ।' जब राजा पद्मरथ उनकी परीक्षाओ से चलित नहीं हुऐ, तब उन्हें शाबाशी देते हुऐ वे दोनो देवता वहाँ से तापसो मे उत्कृष्ट ऐसे जमदग्नि की परीक्षा करने गये ।

बरगद के वृक्ष के जैसी जटा से पृथ्वी का स्पर्श करती है और चरण मिट्टी से व्याप्त है ऐसे दांत तापस को देखा । बाद मे दोनो देवो ने माया से चटका पक्षी बनकर (चिडियां का) नर मादा का पास-पास मे जमदग्नि की दाढी मे घोंसला बनकर उसमे निवास करके रहने लगे । उस समय नर ने मादा चिडिया से कहा-‘मैं हिमालय पर जाऊंगा ।’ चिडिया बोली-‘वहाँ दुसरी चिडिया आप पर आसक्त हो गई तो आप वापस नहीं आओगे, इसलिये मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी ।’ नर चिडिया ने कहा-‘हे प्रिये ! यदि मैं वापस नहीं आऊंगा तो मुझे गौहत्या का पाप लगता है । ऐसी कसम लेने पर चिडिया ने दुबारा कहा-“हे प्रिय ! तुम ऐसी कसम लो कि यदि मैं वापस नहीं आऊंगा तो तापस मुनि का पाप मुझे लगे’ तो इस कसम पर मैं तुम्हें जाने दे सकती हूँ” नर चिडिया ने ऐसी कसम लि तब चिडिया ने कहा-‘तुम्हारा मार्ग सुखदायक बने’ ।

उस पक्षी के ऐसे वचन सुनकर जमदग्नि क्रोधित हुऐ और दोनो हाथो से उन्हे पकड लिया और कहा-‘अरे पक्षीयो ! सूर्य मे अंधकार की तरह ऐसे दुष्कर तप करता हुआ मैं मेरे मे पाप कहाँ से आयेगा ?’ चिडिया बोली-‘हे तापस ! क्रोध न करें, आपका तप व्यर्थ है । ‘अपुत्र की गति होती नहीं है’ यह श्रुति क्या आपने सुनी नहीं है ?” यह सुनकर उस श्रुति को माननेवाले जमदग्नि मुनि सोचने लगे की ‘पुत्र और स्त्रि के बिना मेरे तप का प्रवाह निष्फल बह गया ।’ इस तरह जमदग्नि को ध्यान से क्षोभ पाये देखकर, ‘मुझे धिक्कार है कि मैं तापसो से भरमा गया था’ ऐसा सोचता धन्वंतरि देव श्रावक बन गया । ‘सही प्रतीति होने पर किसे विश्वास नहीं होगा । बाद मे दोनो देवता अदृश्य हो गये । मिथ्या विचारो मे भ्रमित जमदग्नि तापस नेमिककोष्ठक नाम के नगर मे आया । उस नगर के राजा जितशत्रु की बहुत कन्याएँ थी । गौरी को प्राप्त करने के लिये इच्छित शंकर की तरह उसमे से एक कन्या प्राप्त करने कि इच्छा से वह राजा के पास आये । तापस को आया जानकर राजा जितशत्रु खडा हो गया और हाथ जोडकर बोला-‘आप किस लिये पधारे है और मुझे क्या करना है ? वह कहें’ जमदग्नि बोले-‘मैं कन्या के लिये आया हूँ । राजाने कहा-‘मेरी सौ कन्याएँ है, उनमे से जो आपको इच्छती हो उसे आप खुशी से ग्रहण करें ।’ जमदग्नि अंतःपुर मे जाकर राजकन्याओं से कहा कि ‘तुम्हारे मे से कोई एक कन्या मेरी धर्मपत्नि बने’ यह सुनकर ‘अरे ! जटाधारी, सिरपर बालो के गुच्छवाले, दुर्बल और भीख मांगकर जीने वाला तु ऐसा बोलने से लज्जित क्यों नहीं होता है ? इस प्रकार से कहकर थुथुकार किया । तत्काल जमदग्नि क्रोध करके धनुष्य की यष्टी जैसी उन सब कन्याओ को कुबडी बना दि । उस समय

एक कन्या रेणुका पुंज (मिट्टि के ढेर से) से राजा के आंगन में खेल रही थी, उसे देखकर जमदग्नि ने रेणुका ऐसे नाम से उसे पुकारा और यह लेने की इच्छा है ?” ऐसा कहकर उसे एक बिजोरु का फल दिखाया । उस समय उस बाला ने पाणीग्रहण के लिये सूचित ऐसा पाणी (हाथ) फैलाया । निर्धन जिस तरह धन को ग्रहण करता है, उस तरह मुनि जगदग्नि ने हृदय से उसका ग्रहण किया तब राजाने गाय इत्यादि के साथ उसे विधि से धारण करवा दि । बाद में जमदग्नि ने तप की शक्ति द्वारा दुसरी निन्याबे सालीयो को स्नेह संबंध से वापस सज्ज कर दी । ‘तपस्वी के ऐसे व्यर्थ तप के व्यय को धिक्कार है ।’ वह मधुराकृति मुग्धा को अपने आश्रम में लाकर उसके उपर जमदग्नि मोहित हुए । हिरणी जैसी उस लोलक्षी बाला को उन्होंने प्रेम से लालन पालन करने लगे । तापस जमदग्नि उंगलियों से दिन गिन रहे थे । इस तरह करते करते रेणुका कामदेव के लीलापन जैसे सुंदर यौवन को प्राप्त हुई । बाद में साक्षात् अग्नि को ज्वलायमान करके उसकी साक्षी से जमदग्नि मुनि, पार्वती से शिवविवाह करते हैं, उस तरह रेणुका से विवाह किया ।

ऋतुकाल प्राप्त होने पर मुनिने रेणुका से कहा कि ‘तुम्हारे लिये ऐसा चरु साध्य करु कि जिससे सभी ब्राह्मणों में अग्रसर ऐसा एक पुत्र तुम्हें हो ।’ रेणुका ने कहा- ‘हस्तिनापुर में अनंतवीर्य राजा की जो पत्नि है वह मेरी बहन है, इसलिये उसके लिये भी एक क्षत्रिय चरु साध्य करें ।’ बाद में अपनी पत्नि के लिये ब्राह्मण चरु और साली के लिये क्षत्रिय चरु पुत्रप्राप्ति के लिये साध्य किया और दोनों चरु रेणुका को दिये । रेणुका ने सोचा कि ‘मैं तो अरण्य की मृगनी जैसी हूँ तो पुत्र भी वैसा ही हो’ ऐसा सोचकर उसने क्षत्रिय चरु भक्षण कर लिया और अपना स्वयं का ब्राह्मण चरु उस बहन को दे दिया उससे दोनों को एक एक पुत्र प्राप्त हुआ । रेणुका को राम नाम का और उसकी बहन को कृतवीर्य नाम का पुत्र प्राप्त हुआ । एक बार अतिसार का दर्दवाला कोई विद्याधर वहां आया । अतिसार के दर्द की पीडा से वह अपनी आकाशगामिनी विद्या भूल गया । रेणुका के पुत्र राम ने औषदोपचार से अपने भाई की तरह अच्छा किया । उससे उस विद्याधर ने प्रसन्न होकर परशु विद्या दिया । शरकट वनमें जाकर कामने उस विद्या को सिद्ध किया । तबसे राम परशुराम से विख्यात हुए ।

एक बार अपनी बहन को मिलने की उत्कंठा से रेणुका पति की आज्ञा लेकर हस्तिनापुर गयी । प्रेम के लिये कुछ भी दूर नहीं है । अपनी साली के तौर पर लाड लडाते हुए अनंतवीर्य चपल लोचनवाली रेणुका के साथ अेकबार रतिक्रिडा की । ‘कामदेव अत्यंत निरंकुश है’ बाद में वह अहिल्या और इंद्र की तरह वह ऋषिपत्नि के साथ राजा निरंतर इच्छानुसार रतिसुख भोगने लगा । कुछ समय व्यतित पश्चात् उतथ्य मुनि की स्त्रि ममता को बृहस्पति से हुआ उस तरह अनंतवीर्य से रेणुका को एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जमदग्नि उस पुत्र के साथ रेणुका को अपने घर ले आये । ‘प्रायः स्त्रीलुब्ध जन अपना दोष देखते नहीं हैं’ अपनी माता को पुत्र के साथ देखते ही क्रोधित हुए, तब उन्होंने अकाल में फलित हुई वल्ली की तरह उस पुत्र सहित फरसु से छेद डाला । उसकी बहन ने अनंतवीर्य से कहा तब पवन की गति से अग्नि की तरह क्रोधित उद्दीपन हुआ । उससे अवार्य भुजवीर्यवाले अनंतवीर्य ने जाकर उन्मत् हाथी की तरह जमदग्नि के आश्रम को भंग कर डाला और तापसों को त्रस्त करके उनकी गायें वगैरेह

पदार्थ लेकर केशरीसिंह की तरह मंदमंद गति से वह वापस लौट गया। त्रस्त हुये तपस्वीयों के कोलाहल और वह वृत्तांत सुनकर मानो साक्षात् यमराज हो उस तरह परशुराम क्रोधित होकर वहाँ दौड़कर आ गये। लडाकूओं के समूह के बीच संग्राम करने कौतुक ऐसे अनंतवीर्य को, जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपने दारुण फरसु से दारु (काष्ठ) की तरह खंड खंड कर डाले। बाद में प्रधान पुरुषो ने मिलकर लघुवय के फिर भी महावीर्यवान कृत्तवीर्य को राज्य पर बिठाया। उसे तारा नाम की विशाल लोचनवाली अेक रानी थी। वह दंपति देवता की तरह निर्विघ्न भोग भोगने लगे।

भूपाल राजा का जीव महाशुक्र देवलोक में अपना आयुष्य पूर्ण करके वहाँ से च्यवन करके तारारानी की कोख में जन्म लिया। अेक बार कृत्तवीर्य ने माता के मुख से पिता के मृत्यु की कहानी सुनकर आदेश किये हुऐ सर्प की तरह तापसो के आश्रम में जाकर जमदग्नि को मार डाला। पिता के वध से क्रोधित परशुराम ने शीघ्र हस्तिनापुर में जाकर कृत्तवीर्य को मार डाला 'यमराज कहाँ दूर है?' उसके राज्य पर स्वयं परशुराम बैठे। 'राज्य पराक्रम के आधीन है, उसमें क्रम नहीं देखा जाता है' जब परशुराम ने राज्य दबा लिया, तब उस समय कृत्तवीर्य की स्त्रि गर्भवती थी। वह व्याघ्रवाले वन से मृगनी की तरह तापस आश्रम में भाग आयी। कृपालु तापसो ने सहायक की तरह भूमिगृह (गृभागृह) में रखकर परशुराम से बचा लिया। वहाँ चौदह महास्वप्नो से सूचित ऐसी महारानी के एक पुत्र ने भूमिगृह में जन्म लिया। इससे उसका नाम सुभूम ऐसा रखा।

अब जहाँ जहाँ क्षत्रिय थे वहाँ वहाँ परशुराम की परशु मूर्तिमान कोपाग्नि हो उस तरह प्रदीप्त हो रही थी। एक बार परशुराम घूमते-घूमते तापसो के आश्रम आ पहुँचा, वहाँ प्रदीप्त हुई परशु ने घूम अग्नि निर्देश करती है उस तरह उन्होंने पुछा 'यहाँ कोई क्षत्रिय है?' ऐसा सूचित कर दिया। परशुराम ने तापसो से पुछा कि 'क्या यहाँ कोई क्षत्रिय है? तापस बोले हम तापसरूप हुऐ क्षत्रिय हैं' बाद में परशुराम ने क्रोध से दावानल जिसतरह पर्वतो के तट को तिनके के रहित कर देता है, पृथ्वी को सात बार नक्षत्रिय करके और मारे हुऐ क्षत्रियो की ठोडी से वांच्छित पूर्ण यमराज के पूर्णपात्र की शोभा देता एक थाल भर दिया।

एक बार परशुराम ने किसी निमित्त्या से पुछा कि 'मेरा वध किससे होगा?' 'सदा वैर करनेवाले पुरुष दुसरे पुरुषो को हमेशा शंका से देखते हैं' सुनकर निमित्त्या बोला 'जो पुरुष सिंहासन पर बैठकर क्षीररूप हुई इन दाढों को जो भक्षण करेगा वह आपका वध करेगा'। यह सुनकर परशुराम ने वहाँ एक अवारित दानशाला बनवाई और उसके आगे एक सिंहासन बनवाकर वह दाढोवाला थाल उस पर रख दिया। अब तापसो के आश्रम में कृत्तवीर्य की स्त्रि से जो सुभूम नाम को पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस आंगन में उगे हुऐ वृक्ष की तरह वृद्धि पाकर सुवर्णवर्णी और अट्ठाईस धनुष्य उंचाई कायावाला हुआ।

वैताढ्य पर रहनेवाले मेघनाद विद्याधर ने एक बार निमित्तिया से पुछा कि 'मेरी पद्मश्री कन्या मैं किसे दुं?' उन्होंने 'उसके योग्य वर सुभूम है' ऐसा कहा, तब उसने वहाँ आकर सुभूम से कन्या का विवाह करवाया और स्वयं उसका सेवक बनकर रहा। एक बार कुअें के मेंढक की तरह भूमिगृह में रहा

और जिसके समान कोई राजा नहीं है ऐसा उसने अपनी माता से पुछा- 'क्या यह लोक इतना ही है या इससे अधिक है ? माताने कहा- "वत्स ! यह लोक अनंत है । उसमे कृतवीर्य नाम के तुम्हारे प्रसिद्ध पिता और पराक्रमी पिता राजा थे । तुम्हारे पिता को मारकर उनसे परशुराम ने राज्य छिन लिया था और सम्पूर्ण पृथ्वी को निःक्षत्रिया कर दि है । उसके भय से हम यहाँ छिपकर रह रहे हैं ।" यह सुनते ही सुभूम मंगल ग्रह की तरह लाल और क्रोधित से प्रज्जवलित होकर शत्रु से लडने के लिये हस्तिनापुर की ओर चला । 'क्षात्रतेज दुर्लभ है' भूमिगृह मे से निकलकर सीधा दानशाला मे जाकर सिंह की तरह सिंहासन पर बैठ गया और उस समय क्षीररूपी हुई वे क्षत्रियों की दाढे वह खा गया । तुरंत ही दाढे की रक्षा के लिये ब्राह्मण युद्ध करने के लिये खडे हो गये, परंतु हिरणो को बाघ की तरह मेघनाद ने सभी को मार डाला । यह खबर सुनकर परशुराम क्रोध से दांतद्वारा होठो को पिसते हुऐ कालपाश की तरह खींचे चले आये । परशुराम ने क्रोध से सुभूम के उपर अपना फरसु फेंका, परंतु वह अग्नि के कण की तरह क्षणभर मे तत्काल बुझ गई । सुभूम के पास कुछ भी शस्त्र नहीं था, तब उसने दाढेवाला भरा थाल उसकी ओर फेंका, वह सद्य चक्ररूप हो गया । 'पुण्य संपत्तिवाला को क्या नहीं हो सकता है ? बाद मे आठवे चक्रवर्त्ती सुभूम ने उस प्रकाशमान चक्र द्वारा परशुराम के मस्तक को कमल की तरह छेद डाला । जिस तरह परशुराम ने पृथ्वी को सातबार निःक्षत्रिया की थी, उसी तरह सुभूम चक्रीने पृथ्वी को इक्यीसबार निब्राह्मणी कर दि ।

क्षय पाये राजाओ के हस्ती, अश्व और पैदलो के रुधिर से नयी सरिता (नदी) को वहन करते हुऐ सुभूम ने पूर्व दिशा की ओर निकला । बाद मे अनेक लडाकू योद्धाओ के कटे हुऐ मस्तको से छीप और शंख की तरह पृथ्वी को मंडित करते ऐसे दक्षिण दिशा के पति (यम) की तरह दक्षिण दिशा को साध्य किया योद्धाओं के अस्थि द्वारा समुद्र के नीर को दांतवाला करके उसने पश्चिम दिशा साध्य की । बाद मे बल के गिरिरूप सुभूम वैताढ्य पर्वत की गुफा के द्वार को केवल ललकार ने से खोलकर म्लेच्छो को जीतने के लिये भरतक्षेत्र के उत्तर खंड मे दाखिल हुआ । बडे गजेन्द्र की तरह इक्षुदंड को तोड डाले ऐसे उछलते शीषित रस से पृथ्वी को छिडकते ऐसे म्लेच्छ लोगो को तोड डाला । बाद मे चक्रवर्त्ती ने अपने ससुर मेघनाद को वैताढ्य गिरि की दोनो श्रेणियों के अधिपति की पदवी दी ।

साठ हजार वर्ष के आयुष्यवाले सुभूम चक्रवर्त्ती ने इस तरह चारो दिशाओ मे घूमकर अनेक योद्धाओ को मारकर षट्खंड पृथ्वी को साध्य कर लिया अनेक प्राणीयों की हिंसा करते और नित्य रौद्रध्यानरूपी अग्नि द्वारा जिनका अंतरात्मा जल रहा था, ऐसे सुभूम चक्रवर्त्ती कालपरिणाम के वश से मृत्यु पाकर सातवी नरकभूमि मे गये । पांच हजार वर्ष कुमारपन मे, उतने ही मांडलिकपन मे, पांचसौ वर्ष दिग्विजय मे और पांचसौ उना अर्धलक्ष वर्ष चक्रवर्त्तीपन मे इस तरह साठ हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि
सुभूमचरितवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥

पंचम सर्ग

सातवे नंदन बलभद्र, दत्त वासुदेव और प्रहलाद प्रतिवासुदेव का चरित्र

अब श्री अरनाथ प्रभु के तीर्थ में दत्त, नंदन और प्रहलाद नाम के वासुदेव, बलभद्र और प्रतिवासुदेव का चरित्र वर्णन किया जायेगा। इस जंबूद्विप में पूर्व विदेहक्षेत्र में उसके आभूषण जैसी सुसीमा नाम की नगरी है। उसमें वसुंधर नाम का एक राजा था। वह चिरकाल पृथ्वी का पालन करके सुधर्म मुनि के पास से व्रत लेकर मृत्यु प्राप्त करके ब्रह्मदेवलोक में देवता हुए।

इस जंबूद्विप के दक्षिण भरतार्द्ध में शीलपुर नगर के बारे में मंदरधीर नाम का राजा था। उसे गुणरत्नों का सागर, पराक्रमी और मित्ररूप कमल सूर्य समान ललितमित्र नाम का पुत्र था। खल नाम के मंत्री ने, कुमार ललितमित्र गर्विष्ठ है ऐसा बतलाकर उसके भाई को युवराजपद पर बैठा दिया। इस पराभव से विरक्त हुआ ललितमित्र ने घोषसेन मुनि के पास से दीक्षा ली। 'उस दुर्मद कुमार ने तपस्या करते हुए ऐसा संकल्प किया कि इस तप के प्रभाव द्वारा उस खल मंत्री का वध करनेवाला बनूँ' ऐसे संकल्प के आलोचना किये बिना वह कालधर्म को प्राप्त करके सौधर्म देवलोक में महर्द्धिक देवता हुआ।

वह खलमंत्री चिरकाल में भववाटिका में भटक कर इस जंबूद्विप में वैताढ्यगिरि पर उत्तर श्रेणी में तिलकपुर नाम के नगर में विद्याधरो का इंद्र प्रहलाद नाम का प्रतिवासुदेव बना।

इस जंबूद्विप के दक्षिण भरतार्द्ध में वाराणसी नाम की नगरी है। वह मानो अपनी सखी हो उस तरह से गंगा नदी से आश्रित बनी हुई है। उस नगरी में तेज द्वारा अग्नि समान और पराक्रमी से सिंह समान अग्निसिंह नाम का इक्ष्वांकु वंशी राजा था। उसका यशरूपी हंस शौर्य और व्यवसायरूप दो पंखों द्वारा जगत में निरंतर परिभ्रमण करने से विराम नहीं पाता है। रणभूमि में लीलामात्र से उसने झुकाये हुए धनुष्य को देखकर उसकी मर्यादा धारण करता हो ऐसे सभी शत्रुराजाओं झुक जाते थे। उसके बलवान भुजरूप स्तंभ के साथ दृढ़ गुण द्वारा बंधी हुई लक्ष्मी हथनी की तरह स्थिरता को पायी थी। रुपसंपत्ति से अशेष भुवन की स्त्रियों को जीतनेवाली जयंती और शेषावती नाम की दो पत्नियां थी। वसुंधर राजा का जीव जो देवता हुआ था वह पांचवे देवलोक में से च्यवन करके महादेवी जयंति के उदर में अवतरित हुआ। अनुक्रम में चार स्वप्न सूचित किये हैं रामावतार जिसका ऐसा नंदन नाम का उसने पुत्र को जन्म दिया। ललितमित्र का जीव सौधर्म देवलोक में से च्यवन करके शेषावती के उदर में अवतरित हुआ। सात स्वप्नों से सूचित है वासुदेव अवतार जिसका ऐसा दत्त नाम का उसे पुत्र प्राप्त हुआ। अनुक्रम में श्वेत और श्यामवर्णवाले वे दोनों भाई क्षीरोदधि और कालोदधि समुद्र जैसे दिखाई देने लगे। छब्बीस धनुष्य ऊंचाई डीलडौलवाले वे यौवनमय को प्राप्त हुए। नील और पीत वस्त्र धारण करते और गरुड तथा ताड के चिन्ह को रखते वे दोनों भाई ज्येष्ठ कनिष्ठ फिर भी समान उम्र के हो

ऐसे वे साथ में घूमते थे ।

एक बार भरतार्द्ध के स्वामी और समर्थ ऐसे प्रह्लाद प्रतिवासुदेव ने, नंदन और दत्त के पास औरावत जैसा हाथी है ऐसा सुनकर उसकी मांग की । जब उन्होंने गजेन्द्र दिया नहीं तब प्रतिवासुदेव प्रह्लाद तिरस्कार किये सिंह की तरह अतिशय कोपायमान हुआ । बाद में जिस तरह वन के दो गजेन्द्र हो उस तरह वासुदेव और प्रतिवासुदेव क्रोधित होकर सभी युद्धसामग्री लेकर परस्पर युद्ध करने के लिये आमने-सामने आ गये । प्रह्लाद कि सेना ने सामनेवाली सेना को क्षणभर में दीन दशा कर दि, तब नंदन और दत्त दोनों रथ में बैठकर युद्ध करने चले । दत्त ने शत्रुओं के बल को हनन करनेवाले पंचजन्य शंख फूँका और जयकुंजर के वाजिंत्ररूप शङ्ख धनुष्य का टंकार किया । वह सुनकर प्रह्लाद भी धनुष्य के टंकार से दिशाओं को गुंजाता हुआ यमराज की तरह भुजदंड को टूट करता हुआ रणभूमि में आया । हरि और प्रति हरि के बाण छेदने लगे । छेद ने चतुर ऐसे दोनों वीर परस्पर के गदा, मुद्गर और दंड वगैरेह दुसरे आयुधों को भी छेदने लगे । बाद में क्रोधित प्रह्लाद ने प्रलयकाल के सूर्य के जैसा तेजपुंज से भरपुर सैकड़ों ज्वालाओं की माला द्वारा व्याप्त ऐसा चक्र आकाश में घूमाकर वासुदेव पर छोड़ दिया, परंतु उनके नजदीक आने पर वह चक्र निष्फल हो गया । तब वासुदेव ने उस चक्र को हाथ में लेकर प्रह्लाद पर छोड़ा, जिससे उसका मस्तक तत्काल छिन हो गया ।

फिर दत्तवासुदेव ने दिगविजय करके भरतार्द्ध को साध लिया और कोटी शीला उठाकर ईस भरतक्षेत्र के सातवें अर्धचक्री हुए । कुमार वय में नवसौ साल, मांडलीक में और दिगविजय में पचास पचास वर्ष और वासुदेवपन में पंचावन हजार (पछपन) वर्ष सब मिला कर छप्पन हजार वर्ष तक आयुष्य पूरा करके दत्तवासुदेव पापकर्म के वश से अपने छोटे भाई दत्तवासुदेव के अवसान पश्चात् पैसठ हजार वर्ष के आयुष्यवाले नंदन बलभद्र ने शेष समय पूरा किया । भाई के मृत्यु से और भवभावना से वैराग्यवान बने बलभद्र ने दीक्षा लेकर, निरतिचार तीव्र गति व्रत पालन करके सिद्ध पद में प्रतिष्ठा पाये अर्थात् मोक्ष गये ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि

नंदनदत्त प्रह्लाद चरित वर्णनो नाम पंचमः सर्गः ॥५॥



श्री मल्लिनाथ भगवान

भोंयणी तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

चीमनलाल कीकाभाई

गाम : सुरत, गुजरात

षष्ठ सर्ग

श्री मल्लिनाथ चरित्र

मल्लिका के पुष्पो जैसी निर्मल और भव्यप्राणीरूप भ्रमरो ने उत्कंठा से पान की हुई श्री मल्लिनाथ भगवान की वाणी की जय हो । अब श्रोता श्रवण में अमृतपान जैसा मल्लिस्वामी का अद्भुत चरित्र कहने में आ रहा है ।

जंबूद्विप में अपरविदेह में सलिलावती विजय के विषय में वीतशोका नाम की नगरी थी । उसमें शत्रुओं का बलरूप वन का विनाश करने में कुंजर (हाथी) जैसा और बल से बलभद्र जैसा बल नाम का एक देवाकृति राजा था । उस राजा को धारणी नाम की पत्नि से केशरीसिंह के स्वप्न से सूचित महाबल नाम का एक पूर्ण पराक्रमी पुत्र हुआ । अनुक्रम में वह महाबल कुमार उत्कट यौवनवाली कमलश्री वगेरेह पांच सौ कन्या के साथ विवाह किया । वह महाबल अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रवण और अभिचंद्र नाम के छे राजा बालमित्र थे । एक बार वे नगरी के बाहर ईशान दिशा के इंद्रकुब्ज नाम के उद्यान में कुछ मुनि वहाँ आये । बलराजा उनके पास आया वहाँ धर्म सुनकर वैराग्य प्राप्त होने पर महाबल को राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर राजा मोक्ष में गया ।

महाबल को कमलश्री नाम की एक रानी थी । सिंह के स्वप्न द्वारा सूचित बलभद्र नाम का एक पुत्र था । अनुक्रम में यौवनमय में आने पर मानो अपनी दुसरी प्रति कृति हो ऐसे बलभद्र का राज्य सौंपकर युवराज पद देकर ओर स्वयं अपने छे बालमित्रों के साथ सौहार्द के एक भाव से नित्य आर्हत धर्म को सुनने लगा । एक बार महाबल ने अपने मित्रों से कहा- 'हे मित्रो ! मैं इस संसार से भयभीत हो गया हूँ इसलिये मैं अब दीक्षा ग्रहण करूंगा । बाद में आपको कौनसा मार्ग अपनाना है ? वे बोले-जैसे आज तक हम सब इकट्ठे होकर सांसारिक सुखों को भोगा है, उसी तरह एकत्रित रहकर मोक्ष सुख भोगेंगे' महाबल ने अपने राज्य पर बलभद्र को बैठाया और दुसरे मित्रों ने अपने-अपने पुत्रों को बैठाया । बाद में महाबल ने अपने छे मित्रों के साथ महात्मा वरधर्म मुनि के पास से दीक्षा ली । उन सात महात्माओं की ऐसी प्रतिज्ञा थी कि 'हम में से जो कोई एक तपस्या करें उस तरह सभी वह तपस्या करें' ऐसा संकेत करके मोक्ष के लिये समान उत्कंठा धारण करके वे चतुर्थादि तपस्या करने लगे । उनमें से महाबल ने अपनी अधिक फल मिले इस इच्छा से 'आज मेरा सिर दुःख रहा है, आज पेट में दर्द है, आज क्षुधा लगी नहीं है, ऐसे झुठे बहाने दिखाकर पारणा के दिन भी आहार करता नहीं और उसी तरह माया से (कपट) से छे मित्रों से छल करके अधिक तपस्या करता था । ऐसे मायामिश्र तप द्वारा स्त्रीवेद और अर्हत्भक्ति प्रमुख स्थानको के आराधन द्वारा तीर्थकरनाम कर्म उपार्जन किया । चौरासी लाख पूर्व के आयुष्यवाले वे सात मित्र मुनियों ने चौरासी हजार वर्ष तक व्रत पालन से आयुष्य का क्षय होने पर दो प्रकार की संलेखना करके अन्नशन व्रत लेकर कालधर्म पाकर वैजयंत नाम के अनुत्तर विमान में देवता हुए ।

इस जंबूद्विप के दक्षिण भरताड्ड मे धर्म मे तत्पर ऐसे लोगों से भरपुर मिथिला नाम की नगरी थी। वहाँ के प्रासादो पर रखे हुऐ सुवर्ण के कलशो के मस्तक से उदय हुऐ सूर्यवाले उदयगिरि का विभ्रम धारण करते थे। इस नगरी को सर्व रत्नमय देखकर अमरावती और अलकादिक नगरी रत्नमय है, ऐसी कथाओ मे लोगो को श्रद्धा होती थी। उसकी रमणीयता से अतृप्त देवता क्षणभर मे स्वर्ग मे और क्षणभर वे उस नगरी मे बारंबार रहा करते थे। इक्ष्वाकुवंशरूपी क्षीरसागर मे अमृत कुंभ जैसा और निधिकुंभ की तरह लक्ष्मी के निवास स्वरूप कुंभ नाम का राजा था। वह सरिताओ को समुद्र की तरह संपत्तियों का एक आश्रय था और मणियों की तरह रोहणगिरि की तरह नीतियों की उत्पत्ति भूमि था। वह महामति राजा शस्त्रो का और अस्त्रो का जानकार था और पृथ्वी के कर लेकर दीन जनो को दे देता था। वह धीमान् महाराजा को यश मे लाभ था, लक्ष्मी मे नहीं, द्रव्य मे त्याग (दान) बुद्धि थी, लेकिन सीमा पर नहीं और धर्म मे व्यसन था, लेकिन पासे की क्रीडा मे नहीं था।

इंद्र और इंद्राणी की तरह मुख की प्रभा से चंद्र का पराभव करनेवाली प्रभावती नाम की उसे अेक महारानी थी। वह पृथ्वी के आभूषणरूपी थी और उसका आभूषण शील था, बाजु और कडे वगेरेह आभूषण मात्र प्रक्रियारूप थे। अपने निर्मल सतीपन से सभी जगत को पवित्र कर रही वह प्रभावती जंगमतीर्थ हो उस तरह कल्याण के हेतुरूपी शोभा देती थी। दक्षसुता रोहिणी के साथ चंद्र की तरह वह हृदय रानी रमणी के साथ कुंभराजा उत्तम भोग भोग रहे थे।

स्वर्गवासी महाबल का जीव आयुष्य पूर्ण करके वैजयंत विमान मे से च्यवन करके फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को चंद्र अश्विनी नक्षत्र मे आने पर चौदह महास्वप्नो ने जिसका आर्हत वैभव सूचित किये है ऐसा उस महादेवी प्रभावती की कोख मे अवतरित हुआ। उनके गर्भ मे आने पर तीसरे मास मे देवी को माल्य (पुष्प) की शय्या पर सोने की इच्छा हुई। देवताओ ने वह इच्छा पूर्ण की बाद मे पूर्ण समय होने पर मार्गशीर्ष मास की शुक्ल अेकादशी को चंद्र अश्विनी नक्षत्र मे आने पर पूर्व जन्म मे मायाद्वारा स्त्रीवेद कर्म से बंधा हुआ होने से कुंभ के लांछनवाले नीलकांति को धारण करनेवाला और सर्व शुभ लक्षणवाले उन्नीसवे आश्चर्यकारी तीर्थकर रूप अेक कन्या को प्रभावती ने जन्म दिया। दिक्कुमारीयो ने आकर उनका सूतिका कर्म किया और इंद्रो ने मेरुगिरि पर ले जाकर उन्हे स्नान करवाया। स्नान करवाने के बाद उनका अर्चन करके, आरती उतारकर शक्रेंद्र इस तरह भक्ति निर्भर हृदय से स्तुति करने लगे।

“तीन ज्ञान के निधि और तीन जगत के प्रधान ऐसे उन्नीस वे तीर्थकर को मैं नमस्कार करता हूँ। हे नाथ! अच्छे भाग्य से आपके दर्शन से मैं चिरकाल पश्चात् अनुग्रहित हुआ हूँ, क्योकि साधारण पुण्य से अर्हत प्रभु के साक्षात दर्शन नहीं होते हैं। हे देव! आज आपके जन्मोत्सव के दर्शन से देवताओ का दैवत्य सफल हुआ है। अेक ओर अच्युत इंद्र के उपर और दुसरी ओर अन्य प्राणीयों के उपर समान अनुग्रह करने की बुद्धिवाले हे प्रभु! संसार मे गिरते ऐसे हमारा रक्षण करें। पृथ्वी के सुवर्ण मुगुट पर इंद्रनील मणि की तरह आप अतिशय शोभा देते हैं। इच्छा किये बिना मात्र स्मरण करने से आप मोक्ष के लिये होते हो, तो दर्शन और स्तुति करके तुम्हारे पास से अधिक क्या मांगे? अेक तरफ सभी

धार्मिक कार्य और एक तरफ आपके दर्शन ये दोनो की फलप्राप्ति की ओर देखते हुए आपके दर्शन अधिक फलदायी साधनरूप मालुम पडते हैं। आपके चरणकमलो मे लोटना के जैसा सुख मुझे होता है, ऐसा सुख इंद्रपन मे, अहमिंद्रपन मे या मोक्ष मे भी मुझे नहीं होता है ऐसा मैं मानता हूँ।”

इस तरह स्तूति करके इंद्र उन्नीसवे अर्हत् को वापस मिथिलापुरी मे ले गये और माता के पास रख दिया। जब प्रभु गर्भ मे थे, तब माता को पुष्पमाल्य पर सोने की इच्छा हुई थी, इसी कारण पिता ने उनका मल्लि ऐसा नाम रखा। इंद्र ने भेजी हुई पांच धात्रीयो द्वारा प्रतिदिन पुष्प की तरह पालन करते मल्लिकुमार अनुक्रम मे वृद्धि पाने लगे।

अचलराय का जीव वैजयंत विमान मे से च्यवन करके इस भरतक्षेत्र मे साकेतपुर नाम के नगर मे प्रतिबुद्धि नाम का राजा हुआ था। रूप से साक्षात् पद्मा हो ऐसी पद्मावती नाम की उसे सर्व अंतःपुर मे शिरोमणि रानी थी। उस नगर के बारे मे ईशान दिशा मे एक नागदेव के मंदिर के भीतर नागदेव की प्रतिमा थी, उसकी अनेक लोग मानता रखते थे। अक बार पद्मावती रानी ने उस नागदेव की यात्रा जाने के लिये प्रतिबुद्धि राजा से आज्ञा मांगी। राजाने ऐसा करने के लिये समंति दि और उसके साथ राजा भी पुष्पादि साम्रगी लेकर यात्रा के दिन नागप्रतिमा के मंदिर मे आये। पुष्प मंडप, पुष्पो का मुद्गर और अपनी प्रिया को देखकर राजाने स्वबुद्धि नाम का उत्तम मंत्री से पुछा-हे मंत्रीवर्य ! मेरी प्रेरणा से आप अनेक राजा मंदिर मे गये हैं, तो उसमे किसी जगह ऐसा स्त्री रत्न या ऐसा पुष्पो का मुद्गर आपके देखने मे आया है ? स्वबुद्धि मंत्री बोला-‘आपकी आज्ञा से मैं एक बार कुंभ राजा के पास गया था वहाँ उसकी मल्लि नाम की एक कन्या मेरे देखने मे आयी थी। स्त्री रत्न मे मुख्य ऐसी वह राज्य कन्या की आयुष्यग्रंथि मे ऐसे पुष्पमुद्गर बनवाये थे जो स्वर्ग मे असंभवित हैं। उसके स्वरूप के आगे चक्रवर्ती का स्त्रीरत्न, कामदेव की पत्नि रति और इंद्राणी प्रमुख देवांगनाएँ भी तृण के समान हैं। उस कुंभराजा की कुमारी एक बार भी जिसके देखने मे आयी हो तो वह अमृतरस के स्वाद की तरह उसके रूप को भूल नहीं सकता है। मनुष्यों मे और देवताओं मे उस मल्लिकुमारी जैसी कोई नारी नहीं है। उसका अद्वैत रूप वाणी से भी अगोचर हैं” यह सुनकर पूर्व जन्म के अनुराग से प्रतिबुद्धि राजाने उसे वरण करने के लिये कुंभराजा के पास एक दूत भेजा।

उसी समय मे धरण का जीव भी वैजयंत विमान से च्यवन करके चंपापुरी मे चंद्रच्छाय नाम का राजा हुआ था। वह चंपापुरी का निवासी अर्हन्नय नाम का अक श्रावक व्यापार करने के लिये जहाज मे बैठकर समुद्र यात्रा पर निकल पडा। उस समय इंद्र देवसभा मे ऐसी प्रशंसा की ‘अर्हन्नय जैसा कोई दृढ श्रावक नहीं है’ यह सुनकर ईर्ष्यावान एक देवता ने समुद्र मे आकर क्षणभर मे मेघाडंबर साथ उत्पात के जैसा पवन उत्पन्न किया। जहाज के डूबने के भय से उसमे बैठे सभी व्यापारी अपने इष्टदेव की मानता करने लगे। उस समय अहंन्नाथ ने समाधिस्थ होकर पचखाण किया कि ‘यदि इस विघ्न मे मेरी मृत्यु हो जाये तो अब मेरा अनशन व्रत (चार आहारो का त्याग) है’ उस समय उस देव ने राक्षसरूप मे आकर कहा कि-‘हे अर्हन्नय ! तुम तुम्हारा धर्म छोड दो और मेरा वचन मान, यदि तु नहीं मानेगा तो मैं मिट्टी के घडे की तरह इस जहाज को फोड डालूंगा और परिवार सहित तुझे ये समुद्री जीव का भक्ष्य

बना दूंगा।' इतना कहने पर भी जब अर्हन्नय धर्म से चलित नहीं हुआ तब उस देवता ने उसे धन्यवाद दिया और इंद्र द्वारा प्रशंसा संबंधी वार्ता कह सुनायी। बाद में उस श्रावक को दो मनोहर दिव्य कुंडल जोड़ दिए, घोर मेघ और पवनादि दूर करके वह देव अंतर्हित हो गया। अनुक्रम में अर्हन्नय समुद्र के तट पर उतरा और अनाज इत्यादि लेकर मिथिलापुरी में गया। योग्यता के जानकार और उदार मनवाले अर्हन्नय ने कुंभराजा को एक कुंडल की जोड़ी भेंट की। राजाने वह कुंडल जोड़ी अपनी प्रिय दुहिता (पुत्री) मल्लिकोत्तरी को दी और नीति जाननेवाला राजा ने अर्हन्नय का सत्कार किया और विदा किया। वहाँ पुराना अनाज बेचकर नया अकंप बुद्धिवाला अर्हन्नय घूमता-घूमता चंपापुरी में आया। वहाँ का राजा चंद्रच्छाय को दुसरी कुंडल की जोड़ी भेंट दी। राजा ने पुछा-हे श्रेष्ठी! यह कुंडल की जोड़ी कहाँ से लाये हैं? तब उसने कुंडल संबंधी सभी वार्ता कह सुनायी। उस समय प्रथम एक कुंडल की जोड़ी मल्लिकुमारी को दी है तब यह बात निकलते ही उसने उसके स्वरूप का वर्णन करने लगा। 'उस मल्लिकुमारी के मुख जो उदित हो तो चंद्र अस्त हो जाता है। उसके अंगों की कांति के आगे मस्तक शिरोमणि की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लावण्य का बहाव हो तो गंगाजल की क्या जरूरत है? और उसके जैसी रूपलक्ष्मी हो तो बाद में देवांगना भले ही दूर रहे। हे राजन्। जिन्हें उस रमणी के दर्शन नहीं किये हैं उनके नेत्र व्यर्थ हैं क्योंकि कभी भी विकसित पद्मिनी को देखते नहीं हैं, वे हंस किस काम के हैं? यह सुनकर चंद्रच्छाय राजाने पूर्व जन्म के सहयोग से मल्लिकुमारी का वरण करने के लिये कुंभ राजा के पास एक दूत को भेजा।

अब पूरण का जीव वैजयंत विमान में से च्यवन करके श्रावस्तीपुरी में रुक्मि नाम का राजा हुआ था। उसे धारिणी नाम का पत्नी से सुबाहु नाम का एक नागकन्या जैसी अति स्वरूपवान कन्या हुई थी। राजा की बहुत लाडली थी, जब चातुर्मास में सर्व परिवार सहित आदर पूर्वक विशेष प्रेमद्वारा उसे स्नानविधि करा रहा था। एक बार अंतःपुरीयों ने विशेष प्रकार से स्नान करवायी वह बाला दिव्यालंकार धारण करके अपने पिता को प्रणाम करने गई। उसे गोद में बिठाकर पिता ने अंतःपुर के सेवक (नाजर) से कहा- 'इस कन्या के जैसा स्नानविधि तुम किसी अन्य जगह देखा है क्या? तब वह सेवक बोला- "आपकी आज्ञा से एक बार मैं मिथिलापुरी में गया था। वहाँ कुंभराजा की पुत्री मल्लिकुमारी की आयुष्यग्रंथि में इससे भी विशेष स्नानविधि मेरे देखने में आया था। हे प्रभु! उस राजकुमारी का स्वरूप भी निरूपम है। मैं यदि कहूँगा तो असंभव सा लगेगा, लेकिन मेरे वचनों पर आप विश्वास करें। वैसा स्त्री रत्न इससे पूर्व मुझे कहीं भी दिखाई नहीं दिया है। जब से वह दिखाई दी है, तबसे दुसरी स्त्रियों के वर्णन में मेरी जिह्वाने मौन ग्रहण कर लिया है, उसके आगे अन्य स्त्रियाँ निर्माल्य जैसी लगती हैं। कल्पलता के सामने आम्रलता का हिसाब हो सकता है? यह सुनकर रुक्मिराजा को उस पर अनुराग होने से मल्लिकुमारी की मांग करने के लिये उसने भी एक दूत को कुंभराजा के पास भेजा।

वसु का जीव भी वैजयंत विमान से च्यवन करके वाराणसी पुरी में शंख नाम का राजा हुआ था। एक बार अर्हन्नय ने दिया हुआ दिव्य कुंडल टूट गया, उसे वापस ठीक करने के लिये राजाने स्वर्णकारों को बुलवाया। स्वर्णकारों ने देखकर कहा कि-हे देव! हम ऐसे दिव्य कुंडल में सुधार करने में असमर्थ

हैं' यह सुनते ही राजा क्रोधित होकर उन्हें नगर से बाहर निकाल दिया। वे वहाँ से वाराणसी नगरी में आया और वहाँ के शंखराजा के पास अपने निकाल देने का वृत्तांत कह सुनाया। उसमें कुंडल के प्रसंग ने मल्लिकुमारी के अद्भुत रूप का वर्णन करना आरंभ किया- "जो पदार्थ दुसरी जगह उपमान गिने जाते हैं वे इस बाला के पास उपमेय तरीके से गिने जाते हैं। जिस तरह चंद्र उसके मुख का उपमेय है, बिंबफल उसके होठों का उपमेय है, दर्पण उसके जघन का उपमेय है, मृगनी की जंघा उसकी जंघा का उपमेय है और कमल उसके हाथ पैर का उपमेय है।" ऐसा रूपवर्णन सुनकर पूर्व के स्नेहानुबंधु द्वारा शंखराजा ने मल्लिकुमारी की याचना करने के लिये एक दूत कुंभराजा के पास भेजा।

वैश्रवण का जीव भी वैजयंत विमान से च्यवन करके हस्तिनापुर में अदीन शत्रु नाम का राजा हुआ था। यहाँ मल्लिकुमारी का भाई मल्लिकुमार नाम का एक भाई था, उसने कुतूहल से चित्रकारों के पास से अेक विचित्र चित्रशाला बनवाना आरंभ किया। उसमें चित्र बनानेवालों में एक चित्रकार बहुत चतुर था। सिर्फ किसी एक अंग देखने पर भी वह उसके अनुसार सभी अंग का व्यवस्थित यथास्थित चित्र तैयार करने की उसे उपलब्धि प्राप्त थी। अेक बार पडदे में से मल्लिकुमारी के पैर का अंगूठा देखकर उसने उसके अनुसार अंगोपांग सहित मल्लिकुमारी का यथार्थ रूप का उसने आलेख तैयार कर लिया। अन्यदा मल्लिकुमार एक बार उस चित्रशाला में क्रीडा करने गया और वहाँ वह चित्र देखने लगा। उसी समय चित्र में रही मल्लिकाकुमारी को साक्षात् मल्लिकुमारी है ऐसा मानकर लज्जा से वापस लौट गया। उस समय धात्रीयों ने कहा-क्यों वापस लौट आये ? तब कुमार बोले- 'यहाँ मेरी बहन मल्लिकुमारी है, तो वहाँ क्रीडा कैसे की जा सकती है ? धात्रीयों ने बराबर देखकर कहा- 'कुमार ! यह साक्षात् मल्लिकुमारी नहीं है लेकिन चित्र में आलेख है, इसलिये वापस लौटें' यह जानकर मल्लिकुमार को क्रोध आया, उससे उसने उस चित्रकार को बुलवाया और उसका दाहिना हाथ कटवा दिया और उसे अपने नगर से निकाल दिया। उसने वह वृत्तांत हस्तिनापुर में जाकर अदीनशत्रु राजा से कहा और बाद में मल्लिकुमारी का वर्णन करना आरंभ किया- "हे राजन् ! इस सर्व जगत के आकाश में चंद्रलेखा सदृश वह मल्लिकुमारी जैसी कोई दुसरी स्त्री किसी जगह नहीं है, हुई नहीं है, होगी भी नहीं जो कोई अन्य सुंदर कन्या देखी देखते हैं वे महानीलमणि को देखकर कांच के टुकड़े को देखते हैं। इस जगत में रूप और लावण्य, गति और दुसरी चेष्टाओं से वह बाला नदीयों में गंगा की तरह सर्व स्त्रियों में मुख्य है" इस प्रकार से उसका वर्णन करके बाद में चित्रकार ने फलक आकर्षकर के राजा को दिखलाया। वह देखकर विस्मय पाया हुआ और पूर्व स्नेह से उत्कंठित हुए राजाने उसकी याचना करने के लिये कुंभराजा के पास अपना दूत भेजा।

अभिचंद्र का जीव भी वैजयंत विमान से च्यवन करके कांपिल्युपर नगर में जितशत्रु नाम का राजा हुआ था। उसके पुण्य से आकर्षित होकर देवलोक में से अप्सराओं का वृंद आया हो उस तरह धारिणी वगैरेह उसे अेक हजार रानीयां थी। यहाँ मिथिला नगरी में चौक्षा नाम की अेक विलक्षण परिव्राजिका थी। वह राजा के और धनाढ्य पुरुषों के घरों में घूमती-घूमती इस तरह से वह कहती थी कि "दान करने से तीर्थ के अभिषेक से हुआ धर्म स्वर्ग और मोक्ष का हेतु है। यह हमारा त्ववचन है"

इस तरह कहती हुई वह परिव्राजिका नगर के और देश के लोगो को अपने धर्म प्रवृत्त करती थी। एक बार वह घूमती हुई वह कुंभराजा के दरबार में जहाँ मल्लिकुमारी रहती थी उस महल में आयी वहाँ प्रथम हाथ में त्रिदंड रखकर, कषाय वस्त्रों का धारण करके खड़ी रही। बाद में दर्भ से कमंडल के जल से पृथ्वी पर छिड़कर उस पर अपना आसन फैलाकर बैठ गई और दूसरे पुरुषों की तरह मल्लिकुमारी को भी वह धर्मोपदेश करने लगी। यह सुनकर तीन ज्ञान धारण करनेवाली मल्लिकुमारी बोली- “जितना दान है वह सभी धर्म के लिये नहीं है। यदि सर्व दान धर्म के लिये ही होते हैं तो बिल्ली, कुत्ते का पोषण भी धर्म के लिये ही होता है। जीव हिंसा जिसमें है ऐसे तीर्थाभिषेक से किस तरह पवित्र होते हैं? रुधिर द्वारा लिप्त वस्त्र क्या रुधिर से धोने पर शुद्ध होगा क्या? इसलिये विवेकमूल धर्म है, वह अविवेकी को होता नहीं। वैसे पुरुषों के लिये तपस्या मात्र एक संग्रह होता है। इसमें कोई भी संशय नहीं है” इस तरह मल्लिकुमारी ने कहा, तब चोक्षा परिव्राजिका मुरझा कर नीचे मुख कर दिया, क्योंकि प्रभु के युक्तिवाले वचनों से बोधित करने के लिये कौन समर्थ होता है? बाद में अरे पाखंडी! ऐसे दर्भ के आसन पर बैठकर तुम इस विश्व को कितने समय से छल रहे हो? ऐसा कहकर दासीयों ने उसका तिरस्कार किया। उस समय चोक्षा ने मन में सोचा की ‘राज्यसंपत्ति द्वारा उन्मत्त होकर इस राजकुमारी ने और उसके छंद से वर्तन करनेवाले परिवार ने जो मेरा तिरस्कार किया है, उससे बैर लेने के लिये मेरी बुद्धि लगाकर इस राजकुमारी को जहाँ बहुत सी सौत हो उनके बीच में छोड़ दूँ, अर्थात् बहुत सी रानीयांवाले राजा उससे विवाह करें, जिससे वह दुःखी हो।’ इस तरह सोचकर क्रोध से मन में प्रज्वलित हो रही वह परिव्राजिका वहाँ से निकलकर कांपिल्यपुर में जितशत्रु राजा के पास गई। राजाने उसे बड़े सत्कार से उसके दर्शन किये। तब आशीर्वाद देकर अपने आसन पर बैठी। राजाने अंतःपुर के साथ भक्तिपूर्वक उसकी वंदना की। उसने वहाँ पर भी दान और तीर्थाभिषेकरूप धर्म का उपदेश किया। राजाने कहा- ‘भगवती! आप इस पृथ्वी परतंत्र हुऐ बिना स्वेच्छा से सभी जगह घूमा करते हैं, इसलिये मैं आप से पुछता हूँ कि-इस मेरे अंतःपुर की स्त्रियां जैसी अन्यत्र कहीं आपने देखी है? यह सुनकर चोक्षा हंसती हुई बोली- ‘हे राजन्! कुओं के मेंढक के भाति आप अपने अंतःपुर को क्यों बहुत बड़ा मान रहे हो? मिथिलानगरी में कुंभराजा के घर मल्लिनाम की सुंदर कन्यारत्न है। वह सर्व मृगाक्षियों में चूडामणि है। उसके मात्र अंक अंगूठे की शोभा है वह देवांगना या नागकन्याओं में भी दिखाई नहीं देती है। अधिक क्या कहूँ? उस मनोहर बालिका का शरीर रचना और उसकी शोभा, उसका सौंदर्य और उसके लावण्य की संपत्ति कुछ अलग ही है।’ यह सुनते ही पूर्व के स्नेह के कारण जितशत्रु राजा ने उसकी प्रार्थना के लिये कुंभराजा के पास एक दूत भेजा।

यहाँ मल्लिकुमारी ने अपने पूर्व जन्म के मित्र छै राजाओं को अशोकवाडी में बोध होनेवाला है ऐसा अवधिज्ञान द्वारा जानकर उस वाडी के अंदर महल के कमरे के मध्य में मनोहर रत्नपीठ पर एक अपनी सुवर्णमय प्रतिमा बनवाकर स्थापित किया। उस प्रतिमा को पद्मराग मणिद्वारा उपर किये, नीलमणि से केश बनाये, इंद्रनील और स्फटिक मणि के लोचन बनाये, परवाल से हाथ पैरों की रचना की, छिद्रवाला (हलका) उदर बनाया। तालु में छिद्र किया और उसके उपर सुवर्णमय कमल का दृक्कन

बनवाया । अन्य अवयव बड़े अति रमणीय बनाये और उस प्रतिमावाले कमरे के चारो ओर दिवार चुनवाई । उसमे ताले चांबी वाले छै द्वार बनवाये, उस द्वार के आगे छै छोटे-छोटे कमरे बनवाये और प्रतिमा के पीछे की ओर दिवार मे अेक छोटा दुसरा द्वार बनवाया । बाद मे उस प्रतिमा के तालु के उपर सर्व आहारों का एक पिंड रखकर उस पर सुवर्णकमल ढककर मल्लिकुमारी प्रतिदिन भोजन करने लगी ।

अब जिन छै राजाओं ने मल्लिकुमारी के लिये अपने-अपने दूत भेजे थे, वे अेक साथ मिथिलापति के पास आये । सर्व प्रथम दूतने कहा-“अनेक सामंत राजा मस्तक द्वारा जिसके चरणकमलो का मार्जन करते है ऐसे महापराक्रमी, महाउत्साही, रुप मे कामदेव जैसे सौम्यता मे चंद्र जैसे, प्रताप मे सूर्य जैसे और बुद्धि मे गुरु जैसे, साकेतपुर के अधिपति प्रतिबुद्धि राजा आपकी निर्दोष कन्या मल्लिकुमारी से विवाह के इच्छुक है । आपको किसी दुसरे को भी कन्या अवश्य देनी तो होगी, तो हमारे राजा को देकर उन्हे स्वजन करने के आप योग्य है ।” दुसरा दूत बोला-“घुंसरा प्रमाण दीर्घ भुजावाला, पुष्ट स्कंधवाला, विशाल लोचन से सुशोभित, कुलीन, चतुर, सत्य प्रतिज्ञावाले, रणभूमि मे तीव्र, सर्वशास्त्र के अभ्यासी और सर्व शस्त्रो मे श्रम करनेवाले ऐसे चंद्र की छाया जैसे शीतल चंपानगरी पति चंद्रच्छाय नाम का युवान राजा आपकी पुत्री मल्लिकुमारी को मांग रहे है, तो उसे आप देने योग्य हो” तीसरे दूत ने कहा-“याचको को चिंतामणि, क्षत्रियो का शिरोमणि, शरणेच्छुको का शरणदाता, वीर्यवंत मे श्रेष्ठ, जयश्री का क्रीडाग्रह और गुणीजनों का उद्यान ऐसा रुक्मि नाम की श्रावस्ती नगरी का राजा आपकी कन्या का इच्छुक है, इसलिए हे राजा ! विधि का मिलाप उचित है ऐस वरवधु का योग करें । आप योग्यता के जानकार है ।” चौथा दूत बोला-“अद्भूत अैश्वर्य से यक्षपति कुबेर को जीतनेवाले, वाचाल, सौंदर्य मे कामदेव समान, शत्रुओं के गर्व को खंडीत करनेवाला, सदाचाररुप मार्ग का राहगीर, शासन मे इंद्र समान और शंख जैसा उज्ज्वल यश को धारण करनेवाला शंख नाम की काशी नगरी के राजा है, वे आपके पास आपकी कन्या की प्रार्थना कर रहे है उसका स्वीकार करें ।” पांचवे दूत ने कहा-“हे मिथिलापति ! बड़े बलद्वारा हस्ती जैसे, हाथचालाकीवाले, महापराक्रमी, अनेक रणो मे से आये, दृढ हृदयवाले, अच्छी बुद्धिवाला, युवा, किर्तिरुपी बेल का प्ररोहण, गुणरत्नों का एक रोहणाचल और दीन अनाथजनों का उद्धार करनेवाला हस्तिनापुर का स्वामी अदीनशत्रु राजा आपकी कन्या मल्लिकुमारी को मांग रहे है इसलिए उन्हे वह कन्या दें ।” छठवा दूत बोला-“हाथीयो से पर्वत की तरह शत्रुओं से अकंपनीय, नदीयो से समुद्र की तरह बहुत सेना से चारो ओर फैला हुआ, अप्रतिहत शक्तिवाला, सेनानी से इंद्र जैसा और सभी शत्रुओं को जीतनेवाला कांपिल्यपुर का अधिपति जितशत्रु राजा मेरे मुख से आपकी कन्या के लिये प्रार्थना करते है, इसलिए विलंब न करें और उन्हें दे ।”

इस तरह छै दूतों के वचन सुनकर कुंभराजा बोले-“अप्रार्थित वस्तु की प्रार्थना करनेवाले, मूढ़ और बहुमानी ऐसे अधम राजा कौन हैं ? यह मेरा कन्या रत्न तीनों जगत मे शिरोरत्न है, उससे विवाह करने योग्यता इंद्रादिक देवताओं मे भी नहीं है । हे गरीब दूतो ! तुम्हारे दुराशयवाले स्वामीयों ने यह मनोरथ व्यर्थ किये है, इसलिये आप यहाँ से शीघ्र चले जायें । मेरे नगर मे से जल्द निकल जायें ।” इस प्रकार से तिरस्कृत किये वे दूत वहाँ से निकलकर जल्द अपने-अपने स्वामी के पास पहुँच कर क्रोधरुपी

अग्नि में पवन जैसा यह संदेशा कहा, तब वे छै राजाओं ने अपना समान पराभव होने से परस्पर दूतो को भेजकर कुंभराजा के साथ बड़ी लडाई करने का निश्चय किया । बाद में वे छै वर्षधर पर्वतों के जैसे वे छै राजा सेना से पृथ्वी आच्छादित करते हुऐ मिथिलापुरी के पास आये । प्रवेश के और निकलने के द्वार को शोकने में चतुर ऐसे उन्होंने चंदन के वृक्षों को सर्पों की तरह मिथिलानगरी को लपेट कर घेरा डाल दिया । कुछ दिनों तक इस घेरे में रहकर खेद पाये कुंभराजा एक दिन चिंतित बैठे हुऐ थे । उसी समय में मल्लिकुमारी वहाँ पर आयी । उसने कहा-तात ! आप उद्वेगी जैसे क्यों दिखाई दे रहे हो ? तब कुंभराजा ने उद्वेग का कारण बताया । तब मल्लिकुमारी बोली-“पिताजी ! गुप्त पुरुषों को भेजकर प्रत्येक राजाओं से कहे आपको मल्लिकुमारी दूंगा । ऐसा कहकर उन्हें समझाये और बाद में मेरी प्रतिमा रखी हुई है उसके आगे छै कमरे हैं उनमें सायंकाल में सफेद वस्त्र धारण करवाकर गुप्त तरीके से अलग-अलग लाये” कुंभराजा ने उस तरह का आयोजन किया तब वे छै राजा वहाँ आकर उपस्थित हुऐ । बाद में उन्हें दरवाजों की जालीयों में से सभी ने मल्लिकुमारी की प्रतिमा देखी । ‘अहो ! पुण्ययोग से यह सुंदर लोचनवाली सुरुपा मल्लिकुमारी को हमने प्राप्त कर ली’ इस तरह प्रत्यक्ष मल्लिकुमारी की बुद्धि से प्रत्येक उसका अनुरागपूर्वक चिंतन करने लगे ।

उसी समय प्रतिमा के पीछे जो द्वार करवाया था वहाँ से मल्लिकुमारी ने उसमें प्रवेश किया और प्रतिमा द्वारा छुपकर उसने तालु को ढकने जो कमल रखा था वह गिरा दिया । तत्काल प्रथम डाली हुई खराब आहार की गंध उसमें से फैल गई । वह विष्टा की दुर्गंध जैसी असह्य होने से नासिका को अत्यंत बाध्य करने लगी । छै दरवाजों की जाली से वह दुर्गंध निकलकर छै कमरों में फैल गई । जिससे छै राजाओं की नासिका फाड़ डालती हो वैसी अप्रिय हो गई । तब वस्त्र द्वारा नासिका को ढककर शत्रुओं की तरह कायर की तरह वे पराङ्मुख हो गये तब मल्लिकुमारी ने भीतर से कहा-तुम पराङ्मुख क्यों हो रहे हो ?’ वे बोले-‘हम यह दुर्गंध सहन नहीं कर सकते हैं’ बाद में मल्लिकुमारी ने प्रगट होकर कहा-“यह प्रतिमा सुवर्ण की है, लेकिन इसमें प्रतिदिन आहार का एक निबला (कवला) इसमें डाला जाता है इसलिए ऐसी गंध आ रही है, तो मातापिता के वीर्य और रक्त से उत्पन्न हुऐ गर्भ में प्रथम कलल (बुलबुले) जैसा होकर बाद में मांस की पेशीरूपी से और माता के किये हुऐ आहार के सत्व से बने रस से पोषित बना हुआ, अमाल के पडदे में तथा नरक में मग्न हुऐ और विष्टा मुत्र से वासित ऐसे इस शरीर के लिये क्या कहना ! ऐसी जिसकी उत्पत्ति है ऐसे विष्टा के रूप, रस, रुधिर मांस, चरबी, अस्थि, मज्जा और वीर्य से भरे, मूत्र के स्रोत, श्लेष्म (बडखा) की मसक और शहर की गटर जैसी दुर्गंधी शरीर में कुछ सार है ? जिस तरह क्षारवाली जमीन में अमृत वर्षा भी खाररूप हो जाती है, उसी तरह उस शरीर को सुगंधी बनाने के लिये कपूर वगैरेह सुगंधी पदार्थ भी मलरूप हो जाते हैं । इस तरह बाहर अंदर बीभत्स ऐसे इस शरीर पर विवेकी पुरुष जरा भी राग नहि करते हैं ? अर्थात् नहीं करते हैं, अरे मुग्ध राजाओं ! आज से तीसरे भव में तुम मेरे साथ दीक्षा लेकर तप किया था वह आप याद क्यों नहीं करते हैं ?” मल्लिकुमारी के ऐसे वचनों को सुनकर उसका विचार करते हुऐ वे छै राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । ‘अर्हत् के अनुग्रह से क्या नहीं होता है ? बाद में मल्लि प्रभु ने जालीवाले छै दरवाजे

खोल डालें, तब वे छै राजा प्रतिबोध पाकर इस प्रकार से कहने लगे- “हे भद्रे ! हमे याद आया कि पूर्व भव मे हम सातो मित्र मिलकर संकेत करके एकत्रित रहकर तीव्र तप करते थे । हे प्रभु ! आपने हमे अच्छी तरह से बोध करवाया और नरक मे गिरते हमे बचाया । तो अब हमे क्या करना है वह आप बतलाये, क्योंकि अब आप हमारे गुरु है ।” ‘समय आने पर दीक्षा ग्रहण करना’ ऐसा कहकर मल्लिकुमारी ने उन्हें विदा किया तब वे सभी राजा अपने-अपने नगर मे लौट गये ।

उस अवसर पर लोकांतिक देवताओं ने आकर मल्लिनाथ से कहा कि ‘तीर्थ प्रवृत्त करें’ यह सुनकर प्रभुने जृम्भक देवताओ ने भरे हुऐ द्रव्य से वार्षिक दान देना आरंभ किया । जन्म से सौ वर्ष पूर्ण हुऐ तब पच्चीस धनुष्य ऊंची कायावाली ऐसी मल्लिकुमारी का कुंभराजा और इंद्रादिक देवताओं ने निष्कर्मोत्सव किया बाद मे जयंती नाम की शिबिकारत्न पर आरुढ होकर मल्लिप्रभु सहस्राम्र वन के उत्तम उद्यान मे आये ।

वह उद्यान किसी जगह कृष्ण इक्षु (शेलडी) की बाढ से मानो कृष्णपक्षवाला हो और किसी जगह श्वेत इक्षु की बाढ से मानो शुक्लपक्षवाला हो ऐसा दिखाई दे रहा था । नारंगी के पके फलो से मानो शोणमणियों से जडा हुआ हो मकरुब के फल से मानो नीलमणि ने बंधा हो ऐसा दिखाई दे रहा था । उसमे शीत से पीडित ऐसे राहगीर नारी के स्तनो की तरह उष्ण ऐसा कुओं का जल पी रहे थे और बरगद के पेड की छाया का सेवन कर रहे थे । मानो हेमंतलक्ष्मी के हास्य हो ऐसे विकस्वर डोलर के पुष्पो से शोभा दे रहा था । ऐसे उद्यान मे जगद्गुरु ने प्रवेश किया । बाद मे बाह्य परिवार के योग्य ऐसे एक हजार पुरुष और अभ्यंतर परिवार के योग्य ऐसी तीनसौ स्त्रीयों के साथ मार्गशीर्ष मास की शुक्ल एकादशी को अश्विनी नक्षत्र मे चंद्र आने पर प्रातःकाल मे मल्लिनाथ प्रभु ने अष्टम तप करके दीक्षा ग्रहण की । उस समय मल्लिनाथ प्रभु को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । उसी दिन अशोक वृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । इंद्रादिक देवता आकर तीन सौ धनुष्य ऊंचे चैत्यवृक्ष द्वारा शोभित ऐसा समवसरण रचा । उसमे पूर्व से द्वार से प्रवेश करके चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके ‘तीर्थाय नमः’ ऐसा कहकर मल्लिप्रभु पूर्व दिशा के सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठे । तत्काल व्यंतर देवताओ ने दुसरी तीन दिशाओ मे भी साक्षात् प्रभु जैसे उनकी रूप जैसी प्रतिमा बनवाई । श्रीमान् चतुर्विध संघ योग्य स्थान पर बैठा । कुंभराजा और वे अन्य छै राजा भी वहाँ आकर इंद्र के पीछे बैठे । बाद मे श्रद्धा द्वारा निर्मल अंतरात्मावाले देवराज (इंद्र) और कुंभराज प्रभु को नमस्कार करके हर्ष द्वारा इस तरह से स्तुति करने लगे ।

“हे अर्हत् ! जो अच्छे भाग्य से आपके चरणो मे झुकते है उनके ललाट पर आपके चरणानख के जो किरण पडते है वे इस भयंकर भव से भयभीत प्राणीयों के रक्षा के तिलक जैसे होते है । हे प्रभु ! आप जन्म से ब्रह्मचारी होने से आपको दीक्षा जन्म से ही मिली है और उससे आपका पूरा जन्म व्रतपर्याय मे ही है ऐसा मै मानता हूँ । हे नाथ ! जहाँ आपका दर्शन नहीं है वह घर किस कामका है ? और आपके दर्शन से पवित्र ऐसा यह सब भूमितल कल्याणरूप है । हे प्रभु ! इस संसाररूपी शत्रु से भय पाये मनुष्य, देव और तिर्यच प्राणीयों को आपका समवसरण ओक शरण देनेवाला किल्लाभूत है । आपके चरण मे

स्पर्श किये बिना दुसरा जो कोई कर्म है वे सभी कुकर्म हैं, वे इस संसार की स्थिती के कारण ऐसे कर्मों को फैलाया करते हैं। आपके ध्यान बिना जो दुसरे ध्यान हैं वे सभी दुर्ध्यान हैं, जिससे अपने तत्तुओं से मकड़ी की तरह अपनी आत्मा उसमें उलझ जाती है। आपके गुणों की कथा बिना अन्य सभी दोषित कथा है, जिससे वाणी द्वारा तित्तर पक्षी की तरह प्राणी विपत्ति को प्राप्त होता है। हे जगद्गुरु ! आपके चरणकमलों की सेवा के प्रभाव से इस संसार का उच्छेद हो अथवा भव भव में आपकी भक्ति मिले।

इस तरह स्तुति करके इंद्र और कुंभराज ने विराम लिया। बाद में चतुर्विध संघ सुनने के इच्छुक होने से मल्लिनाथ प्रभु ने देशना देना आरंभ किया।

“यह संसार स्वयं अपार फिर भी पूर्णिमा के दिन की तरह समुद्र की तरह रागादिक से विशेष वृद्धि पाते हैं। जो प्राणी अमंद आनंद उत्पन्न करनेवाले समतारूपी जल में स्नान करते हैं, उनका रागद्वेष रूप का मल तत्काल धो डाला जाता है। कोटि जन्म तक तीव्र तप के आचरण द्वारा प्राणी जिस कर्म का हनन नहीं कर सकता है, वह कर्म को समता के आलंबन से आधेक्षण में हनन कर डालता है। कर्म और जीव जो साथ में मिल गये हैं, उसे ज्ञान द्वारा आत्मनिश्चय करनेवाले साधुपुरुष सामायिकरूप शलाका से अलग कर देते हैं। योगी पुरुष सामायिक के किरण द्वारा रागादिक अंधकार का नाश करके अपने में परमात्मास्वरूप को देखता है। स्वार्थ के लिये नित्य बैर धारण करनेवाले प्राणी भी समतावाले साधुजन के प्रभाव से परस्पर स्नेह धारण करते हैं। इष्टअनिष्टपन से रहा चेतन और अचेतन पदार्थोंद्वारा जिसका मन मोह नहीं पाता है उसी पुरुष में समता कहलाती है। बाहु पर गोशीर्षचंदन का लेप करें अथवा खड्ग से उसका छेद करे तो भी जिसकी मनोवृत्ति का भेदन नहीं होता है तब समान बरताव उसमें अनुपम समता है ऐसा माना जाता है। स्तुति करनेवाले तथा प्रीति रखनेवाले और क्रोधांध तथा गाली देनेवाले पर भी जिसका समान चित्त है, वह पुरुष समता का अवगाहन करता है। जिसमें कोई होम, जप या तप या दान करना नहीं पड़ता है फिर भी मात्र समता से ही परम निवृत्ति (मोक्ष) प्राप्त होता है। अहा ! वह कैसी अमूल्य खरीदी ! प्रयत्न बिना प्राप्त करने लायक और मनोहारी सुखकारी समतापन ही धारण करें। परोक्ष होने के कारण स्वर्ग और मोक्ष ये गुप्त हैं, लेकिन समता का सुख तो स्वसंबंध होने से प्रत्यक्ष हैं, उसे कोई भी ढक नहीं सकता है। कवियों के कहने से रुढ़ ऐसा अमृत पर क्यों मोहित होना चाहिए ? जिसका रस अपने अनुभव में आता है ऐसा समतारूप का अमृत का ही निरंतर पान करना चाहिए। स्वाद्य, लेह्य, चुष्य और पेय-ये चार प्रकार के रस से विमुख ऐसे मुनि भी हमेशा स्वेच्छा से समता रूप अमृत रस को बारंबार पीते हैं। जिसके कंठ में सर्प डाले या मंदार पुष्प की माला पहनाये, तथापि जिसे प्रीति या अप्रीति होती नहीं है वह सही समता का पति है। जो गूढ़ नहीं है, अवार्य नहीं है और दुसरा किसी भी तरह जिसकी प्राप्ति मुश्किल नहीं है ऐसी एक समता ही अज्ञान या बुद्धिवान को संसाररूपी पीड़ा का औषध है। अतिशान्त ऐसे योगियों में भी अेक क्रूर कर्म रहा हुआ है जो समतारूपी शस्त्र से रागादिक कुल का हनन कर डालता है। समता का परम प्रभाव प्रथम तो यह है कि जिससे एक आधे क्षण में पापी जनो भी शाश्वतपद को प्राप्त कर लेते हैं।

जिसके होने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ये तीन रत्न सफल होते हैं और जिनके न होने पर तीन रत्न निष्फल होते हैं, ऐसे महापराक्रमी समता गुण से सदा कल्याण हैं। जब उपसर्ग आ गये हो अथवा मृत्यु हुऐ हो तब तत्काल करने योग्य और श्रेष्ठ उपाय समता के जैसा दुसरा कोई नहीं है। रागद्वेष की जय करने के इच्छुक ऐसे पुरुष मोक्षरूप वृक्ष का बीज और अति अद्भुत सुख को देनेवाला समतापन सदा धारण करें।”

मल्लिनाथ प्रभु की ऐसी देशना से छै राजा प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली और कुंभराजा श्रावक बने। मल्लिप्रभु के भिषक वगेरेह अष्टाईस गणधर हुये। प्रभु की देशना हो जाने के बाद प्रथम गणधर ने देशना दि। दुसरे दिन उसी वन मे रहे विश्वसेन राजा द्वारा प्रभु का परमान्न द्वारा पारणा करवाया। बाद मे मल्लिनाथ के चरणो मे झुककर इंद्रादिक देवता और कुंभ वगेरेह राजा अपने स्थानको पर गये।

श्री मल्लिनाथ के तीर्थ मे इंद्रायुध समान वर्णवाला, चार मुखवाला, हाथी के वाहन पर बैठनेवाला, चार दक्षिण भुजा मे वरद, परशु, त्रिशूल और अभय को रखनेवाला और चार वाम भुजाओ मे बिजोरु, शक्ति, मुद्गर और अक्षसूत्र को धारण करनेवाला कुबेर नाम का यक्ष शासनदेवता हुआ तथा कृष्णवर्णवाली कमल के आसन पर बैठनेवाली, दो दक्षिण भुजा मे वरद और अक्षसूत्र धारण करनेवाली और दो वाम भुजाओ मे बिजोरु और शक्ति धारण करनेवाली वैरौट्या नाम की शासनदेवी हुई वे दोनो शासन देवता श्री मल्लिनाथ प्रभु के शासन देवता हुऐ। बाद में वहाँ से भव्य लोगो को बोध करवाने के लिये ग्राम, आकर और नगर वगेरेह मे मल्लिनाथ प्रभु विहार करने लगे।

चालीस हजार महात्मा साधु, पंचपन हजार तपस्वी साध्वी, छै सौ अडसठ चौदपूर्वधारी, दो हजार छै सौ अवधिज्ञानी, सत्रह सौ पचास मनःपर्यवज्ञानी, दो हजार दो सौ केवलज्ञानी, दो हजार नौ सौ वैक्रियलब्धिवाले, अेक हजार चार सौ वादलब्धिवाले, अेक लाख त्यांसी हजार श्रावक और तीन लाख सत्तर हजार श्राविकाएँ इतना परिवार प्रभु का था। एक सौ वर्ष उना (कम) पचपन हजार वर्ष तक मल्लिनाथ प्रभु ने विहार किया।

श्री मल्लिनाथ प्रभु ने निर्वाणसमय नजदीक जानकर संमेतशिश्वर पर जाकर पांचसौ साधु और पांचसौ साध्वीयों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। अेक मास के अंत मे फाल्गुन मास की शुद्ध द्वादशी याम्य (भरणी) नक्षत्र मे मल्लिनाथ प्रभु उन सभी साधु और साध्वीयों के साथ निर्वाणपद प्राप्त हुऐ। कुमार अवस्था मे और व्रतपर्याय मे मिलकर मल्लिनाथ प्रभु पचपन हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया था। अरनाथ प्रभु के निर्वाण बाद कोटि हजार वर्ष गये तब श्री मल्लिप्रभु का निर्वाणकाल हुआ था। मल्लिनाथ प्रभु के निर्वाण पाये बाद मे इंद्र ने और कोटि गम मे देवताओ ने आकर श्री मल्लिनाथ प्रभु का यथाविधि निर्वाण महोत्सव किया।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठी पर्वणि

मल्लिनाथचरितवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तम सर्ग

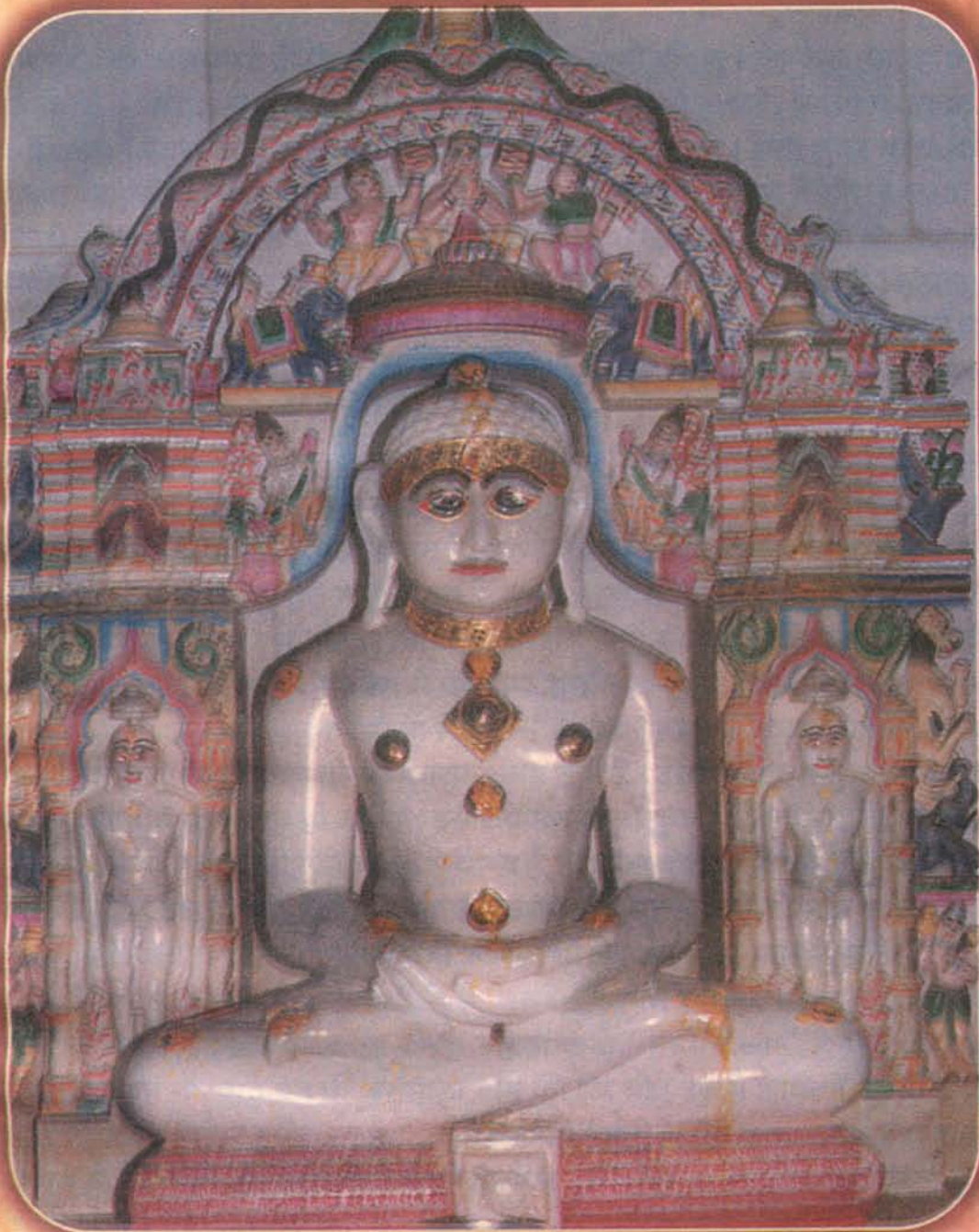
श्री मुनिसुव्रत स्वामी चरित्र

ज्ञानरूपी क्षीरसागर की बेला (मर्यादा) रूप और पृथ्वी को पवित्र करनेवाली श्रीमुनिसुव्रतनाथ की दांत की कांतियां देशना के समय में जय पाती हैं। विद्वानों की प्रतिभा (बुद्धि) के उल्लास करने में सरस्वती के तेज जैसा निर्मल श्री मुनिव्रतस्वामी का चरित्र कहने में आ रहा है।

इस जंबूद्विप के अपर (पश्चिम) विदेह में रहे हुए भरत नाम के विजय के बारे में चंपा नाम की एक विशाल नगरी है। उस नगरी में लोकोत्तर पराक्रमी और दीर्घ भुजावाला सुरश्रेष्ठ नाम का एक सुरश्रेष्ठ (इंद्र) जैसा राजा था। वह चारों प्रकार से वीर था-दान द्वारा सभी की रक्षा करनेवाला होने से दानवीर, रण में उत्कट होने से रणवीर, आचार में श्रेष्ठ होने से आचारवीर और श्री जैनधर्म में धुरंधर होने से धर्मवीर था। आज्ञा मात्र से ही सभी राजाओं को साध लेता था, इसलिए वह राजा अपनी अस्त्रविद्या केवल अश्वक्रीडा में दिखाता था, रण में नहीं दिखाता था। वाणी को नियम में रखनेवाले मुनि भी रातदिन उसके गुणों का वर्णन करके अपना वाचंयमत्व (वाणी का विजय) छोड़ देते थे। एक बार हृदय को आनंद देनेवाले नंदन नाम के मुनि उस नगरी के उद्यान में समवसर्या (आये)। उनके पास राजा वंदन करने गया। भक्ति से वंदना करके आगे बैठा। मुनि ने देशना देना आरंभ किया। मोहरूपी कादव को धो डालने में जल का प्रवाह जैसी उस मुनि की देशना सुनकर सुरश्रेष्ठ राजा को भव के उपर वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ, इससे वे नंदनमुनि के पास से तत्काल दीक्षा ग्रहण कर ली और सात्विक शिरोमणि उस राजाने यथायोग्य तरीके से उसका पालन किया। अर्हंत की भक्ति वगैरेह स्थानों के आराधन से तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया, मृत्यु पाकर वह प्राणत देवलोक में गये। वहाँ से च्यवन करके वह हरिवंश में अवतरित हुआ, इसलिए उस हरिवंश की उत्पत्ति के बारे में प्रथम कहते हैं।

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र में वत्स देश के मंडनरूप कौशांबी नाम की नगरी है। उस नगरी में श्रीखंडचंदन के रस के जैसे सुगंधी यश द्वारा दिशाओं के मुख को मंडित करनेवाले सुमुख नाम का राजा था। सर्पों के जांगुली मंत्र की तरह राजाओं को उसकी आज्ञा अलंघ्य थी और इंद्र के जैसा उसका अद्वितीय ऐश्वर्य था। साम-सांत्वन के योग्य ऐसे पुरुषों में सामसांत्वन करनेवाला था, पिता की तरह उसका हृदय मृदु था और मृतक में मांत्रिक की तरह दानसाध्य पुरुषों में दान करता था। लोहे में अयस्कांत मणि की तरह वह मायावी पुरुषों में भेद करता था और मानो दुसरा यमराज हो उस तरह दंडनीय पुरुषों को वह दंड भी देता था।

एक बार कामदेव के मित्र वसंतऋतु आने पर सुमुख राजा क्रीडा करने के लिये उस उद्यान में जाने के लिये चला। वह गजारुढ होकर जा रहा था, उसी समय मार्ग में वीरकुविंद की वनमाला नाम की एक कमललोचना स्त्रि उसे दिखाई दी। उस मनोहर बाला के स्तन पुष्ट और उन्नत थे, भुजलता कमल जैसी कोमल थी, मध्य भाग वज्र की तरह अल्प था, नितंबमंडल नदी के तट की तरह विशाल



श्री मुनिसुवतस्वामि भगवान्
बोटाद तीर्थ, गुजरात

-: सौजन्य दाता :-

बोटाद जैन श्वे. मू. संघ

गाम : भावनगर, गुजरात

था, नाभि नदी की जलध्रमर जैसी गंभीर थी, ऊरुभाग हाथी की सूंड के जैसा था, हाथ पैर नवीन सुवर्ण कमल जैसे आरक्त थे और भुकुटी झुकी हुई थी। उसने बाये हाथ के नितंब पर सुंदर वस्त्र रखा था और दक्षिण में स्तन उपर से लेकर उत्तरीय वस्त्र धारण किया था। ऐसी सुंदर बाला को देखकर सुमुख राजा कामार्त हो गया। तत्काल गजेन्द्र की चाल मंद करवा के मन में सोचने लगा 'अहा ! यह सुंदरी किसी के शाप से स्वर्ग से भ्रष्ट होकर अप्सरा होगी ! या मूर्तिमान वनलक्ष्मी या वसंत शोभा होगी ! या कामदेव से वियोग पायी रति होगी ! या पृथ्वी पर आयी हुई नागकुमारी होगी ! अथवा विधाता ने कुतूहल से यह स्त्रिरत्न बनाया होगा। इस तरह चिंतन करते राजाने हाथी सह यहाँ वहाँ घूमने लगा और मामो किसी की राह देख रहा हो उस तरह आगे नहीं चला, तब 'हे राजा ! सभी सेना आ गई है, फिर भी आप विलंब क्यों कर रहे हो ?' इस तरह भाव की इच्छा को जाननेवाले मंत्री ने राजा से पुछा। मंत्री के ऐसे वचन सुनकर अपने आप के चित्त को जैसे-तैसे स्थिर करके यमुना नदी के तट पर रहे बड़े उद्यान में आया, परंतु उस बाला ने उसके चित्त का हरण कर लिया था। इससे मनोहर मंजरीवाले आम्रवन में नाच रहे नव पल्लवाले अशोक वन में, भ्रमरो के समूह से आकुल-व्याकुल ऐसा बोरसली के खंड में जिसके पत्ते पंख जैसे हैं ऐसे कदली वन में, वसंतलक्ष्मी की कर्णिका जैसी करेण के वन में और दुसरे किसी भी रमणीय स्थान में उसका चित्त जरा भी लग नहीं रहा था, प्रीति उत्पन्न नहीं हो रही थी।

इस तरह राजा के मन को उद्वेग में देखकर सुमति नाम का मंत्री जो राजा के मनोभाव को जानता था, फिर भी अनजान बनकर राजा से पुछा-“हे नाथ ! मन का विकार या शत्रुओं का भय इन दोनों के अलावा राजा के मोह का तीसरा कारण संभव नहीं है। उसमें पराक्रम से जगत को दबानेवाले आपको शत्रु भय होने का संभव ही नहीं है, इसलिये मन में जो कुछ भी विकार होने का कारण हो तो उसे गुप्त रखने योग्य नहीं हो तो मुझे कहने में योग्य है।” राजा बोले-“हे मंत्री ! निष्कपट शक्तिशाली ऐसे आपस से जिन शत्रुओं को वश में किया है। उसमें मेरी यह भुजाएँ तो मात्र साक्षी रूप हैं, तो मैं आपको क्यों नहीं बताऊँ ? सुने, अभी मैं यहाँ आ रहा था तब उस समय मार्ग में सभी स्त्रियों के स्वरूप को लुटनेवाली कोई अंगना मुझे दिखाई दी है, उसने मेरे चित्त को हर लिया है, इससे मैं कामातुर होकर पीडित बना हूँ, इसलिये उसका योग्य उपाय करो” मंत्री बोला-“हे प्रभु ! वह उपाय मेरी जानकारी में है। वह वीरकुंदविंद की वनमाला नाम की स्त्री थी। उस मैं आपको जल्दी से प्राप्त करवा दूंगा। इसलिये अभी परिवार सहित स्वस्थानक पर जाईये” मंत्री के ऐसे वचन सुनकर राजा व्याधिग्रस्त की तरह मन से रहित हो उस तरह शिबिका में बैठकर उस वनमाला का चिंतन करता हुआ वह स्वस्थानक पर गया।

बाद में सुमति मंत्री ने, विचित्र उपाय जानने में पंडिता ऐसी आत्रेयी नाम की अेक परिव्राजिका थी उसे वनमाला के लिये भेजा। आत्रेयी तत्काल वनमाला के घर पहुँची। वनमाला ने वंदन किया उस परिव्राजिका आशिष देकर बोली-“हे वत्स ! हिमश्रुतु में तुम निस्तेज क्यों लग रही हो ? दिन में चंद्रकला की तरह तुम्हारे गाल फिक्के क्यों पड़ गये हैं ? शून्य दृष्टि के कारण मानो कोई चिंता में हो ऐसा लग रहा है ? तुमने बहुत बार तुम्हारा दुःख मुझ से कहा है, फिर भी आज क्यों नहीं कह रही हो

?” यह सुनकर वनमाला निःश्वास छोड़कर हाथ जोड़कर बोली-“भद्रे ! स्वार्थ प्राप्त करना दुर्लभ है ऐसी मेरी कथा क्या कहूँ ? अेक गधी कहूँ और उच्चैश्रवा अश्वराज कहूँ ! शृगाल की युवती कहूँ और पक्षीराज गरुड कहूँ ? उस तरह मैं कुंविद जाति की स्त्रि कहूँ और वैसा प्राणवल्लभ कहूँ ? कभी उपर कहे योग का कोई दैवयोग भी होता है, परंतु हीन जातिवाली ऐसी मेरे साथ उनका संग स्वप्न मे भी असंभवित है” आत्रेय बोली-मैं तुम्हारे अर्थ को संपादन करके दे दूँ । मंत्रतंत्र जाननेवाले और पुण्यवंत के लिये असाध्य क्या है ? वनमाला बोली-“हे माते ! आज मार्ग मे हाथी पर बैठकर जाते और मानो प्रत्यक्ष कामदेव हो ऐसे दिखाई देते उस राजा को मैंने देखा है, चंदन के प्रवाह जैसे उनके दर्शन से भी मेरे देह मे तीव्र कामज्वर प्रगट हुआ है । हे भगवती ! तक्षक नाग के सिर के मणि की तरह मेरे कामज्वर का हरण करनेवाले का समागम मेरे जैसी रंक स्त्रि के लिये दुर्लभ है, तो उसमे आप क्या कर सकती हैं ?” आत्रेयी बोली-“वत्स ! मैं मंत्रबल से देव, दैत्य, चंद्र, सूर्य और विद्याधर को भी आकर्षित करती हूँ तो वह राजा मेरे किस हिसाब मे है ? हे अनघे ! मैं प्रातःकाल मे राजा के साथ तुम्हारा योग करवाऊंगी । यदि यह नहीं हुआ तो मैं जाज्वल्यमान अग्नि मे प्रवेश कर लूंगी, इसलिये तुम धैर्य रखो” इस तरह वनमाला को आश्वासन देकर परिव्राजिका वहाँ से चल निकली और राजा के लिये प्रायःसिद्ध किया हुआ अर्थ उसने सुमति मंत्री से कहा । मंत्री ने राजा से बात कहकर आश्वासन दिया । ‘बहुत ज्यादा प्यारी स्त्रि प्राप्त करने की प्रत्याशा भी सुख के लिये होती है ।’ प्रातःकाल मे आत्रेयी ने जाकर वनमाला से कहा कि ‘मैंने सुमुख राजा को तुम्हारे प्रेम मे मैंने जोड दिया है, इसलिये हे वत्स ! उठो अभी राजा के राजमंदिर जाते हैं । वहाँ जाकर तुम रानी की तरह सुख से राजा के साथ क्रीडा करो ।’ वनमाला तुरंत ही आत्रेयी के साथ राजगृह मे गई । राजाने अनुराग से उसे अंतःपुर मे रख लिया और उसे क्रीडापन, नदी, क्रीडा वापिका मे और क्रीडा वगैरेह मे विहार करता हुआ सुमुख राजा उसके साथ विषयसुख अनुभव करने लगा ।

अब वह वीरकुविंद वनमाला के वियोग से भूत लगा हो उस तरह, पागल हो गया या उन्मत की तरह वह चारो ओर घूमने लगा । उसके सभी अंग धुलि से धूसर हो गये थे, जीर्ण वस्त्र के टूकडे उसने पहने थे, सिर के बाल सब अस्त-व्यस्त हो गये थे बाल और नाखून लंबे हो गये थे और शोर मचाते बच्चे उसके पीछे दौड रहे थे उसे घेर लेते थे । “हे वनमाला ! हे वनमाला ! तुम कहाँ हो ? मुझे दर्शन दो । अरे प्रिये ! तुमने इस निरपराधी का येकायक क्यों त्याग किया ? अथवा मजाक मे मेरा त्याग किया है तो अब लंबे समय तक ऐसा करना उचित नहीं है, अथवा तुम्हारे रूप से लुब्ध हुए कोई राक्षस, यक्ष या विद्याधर ने तुम्हारा हरण किया होगा ? अरे ! इस निर्भागी ऐसे मुझको धिक्कार है !” इस तरह बारंबार नगर मे चौराहे-चौराहे पर नुकड-नुकड पर गलियो मे घूमकर वह वीरकुविंद गरीब की तरह समय व्यतीत करने लगा । एक बार बंदर की तरह बच्चों से घिरा हुआ उस तरह बोलते-बोलते वह राजा के महल गृह आंगन मे आया । वहाँ निर्माल्य माल्य को धारण करना पिशाच से त्रस्त ऐसा वह वीरकुविंद वश राजलोकत्र एकत्रित हुए लोगो से घिरा हुआ था । बडे तालियो के नाद से बडे कोलाहल के साथ उसके पीछे लोगो को कोलाहल राजा सुमुख को सुनायी दिया, इसलिये यह क्या है ? ऐसी जिज्ञासा से

राजा वनमाला के साथ उसे देखने अपने आंगन में आया। विकृति भरी जिसकी आकृति हो गई है ऐसा मलिन शून्य मनवाला हो गया हुआ, लोगो द्वारा तिरस्कृत, धूल से भरा हुआ और 'हे वनमाला ! हे वनमाला ! तुम कहाँ गई हो ? इस तरह बारंबार बोलता हुआ उसे देखकर राजा सुमुख तथा वनमाला सोचने लगे- "अहा ! निर्दय चांडालो की तरह हम दो प्रेमियों ने यह बड़ा निर्दयी काम किया है। इस विश्वासु गरीब को हमने ठग लिया है। इसके जैसा दूसरा कोई भी उत्कृष्ट पाप नहीं है और सभी पापीयो में भी हम उत्कृष्ट हैं। विश्वासघाती पुरुषों से भी बढ़कर है यह जिन्दा फिर भी मरे हुए गरीब आदमी का परेशान कर रहे हैं। अपने विषय लपटपन के लिये हमें बारंबार धिक्कार है ! इस तीव्र पापकर्म से अविवेकी में शिरोमणि ऐसे हमें जरूर नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। उन महात्माओं को धन्य है जो सर्वदा जितेन्द्रिय होकर परिणाम में दुःख का कारण ऐसा विषय सुख छोड़ दिया है। जो अहोरात्र जिनधर्म को संभालते हैं, आचरण करते हैं और विश्वोपकार करते हैं वे विवेकी वंदना करने योग्य हैं" इस तरह अपनी निंदा करते हुए और धर्मिष्ठ जीवों की प्रशंसा करते वे सुमुख राजा और वनमाला के ऊपर आकाश में से अचानक बिजली उन दोनों पर गिर पड़ी और वे दोनों तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुए।

परस्पर स्नेह के परिणाम से और शुभ ध्यान से हुए ध्यान से मृत्यु पाकर वे दोनों हरिवर्ष क्षेत्र में जुगली (जुडवे) उत्पन्न हुए। मातापिता ने हरि और हरिणी ऐसे उनके नाम रखे। पूर्व जन्म की तरह यहाँ भी वे पति-पत्नी की तरह रहने लगे। इस प्रकार के कल्पवृक्षों से इच्छित अर्थ संपादन करते-करते वे देवताओं की तरह रहने लगे।

राजा रानी के विद्युत्पात से मृत्यु पाये यह देखकर वीरकुविंद ने महा दुस्तप ऐसा बालतप आचरण किया। मृत्यु पाकर सौधर्म कल्प में वह किल्बिषिक (मलिन) देवता हुआ। वहाँ अवधिज्ञान द्वारा उसने अपने पूर्व जन्म और उन हरिहरणी नाम के जुगली (जुडवा) को देखा। उनके देखते ही उसने नेत्र रोष से लाल हो गये और आकृति भ्रूकुटि के भंग से भयंकर हो गयी। बाद में यमराज की तरह संहार करने की इच्छा रखता हो उस तरह वह हरिवर्ष क्षेत्र में आया। उसने सोचा की "यह दोनों स्त्री पुरुष मेरे वध्य हैं, लेकिन यदि इन्हें यहाँ मारुंगा तो इस क्षेत्र के प्रभाव से वे अवश्य स्वर्ग में जायेंगे। इस स्थान पर अकाल मृत्यु हो जाने से भी दुर्गति देता नहीं है, इसलिये मेरे पूर्व जन्म के द्वेषी इन दोनों को दूसरे जगह पर ले जाऊँ।" ऐसा निश्चय करके वह देव कल्पवृक्ष के साथ उन्हें वहाँ से उठाकर इस भरतक्षेत्र के अंदर चंपापुरी में लाया। उस समय उस नगर में इक्ष्वाकुवंश का चंद्रकीर्ति नाम का राजा अपुत्र मरण पाया था, इससे योगी जिस तरह आत्मा को शोधते हैं, उस तरह राजा के प्रधान राज्य लायक किसी पुरुष को चारों ओर ढूँढ़ रहे थे। उस समय देव समृद्धि से सभी लोकों को विस्मय डालता मानो तेज का पुंज हो ऐसा वह देव आकाश में रहकर बोला- "राज्य के लिये चिंता करनेवाले प्रधानों और सामंत ! तुम्हारा राजा अपुत्र मरण पाया हुआ है, इससे आप किसी राजा के लिये इच्छा कर रहे हो, तो आपके पुण्य से प्रेरित मैं अभी हरि नाम के एक जुडवाओं को हरिवर्ष क्षेत्र में से यहाँ लाया हूँ यह हिरनी नाम की उसकी सहजा पत्नी है और उन्हें आहार करने के लिये कल्पवृक्ष लाया हूँ, यह

श्री वत्स, मत्स्य, कलश, वज्र और अंकुशादिक लांछनवाला और कमल के जैसे लोचन है ऐसा यह हरि आज से आपका राजा होगा । इन जुडवों को आप कल्पद्रुम के फल के साथ पशुपक्षी के मांस और मद्य को आहार देना” उसके यह वचन कबुल करके मंत्रीयो ने उनको प्रणाम करके दोनो जुडवाओ को रथ मे बैठाकर राजमंदिर ले आये । बाद मे सभी सामंत और मंत्री इकठ्ठे होकर ब्राह्मण, भाट और गंधर्वों के गीत के साथ हरि का राज्याभिषेक किया । उन देवताओ ने अपनी शक्ति से उनकी आयु कम की और देह की भी सौ धनुष्य मात्र ऊंचाई रखी । बाद मे वे कृतार्थ होकर अंतर्धान हो गया । शीतलनाथ प्रभु के तीर्थ मे वह हरिराजा ने समुद्र जैसी कटिमेखला है ऐसी पृथ्वी को साध लिया और लक्ष्मी के जैसी अनेक राजाओ की कन्याओ से उन्होंने विवाह किया ।

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उस हरि ने हिरणी से विशाल सीनेवाला पृथ्वीपति नाम का अेक पुत्र हुआ । अनेक प्रकार के पापकर्मों का उपार्जन करके हरि ने हिरणी के साथ मृत्यु पाकर नरक मे गये । उसके बाद उसका पुत्र पृथ्वीपति राजा हुआ । चिरकाल राज्य करके हरि महागिरि नाम का पुत्र को राज्य पर बैठाकर तपस्या करके पृथ्वीपति स्वर्ग मे गया । महागिरिराजा राज्य करके अनुक्रम मे हिमगिरि नाम के पुत्र को राज्य सौंप कर तपस्या करके अपने पुत्र ज्येष्ठ पुत्र वसुगिरि का राज्याभिषेक करके दीक्षा लेकर मोक्ष स्थान प्राप्त किया । वसुगिरि भी अपने स्थान पर गिरि नाम के पुत्र को बैठाकर दीक्षा लेकर कर्म समाप्त करके शिवपद पाया । गिरिराजा भी मित्रगिरि नाम के पुत्र को राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर स्वर्ग मे गया । इस तरह अनुक्रम मे हरिवंश मे अनेक राजा हुऐ, उसमे कितने तपस्या करके मोक्ष मे गये कितने स्वर्ग मे गये ।

इस भरतक्षेत्र के बारे मे मगध देश का मंडन और पृथ्वी को स्वस्तिक रुप राजगृही नाम का नगर है । उसमे प्रत्येक घर मे युवा-स्त्रि पुरुष रतिक्रीडा करते हुऐ टूट हुऐ मुक्तहार के मोतियों को प्रातःकाल मे दासीयां बुहार लेती थी । वहाँ घर-घर अश्व, घर-घर दयादान, घर-घर चित्रशाला और घर-घर रंगशालाएँ थी । हंसो को सरोवर की तरह और भ्रमर को पुष्पमालाओ की तरह वह नगर महामुनियों के यिले भी सदा रहने योग्य था उस नगर मे हरिवंश मे मुक्तामणि जैसा निर्मल और उग्र तेज द्वारा सूर्य समान सुमित्र नाम का राजा हुआ । वह राजा दुर्विनीत को शिक्षा करनेवाला, जयलक्ष्मी का वरण करनेवाला, अपने वेश को उन्नत करनेवाला और सभी राजाओ को अपने आप मे रखनेवाला था । मानो नौवा दिग्गज हो, आठवा कुलगिरि हो अथवा दुसरा शेषनाग हो, उस तरह वह पृथ्वी को धारण करता था । जिनागम मे जिस तरह सर्वज्ञेय वस्तु दिखती है उस तरह उसमे औदार्य, धैर्य और गांभीर्य प्रमुख सभी गुण दिखाई देते थे । हरि को पद्मदेवी की तरह उसे पद्मावती नाम की पृथ्वी को पवित्र करनेवाली रानी थी । चंद्ररेखा से आकाशलक्ष्मी की तरह सर्व जगत को नेत्रानंद देनेवाली वह रानी से राजलक्ष्मी शोभा देती थी । सुगंधी चूर्ण से वस्त्र की तरह अपने शीलादिक गुण के सुगंध से उसने राजा का चित्त सुवासित कर लिया था । आकाश मे तारांगण की तरह उसके गुणज्ञान की संख्या करने मे बृहस्पति भी समर्थ नहीं है अनुराग से जंगमपन को प्राप्त हुई मानो पृथ्वी हो उस तरह वह-रानी के साथ सुमित्र राजा उत्तम भोग भोग रहा था ।

यहाँ प्राणतकल्प में **सुरश्रेष्ठ राजा का जीव** जो देव हो गया था । उसने सुखसागर में मग्न अपना आयुष्य पूर्ण किया । श्रावण मास की पूर्णिमा के चंद्र श्रवण नक्षत्र में आने पर वहाँ से च्यवन करके उस पद्मावती की कुक्षि में अवतरित हुआ । उस समय सुख से सो रही पद्मावती देवी ने रात्रि के शेष भाग में तीर्थकर जन्म के पूर्व सूचित चौदह महास्वप्न देखें । अनुक्रम में ज्येष्ठ मास की कृष्ण अष्टमी को श्रवणनक्षत्र में कूर्म के लाँछनवाला और तमाल के जैसा श्याम कांतिवाले पुत्र को उसने जन्म दिया । दिक्कुमारीयों ने आकर भक्ति से सूतिकर्म किया । बाद में इंद्र आकर उस बीसवे तीर्थकर को मेरुगिरि पर ले गये । प्रथम शक्रेंद्र के उत्संग में बैठे प्रभु की तिरसठ इंद्रोने पवित्र तीर्थजल द्वारा जन्माभिषेक किया । बाद में ईशानेंद्र के उत्संग में प्रभु को बैठाकर स्नात्रपूजादि करके शक्रेंद्र ने इस प्रकार से स्तुति करने लगे-

“हे प्रभु ! भ्रमररूपी हमने आज यह अवसर्पिणी कालरूपी सरोवर में कमल जैसे आपको अच्छे भाग्य से बहुत समय बाद प्राप्त किया है । हे देव ! अब आपके स्तोत्र से ध्यान से और पूजादिक से हमारी वाणी, मन और शरीर से कल्याणकारी फल प्राप्त किया है । हे नाथ ! ज्यो-ज्यो आपके बारे में मेरी भक्ति विशेष-विशेष होती है, त्यो-त्यो मेरे पूर्व कर्म लघु हो रहे हैं । हे स्वामी ! महा पुण्य के कारण ऐसे आपके दर्शन यदि हमें नहीं हुए होते तो हम जो अविरत हैं उनका जन्म निरर्थक हो जाता । हे प्रभु ! तुम्हारे अंग के स्पर्श से, आपकी स्तुति करने से, आपके निर्माल्य सूँघने से, आपके दर्शन और आपके गुणगान सुनने से हमारी पाँचो इंद्रिया कृतार्थ हुई हैं । वर्षाऋतु के मेघ की तरह नेत्र को आनंद देनेवाली और नीलरत्न जैसी कांतिवाली आपके द्वारा यह मेरुगिरि शिखर शोभा दे रहा है । आप तो सिर्फ भारतवर्ष में रहे हो फिर भी आप सभी जगह पर व्याप्त हैं ऐसे दिखाई दे रहे हैं । क्योंकि सभी स्थानको पर रहे हुए प्राणीयों की भव की पीडा का भी आप नाश करते हैं । यहाँ से च्यवनकाल में भी आपके चरणों को स्मरण हो । क्योंकि पूर्व जन्म के संस्कार से भवांतर में भी उसका स्मरण मुझे होता रहे”

इस तरह बीसवे अर्हत् की स्तुति करके उन्हें लेकर इंद्र वापस पद्मावती देवी के पास जैसे थे वैसे ही रख दिया । प्रातःकाल में सुमित्र राजा ने प्रभु का जन्मोत्सव किया और कारागृह से अपराधीयो का मोक्ष करके द्रव्यदान देकर उन्हें प्रसन्न किया । जब प्रभु गर्भ में थे तब उनकी माता मुनि की तरह सुव्रता (अच्छे व्रतवाले) हुए थे, उससे पिता ने उनका **मुनिसुव्रत** ऐसा नाम रखा । त्रिविध ज्ञान द्वारा जिनका आत्मा पवित्र है ऐसे प्रभु लोगो में बालक्रीडा से विधविध लीला करते हुए बड़े हुए । यौवन प्राप्त होते ही वे बीस धनुष्य की कायावाले हो गये । पिता ने उन्हें **प्रभावती** वगैरेह राजपुत्रीयों के साथ विवाह करवाया । मुनिसुव्रत स्वामी को प्रभावती देवी से, पूर्व दिशा के चंद्र की भांति सुव्रत नामका एक कुमार हुआ । साढ़े सात हजार वर्ष व्यतीत होने पर प्रभु को पिताजी ने दिया हुआ राज्यभार को ग्रहण किया । पृथ्वी का पालन करते पंद्रह हजार वर्ष निर्गमन किया । तब प्रभु को जानने में आया की अब भोगावली कर्म का क्षय हुआ है । तब लोकांतिक देवताओं ने आकर विनंती की हे स्वामी तीर्थ प्रवृत्त करें । तब प्रभु ने वार्षिक दान देने का प्रारंभ किया । क्षत्रिय व्रत रूप धन को धारण करनेवाले और न्यायरूप कमल में भ्रमर समान अपना पुत्र सुव्रत को राज्य दिया । फिर देवताओं ने और सुव्रत राजा ने निजका दिक्षोत्सव किया है ऐसे

प्रभु एक हजार आदमीओंने वहन करने योग्य ऐसी अपराजिता नामकी शिबिका पर आरुढ़ होकर नीलगुहा नाम के उद्यान में आये । वह उद्यान में नवीन कलीओं के खिलाने से मानो दांतवाला हो और नवपलवोके दिखावासे जीभ नीकालते हो वैसे आम्रवृक्षों से शोभ रहा था । इधर उधर हवा के जोके से जीर्ण पान के मर्मर शब्द से आकाश में जाते हुए वसित संपति को बुलाता था । दुवार फुल की शोभा को देख न सकते हो वैसे मदरहित हुए हो लरके फुलो उसमें थे और खिलते दमनक के फुलों की सुगंध से वह समृद्धिमान लगते थे । वैसे उद्यान में जाकर फाल्गुन मास की सुदद्वादसी को चन्द्र श्रवण नक्षत्र में आया तब पीछले पहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु ने छठतप करके दीक्षा ग्रहण की । तिसरे दिन राजगृही नगरी में ब्रह्मदत्त राजा के घर पर प्रभु ने क्षीरान्न सपारणा किया । देवताओं वहां वसुधारादि पांच दिव्य प्रगट किये । ब्रह्मदत्त राजा ने प्रभु के चरण के स्थान पर एक रत्नपीठ बनाई । फिर निसंग, ममतारहित और सर्व परिसर्हों को सहन करते प्रभु अगियार मास तक विहार किया । बाद में फिर से विहार करते नीलगुहा उद्यान में आये । वहां चंपक वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके रहे । फाल्गुन मास की वद द्वादशी को चन्द्र श्रवण नक्षत्र में आया तब घातीकर्म का क्षय होने से प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । इन्द्रादिक देवता ने आकर दोसो चालीस धनुष्य उंचा अशोकवृक्षवाला समवसरण रचा । उसमें प्रवेश कर चैत्य वृक्ष को प्रदक्षिणा देकर तीर्थाय नमः ऐसा बोलकर प्रभु सिंहासन पर बैठे । व्यंतर देवता ने दूसरी तीन दिशाओं में प्रभु के तीन प्रतिबिंब बनाये । चतुर्विध संघ योग्य स्थान पर बैठा । प्रभु को समवसर्या जानकर सुव्रत राजा वहां आया और प्रभु को वंदना करके इन्द्र के पीछे बैठे । बाद में इन्द्र और सुव्रत राजा ने प्रभु को हाथ जोड़कर भक्तिगर्भित स्तुति इस तरह की -

हे जगत्पति आपके गुणों का वर्णन करने के लिये हमारे जैसे तैयार हुए हैं वह आपके चरणदर्शन वा ही भाव है । हे प्रभु ! देशना समय में शास्त्ररूप वत्स को प्रसव करनेवाली आपकी वाणीरूपी गाय को हम वंदन करते हैं । जैसे जीकने पदार्थ के योग से पात्र भी चीकना होता है वैसे आपके गुणों को ग्रहण करने से मानवी भी तुरत गुणी होता है । जो अन्य कर्मों का त्याग करके आपकी देशना सुनते हैं वह थोड़े समय में पूर्व कर्मों का भी त्याग करते हैं । हे देव, आपका नामरूप रक्षामंत्र से संवर्मित (कवच से) हुवा यह जगत को अब पापरूप पिशाच परेशान कर सकेगा नहि । हे नाथ, विश्व को अभय देनेवाले ऐसे आप विद्यमान हैं अब किसी से भी डर नहीं रहे हैं लेकिन जब हम हमारे स्थान में जायेंगे तब आपका वियोग होगा । उसीका हमें डर है । हे स्वामी, आपके पास शाश्वत वैर से अंध हुए बहरिंग शत्रु तो मात्र शांत होते हैं और आंतरिक शत्रु जो काम क्रोधादि वो भी शम जाते हैं । हे प्रभु आपके नाम की स्मृति जो आलोक और परलोक के वांछित मनोरथ को देने में कामधेनु समान है वह में जहां भी रहूं तो भी वहां मुझे मिलता रहे ।

इस तरह की इन्द्र और सुव्रत राजा ने स्तुति करके बैठ गये बाद में प्रभु ने सर्व जीवों को बोध देने के लिये धर्म देशना दी ।

क्षार समुद्र में से रत्न के जैसे वैसे यह असंसार में से उत्तम साररूप धर्म को लेना चाहिए । वह धर्म, संयम, सत्यवचन, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, निष्कंचनता, तप, क्षमा, मृदुता, सरलता और मुक्ति यह

दस प्रकार का है । अपने शरीर में भी इच्छाहित और ममतारहित, नमस्कार करनेवाले पर और अपकार करनेवाले प्राणी के उपर निरंतर समदृष्टि रखनेवाले, नित्य उपसर्ग तथा परिषद् को सहन करने में समर्थ नित्य मैत्र्यादिक भावनायुक्त हृदयवाला, क्षमावान, विनयी, इंद्रियो का दमन करनेवाला, गुरुश्रासन में श्रद्धालु और जाति वगैरेह गुणों से सम्पन्न ऐसा प्राणी यतिधर्म के लिये योग्यतावाला है । समकित मूल पाच अपुत्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस तरह बारा प्रकार से गृहस्थ धर्म है ।

(१) न्याय से द्रव्योपार्जन करनेवाला, (२) शिष्टाचार की प्रशंसा करनेवाला, (३) समान कुलशीलवान और दुसरे गोत्रवाले से संबंध जोड़नेवाले, (४) पाप से डरनेवाला, (५) प्रसिद्ध देशाचार आचरण करनेवाला, (६) कभी भी अवर्णनाद नहीं बोलने वाला, (७) अतिप्रकाश या अति गुप्त नहीं ऐसे पड़ोसी और अनेक निकलनेवाले मार्ग के घर में निवास करनेवाले, (८) सदाचारी पुरुषों के साथ संग रहनेवाले, (९) मातापिता की पूजा करनेवाले, (१०) उपद्रववाले स्थानों पर रहनेवाले, (११) निंदित कार्य में नहीं प्रवर्तनेवाले, (१२) आय के अनुसार वय करनेवाले, (१३) द्रव्य की स्थिति के अनुसार रहनेवाले, (१४) आठ प्रकार के बुद्धिगुण युक्त, (१५) हमेशा धर्म संभालनेवाला सुननेवाले (१६) अजीर्ण में भोजन का त्याग करनेवाला, (१७) पाचन शक्ति अनुसार समयानुसार भोजन करनेवाला, (१८) एक दुसरे को बाध्य न करे ऐसे (धर्म, अर्थ, काम) को साध्य करनेवाले, (१९) अतिथि का, साधु, दीन पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करनेवाला, (२०) कभी भी दुराग्रह नहीं करनेवाला, (२१) गुण के उपर पक्षपात रखनेवाला, (२२) देशकाल के अनुचित आचरण का त्याग करनेवाला, (२३) अपने बलाबल को जाननेवाला, (२४) सदाचारी और ज्ञानवृद्ध की पूजा करनेवाला, (२५) पौष्य वर्ग को पोषण करनेवाला, (२६) दीर्घदर्शी, (२७) विशेष जाननेवाला, (२८) कृतज्ञ, (२९) लोकप्रिय, (३०) लज्जावान, (३१) दयालु, (३२) सौम्य, (३३) परोपकार में तत्पर, (३४) अंतरंग छै शत्रुओं के वर्ग का परिहार करनेवाला और (३५) इंद्रियों के वश में रखनेवाला-ऐसे पुरुष गृहस्थ धर्म के योग्य है (अर्थात् यह मार्गानुसारी के ३५ गुण को धारण करनेवाला प्राणी गृहधर्म याने समकित मूल बारा व्रत ग्रहण करने के योग्य है) इस संसार में मनुष्य जन्म की सफलता की इच्छा रखनेवाला पुरुष यदि यतिधर्म लेने के लिये अशक्त है तो उसे सदा श्रावक धर्म का आचरण करना चाहिए ।”

इस तरह प्रभु की देशना सुनकर बहुत से लोगो ने दीक्षा ले ली और कुछ लोग श्रावक बने । अर्हत् की देशना सफल होती है । मुनिसुव्रतप्रभु के इंद्रादिक अठाहर गणधर हुए । प्रभु ने देशना से विराम लिया । तब इंद्र गणधर ने देशना दी । उनकी देशना समाप्त होने पर प्रभु को वंदना करके इंद्र और सुव्रत राजा वगैरेह सभी जन अपने स्थानों पर गये । उस प्रभु के तीर्थ में तीन नेत्रोवाला, चार मुखवाला, श्वेतवर्णी, जटाधारी, वृषभ पर बैठनेवाला, चार दक्षिण भुजा में बिजोरु, गदा, बाण तथा शक्ति और चार वाम भुजाओं में नकुल, अक्षसूत्र, धनुष्य और फरसा धारण करनेवाला वरुण नाम का यक्ष शासनदेवता हुआ, उसी तरह गौरवर्णी, भद्रासनपर बैठनेवाली, दो दक्षिण भुजा में वरद और अक्षसूत्र और दो वाम भुजा में बिजोरु और त्रिशूल धारण करनेवाली नरदत्ता नाम की शासन देवी बनी । ये दोनों मुनिसुव्रतस्वामी के तीर्थ में शासन देवता कहलायें ।

एक बार वे दोनो शासनदेवता जिनके सान्निध्य मे रहे हुऐ है ऐसे प्रभु पृथ्वी पर विहार करते-करते भृगुकच्छ (भरुच) नगर मे पधारे । उस नगर का राजा जितशत्रु जातिवंत अश्व पर चढकर प्रभु को वंदन करने आया और देशना सुनने बैठा । उस समय जितशत्रु राजा का अश्व था उसने भी रोमांचित होकर कान ऊंचे उठाकर प्रभु की देशना सुनने लगा । देशना के अंत मे गणधर ने प्रभु से पुछा की- 'स्वामी ! समवसरण मे अभी कौन धर्म पाया है ? प्रभु बोले- इस समवसरण मे जितशत्रु राजा के जातिवंत अश्व के अलावा दुसरा कोई भी धर्म पाया नहीं है' यह सुनकर जितशत्रु राजा ने विस्मय से पुछा- 'हे विश्वनाथ ! यह अश्व कौन है कि जिसे धर्म प्राप्त हुआ है ?' तब प्रभु ने निम्नलिखित कथा सुनायी-

“**पद्मिनीखंड** नगर के पूर्व में **जिनधर्म** नाम का एक श्रेष्ठी श्रावक था । सर्व नरो मे अग्रसर सागरदत्त नाम का उसका एक मित्र था । वह भद्रिकपन से प्रतिदिन उसके साथ जिनचैत्यो मे आता था । एक बार साधुओ के पास उसने पुछा कि 'जो अर्हत् प्रभु के बिंब बनवाता है वह जन्मांतर मे संसार का मंथन कर सके ऐसा श्रेष्ठ धर्म पाता है' यह सुनकर सागरदत्त ने एक सुवर्ण का अर्हत् प्रतिबिंब बनवाकर बडी समृद्धि से साधुओं के पास से उसकी प्रतिष्ठा करवाई । सागरदत्त पहले मिथ्यात्त्वी था, उससे उसने उस नगर के बाहर पूर्व मे एक बडा शिवालय बनवाया था । उत्तरायण का पर्व आने पर सागरदत्त वहाँ गया । वहाँ शिवपूजक घृतपूजा के लिये प्रथम संचय करके रखे घी के घडे जल्दी से खींच रहे थे । बहुत दिनों के बाद पडे हुऐ वे घडों के नीचे पिंडाकार मे बहुत दीमक चिपक गई थी । उन घडो के लेने से वे मार्ग मे पडी थी । इधर-उधर चलते पूजको से वह दीमक कुचली जा रही थी उसे देखकर सागरदत्त ने दया से उसे वस्त्र से दूर करने लगा । उस समय 'अरे ! क्या ये नये सफेद यतियों ने तुम्हे यह नई शिक्षा दि है ? ऐसा बोलते हुऐ अक पुजारी ने पैर का बल से प्रहार करके उन सबको सभी दीमक को विशेष कुचल डाला । सागरदत्त शेठने नम्र होकर उसे शिक्षा हो ऐसा मानकर पूजारीयों के मुख्य आचार्य के मुख की ओर देखा । आचार्य ने भी उस पाप की उपेक्षा की, तब सागरदत्त ने सोचा कि इस निर्दयी पापी को धिक्कार है । यह दारुण हृदयवाले पुरुष जो अपनी आत्मा को और यजमान को दुर्गति मे डालते है उन्हें गुरुबुद्धि से क्यों पूजा जाये ? ऐसा विचार करते हुऐ भी उसके आग्रह से उसने शिवपूजन किया । परिणाम मे सागरदत्त शेठ समकित को प्राप्त न करने से, दानशील का स्वभाव न होने से और बडी मेहनत से उपार्जित किये धन की रक्षा के लिये अकनिष्ठ धारण करके मृत्यु पाकर यह जातिवंत अश्व हुआ है और उसे बोध करवाने के लिये ही मैं यहाँ आया हूँ । पूर्व जन्म मे उसने जिन प्रतिमा बनवाई थी, उसके प्रभाव से हमारा धर्मोपदेश सुनकर वह क्षणभर मे प्रतिबोध-धर्म पाया है” भगवंत के ऐसे वचनी से लोगो ने बारंबार स्तुति किये हुऐ उस अश्व को राजा ने धन्यवाद देकर स्वेच्छाचारी किया (छोड दिया) तब से भरुच शहर **अश्वावबोध** नाम का पवित्र तीर्थ के रूप मे लोगो मे प्रसिद्ध हुआ है ।

जगत के उपकारी मुनिसुव्रत प्रभु देशना समाप्त करके, वहाँ से विहार करके अन्यदा **हस्तिनापुर** नगर मे पधारे । उस नगर मे जितशत्रु नाम का राजा था और एक सहस्र वणिक का स्वामी **कार्तिक श्रेष्ठी** नाम का श्रावक था । अकेदा कषे हुऐ वस्त्र धारण करनेवाले और भागवत व्रत धारण करनेवाला अक सन्यासी उस नगर मे आया । महिनो के महिने उपवास करके पारणा करता था, इससे उसे लोग

बहुत पूजते थे। सभी नगरजनो ने अति भक्ति से पारणा-पारणा पर उसे निमंत्रित करते थे लेकिन समकितरूप अेक धन को धारण करनेवाले कार्तिक श्रावक ने उसे निमंत्रण नहीं दिया था इससे वह सन्यासी भूत की तरह निरंतर कार्तिक शोठ के छिद्र देखने में तत्पर रहता था।

एक बार जितशत्रु राजा ने उसे पारणा के लिये निमंत्रण दिया। तब सन्यासी ने राजा से कहा- हे राजन् ! जो कार्तिक शोठ मुझे भोजन परोसेंगे तो मैं आपके घर पारणा करूंगा' राजा ने वह बात स्वीकार करके कार्तिक शोठ के घर गये और शोठ से मांग कि की 'हे निर्दोष शोठ ! आपको मेरे घर आकर भगवान परिव्राजक को परोसना है' शोठ ने कहा- 'हे स्वामी ! ऐसे पारखंडी परिव्राजको को परोसना वह हमारे युक्त नहीं है, तथापि वह कार्य आपकी आज्ञा से मैं करूंगा' ऐसा कहकर उसने ऐसा करने के लिये स्वीकार कर लिया। बाद में शोठ सोचने लगे की 'यदि मैंने शुरु से ही दीक्षा ले ली होती तो यह कार्य मुझे करना नहीं पडता' ऐसा खेद करते हुऐ कार्तिक शोठ सही समय पर राजगृह में आये। जब कार्तिकशोठ ने परोसना शुरु किया, तब परिव्राजक बारंबार तर्जनी उंगली दिखाकर उसका तिरस्कार करने लगा। कार्तिकशोठ ने इच्छा बिना उसे परोसने के बाद, वैराग्यभाव से भगवंत के वहाँ पधारे है ऐसा समवसर्या जानकर एक हजार वणिको के साथ भगवंत के पास आकर दीक्षा ली। द्वादशांगी को धारण करके बारा वर्ष तक व्रत पालन करके मृत्यु को प्राप्त होकर कार्तिकशोठ सौधर्म कल्प में इंद्र हुऐ। वह परिव्राजक मृत्यु पाकर आभियोगिक कर्म द्वारा वह इंद्र का वाहन याने औरावत नाम का हाथी हुआ। पूर्व बैर से इंद्र को देखकर भागने लगा। इंद्रने बलात्कार से उसे पकड कर उसके उपर आरुढ हो गये, क्योंकि उसके स्वामी थे। उस औरावत ने दो मस्तक किये तब इंद्र ने भी दो रूप किये। बाद में वहाँ से उसे पलायन होते हुऐ देखकर इंद्र ने वज्र से प्रहार करके उस पूर्व जन्म के बैरी को तत्काल में वश कर लिया।

केवलज्ञान हो जाने पर विहार करते मुनिसुव्रत स्वामी को अेकादश मास उना साढे सात हजार वर्ष बित गये। उस विहार में तीस हजार महात्मा साधु, पचास हजार तपस्वी साध्वीयां, पांचसौ महाबुद्धिमान चौद पूर्वधारी, अष्टारह सौ अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ मनःपर्ययज्ञानी, अष्टारह सौ केवलज्ञानी, दो हजार वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार दो सौ वादलब्धिवाले, एक लाख बहत्तर हजार श्रावक, तीन लाख पचास हजार श्राविकाएँ-इतना परिवार मुनिसुव्रत स्वामी का हुआ। अनुक्रम में निर्वाण काल प्राप्त हुआ तब श्री मुनिसुव्रत स्वामी संमेतशिखर पर पधारे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। अेक मास के अंत में ज्येष्ठ मास की कृष्ण नवमी के श्रवण नक्षत्र में उन मुनियों के साथ प्रभु शाश्वतपद (मोक्ष) को प्राप्त हुऐं। साढे सात हजार वर्ष कुमारवस्था में उतने ही वर्ष व्रत में और पंद्रह हजार वर्ष राज्य में ऐसे सब मिलकर तीस हजार वर्ष का आयुष्य श्री मुनिसुव्रत प्रभु का पूर्ण हुआ। श्री मल्लिनाथ स्वामी का निर्वाण हुआ। मल्लिनाथ प्रभु मोक्ष में गये बाद में चोपन लाख वर्ष जाने के बाद मुनि सुव्रत प्रभु मोक्ष में गये। एक हजार मुनियों के साथ प्रभु जब मोक्ष में गये तब इंद्रोने देवताओ सहित संभ्रम से आकर उनका विधिपूर्वक बडा मोक्षमहिमा किया।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये सप्तम पर्वणि

मुनिसुव्रतस्वामीचरितवर्णनो नामः सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टम सर्ग

श्री महापद्म चक्रवर्ती चरित्र

श्री मुनिसुव्रत स्वामी विचर रहे थे, उस समय मे महापद्म नाम का चक्रवर्ती हुआ है उनका चरित्र अब कह रहे हैं । इस जंबूद्विप के पूर्व विदेह की भूमि के आभूषणभूत सुकच्छ नाम का विजय मे श्रीनगर नाम का एक शहर है । उस नगर मे शत्रुराजाओं के यशरुप हंसो का नाश करने में मेघ समान और राज्यपालन करने मे तत्पर प्रजापाल नाम का एक राजा था । एक बार आक्समिक विद्युत्पात को देखकर वैराग्य प्राप्त उस राजा ने समाधिगुप्त नाम के मुनि के पास से दीक्षा ली । चिरकाल तक खड्गधारा जैसा व्रत पालकर अंत मे मृत्यु पाकर वह अच्युतेन्द्र हुए । लेशमात्र भी तप निष्फल नहीं होता है ।

इस जंबूद्विप के भरतक्षेत्र मे सुरनगर के जैसा हस्तिनापुर नाम का नगर है । उस नगर मे पद्मद्रह मे श्री देवी के निवासभूत मध्य कमल जैसा इक्ष्वाकुवंश मे पद्मोत्तर नाम का अेक राजा था । उसे उज्ज्वल गुणवाली, रुप से देवांगनाओं को भी पराभव करनेवाली और सभी अंतःपुर के आभूषणरूपी ज्वाला नाम की मुख्य रानी थी । उसके बाद प्रजापाल राजा का जीव देव संबंधी आयुष्य पूर्ण करके अच्युत देवलोक मे से च्यवन करके ज्वालादेवी के उदर मे अवतरित हुआ । योग्य समय पर ज्वालादेवी ने चौदह महास्वप्नो को सूचित और शोभा का धाम ऐसे महापद्म नाम के पुत्र को जन्म दिया । विष्णुकुमार और महापद्म दोनो सहोदर भाई अनुक्रम मे बडे हुए । बाद मे आचार्य ने निमित्तमात्र करके उन्होंने सर्व कला संपादन की । महापद्म कुमार ने विनयवान जानकर सद्बुद्धिवाले पद्मोत्तर राजा ने उसे युवराज पद पर स्थापित किया ।

उस समय उज्जयिनी नगरी मे श्रीवर्म नाम का राजा था । उसे नमुचि नाम का अेक प्रसिद्ध मंत्री था । एक बार मुनिसुव्रत प्रभु से दीक्षित हुए सुव्रत नाम के आचार्य विहार करते-करते वे उस नगरी मे पधारे । उनको वंदन करने के लिये नगरजनो सब वैभव से जा रहा है, उस महल के शिखर उपर चढे श्रीवर्म राजा के देखने मे आये । यह देख स्वच्छ बुद्धिवाले राजाने नमुचि से पुछा कि 'ऐसे अकाल समय मे नगरजन सर्व ऋद्धि के साथ कहाँ जा रहे हैं ? नमुचि बोला-'नगर के बाहर उद्यान मे कोई मुनि पधारे है उन्हे भक्ति से वंदन करने के लिये जल्दी से जा रहें हैं' राजा ने कहा-'तो चलो, हम भी चले' नमुचि बोला-'यदि आपको धर्म संभालने की इच्छा है तो मैं आपको धर्म कहूँगा ।' राजाने कहाँ 'वहा तो मैं अवश्य जाऊँगा' तब मंत्री बोला-'यदि आपको वहाँ जाना है तो चले, लेकिन वहाँ पर आपको तटस्थ रहना है । मैं सभी को वाद मे जीतकर निरुत्तर कर दूँगा' पार्श्वडीयो का पांडित्य प्राकृत (साधारण) लोगो मे ही चलता है ।

इस तरह बात हो जाने के बाद राजा, मंत्री और राजा का परिवार विविध आशय धरके सुव्रताचार्य के पास आये । उन्होंने स्वेच्छावाद से मुनियों को धर्म संबंधी प्रश्न करना शुरु किया, परंतु उनके ऊंचे नीचे बिना उद्देश्य के वचन सुनकर मुनियों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, मौन धारण करके रहे, तब नमुचि क्रोध करके अर्हत् शासन की निंदा करते सूरि के प्रति बोला-'अरे ! तुम गौखतावाला क्या

जानते हो ? तब सुव्रताचार्य ने अनार्य मंत्री से कहा- 'यदि तुम्हारी जिह्वा पर खुजली आ रही है तो हम कुछ बोले' उस समय अेक क्षुल्लक बोला- 'हे गुरु महाराज ! विद्वत्ता के अभिमानी ऐसे इस आदमी से आप को कुछ भी वार्तालाप करना युक्त नहीं है । आप देखे, मैं सभ्य होकर वाद मे जीत लुंगा, चाहे वो पक्ष वह ग्रहण करे या उसे मे यथार्थ तरीके से दुषित करुंगा ।' यह सुनकर नमुचिभट्ट क्रोध से कठोर वाणी मे बोला- 'आप सर्वदा, अपवित्र, पाखंडी और वेद बाह्य है, इसलिये आप मेरे देश मे बसने योग्य नहीं है । इतना ही मेरा पक्ष है और दुसरा आप से क्या कहूँ ?' क्षुल्लक बोला- "जो संभोग है वह ही अपवित्र है और उसका जो सेवक है तो वही पाखंडी और वेद बाह्य है, वेद मे पानी का स्थान, उखल, घंटा, चूल्हा और मार्ज (बहुर) ये पांच स्थान गृहस्थानों को पाप के लिये कहा है, इन पांच स्थानों की जो नित्य सेवा करते है वे सदा वेद बाह्य कहलाते है । हम तो पांच स्थानों से रहित है, तब हम किस तरह वेद बाह्य हुऐ ? म्लेच्छ लोगो मे उत्तम जाति की तरह निर्दोष ऐसे हमे इन दोषवाले लोगो मे निवास करना उचित नहीं है" इस तरह क्षुल्लक ने युक्ति से वाद मे पराभव करने पर वह मंत्री, राजा और राज्य परिवार सहित अपने स्थान पर चले गये ।

वह रात को उठकर नमुचि निशाचर की तरह उत्कट क्रोध से प्रज्वलित होकर सुव्रताचार्य के शिष्य को मारने के लिये आया । वादी जिस तरह सर्प को स्तंभित कर देता उस तरह तत्काल शासनदेवी ने उसे स्तंभित कर दिया । प्रातःकाल मे लोगोने उसे उस स्थिति मे देखकर विस्मय पाये । राजा और लोग यह आश्चर्य देखकर गुरु के पास से धर्म सुनकर, हाथी की तरह मद रहित होकर शांत हो जाता है उस तरह लोग शांत हो गये । उस तरह का अपमान होने से नमुचि वहाँ न रहते हुऐ हस्तिनापुर मे आया, क्योंकि 'अपमानित हुआ मानकर स्थान विदेश ही है ।' युवराज महापद्म ने उसे अपने प्रधान पद पर रखवा । 'हमेशा दुसरे राजा का प्रधान अपने पास रहने के लिये आता है, तो राजा उसके बारे मे विशेष अभिलाषी हो जाते है ।' महापद्म के देश मे प्रांत भाग मे सिंहबल नामका राजा था, वह आकाश मे रहे हुऐ राक्षस की तरह दुर्ग मे रहने से अति बलवान था । बारंबार आसपास के देश को लूट-लूट कर वह अपने दुर्ग मे छिप जाता था, उससे उसे कोई भी पकड नहीं सकता था, अेक बार कोप पाये महापद्म ने नमुचि मंत्री से कहा की 'तुम सिंहबल को पकडने को कोई उपाय जानते हो ? नमुचि ने कहा- "हे राजन् ! उसका उपाय मैं जानता हूँ ऐसा वचन कैसे कह सकता हूँ ? कारण घर बैठकर गर्जना करनेवाले पुरुषों 'गेहेनर्दी' ऐसा अपवाद लगना सुलभ है, इसलिये उसका उपाय करके उसका फल स्वामी को दिखाऊंगा, नहीं तो वचनमात्र से उपाय कहने मे तो कायर पुरुष भी पांडित दिखाते है ।" मंत्री के वचन से हर्ष पाकर महापद्म ने तत्काल आज्ञा दि, तब उसने वायु की तरह वहाँ जाकर सिंहबल के दुर्ग को स्खलित किया । तीक्ष्ण उपाय के जानकर नमुचि ने उस दुर्ग को तोड डाला और मृग को सिंह पकडता है उस तरह सिंहबल को पकड कर महापद्म के पास लाया । महापद्म ने कहा-मंत्रीराज ! वर मांगे !' तब उसने कहा कि समय आने पर मांगुगा' उस वचन को स्वीकार करके नमुचि जिसका कार्यभार करता है ऐसे महापद्म यौवराजपद अच्छी तरह से पालन करने लगा ।

अेक बार महापद्म की माता ज्वाला ने संसारसागर तैरने के लिये कर्णीरथ (नाव) जैसा अेक

अर्हत् की प्रतिमा का रथ बनवाया और उसकी अपर माता लक्ष्मीने मिथ्यादृष्टि से अपनी सपत्नि की समानता करने के लिये अेक ब्रह्म रथ बनवाया । अेक बार रथ यात्रा का प्रसंग आने पर लक्ष्मी ने राजा के पास मांग की कि 'नगर मे मेरा ब्रह्मरथ पहले चलेगा और बाद मे यह अर्हत् का रथ चलेगा' ज्वालारानी ने भी कहा कि 'यदि मेरा जैनरथ नगर मे पहले चलेगा नहीं तो मेरा अनशन है ।' दोनो रानीयों के विचार सुनकर संशय पाये राजा ने दोनो रथ की यात्रा स्थगित की । 'मध्यस्थ मनुष्य को दुसरा क्या उपाय उचित है ?' बाद मे अपनी माता ज्वाला के हुये दुःख से दुःखी पीडित ऐसा महापद्म रात मे लोगो के सो जाने पर हस्तिनापुर से निकल गया । स्वेच्छा से आगे चलते हुऐ अेक बडी घाटी मे आया । वहाँ घूमते-घूमते उसे अेक तापस का आश्रम उसे दिखाई दिया । प्रिय अतिथि के समागम से तापसो ने जिसका सत्कार किया है ऐसा महापद्म वहाँ अपने घर की भाँति रहने लगा ।

यहाँ चंपानगरी मे राजा जन्मेजय को काल ने उसे कुठित किया । जन्मेजय मृत्यु को प्राप्त हुआ । बाद मे नगर का भंग होने पर, दावनल लगने से दिङ्मुढ हुई हिरनी की तरह अंतःपुर की स्त्रियां भाग गयी । उसमे चंपानगरी के पति जन्मेजय की नागवती नाम की अेक प्रिया अपनी मदनावली नाम की पुत्री के साथ भागकर इस तापस आश्रम मे आयी । वहाँ महापद्म और मदनावली मिलते ही कामदेव के अस्त्ररुप उन्हे परस्पर का दर्शन होते ही तत्काल परस्पर अनुराग हो गया । मदनावली को अनुरागी हुई देखकर नागवती ने कहा- "पुत्री ! चपल न बनो, ज्योतिषीके वचन याद करो । अेक ज्योतिषी ने तुम्हे कहा था कि 'षट्खंड भरतक्षेत्र के स्वामी की तुम प्रधान पत्नि बनोगी' । इसलिये इस-उस पुरुष पर अनुराग न करो, मन को काबू मे रखो, तुझसे चक्रवर्ती राजा जरूर विवाह करेगा" उस समय विपरित बनने के भय से आश्रमपति ने महापद्म से कहा कि 'हे वत्स ! जहाँ तुम्हे जाना हो वहाँ तुम्हारा कल्याण हो' उस समय महापद्म ने विचार किया कि 'अेक साथ दो चक्रवर्ती नहीं होते है, मै एक ही चक्रवर्ती बननेवाला हूँ इसलिये यह मेरी ही पत्नि है ।' ऐसा निश्चय करके महापद्म तापस आश्रम से निकल गया ।

बाद मे घूमते-घूमते अेक सिंधुसदन नाम के नगर मे आया । उस समय वहाँ नगरी के बाहर उद्यान में वसंत उत्सव चल रहा था, नगर की स्त्रियां कामदेव के शासन मे रहकर वहाँ विविध क्रीडाएँ कर रही थी । उस क्रीडा का कोलाहल सुनकर वहाँ का राजा महासेन के अेक हाथी ने कदली स्तंभ की तरह आलानस्तंभ को उखाडकर फेंक दिया और शय्या पर गिरि हुई रज की तरह महावतों को फेंक कर अंगपर वायु के स्पर्श को भी सहन नहीं करनेवाला रोमांचित हो उठा । उसे वश करने के उपाय मे असमर्थ पुरुषो ने उसे दूर से छोड दिया वह हाथी तत्काल उद्यान मे क्रीडा कर रहे पुरुष स्त्रियो के नजदीक आया । आक्स्मिक भय से भयभीत वे भाग न सकी, वे वही खडी रह गयी और मगर ने दबाई हुई हंसनी की तरह पुकारने लगी । उनकी पुकार को सुनते ही देखकर महापद्म ने गजेंद्र के पास दौडकर पिछे से जाकर कहा- 'रे दुर्मद हाथी ! पिछे देख' यह सुनते ही हाथी क्रोध से महापद्म के सन्मुख पलटा और चरण न्यास से मानो पृथ्वी हल्की है उस तरह उसे कंपाने लगा । उस समय 'अपनी रक्षा के लिये मानो किसी महात्मा ने यमराज जैसे इस हाथी के आगे देह अर्पण किया' उस तरह वह



श्री मुनिसुवतरस्वामि भगवान
भरुच तीर्थ, गुजरात



श्री मुनिसुवतरस्वामि भगवान
अगाडी तीर्थ, जी. ठाना, महाराष्ट्र



श्री मुनिसुवतरस्वामि भगवान
थाणा तीर्थ, महाराष्ट्र

-: सौजन्य दाता :-

कृष्णनगर जैन श्वे. मू. संघ
गाम : नरोडा, अहमदाबाद, गुजरात

स्त्रियां कहने लगी क्षणभर मे नजदीक आये उस हाथी को सन्मुख महापद्म ने ऊँचा वस्त्र उसके मुख पर डाला । 'कभी छल भी शोभा देता है' हाथी ने कुमार की बुद्धि से उस वस्त्र को फाड़ दिया । 'क्रोध अकेला संभ्रम कर डालता है ऐसा है, तो मदमुर्छित हो तो उसकी बात ही क्या कहे ? वहाँ बड़ा कोलाहल होते ही सर्व नगरजन एकत्रित हो गये और सामंत तथा सेनापतियो सहित महासेन राजा भी वहाँ आया ।

राजा महासेन ने पद्मकुमार से कहा-हे पराक्रमी वीर ! दूर हट जा, अकाल मृत्यु जैसे उस क्रोधित हाथी के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? पद्मकुमार ने कहा-राजन् ! आप कहते हैं वह सही है, लेकिन आरंभ किया हुआ कार्य अधूरा छोड़ना यह भी लज्जा की बात है । इस उत्तम हाथी को वश करके उसे मानो जन्म से शांत था वैसा मैं अभी कर दुंगा । आप सौजन्यपन के भीरु न बने ।' इस प्रकार कहकर महापद्म कुमार ने उस पर वज्रमुष्टि का प्रहार किया, जिससे आच्छादन वस्त्र के वेध की तरह हाथी का मुख नीचे झुक गया । बादमे वह उन्मत्त हाथी जैसा कुमार को पकड़ने के लिये उद्यमवंत हुआ, तभी विद्युत्पात की तरह उछलकर उस पर सवार हो गया । बाद मंडूकासन वगैरेह नये-नये आसनो से आगे-पीछे घूमते महापद्म ने उस हाथी को खेदित किया, कुंभ स्थल पर लपड़ लगाने से, कंठभाग मे अंगूठे से पीडित और पृष्ठभाग पर पदन्यास से महापद्म ने हाथी को व्याकुल कर डाला । शाबाशी की पुकार करते नगरजन विस्मय पाकर जिसे देख रहे थे और राजा महासेन बंधुबुद्धि से जिसके पराक्रम का वर्णन कर रहे थे ऐसे महापद्म उस हस्ती को घूमाकर स्वेच्छा से हस्ती को बालक की तरह उसके साथ खेलता और उसके साथ क्रीडा करने लगा । बाद मे दुसरे महावत को सौंपकर, दुसरी कला पर पैर रखकर स्वयं नीचे उतर गया । राजा महासेन उसके पराक्रम से और रुप से 'यह कुमार किसी प्रधान कुल मे जन्म लिया है' ऐसा मानकर उसे अपने घर ले गया । वहाँ अपनी सौ कन्याओं से विवाह करवाया । 'घर आया हुआ ऐसा वर पुण्य से ही प्राप्त होता है ।' अहर्निश उन राजकन्याओं के साथ सुख भोग भोगते हुऐ उस कुमार को मदनावली का नित्य स्मरण शल्य की तरह चुभने लगा ।

अेक रात्रि मे कमल मे हंस की तरह मह पद्मकुमार शय्या पर सोये हुऐ थे, उसी समय पवन जैसे वेगवाली वेगवती नाम की अेक विद्याधरी उसका हरण करने आयी । वहाँ निद्रा का भंग हुआ, तब कुमार ने कहा-हे क्षुद्रे ! मेरा हरण क्यो कर रही हो ऐसा कहकर व्रज के जैसी गोल जैसी मुष्टि का प्रहार कर रहे थे तभी विद्याधरी बोली-“हे पराक्रमी वीर ! क्रोधित न हो, सावधान होकर सुने-वैताळ्यगिरि उपर सुरोदय नाम का अेक नगर है । उसमे इंद्रधनु नाम का एक विद्याधर राजा है । श्रीकांता नाम की उसकी पत्नि है और उस दम्पति को जयचंद्रा नाम की पुत्री है । योग्य पति नहि मिलने से जयचन्द्रा सभी पुरुषों पर द्वेष करनारी हुई है, क्योकि 'हीन वरवाली स्त्रियां जिवीत मरी हुई है' भरतक्षेत्र के तमाम राजाओ के चित्रपट मे आलेख करके उसे दिखाये लेकिन उसमे से उसे अेक भी रुचा नहीं । अेक बार चित्रपट पर आपका रुप आलेख करके दिखाया, तब तत्काल उसके हृदय मे कामदेव ने स्थान लिया । आपके जैसे प्राणवल्लभ मिलने दुर्लभ है मानकर उस पुरुष द्वेषिणी स्त्रि अपने जीवित्यव्य की भी द्वेषिणी हो गई और 'यह पद्मोत्तर राजा का पुत्र महापद्म मेरा पति बने, अन्यथा मेरा मरण मेरी शरण मे आये' ऐसी उसने प्रतिज्ञा की । उस जयचंद्रा का को आप पर का अनुराग मैंने उसके माता

पिता से कहा । योग्य वर की इच्छा जानकर तत्काल वे भी खुश हुए । मैं उस वेगवती नाम की विद्याधरी हूँ और हे प्रभु ! जयचंद्रा के मातापिता की आज्ञा से आपको वहाँ ले जाने आयी हूँ । आपके उपर अनुरागी हुई जयचंद्रा को धीरज दिलवाने के लिये मैंने प्रतिज्ञा से कहा है कि 'हे सुभ्र ! स्वस्थ हो । मैं स्वयं वहा जाकर और तुम्हारे हृदयपद्म से विकस्वर करने मे सूर्यरूप उस महापद्म को जरूर लाऊंगी, नहीं तो मैं अग्नि प्रवेश कर लुंगी, इसलिये तुम तुम्हारे मन की पीडा को शांत करो' इस तरह प्रतिज्ञापूर्वक उसे आश्वासन देकर उसके श्वास मे चंद्र के समान ऐसे आपके पास मैं आयी हूँ और आपको वहाँ ले जा रही हूँ, इसलिए आप क्रोधित न हो, आप उपकारी हैं" इस तरह का निवेदन सुनकर महापद्म ने आज्ञा दी, तब वह वेगवती विद्याधरी आभियोगिक देवताओं के रचे विमान से वेगद्वारा चलकर महापद्मकुमार को सुरोदयपुर मे ले आयी । प्रातःकाल मे सुरोदयपुर के पति इंद्रधनु राजा ने जिसकी पूजा की है ऐसे महापद्मकुमार रोहिणी को चंद्रमा की तरह जयचंद्रा से विवाह किया ।

जयचंद्रा के मामा के लडके गंगाधर और महीधर नाम की विद्यामद तथा भुजबल से दुर्मद ऐसे दो विद्याधर थे । वे इस जयचंद्रा के विवाह के समाचार सुनकर तत्काल क्रोधित हो गये । 'अेक द्रव्य (चीज) का दो जन अभिलाष यही बडे बैर का कारण है' वे सर्व बल से जयचंद्रा के पति पद्मकुमार के साथ युद्ध करने सुरोदयपुर मे आये । निष्कपट युद्ध करने मे कौतुकी ऐसे महापद्मकुमार और दुर्वार भुजपराक्रमी विद्याधर के परिवार नगर की बाहर निकला । किसी को त्रस्त करता हुआ, किसी को घायल करता और किसी को मार डालता महापद्म, गर्जेंद्रो के साथ सिंह की तरह, शत्रुओ के योद्धाओ के साथ लीलमात्र से युद्ध करने लगा । विद्याधर पति गंगाधर और महीधर अपने सैन्य का भंग देखकर दोनो जान लेकर भाग गये ।

बाद मे चक्ररत्नादि रत्न उत्पन्न होने पर वे बलवान महापद्मने षट्खंड भरतक्षेत्र पर विजय प्राप्त किया शुक्लपक्ष की चतुदशी के अेक कला अधूरी चंद्र की पूर्णता की तरह अेक स्त्रिरत्न बिना महापद्म ने चक्रवर्ती को सर्व समृद्धि प्राप्त हुई । बाद मे पूर्व में देखे स्त्री रत्न मदनावली का स्मरण करते महापद्म क्रीडा करने के उद्देश्य से तापस के आश्रम मे गये । तापसो ने उनका आतिथ्य किया । वहाँ घूमते जन्मेजय राजा की रानी ने उन्हे देखा, तब अपनी पुत्री मदनावली से उनका विवाह किया । इस तरह चक्रवर्ती की संपूर्ण समृद्धि प्राप्त करके पद्मराजा हस्तिनापुर आये और प्रथम वृत्तांत सुनकर खुश हुऐ मातापिता को अधिक हर्ष से प्रथम की तरह प्रणाम किया । कर्ण मे रसायण जैसा अपने पुत्र का चरित्र सुनकर सिंचन किये हुऐ वृक्ष की तरह मातापिता विकस्वर हो गये ।

अन्यदा मुनिसुव्रत स्वामी के हस्तदीक्षित शिष्य सुव्रत नाम के आचार्य विहार करते-करते वहाँ पधारे । राजा पद्मोत्तर ने परिवार सहित आकर उन्हे नमस्कार किया और संसार वैराग्य की मातारूपी उनकी देशना सुनी । देशना ने अंत मे स्वामी ! जहाँ तक पुत्र को राज्यपर बैठाकर दीक्षा लेने लाऊ तब तक आप भगवंत यही बिराजिये' ऐसी राजाने आचार्य से विनंती की' प्रमाद न करें । ऐसा सुरि ने कहा-तब राजा पद्मोत्तर उन्हे वंदना करके अपने नगर मे आया । बाद मे सामंत, अमात्य सर्व प्रकृति वर्ग को और विष्णुकुमार पुत्र को बुलवाकर राजा पद्मोत्तर ने कहा-"यह संसार दुःख का सागर है,

रोगी को अपथ्य की इच्छा की तरह रोग की वृद्धि होती है, उसी तरह प्राणी के पोषण के लिये जो प्रवृत्ति है वह उसकी वृद्धि के लिये ही होती है। कुओं के पास गया हुआ अंधा पुरुष जिस तरह बाहु देनेवाला पुरुष मिल जाता है उसी तरह संसार समुद्र में पड़ा हुआ मैं उसके उद्धार करने के लिये सुव्रत प्रभु यहाँ पधारे हुए हैं, इससे आज मेरे राज्य पर विष्णुकुमार को बैठाये। मैं सुव्रत प्रभु के पास अवश्य दीक्षा ग्रहण करूँगा।” तब विष्णुकुमार ने कहा-“पिताजी ! मुझे राज्य से अलग करें, मैं वह ग्रहण करनेवाला नहीं हूँ। मैं आपके साथ दीक्षा ग्रहण करके आप के मार्ग पर चलूँगा” तब राजाने पद्मकुमार को बुलवाकर आग्रह से कहा-‘वत्स ! यह राज्य स्वीकार करो, जिससे हम सुख से व्रत ले सकें।’ पद्मकुमार ने अंजली जोड़कर कहा-पूज्य पिताजी ! जहाँ तक पितातुल्य आर्य विष्णुकुमार का राज्याभिषेक नहीं होता है तब तक वह कार्य करना मेरे लिये उचित नहीं है, इसलिए जगत में एक समर्थ जैसे विष्णुकुमार का राज्याभिषेक करें, मैं अेक पैदल की तरह उनका युवराज बनकर रहूँगा’ राजाने कहा-‘मैंने उसे आग्रह किया, फिर भी वह राज्य ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं है, मेरे साथ दीक्षा लेने की इच्छा कर रहा है।’ इस तरह सुनकर पद्मकुमार मौन रहे, तब पद्मोत्तर राजाने चक्रवर्ती के अभिषेक के साथ उसका भी राज्य पर अभिषेक किया। बाद में पद्मकुमार जिनका निष्क्रमणोत्सव किया है, ऐसा पद्मोत्तर राजा ने विष्णुकुमार के साथ सुव्रतमुनि के पास जाकर दीक्षा ली। पद्मकुमार ने पृथ्वी पर अपने शासन की तरह सभी जनो ने पूजे हुए अपनी माता के जैनरथ को नगर में घूमाया। रथ घूमने के समय तक सुव्रताचार्य पद्मोत्तर प्रमुख शिष्यों के साथ नगर में रहे, बाद में अन्यत्र विहार किया।

अद्भुत चरित्र द्वारा शोभा देनेवाले पद्मचक्री ने अपने वंश की तरह सर्वत्र जिनशासन की भी उन्नति की। गाव, आकर, नगर और द्रोणमुख वगैरेह में मानो नये पर्वत निष्पन्न न हुए हो ऐसे कोटिगम में चैत्य बनवाये। पद्मोत्तर मुनि गुरु के साथ विहार करके उत्तम व्रत पालन करके केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धि को प्राप्त हुए। विष्णुकुमार मुनिने अद्भुत तपस्या करके उसकी महिमा से अनेक लब्धियोंवाले हुए। मेरु के जैसे उन्नत, गरुड के जैसे आकाशगामी, देव के जैसे कामरूपी और कामदेव जैसे स्वरूपवान, ऐसी विविध उपमा पाने विष्णुकुमार योग्य बने, फिर भी साधुओं के अस्थान पर लब्धि का उपयोग करना उचित न होने से वे किसी स्थान पर भी वे लब्धि घूमाते नहीं थे।

अेक बार चातुर्मास करने के लिये सुव्रताचार्य साधुओंके परिवार के साथ विहार करते-करते हस्तिनापुर में आकर रहे। आचार्य आये जानकर पूर्व बैर का बदला लेने की इच्छा से नमुचि मंत्री ने महापद्म राजा से विज्ञप्ति कि-हे नरेन्द्र ! आपने पहले वरदान देने को कहा था वह अब दे। महात्मा लोगो के पास रखा हुआ वरदान कभी नाश नहीं पाता है।’ राजा ने कहा-‘वह वरदान मांगो।’ तब नमुचि ने कहा-‘मुझे एक यज्ञ करना है, इसलिये यज्ञ पूरा हो वहाँ तक आपका राज्य मुझे दे। अपने दिये हुए वचन को याद कीजिये’ सत्य प्रतिज्ञावाले महापद्म राजाने नमुचि मंत्री को राज्य पर बैठाया और स्वयं अंतःपुर में प्रवेश किया। बाद में नमुचि कपट से नगर के बाहर निकलकर बगुले की तरह दुष्ट ध्यान करता अेक पापी यज्ञ में दीक्षित हुआ। उसका अभिषेककल्याण करने के लिये मंत्री और सर्व

धर्म के आचार्य आये, मात्र जैन के श्वेतांबरी साधु नहीं आये । 'सर्व धर्म के लिंगी मेरे पास आये और ईष्या से श्वेतांबरी साधु आये नहीं' इस तरह मानकर उस दुर्मति उनके छिद्र दूढ़ने लगा ।

बाद मे सुव्रताचार्य के पास जाकर आक्षेप करते हुऐ वह नमुचि मंत्री बोला- "जो राजा होता है उसका सर्व धर्म लिंगी आश्रय करते है । सर्व तपोवन राजाओं से रक्षणीय है, ऐसा मानकर तपस्वी अपने तप का छद्म हिस्सा राजा को देते है । आप अधम पांखडी मेरी निंदा करनेवाले, अभिमान द्वारा स्तब्ध, मर्यादा का लोप करनेवाले और लोक विरुद्ध तथा राज्यविरुद्ध वर्तन करनेवाले है, इसलिये आप मेरे राज्य मे न रहें, यहाँ से कही अन्य चले जायें । आप मे से जो कोई भी यहाँ रहेगा वह मेरे दुराशय वध्य है" सूरि बोले आपके अभिषेक मे हमे आने का आचर नहीं है इसलिये हम नहीं आये और हम किसी की निंदा करते नहीं है ।' यह सुनकर क्रोधित नुमिच बोला-आचार्य ! अब विशेष विस्तार करने की कोई जरूर नहीं है । यदि आप सात दिन से अधिक यहाँ पर रहेंगे, तो मुझे चोरो की तरह निग्रह करने योग्य होंगे ।' इस तरह कहकर नूमिच अपने स्थान पर चला गया ।

बाद मे सुरि ने मुनियों से पुछा- 'अब हमे क्या करना चाहिये ? वह यथाशक्ति और यथामति से कहें ।' उनमे से एक साधु बोले- "विष्णुकुमार मुनि ने छै हजार वर्ष तक तप किया है और हाल मंदराचल (मेरुगिरी) उपर है । वे महाशय पद्मराजा के ज्येष्ठ बंधु होते है, तो उनके वचन से यह नमुचि शांत हो जायेगा, क्योंकि वह भी पद्म की तरह उसके स्वामी है । इसलिये विद्यालब्धिवाले साधु है उन्हे बुलवाईये । संघ के कार्य मे लब्धि का उपयोग करना दूषित नहीं है" तब अेक दुसरे साधु बोले कि मै आकाशमार्ग से वहाँ तक जाने के लिये शक्तिमान हूँ लेकिन वापस आने के लिये शक्तिमान नहीं हूँ, इसलिये इस कार्य मे मेरा जो कर्तव्य हो उसे कहें वह मै करुंगा' गुरु बोले- 'आपको विष्णुकुमार वापस लायेंगे । आप उन्हे बुलवाने जायें' ऐसा कहा तब वे मुनि आकाशमार्ग से गरुड की तरह उडकर क्षणभर मे विष्णुकुमार के पास आये । मुनि को आते देखकर विष्णुकुमार ने मने मे सोचा 'यह मुनि वेग से आ रहे है, तो अवश्य संघ का कोई कार्य होगा, अन्यथा वर्षाऋतु मे साधुओं का विहार संभव नहीं है, उसी तरह वह वे जैसे-तैसे कार्य मे लब्धियो का उपयोग भी नहीं करते है ।' इस तरह विष्णुकुमार सोच रहे थे, उसी समय वे उपस्थित होकर वंदना की और अपने आगमन का कारण कहा । यह सुनकर विष्णुकुमार क्षणभर मे उन मुनि को लेकर आकाशमार्ग से हस्तिनापुर आये और अपने गुरु सुव्रताचार्य को वंदन किया । बाद मे साधुओ के परिवार सहित विष्णुकुमार नमुचि के पास आये । अेक नमुचि के बिना अन्य सभी राजा प्रमुख लोगो ने वंदना की । बाद मे धर्म कथा पूर्वक विष्णुकुमार ने शांति से नमुचि से कहा- "जहाँ तक चार्तुमास है वहाँ तक यह सभी मुनि इस नगर मे रहें । यह मुनि चिरकाल तक एक जगह रहते ही नहीं है । लेकिन वर्षाऋतु मे बहुत जंतुओं की उत्पत्ति होती है, इसलिये उनका विहार होता नहीं है । हे बुद्धिमान राजा ! इस बडे नगर मे हमारे जैसे भिक्षुक भिक्षावृत्ति से रहते है उसमे आपको क्या हानि है ? भरत, आदित्वयशा और सोमयशा प्रमुख राजाओं ने मुनियो को भक्ति से वांदा है यदि आप ऐसा नहीं करते है तो उन्हे नगर मे रहने दे ।"

इस प्रकार विष्णुकुमार के कहने पर नमुचि मंत्री क्रोधित होकर कहा कि 'आचार्य ! अधिक

वचन न बोले, मैं तुम्हे यहाँ रहने नहीं दूंगा', समर्थ फिर भी क्षमतावाले विष्णुकुमार ने दुबारा फिर से कहा- 'यदि आपकी इच्छा है तो आचार्य नगर के बाहर उद्यान में निवास करके रहेंगे' तब उस अधम मंत्री ने क्रोधित होकर उन महर्षि से कहा- 'मैं तुम्हारी गंध भी सहन नहीं कर सकता हूँ, इसलिये अब आप निवास करने की प्रार्थना भी न करें। नगर में या नगर के बाहर चोर लोगो का श्वेताम्बरी का निवास कभी भी मर्यादा के योग्य रहेगा नहीं। यदि आप जिना चाहते हैं तो यहाँ से चले जाओ, नहीं तो सर्पों का गरुड हनन करते हैं उस तरह मैं तुम सभी का हनन कर डालूंगा' नमुचि के ऐसे वचन सुनकर आहुति द्वारा अग्नि की तरह विष्णुकुमार क्रोध से प्रदीप्त हुए, तो भी वे बोले- 'अरे ! यहाँ हमें रहने के लिये तीन डग जमीन तो दे।' तब नमुचि ने कहा- 'मैं तुम्हे तीन डग भूमि देता हूँ, लेकिन उस भूमि के बाहर रहेगा उसका तत्काल वध कर डालूंगा।' 'तथास्तु' ऐसा कहकर विष्णुकुमार ने काया विकसित करना शुरू किया। मुगुट, कुंडल, माला, धनुष्य और खड्ग धारण करके, बड़े फुंकार से जीर्ण पत्र की तरह खेचरो को गिराते हुए, कमल के पत्रों की तरह पृथ्वी को कंपन करवाते, कल्पांत काल के पवन की तरह समुद्र को उछालते हुए, सेतुबंध की तरह सरिताओं का प्रतिगमन करनेवाली (वापस मोड़नेवाली) से कंकड़ के समूह की तरह ताराचक्र को बिखेरते हुए, पर्वतों को फाड़ डालते, महापराक्रमी, महातेजस्वी और सुर असुरों के भयंकर ऐसे विष्णुकुमार अनुक्रम में विविध रूप से बढ़कर मेरुगिरि जैसे बन गये। उस समय तीन जगत को क्षोभ होता हुआ देखकर उन्हें प्रसन्न करने के लिये इंद्र ने गायन करनेवाली देवांगनाओं से आज्ञा की वे गायिकाएँ वहाँ आकर सर्वज्ञ शास्त्र में कहे हुए भाव के जानकार करनेवाला गायन, गांधार स्वर में, उनके कर्ण के समीप इस तरह गाने लगी- "प्राणी कोप से इस भव में भी दग्ध हो रहे हैं, बारंबार स्वार्थ में मोहित हो रहे हैं और मृत्यु प्राप्त होने के पश्चात् अनंत दुःखवाली नर्क में गिरते हैं" इस तरह उनके कोप का शमन करने के लिये किन्नरों की स्त्रीयों ने उनके आगे गान और नृत्य भी करने लगी। बाद में पद्मकुमार के अग्रज बंधु जिनके चरण वंदन करने योग्य हैं, वे नमुचि को पृथ्वी पर डाल कर पूर्व से पश्चिम समुद्र के किनारे (जंबूद्वीप की जगती पर) दो डग भरकर स्थिर हुए। यह वृत्तांत सुनकर पद्मकुमार संभ्रम से वहाँ आये और अपने प्रमाद से तथा नमुचि के दोष से चकित हो गये। बाद में अपने अग्रज महर्षि को अति भक्ति से नमस्कार करके अंजली जोड़कर अश्रु द्वारा मुनि के चरणों को प्रक्षालित करते हुए इस तरह बोले-

"हे प्रभु ! लोकोत्तर गुणवाले आप विजयवंत स्वामी फिर भी पूज्य पिताश्री पद्मोत्तर राजा अद्यापि मेरे चित्त में विराजमान हैं। यह अधम नमुचि मंत्री हमेशा श्री संघ की आज्ञातना करता था यह मेरे जानने में नहीं आया, आपने किसी ने भी मुझे बतलाया नहीं, तथापि मैं स्वयं भी अपराधी हूँ क्योंकि वह पापी सेवक मेरा है। स्वामी सेवक के दोष से दूषित होता है ऐसी नीति है उस नीति के अनुसार मैं आपका सेवक हूँ और आप मेरे स्वामी हैं तो आप भी मेरे दोषों से ग्रसित होंगे, इसलिये आप क्रोध का त्याग करें। हे महात्मा ! इस पापी मंत्री के अपराध से यह तीन लोकों के प्राणसंशय में आ गये हैं, इसलिये हे करुणानिधि ! उसकी रक्षा करें।" इस तरह दुसरे अनेक सुर-असुर और नरों ने इश्वरों ने (इंद्र और राजाओं ने) और चतुर्विध संघ ने विविध प्रकार से स्तुति करके महामुनि विष्णुकुमार को

शांत करने लगे । जब आकाश में अत्यंत विराट पाये विष्णुकुमार ने सुना तब सभी ने वहाँ आकर भक्ति से उनके चरण स्पर्श किया । चरण को स्पर्श होते ही विष्णुकुमार ने उपर से नीचे की ओर देखा तब वहाँ अपने भाई, चतुर्विद्य संघ और सुर, असुर तथा राजा दिखाई दिये । मुनि ने सोचा कि 'यह कृपालु संघ और मेरा भाई यह दीन ऐसा मेरा कोप को शांत करने की प्रार्थना कर रहे हैं, तो मुझे भी यह संघ मान्य है और भ्राता पद्म वगैरेह सर्व अनुकंपा करने योग्य हैं' ऐसा सोचकर वे महामुनि विष्णुकुमार शरीर की वृद्धि का उपसंहार करके मर्यादा में आये समुद्र की तरह अपनी मूल प्रकृति की अवस्था में स्थिर हुये । संघ के आग्रह से उन महामुनि ने नमुचि को छोड़ दिया, तब पद्मराजा ने तुरंत उस अधम मंत्री को नगर में से निकाल दिया । यह त्रिपदी (तीन डंग) का चरित्र से विष्णुकुमार तीन जगत में त्रिविक्रम ऐसी पवित्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुये । इस तरह श्रीसंघ का कार्य करके शांत होकर, आलोचना लेकर, उत्कृष्ट तपस्या करके विष्णुकुमार मुनि केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में गये ।

महापद्मराजा ने भी संसार से उद्वेग पाकर तिनके की तरह छै खंड के राज्य को त्याग करके सद्गुरु के पास से दीक्षा ली । कुमार अवस्था में पांचसौ वर्ष, मांडलिकपन में भी उतने ही वर्ष, दिग्विजय में तीनसौ वर्ष, चक्रवर्तीपन में अष्टारह हजार सातसौ वर्ष और व्रत में दस हजार वर्ष, इस तरह कुल मिलाकर तीस हजार वर्ष का पद्मचक्रवर्ती का आयुष्य पूर्ण हुआ । पद्मचक्रवर्ती मुनिपन के विविध अभिग्रहों के द्वारा सुंदर ऐसे तीव्र तप करके घातीकर्म का क्षत्र होने पर केवलज्ञान की समृद्धि प्राप्त करके शाश्वत सुख के धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुये ।

इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये षष्ठे पर्वणि
पद्मचक्रवर्तीचरितवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

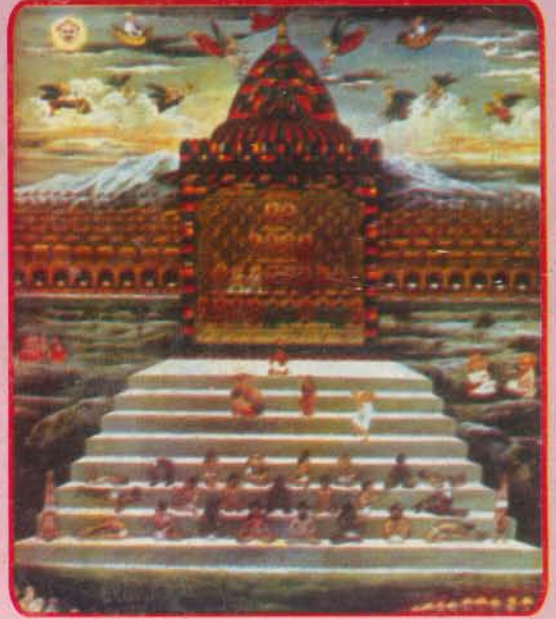
“इस छठेपर्व में प्रथम दो जिन और उन दो चक्रवर्ती, दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो राम (बलदेव), दो वासुदेव और दो प्रतिवासुदेव इस तरह चौदह महात्मा शलाका पुरुषों का कीर्तन किया है । कीर्ति से दिशाओं को व्याप्त करनेवाले उन महापुरुषों के उदार चरित्र हमेशा लोगों के कर्ण के अतिथि रूप बने”

॥ समाप्तं चेदं षष्ठं पर्व ॥

श्री त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र का छठवा पर्व समाप्त



श्री समेतशिरवरजी तीर्थ



श्री अष्टापद महातीर्थ



श्री राजमूढी तीर्थ



श्री चंपापुरी तीर्थ



श्री आगलोड तीर्थ